श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी ग्रन्थमाळा-ग्रन्थांक ५३.

ॐ अर्हं महावीरदेवायनमः

श्रीमद् देवचन्द्र भाग २ बीजो.

संशोधक,

योगनिष्ठ शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरि.

प्रगटकर्त्ता,

श्रीअध्यात्मज्ञानप्रसारकमंडळ.

हा. वकील मोहनलाल हिमचन्द, पादरा.

प्रति-१००

वीर संवत् २४४५. विक्रम संवत् १९७५.

किम्मत ३-८-०.

आ ग्रंथ मळवानुं ठेकाणुं :—

वकील मोहनलाल हिमचंद—पादरा (गुजरात.)

बडोदरा—विद्यापुरमां, लुहाणामित्र स्टीम प्रेसमां, विठ्ठलभाइ आशाराम ठक्करे
ता. १-१०-१९१९ ना रोज प्रकटकर्ता माटे छापी प्रसिद्ध कर्युं.

निवेदन.

श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिजी ग्रंथमालाना ओगणत्रीशमा मणका तरीके श्रीमद् देवचन्द्र प्रथम भाग छपाया पछी थोडे वर्षे ण. श्रीमद् देवचन्द्र बीजो भाग बहार पडे छे. श्रीमद् देवचन्द्रजी महात्मानां तमाम ग्रंथो पुस्तक रूपे छपाववानी योजना जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिजीनी प्रेरणाथी अने उपदेशथी त्यारे अने केवी रीते थई. तेमज आ ग्रंथो क्यांथी केवी रीते मळ्या ते सर्व हकीकत श्रीमद् देवचन्द्र प्रथम भागनी प्रस्तावनामां विस्तारथी जणावेली होवाथी ते फरीथी अत्रे जणावेल नथी. प्रथम भागनी ५०० नकलो छपावी हती तेमांथी जैन पुस्तक भंडारो तथा सहायक सज्जन विगेरेने भेट आपवामां १५० नकलो तेमज वेचाणमां २०० नकलो मळी एकंदर ३५० नकलो खपी छे जो के मागणीओ चालु रहे छे छतां नकलो थोडी होवाथी उपयोग प्रमाणे आपवामां आवे छे.

श्रीमद् देवचन्द्र बीजा भागमां एकंदर पृष्ठ १२०० ना आशरे छे अने तेनी प्रत ५०० नकलो छपावी छे, ग्रंथनुं मूल्य भारे थवाथी मफत नकलो के जेटले वहेंचवामां आवी छे ते पैकी पहेला वर्गनां विद्वानो ग्रंथ अने वकीलना ग्रंथो भेट वधुमां अल्प छे. बाकीनी २०० नकलो आवी वहेंचवा आवशे ते पुस्तकालयो विगेरेने आपवामां उपयो-ग थशे.

श्रीमद् देवचन्द्र बन्ने भागमां जे जे ग्रंथो छपाया छे

तेनी वीगतवार मारी अनुक्रमणिका उपरथी वांचको जोई शकशे. श्रीमद् देवचन्द्र प्रथम भागनी पेठे आ बीजो भाग पण जैनो तेमज जैनेतरोने अत्यंत उपयोगी थई पडे तेम छे. युरोपीय विग्रहना समयमां आ ग्रंथ छपाववामां आवेलो होवाथी सख्त मोंघवारीना लीधे कागळो–छपामणी–बंधाई वगेरेनो एटलो बधो खर्च थयो छे के एक नकलनी पडतर कीं. रु. ६–०–० ना आशरे थाय छे तेमज कद वधी जवाथी बे कडके बांधेल छे छतां तेनी कीमत मात्र रु. ३–८–० राखी छे. बे कडका सामेज आपवामां आवशे.

श्रीमद् देवचन्द्र प्रथम भाग तथा बीजा भागमां मदद करनार जैन गृहस्थोनां नाम नीचे प्रमाणे:—

रु.५०१ शा. म्होल्लाल नाथाभाई–पादरा.
२०० शा. म्होल्लाल नरोतमदास–रणु (पादरा)
२०० शा. झवेरभाई भगवानदास–कावीठा (बोरसद)
१०१ श्रीयुत श्रेष्ठी अमरचंदजी बोथरा बालुचर (मुर्शिदाबाद)
३१ श्रीयुत श्रेष्ठी बुधसिंहजी बोथरा „ „
६१ „ „ जगतपतिसिंहजी दुगड „ „
५१ „ „ हरखचंदजी नाहटा „ „
२५ „ „ गुलाबचंदजी मूरा „ „
१८६ शा. हीरालाल छोटालाल–पादरा
२५० बाइ रतन शा. चुनीलाल कहानदासनी विधवा दुहीता (वडोदरा)
१०१ वकील मोहनलाल हीमचंद–पादरा
२५ सौ. बाइ जमना. वकील मोहनलाल हीमचंदना पत्नी „

१०० शा. लक्ष्मीचंद लालचंद–वडु (पादरा)
१०० बाइ चंचल शा. दामोदर कल्याणदासनी विधवा „
८९ बेन मणी शा. प्रेमचंद दलसुखभाइनी भाणेज. पादरा
८० शा. केशवलाल लालचंद वडोदरा–मामानी पोळ
७५ शा. केशवलाल नरोत्तमदास वडु (पादरा)
७५ बाइ आधार शा. गोरधनभाइ हीराचंदनी विधवा अंगुटण (डभोइ)
५० शा. रतनचंद लाधाजी. कावीठा (बोरसद)
४१ शा. भाइलाल चुनीलाल. पादरा
२५ वकील नंदलाल लल्लुभाइ. पादरा
२५ बाइ सांकळी वे शा. मणीलाल चुनीलालनी विधवा. पादरा
२० एक गृहस्थ तरफथी पादरा
१० शा. त्रीकमलाल व्रजलाल राजली (डभोइ)
३५ शा. मुलजी पीतांबरदास मुजपुर (पादरा)
५ बाइ रुक्मणी शा. दलसुखभाइ प्राणजीवनदासनी दीकरी पादरा
५ बाइ डाही वे शा. छोटालाल छगनलालनी विधवा. पादरा
२०० बाइ आदीत शा. मथुरभाइ ईश्वरदासनी विधवा. मुजपुर
१६ शा. माणेकलाल वरजीवनदास. पादरा
१५० गाम वेजलपुरना जैनशाळाना ज्ञान खातेथी हा. शा. छगनलाल लक्ष्मीदास
७५ दाहोदना शा. हेमचंद हरजीवनदास.
५० बाइ [illegible]
१२५ गाम [illegible]
७५ शा. [illegible]

५१ शा. हीराचंद केशवजी गंभीरा
२५ शा. अंबालाल आशाराम ,,
२५ शा. माणेकलाल केशवजी ,,
१० शा. जेचंद केशवजी ,,
११ शा. प्रेमचंद दलसुखभाइ पादरा
१० शा. नगीनदास मोतीलाल ,,
१० शा. हीरालाल लल्लुभाइ ,,
१० बाइ परगन ते वकील दलपतभाइ लल्लुभाइनी विधवा पत्नी,,
१० बाइ समरत ते शा. कस्तुर दीपचंदनां सौ. पत्नी ,,

३३२०

१०१ ऊ. श्री सुमति सागरजी महाराजना उपदेशथी हा. पीतांबरदास मुंबइ.
१५ श्रीयुत मालमचंद गुलेछा बीकानेरवाळा, बेंगलोर.

श्रीमद् जैनाचार्य बुद्धिसागर सूरिजीए श्रीमद्‌नां पुस्तको छपाववामां-प्रस्तावना लखवामां-तेमज अने भाषान्तर काम प्रुफ पनां सुधी दरेक प्रसंगे उपयोगी सूचनाओ आपवामां जे आत्मभोग आप्यो छे ते उपकारनो बदलो कोई रीते वळी शके तेम नथी एटलुंज नही पण आ कार्य तेओश्रीना सतत उपदेश अने प्रयत्नथीज उपस्थित थयु होवाथी आ कार्यथी जैन समाजने तथा मने जे लाभ थयो छे ते सर्वना निमित्तभूत तेओश्रीज छे तेथी तेओश्रीनो जेटलो उपकार मानीए तेटलो ओछो छे

श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराजनां पुस्तको मेळवी आपवामां जे जे मुनि महाराजाओए तथा अन्य ग्रहस्थोए मदद करेली छे तेमज जे जे ग्रहस्थोए द्रव्य स्हाय करी छे तेमनो अने मारा सहाध्यायी बंधु माणेकलाल वरजीवनदास, मंगलभाइ लक्ष्मीचंद (वडु) प्रेमचंद दलसुखभाइ तथा भाइलाल चुनीलाल वगेरे जेमणे आ कार्यमां घणी मदद करी छे ते सर्वनो प्रथम भागमां उपकार मानवामां आवेलो छे तेमज आ बीजो भाग छपावी पूर्ण करती वखते पण फरीथी उपकार मानवामां आवे छे.

श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराजना ग्रंथो बहार पाडनार अमो तेमज आ कार्यना मुख्य उत्पादक श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिजी महाराज ए सर्वे मोटा भागे तपगच्छना छैए छतां श्रीमद्ना गुणानुरागथी तेमना ग्रंथो छपाववामां अहोभाग्य मानीए छीए तेज प्रमाणे खरतर गच्छना मुनिराजो तथा श्रावको श्री तपागच्छना मुनिओ उपर गुणानुरागी बनी तेमना बनावेला उत्तम ग्रंथो बहार पाडी बंन्ने गच्छवाळा परस्पर सहकार्यथी प्रयत्न करशे तो जैन कोमने घणो लाभ थशे.

सं १९७५ ना वैशाख सुदि ६ ना दीवसे पादरामां श्री शांतिनाथजी महाराजना देरासरना ध्वजा दंडारोपण महोत्सवना वरघोडामां जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी महाराजना उपदेशथी श्री कल्पसूत्र. महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी महाराजना ग्रंथो तथा श्रीमद् देवचन्द्र भाग पहेलो तथा श्री आनंदघनपद भावार्थ सग्रह ए ग्रंथोने हेट्ट बहुमान पुर्वक खास

एक हाथी उपर बेसवानो चढावो बोलतां वडुना शा. मणीलाल लक्ष्मीचंदे भारे रकमनो चढावो बोली श्रीमद् देवचन्द्र पहेलो भाग लेइ हाथीपर बेठेला. आ उपरथी श्रीमद्ना ग्रंथो प्रत्येनो अपूर्व भक्तिभाव जणाइ आवे छे. जैन कोममां पूर्वाचार्योना ग्रंथो खरेखर आगमोनी पेठे मनाय छे. श्रीमद्ना बन्ने भागो छपावीने बहार पडवाथी अमोने घणोज आनंद थयो छे. आ ग्रंथोमां शुद्धि कर्या छतां जे भुलो रही गएली जणाशे ते बीजी आवृतिमां सुधारी लेवामां आवशे.

श्रीअध्यात्म ज्ञान प्रसारक मंडळ तरफथी घणां पुस्तको पडतर किंमते अने केटलांक पडतरथी पण ओछी किंमते बहार पाडवामां आवे छे. माटे आ संस्थानी कदर करनार सारी ग्रहस्थो मंडळ तरफथी पुस्तको छपाववामां सहाय करशे तो मंडळ वधारे उत्साहथी एथी पण वधारे उपयोगी कार्य बजावशे.

बीजी आवृत्ति छपावना पहेलां आ ग्रंथो संबंधी जे जे महाशयो योग्य सूचनाओ करशे तो बीजा प्रसंगे ते उपर पूरतु ध्यान आपवामां आवशे.

इत्येवं ॐ अर्ह शान्तिः३

मु० पादरा–आश्विन शुक्ल २ सं. १९७५ } वकील मोहनलाल हीमचंद

श्रीमद् देवचंद्र भाग २.

विभाग बीजो.

अनुक्रमणिका.

॥ ॐ ॥

अथ श्रीमद् पाठक देवचंद्रकृत

॥ अध्यात्मगीता प्रारंभः ॥

राग ॥ ढाल मनगमीतानी ॥

प्रणमिए विश्व हित जैन वाणि ।
महानंद तरु सिंचवा अमृत पाणी ।
महा मोहपुर भेदवा वज्रपाणी ।
गहन भवफंद छेदन कृपाणी ॥ १ ॥

अर्थः—विश्व कहेतां जे जगत् तेने हित के० कल्याणनी करनारी एहवी जैन के० श्री वीतरागनी वाणी ते तेने प्रणमी के० नमस्कार करूं; केहवी छे. वळी जिनवाणी केहवी छे? महा आनंदरूप तरु के० वृक्ष तेहने सिंचवा अमृत सरीखी पाणी होइने तेहवी छे. वळी जिनवाणी केहवी छे? मोहादि एहवो मोहरूप तेहवुं पुर के० नगर तेने भेदवा के० भांगवाने वज्र सरीखी एहवी. वळी ते वाणी केहवी छे? गहन के० अतिकठिन भव जे संसार तेनो फंद के० फंद तेने छेदवाने कृपाणी के० तरवारनी धार सरीखी ॥ १ ॥

॥ दूहा ॥

द्रव्य अनंत प्रकाशक भासक तत्त्व स्वरूप ।
आतम तत्त्व विबोधक शोधक सद्गुरु भूप ॥

नय निक्षेप प्रमाणे जाणे वस्तु समस्त ।
त्रिकरण जोगे प्रणमुं जेनागम सुप्रशस्त ॥२॥

अर्थः—वली जिनवाणी कहेवी छे ? घणा पुद्गलादिक संबंधी जे द्रव्य तेने प्रगट करी देखाडवावाली एहवी, वली तत्त्व जे आत्मतत्त्व जे आत्मानुं स्वरूप तेने बोध के० समजाववावाली, वली चिद्रूप के० चेतनरूप एहवुं जे आत्मस्वरूप तेने शोधक के० प्रगट करी देखाडे एहवी, वली जिनवाणी कहेवी छे ? नय के० नैगमादिक सात नय तथा नामादि च्यार निक्षेपा तथा प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणे करी समस्त वस्तु पदार्थनी जाणपणानी करणहारी छे, अन्यमतिनां शास्त्र छे ते अप्रशस्त छे, अने जिनमतनां आगम छे ते प्रशंसनीय छे, एहवो जिनागम तेहने त्रिकरण योगे करी मनोवाक्काययोगे करी प्रणमुं छुं ? नमस्कार करुं छुं इति भावः ॥ २ ॥

जिणे आतमा शुद्धताये पिछाण्यो ।
तिणे लोक अलोकनो भाव जाण्यो ॥
आतम रमणि मुनि जग विदीता ।
उपदिसी तिणे अध्यात्म गीता ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे सर्व द्रव्यनो ज्ञायक जे जीव द्रव्य सर्वद्रव्य मध्ये ते आत्मद्रव्यनो लक्षण कहीये माटे प्रथम आत्मद्रव्यना जाणवे भावक कहिये ते कहे छे. जे जिण आतमा के० जे जिन समकित प्रमुख आत्मा छे ते शुद्धता छे, मूल सत्तास्वरूप पिछाण्यो के० ओलख्यो तेणे लोक तथा अलोकनो भाव सर्व

जाण्यो जे आचारांग सूत्रे कह्युं छे "जे एगंजाणइसे सव्वंजाणइ" ते आत्म के० आत्मस्वरूपमेंज रमे एहवा मुनि जगत्मांहि प्रसिद्ध छे, तेणे अध्यात्मगीतानो उपदेश कर्यो छे पण कर्ता कहे के हुं नथी करतो इतिभावः ॥ २ ॥

द्रव्य सर्वना भावनो जाणग पासग एह ।
ज्ञाता कर्त्ता भोक्ता रमता परिणति गेह ॥
ग्राहक रक्षक व्यापक धारक धर्म समूह ।
दान लाभ बल भोग उपभोगतणो जे व्यूह ॥३॥

अर्थः—द्रव्य सर्वना के० धर्मास्तिकायादिक षट् द्रव्यना गुणपर्याय तथा औदयिकादिक भावना [illegible] कर्यो जाण्या छे, तथा दीठा छे एहवो आत्मा छे, ज्ञाता के० स्वगुणनो स्वरूप जाणे छे [illegible] कर्त्ता के० शुभाशुभ विभाव दशानो कर्त्ता नथी, अने [illegible] अनंतगुणरूप लक्ष्मी तेहनो कर्त्ता छे अने [illegible] अनंतगुणरूप [illegible] पर्याय तेहनो भोक्ता छे, [illegible] ते आ तेहने विषे [illegible] तथा [illegible] तथा [illegible] तथा रमता इत्यादिक परिणतिना गेह [illegible] छे, ग्राहक के० ज्ञानादि गुणधर्म समूह तेहने [illegible] रक्षक [illegible] रक्षणहार तथा स्वधर्मने विषे [illegible] अने ते धारक एटले ग्राहक, रक्षक, व्यापक [illegible] समूहनो छे. एहिज आत्म [illegible] लब्धिना समूह प्रगट्या छे. [illegible]

गये दान पोताना ज्ञानादि अनंतगुणने विपे दीये छे ते दानलब्धि, १ लाभांतरायक्षयगये पोताना स्वरूपनो लाभ थयो ते लाभलब्धि २ भोगांतराय कर्म क्षय थाय त्यारे पोताना ज्ञानादि अनंतगुणना पर्याय वेहने समये समये उपभोग करे छे ते उपभोगलब्धि ४ वीर्यांतराय कर्म क्षय गये पोताना अनंतज्ञानादिकने विपे अनंतो वीर्य फोरवे छे ते वीर्यांतरायलब्धि ५ तथा जिहां आत्मा ज्ञान दर्शन रूपगुण वेमयिज कहे छे, तिहांतो वीर्यादिक गुण सिद्धमां नथी कहेता अने जिहां अनंतगुणी व्याख्या करे तिहां कहे छे एटले असंख्यात प्रदेशी, अरूपी, अखंड ज्ञानदर्शन गुणमयी उपयोग लक्षण कर्त्ता, भोक्ता सहज परिणामे जीवद्रव्य जाणवो. जीवभाव द्रव्य प्राणे करीने सदा जीवे ते जीव, चेते-जाणे तेमाटे चेतन कहिये, तथा नवा नवा पर्यायने पमाडे माटे आत्मा कहे छे इत्यादिक अनेक नाम छे. ॥ ४ ॥

संग्रहे एक आया वखाण्यो ।
नैगमे अंशथी जे प्रमाण्यो ॥
दुविध व्यवहार नय वस्तु वीहचे ।
अशुद्ध वलि शुद्ध भासन प्रपंचे ॥ ५ ॥

अर्थः—साते नये करी जीवनो स्वरूप ओलखावे छे. संग्रहे एक आत्मा वखाण्यो, संग्रहनयना मतवालो सत्तानो ग्रहण करे छे एटले ए सर्व जीव चेतनना समुदाय जोतेथके एक सरीखा छे, ए संग्रहनयनोमत नैगमनयना मतवाला एक अंश ग्रहीने सर्व वस्तुनो प्रमाण करे एटले जीवना आठ रुचक

प्रदेश कर्म लेपाता नथी सदा उघाडा छे, तेणे करी आत्मा सिद्ध समान जाणवो. व्यवहारनय मते बे प्रकारे जीव कहे छे, अशुद्ध ते अष्ट कर्माश्रित संसारी जीव, अने शुद्ध ते अष्टकर्म रहित सिद्ध, एवं बे प्रकारे वहेंचे, एक सकळ कर्म क्षय करी लोकाग्रे विराजमान ते सिद्ध, बीजा संसारी तेहना बे भेद-एक सयोगी बीजा अयोगी इत्यादिक जे भेद ते व्यवहारनयना मतवालो ते वस्तुना गुण पर्यायथी प्रवर्त्तिने ग्रहे छे, ते प्रवर्त्ति बे प्रकारनी-जे द्रव्यना गुणनी शुद्धता जेथी निपजे ते प्रवृत्ति ते साधन शुद्ध व्यवहार १ अने जे प्रवृत्ति करतां द्रव्यधर्मनी अशुद्धता नीपजे ते प्रवृत्तिने अशुद्ध व्यवहार कहीये २।५

अशुद्धपणे पणसय तेसठी भेद प्रमाण ।
उदय विभेदे द्रव्यना भेद अनंत कहाण ॥
शुद्धपणे चेतनता प्रगटे जीवविभिन्न ।
क्षयोपशमिक असंख्य क्षायिक एक अनुन्न ॥६॥

अर्थः—अशुद्ध व्यवहारनयने मते जीवना पांचसे त्रेसठ भेदनो प्रमाण जाणवो. अशुद्ध औदयिक भावने योगे करी जोतां तो जीवद्रव्यना भेद अनंता कह्या छे, अने शुद्धव्यवहारनय मते जीवनी चेतनता नीपजे अने विभिन्न ते अभेदपणपणे जाणवो. पुद्गलथी जीव जुदो जाणे तेहने घणो क्षयोपशम तेने अधिक कहिये तेहने घणो क्षयोपशम तेहने ओछो कहिये [illegible] क्षयोपशमभाव असंख्य क्षायिकभाव प्रगट. क्षयोपशमिक [illegible] भेद छे. क्षायिकभावनो एक [illegible]

नामथी जीव चेतन प्रबुद्ध ।
क्षेत्रथी असंख्य प्रदेशी विशुद्ध ॥
द्रव्ये स्वगुण पर्याय पिंड ।
नित्य एकत्व सहजे अखंड ॥ ७ ॥

अर्थः—नामथी जीवने चेतन कहिये. चेतनालक्षणो जीवः चेतना ते ज्ञानदर्शन चारित्र तप उपयोग वीर्य लक्षण इत्यादि तथा बीजो अर्थ, नाम निक्षेपे जीव अथवा चेतन अथवा प्रबुद्ध कहिये, ए जीवनां त्रण नाम कहीये, क्षेत्रथी जीवनो स्वक्षेत्ररूप असंख्य प्रदेशात्मक अने विशुद्ध ते अत्यंत निर्मल छे, द्रव्यथी निज द्रव्य पोताना गुण ज्ञानादि स्वपर्याय तेहनाज पिंड समुदायरूप छे ते द्रव्य कहीये, अने नित्य ते सदैव शाश्वतो छे, केणे कर्यो नथी अने एकत्व ते निश्चय नयमते जीव सदाकाळ पोताना स्वरूपमां एकत्वपणे छे, सहज अखंड ते खंडाय नहि, अछेदी अभेदी छे. ॥ ७ ॥

ऋजुसुये विकल्प परिणामे जीव स्वभाव ।
वर्तमान परिणितमय व्यक्ते ग्राहक भाव ॥
शब्दनये निज सत्ता जोतो इहतो धर्म्म ।
शुद्ध अरूपी चेतन अणग्रहतो नव कर्म ॥ ९ ॥

अर्थ —ऋजुसूत्रनयने मते जीव विकल्परूप पारिणामिक भाव ग्रहे छे. एटले वर्तमान समये जीवने जेवो उपयोग होय तेवो प्रगट कही बोलावे, ऋजुसूत्र नयमतवाळो यथाकथित्

आह: सानात्मिके स्थितोऽपि नन्नोभावाद्गृहेगतस्तदाकेनाऽपि पृष्टं-
आह: कुत्रगतः एवं पृष्टे सत्यपि जन्तुना भणितं मनस्वामी
गृहेगतः एम कह्युं अने-शब्दनयनवे पोतानी आत्मसत्ताने
जोतो ज्ञानदर्शन चारित्रादिक अनंता धर्म पोतानी आत्म-
सत्ताने विषे रह्या छे, तेहने प्रगट करवा इहतो-वांछतो थको
शुद्ध निर्मल अरूपी पुद्गलादि विभावदशा रहित चेतना लक्षणो
पोताना क्षयोपशमथी स्वगुणने साधकपने प्रवर्त्ततो ते शब्द-
नयवंत कहीए. इहां जेह्थी आत्मप्रवृत्ति नथाकरीने न ग्रहे
अवंचक थाय तेटलो जीवपणो गवेखे एटले एहवा जीवने जे
समये उपयोग होय ते समये नवा कर्मनो ग्रहवो न करे ॥८॥

इणिपरे शुद्ध सिद्धात्म रूपी ।
मुक्त परशक्ति व्यक्त अरूपी ॥
समकिति देश यति सर्वविरति ।
धरे साध्यरूपे सदा तत्त्व प्रीति ॥ ९ ॥

अर्थः—एणीरीते शुद्ध सिद्धात्मरूपी शुद्ध जे सिद्ध भग-
वान् ते सरीखो निज आत्मा ध्यावतो आत्मभावे निपजतो
आत्मस्वरूपी छे. ए मुक्त के० पुद्गलादिक विभावथी मुकाणो
छे पर के० उत्कृष्टशक्ति के० आत्म सामर्थ्यना व्यक्त के०
प्रगटपणे तेने अरूपीभावना साधक समकिति. देशविरति तथा
सर्व विरति ते जीवने साध्यरूपे तत्त्वनी प्रीति वर्त्तमान छे.
एहवा [illegible]
[illegible]
होवे. [illegible]

समभिरूढ नये निरावरणि ज्ञानादिक गुण मुख्य।
क्षायिक अनंत चतुष्टयी भोगी मुग्ध अलक्ष्य ॥
एवंभूते निरमल सकल स्वधर्म्म प्रकाश ।
पूरण पर्याय प्रगटे पूरण शक्ति विलास ॥ १० ॥

अर्थः—समभिरूढनयमते शुक्लध्यानरूप अग्नियेकरी घाती कर्मने क्षये निरावर्णपणे ज्ञानादि अनंतगुण रूप लक्ष्मी प्रगटे एटले मुख्य लक्ष्मी प्रगटे अने क्षायिकभावे अनंत चतुष्टय प्रगट्या अनंतज्ञान १ अनंतदर्शन २ अनंतचारित्र ३ अनंत वीर्य ४ तेहना भोगी तेरमे चौदमे गुणठाणे केवली भगवान् जाणवा. तेहनो जाणपणो भोला अजाण जीव न जाणे, एवं भूतनयमते कर्म मळ रहित निर्मल सकलसंपूर्ण पोतानो ज्ञानादिक स्वधर्म आत्मसत्ताने विषे प्रकाश करे प्रगट करे छे एवो धर्मनो प्रकाश प्रगट्यो एटले एक एक प्रदेशे अनंता जे पर्याय ते संपूर्ण प्रगट्या छे सकल गुणना पर्याय पोताने कार्य करवे प्रवर्ते छे तेवारे पूर्ण पर्याय प्रगटे छे ते संपूर्ण शक्तिनो विलास भोगवतो प्रगटे. इत्यर्थ. सादि अनंत भांगे करी एवंभूतनये सिद्ध स्वरूप वखाण्यु. ॥ १० ॥

एम नय भंग संगे सनूरंगे ।
साधना सिद्धतारूप पूरंगे ॥
साधक भाव त्यां लगी अधूरंगे ।
साध्य सिद्ध नहि ह्य ज्यारंगे ॥ ११ ॥

अर्थः—इम नैगमादि सप्तनयनुं रूप भंगने संगे करी दीपतो छे. साधकता जे चोथा गुणठाणाथी मांडी अयोगी लगे चडी सिद्ध भाव करे छे पूरो छे. शुद्ध व्यवहारनयने मते चोथा गुणठाणाथी मांडी यावत् तेरमा गुणठाणालगे साधक-भाव छे. निश्चयनयमते कार्य सिद्ध निपजे तिवारे जीवने पूरो कहिये. ज्यां त्यां साधकभाव छे तिहां लगण अधूरो छे. साधकभाव शब्दनय समभिरूढ नयमते देशविरति सर्वविरतिरूप साधकभावे त्यांलगे जीवने अधूरो कहीये अने जेवारे साध्य जे कार्य सिद्ध नीपन्यो तेवारे पछी हेतु के० कारण साधक-पणानो प्रवर्तन ते शूरो के० चलवंन नहि एटले कार्य सिद्धि कारणनो बल नहि ॥ ११ ॥

काळ अनादि अतीत अनंते जे पररक्त ।
संगांगि परिणामे वर्त्ते मोहासक्त ॥
पुद्गल भोगे रिज्यो धारे पुद्गल खंध ।
परकर्त्ता परिणामे बांधे कर्मना बंध ॥ १२ ॥

अर्थः—जेवारे एवो आत्मा छे तेवारे संसार किम थाय? ते कहे छे. जे आत्मा अनादिकाल अतीत के० गयो छे अतीतकाळ अनंतां पुद्गल परावर्त्त थयां परभाव जे पौद्गलिक सुखने तेहना खंधना गुण वर्णादिक तेहने विषे रक्त के० रागीपणो शायी थयो ? ते कहे छे. संगांगी के० पुद्गले दीधा अंग तेनो जीवे कर्यो संग एटले अंग के० पुद्गल जे परभाव तेनो संग मीलवो अने आत्मा तेहने अंगी करी तेहनो संग करे एटले तेहना संगने परिणामे करी वर्त्तना मोहमा आसक्त

थयो तेवारे जीवने द्यो विगाड थयो? ते कहे छे. जीव पुद्गलने भोगे रीझ्यो थको पुद्गलना खंधने धरवानी इच्छा उपजे एटले पुद्गलने भोगे रीज्यो इष्टता पाम्यो थको पुद्गलना खंधने धारे–राखे, पुद्गलनुं ग्रहण करे छे अने परनो कर्त्ता पोते थाय छे त्यारे कर्मना बंध पोते बांधे छे ॥ १२ ॥

> बंधक वीर्यकरणे उदेरे ।
> विपाकि प्रकृति भोगवे दल विखेरे ॥
> कर्म उदयागता स्वगुण रोके ।
> गुण विना जीव भवोभव ढोके ॥ १३ ॥

अर्थः—जे कर्म बंधपणे प्रवर्त्ततो जे वीर्यने बंधक वीर्य कहीए. ते बंधक वीर्यकरणे सत्तागतकर्मने उदये जीव नवीन कर्मबंध बांधे, शेणे करीने ? करण जे इंद्रिय तेहनो वीर्य जे पराक्रम तेहनी प्रेरणाए करी शुभाशुभ प्रकृतिरूप विपाकनां दलियां सत्ताये रह्यां ते उदय आव्ये भोगवीने विखेरे ते खेरवे अने तेहने विषे रागद्वेष परिणामरूप मननी चिक्कणताइं नवां कर्म बांधे छे, ते कर्म ज्यारे उदय आवे त्यारे आत्माना स्वगुण रोके आवरे गुण ढंकाणा एटले जीव गुण विना थयो त्यारे जीव, भव च्यारगतिमांहे रझलतो फिरे छे एटले रागद्वेषे प्रणम्यो जीव निर्गुण थको च्यारगति मध्ये अनादिकालनो आत्मा भव भ्रमण करे छे. ॥ १३ ॥

> आतम गुण आवरणे न ग्रहे आतम धर्म ।
> ग्राहक शक्तिप्रयोगे जोडे पुद्गल शर्म्म ॥

परलाभे परभोगने योगे पर कर्त्तार।
एह अनादि प्रवर्त्तें वाधे पर विस्तार ॥ १४ ॥

अर्थः—आत्मगुण ते ज्ञानादिगुण ते कर्मरूप आवरणे अवराणा तेवारे आत्मानो धर्म ज्ञानादि कीहांथी ग्रही शके ? ज्ञानादिगुण न आदरे अने ग्राहक शक्ति छे तेवारे शुं ग्रहे ? पुद्गल खंधना सर्व शेष पुद्गल जोडवा मांड्या प्रयोगे करी एटले पुद्गलनो भोगी थयो त्यारे ते शुभाशुभ पुद्गलना खंध भेळा कर्या ते पर पुद्गलने लाभे लाभपणो मान्यो १ अने शुभाशुभ-पर पुद्गलनो दान देइने दान मान्यो २ शुभाशुभ पुद्गलनो भोग मिले भोग मान्यो ३ अने शुभाशुभ परपुद्गलनो उपभोग मिले उपभोग मान्यो ४ एम दानादिक च्यार लब्धिने वळी वीर्य शक्ति फोरवी तेहने योगे करी परनो कर्त्ता थयो. कोइ पूछे के ए जीवपर कर्त्तापणो किस्ये काळे पाम्यो ? तिहां कहे छे ए अनादिनी प्रवृत्ति छे, एहवी रीते अनादिकाळनी जीवने अवळी प्रवृत्ति थइ तेथी परभावनो विस्तार एम कर्मनो विस्तार पाम्यो छे तेणे करी संसार खुटतो नथी. ॥ १४ ॥

एम उपयोग वीर्यादि लब्धि।
परभाव रंगी करे कर्म वृद्धि ॥
परदयादिक यदा शुद्ध विकल्पे।
तदा पुण्य कर्म्मतणो बंध कल्पे ॥ १५ ॥

अर्थ—एहवी रीते वीर्यादि पांच लब्धिने विषे जीवनो अवळो उपयोग वर्त्ते, त्यारे पोताना स्वभावने वीसरी अनु

त्यारे जीव परभावनो रंगी थयो त्यारे ते जीव नवनवा कर्मनी वृद्धि करे, कर्मनी वृद्धि करवा मांडी जिवारे एहवीं जे परदयादिक करे अनुकंपा करे एहवो जे शुभ विकल्प उपजे शुभ परिणाम तेहथी श्युं थाय ? तेवारे पुण्य कर्म बंधाय तेहथी पण आत्मानो गुण न प्रगटे. ॥ १५ ॥

तेहीज हिंसादिक द्रव्याश्रय करतो चंचलचित्त।
कटुक विपाकि चेतन मेले कर्म दिचित्त ॥
आतम गुणने हणतो हिंसक भावे थाय।
आतम धर्म्मनो रक्षक भाव अहिंस कहाय॥१६॥

अर्थ.—ते जीव हिंसादिक द्रव्याश्रव करतो चित्त के० मनथी चपल परिणामि जीवने एहवो जे हिंसादिकनो विकल्प उठ्यो, क्रोधने उगवानो परिणाम उठ्यो, तेथी श्युं थाय ? पापना कडुवा विपाकनो बंध थाय, एम कडुआ कर्मनी विचित्रता बंधाय एटले अशुभ परिणामे अशुभ कर्म जीव मेलवे भेगो करे, ए द्रव्य दया द्रव्य हिंसा तेहनो फल देखाड्यो छे, जे विभाव परिणामे मग्नथीने आत्माना गुणने हणवा ते भाव हिंसा आत्मगुण जे हणाय ते भाव हिंसा छे, पर जीव हणतां तो आत्मगुण हणाता नथी ते निश्चयथी हिंसा नथी. जो आत्मगुण हणाय छे परनी हिंसा थती नथी तोहि पण तेने भाव हिंसक कहीये आत्म हिंसाथी पाप थयतु नथी एटले आत्म धर्मने राखे छे ते भाव अहिंसक के० गुनी नया ज्ञानादिक गुणने अनुदर्शी थी उपयोग करता आत्मगुण हणाय नहि ते भाव अहिंस कहिये ॥ १६ ॥

आत्मगुण रक्षणा तेह धर्म।
स्वगुण विध्वंसणा ते अधर्म्म ॥
भाव अध्यात्म अनुगत प्रवृत्ति।
तेहथी होय संसार छित्ति ॥ १७ ॥

अर्थः—आत्मगुण के० पोताना आत्माना गुण जे ज्ञानादिक तेहने शुद्ध उपयोगने विषे प्रवर्त्तिने राखवा तेहिज आत्मिक धर्म छे, स्वगुण विध्वंस के० पोताना आत्माना गुण जे ज्ञानादिक हणाय अवराय अशुद्ध उपयोगे परभाव अनुयायी प्रवर्त्ततां तेहिज अधर्म कहीए. हवे अध्यात्मना च्यार प्रकार कहे छे, नाम अध्यात्म १ स्थापना अध्यात्म २ द्रव्य अध्यात्म तेने कहीये जेहथी भाव अध्यात्म उपजे, सद्गुरु जे अध्यात्मना जाण तेहनी सेवा भक्ति विनयादिक करीने अध्यात्मना स्वरुपनी गुरुगमथी ओलखाण करे, अथवा अध्यात्म शास्त्रनो अभ्यास करे, तथा ध्याननुं स्वरुप गुरुगमथी धारीने प्रथम अभ्यास व्यवहारथी करवा मांडे इत्यादिक द्रव्य अध्यात्म ते भाव अध्यात्म प्रगट करवानुं कारण छे. ए द्रव्य अध्यात्म जाणवुं ३ हवे भावअध्यात्म कहे छे एहवो आत्मकुण ओलखे छे आध्यात्म ज्ञान थयुं होय ते ओलखे जे भाव अध्यात्म ते मोक्षनुं कारण छे, भाव अध्यात्म तेहने कहीये ज्ञानादिक शुद्ध उपयोगने अनुयायी सन्मुख प्रवर्त्ति ते भाव अध्यात्म कहिये. एहवो आत्मानो गुण थयो तिवारे जीवने स्यो गुण निपजे ? जे संसार समुद्रनो उछेद करे एटले संसार घटाडे तथा थोडा काळमांहे सिद्धिवरे ॥ १७ ॥

एह प्रबोधना कारण तारण सद्गुरु संग।
श्रुत उपयोगी चरण नंदि करि गुरुरंग ॥
आतम तत्त्वालंबि रमता आतम राम।
शुद्ध स्वरूपने भोगे योगे जसु विश्राम ॥१८॥

अर्थः—एहवुं जे आत्मज्ञान पूर्वे कह्युं तेहना बोधना कारण के० संसार समुद्रथी आत्मस्वरूपनो प्रतिबोध देइ ओ-ळखाण करावीने कोण तारे भला जे सद्गुरु तेहनो संग भक्ति करतां बोधबीज जे समकीत भव्य जीवने करावीने संसार समुद्रथी तारे ते गुरुनो वर्णव करीए छीए; गुरु केवा होय? ते कहीने छीये. भाव श्रुतज्ञानना उपयोगने विषे सदा रमे छे. चरणादि के० चारित्रने विषे रमे छे. सदा आनंदपणे वर्त्ते छे. एवा गुरु संघाथे रंग करवो ते गुरुनी सेवा करतां जेथी अध्यात्मज्ञान पामीए, वळी गुरु केवा छे? जेम आत्मा प्रगट थाय तेहनो उद्यम छे, रमणीय ते आत्मामां रमी रह्या छे, आत्मस्वरूपने अवलंबी रमण करे छे. सदा एहवा आत्माराम आत्मस्वरूपने विषे रमे ते आत्माराम कहीये, वळी गुरु केवा छे? तेहने शुद्ध स्वरूपना भोगनी इच्छा छे तेहनो भाव दीसे छे ज्ञान दर्शन चारित्र ए त्रण रूप योग साधे छे, जसु के० योगने विषे विश्रामपणे वर्त्ते छे एवा गुरु सांपडे तो अत्यन्त मुक्त जाणीये ॥ १८ ॥

सद्गुरु योगथी बहुल जीव।
कोइ वळी सहजथी थइ सजीव ॥

आत्म शक्ति करी गंठी भेदी ।
भेद ज्ञानी थयो आत्मवेदी ॥ १९ ॥

अर्थः—घणा जीव एवा गुरुगुरुथी बोध पामे, एवी रीते सद्गुरुनी संग-सेवा थकी घणा जीवने समकितनी प्राप्ति होय, कोइ वेळा गुरुनी योगवाइ विना भवस्थिति पाकी हुइ तो कोइक जीव सहजथी बोध पामे एटले कोइक जीव सहजथी बोध पामे एटले कोइक जीव सहजथी स्वार प्रत्येक बुद्धादिकनी पेरे समकित पामे गुरुना उपदेश विनाज इत्यर्थः जीव पोताना आत्मानी रागद्वेष परिणाम भावकर्मनी गांठ आत्माने पुद्गल शुं ममत्वता एकीभूत ते गांठ जे अनादिनी छे. ते पोतानी शक्तिए करीने भेदे, ज्यां ग्रंथीभेद करवो त्यांतो पोतानी आत्मशक्तिए अपूर्व करण के० पहेला कदि न आव्या-एवा परिणाम ते अपूर्व करणरूप पोताना वीर्योल्लासे करिने रागद्वेषनी गांठ भेदे तो समकितनी प्राप्ति पामे, गुरुना योग विनाये तेवारे क्यो गुण निपजे ? ते कहे छे, भेदज्ञान जे शरीर आत्मानो भेद विवेक निजना वैचनस्वज्ञान थवुं. शरीर जड ते अचेतन छे, आत्मा चेतन छे. एहवो भावथी न्यारो ओळख्यो ते भेद ज्ञान थयुं. त्यारे आत्मानी ऋद्धि हती ते ज्ञानी तेवारे आत्मस्वरूपनो वेदी-ज्ञाता थयो. ॥ १९ ॥

द्रव्य गुण पर्याय अनंतनी थइ परतीत ।
जाण्यो आतम कर्त्ता भोक्ता गइ परभीत ॥
श्रद्धा योगे उपन्यो भासन सुनये सत्व ।
साध्यालंबी चतना वलगि आतम तत्व ॥२०॥

अर्थः—आत्मस्वरूपने उपयोगे वर्त्ते तेवारे एक द्रव्यने विषे अनंतागुण छे ते मध्ये एकेका गुणमे अनंता पर्याय छे. जे जीम हता तेम परतित थइ तेवारे शुं थयुं ? आत्मा पोताना स्वभावनो कर्त्ता भोक्ता थयो. परभावना कर्त्तादिकनी मूल मटी गइ, एटले निर्भय थयो एवी श्रद्धाने योगे प्रतीत प्रगटी त्यारे जाणपणुं पोतानुं छतु थयुं, जेवारे ओळख्यो तेवारे तेहनुं आलंबन करवा मांडयुं त्यारे चेतना वळगी आत्मतत्व जे ज्ञानादिकने विषे ॥ २० ॥

इंद्र चंद्रादि पद रोग जाण्यो ।
शुद्ध निज शुद्धता धन पिछाण्यो ॥
आत्म धन अन्य आपे न चोरे ।
कोण जग दीन वळी कोण जोरे ॥ २१ ॥

अर्थः—एवुं ज्यारे खरुं भासन थयुं त्यारे इंद्रनी पदवी चक्रवर्तिपणुं वासुदेवपणुं ए औदयिक सिद्धि इंद्रियजनित पौद्गलिक सुख ए सर्व रोग जाण्या, शुद्धनिज के० शुद्ध निर्मळ पोताना आत्मानो शुद्धतापणो जे ज्ञानादिक धन जे पोतानी भावऋद्धि हती ते जाणी ओळखी पोताना आत्मानी ऋद्धि जे अरुपी धन ज्ञानादिक भाव लक्ष्मी स्वगुण पर्यायरूप तो स्वाधीन छे. कोइथी आपी अपाती नथी एटले अरूपी वस्तु कोइथी आपी जाय नहि, कोइनी लेवाय नहीं, त्यारे मागवानुं दीनपणुं टळ्युं अने जगत्ने विषे कोइ एवो दीन नथी जेहने आपे अने कोइथी आत्मानी ऋद्धि लेवाय नहीं एवो

कोइ जोरावर नथी जे खेंची ले. एवो ओळख्यो तेवारे पोतानी ऋद्धिनो भय पण टळीज गयो. ॥ २१ ॥

आतम सर्व समान निधान महा सुख कंद।
सिध्धतणा साधर्म्मी सत्ताये गुणवृंद ॥
जेह स्वजाति तेहथी कोण करे वध बंध।
प्रगट्यो भाव अहिंसक जाणे शुध्ध प्रबंध॥२२॥

अर्थः—आतम के० आत्मा सर्व सरीखा छे, कोइनो न्यूनाधिक छे नहीं, निधान के० निश्चे महासुखरूप छे, जे सुखनी किहांइ उपमा नथी ते सुख सिद्ध भगवान्ने प्रगट थयुं छे अने संसारी जीवने ए सुख सत्तामां रह्युं छे, बीजी परे अर्थ सर्व जीव सत्ताये एक सरिखा सामान्यपने जाणवा. निश्चय नयने मते सर्व जीव ज्ञानदर्शन चारित्ररूप निधाने करी युक्त छे. निश्चयथी सर्व जीव सत्ताए महासुखनां कंदमूळ छे, सिद्ध के० सिद्धना जीव तथा संसारी जीव सरिखा साधर्मीपने गणे छे, पण सत्ताये तेना गुण बराबर छे, तेवारे पोतानी बराबरीना सकळ जीव थया, तथा बीजी रीते निश्चयनयथी सर्व जीवनो धर्म सत्ताये सिद्ध समान एक सरीखो छे, जेनो सरखो धर्म होय तेने साधर्मी कहिये. सर्व जीव सत्ताये ज्ञानादि गुणना वृंद—समूह छे, तेवारे सर्व जीव एक जातिना थया, कुटुंब थयुं तेवारे तेनी हिंसा केम थाय? तेवारे तेहने दुःख किम देवाय? तेहनो वध बंध कुण करे? एवी रीते ज्यारे दया प्रगटे तेवारे भाव अहिंसकपणुं प्रगट थाय तेवारे जिनशासन शुद्ध स्वरूपनो प्रबंध जाणवो. ते ज्ञाता कहेवे

॥ यतः ॥ यथाममप्रियाःप्राणास्तथा तस्यापि देहिनः इतिमत्वान कर्तव्यो घोरःप्राणिवधो बुधैः ॥ २२ ॥

ज्ञाननी तिक्षणता चरण तेह ।
ज्ञान एकत्वता ध्यान गेह ॥
आत्म तादात्म्यता पूर्णभावे ।
तदा निर्मलानंद संपूर्ण भावे ॥२३॥

अर्थः—एटले ज्ञान दर्शन चारित्ररूप निश्चयनय ज्ञाननी तिक्षणता के० एहवुं जे तिक्ष्णतापणे निर्मल आत्मज्ञानना उपयोग तेहिज चारित्र कहीये. जे पोताना आत्मस्वरूपना ज्ञानमें एकत्वपणे रहे ते ध्यानरूपी घर कहीये, एहवो जे आत्मा आत्मानो आत्मताने ज्ञानादिक पूर्ण भावने पामे, तदा कहेतां तिवारे निर्मल आनंद संपूर्ण पामे. ॥ २३ ॥

चेतन अस्तिभावमें जेह न भासे भाव ।
तेहथी भिन्न अरोचक रोचक आत्म स्वभाव ॥
समकित भावे भावे आतम शक्ति अनंत ।
कर्म नाशनो चिंतन नाणे ते मतिमंत ॥२४॥

अर्थः—चेतन के० आत्मानो अस्ति स्वभाव आपणी कहिइ, आत्मामें नहि छे परभावना लाभ पण तिवारे ते नहि ते अस्ति स्वभाव कहिये. तिहांथी पोतानो आत्म गुणने [illegible] अनंत गुण [illegible] स्वभावे रह्या छे तेहने [illegible] [illegible], [illegible] ते परभाव आ-

त्यारे जे ऋद्धि हर्षी ते पोतानी जाने नहि तेहथी अलगो रहे तेहनी रुचि पण राखे नहि. अलचि भावे पौद्गलिक वस्तुनी उपाधिथी अंतरंग न्यारो प्रवर्त्ते छे. त्यारे रुचि किहां छे? ते कहे छे; शेवक के० पोताना आत्म स्वभावनी ऋद्धि ज्ञानादिकनी रुचि राखे जे पोतानी श्रद्धा प्रगटी छे ते समकित भावे अनंति शक्ति पोतानी जाणी छे तेहनी रुचि करे तेहने ध्यावे छे, तेना ध्याननां लयलीन थयो थको प्रवर्त्ते छे, कर्म टालवानो विकल्प क्यां आवे नहीं एहवी श्रद्धा प्रगटी छे, पोतानुं स्वरूप ओलख्युं छे, तेहथी कर्म ते पुनी नेडे क्यां आप ते कर्म टालवानी बुद्धि राखे नहि तेहने मोटी बुद्धिना धणी कहीये; कल्पनानो न लावे जे साहेब कर्म किनारे टळे इम कायर न थाय. ॥ २४ ॥

स्वगुण चिंतनरसे बुद्धि घाले ।
आत्मसत्ता भणी जे निहाले॥
शुद्ध स्याद्वाद पद जे संभाले ।
परघरे तेह मति केम वाले ॥ २५ ॥

अर्थः—विवरे हुं चिनवे ते कहे छे. स्वगुण के० पोताना आत्माने विषे ज्ञानादि अनंता गुण [illegible] छे ते गुणनी चिंतवनाने रसे करीने बुद्ध एटले ज्ञानादिकनो [illegible] थाय तेहने बुद्धि घाले के० [illegible] [illegible] थाय? ते कहे छे. [illegible]

रुचिवंत थयो तेहने जोवे-संभाळे, अंतरंग दृष्टिये करीने परवेर के० ते परभावमां पोताना आत्मानी वित्त निमित्त जे बुद्धि तेहमां घाले नहि एटले परपरिणतिमां पेसे नहि, ते जीव पोताना स्वभावरूप घरमां बुद्धि प्रवर्त्तावे इति रहस्य. ॥ २५ ॥

पुण्य पाप बे पुद्गल दल भासे परभाव ।
परभावे परसंगत पामे दुष्ट विभाव ॥
ते माटे निज भोगी योगीसर सुप्रसन्न ।
देव नरक तृण मणि सम भासे जेहने मन्न ॥२६॥

अर्थः—पुण्य पाप कहेतां जे पुण्य पाप छे ते बे पुद्गलनां दलीयां छे, पाप छे ते कडवा विपाकछे अने पुण्य छे ते मीठा विपाक छे. ए बे जेने मन सरखा जाण्या छे. पुण्य पाप ए बे मुनिने मन परभाव भासे छे, आत्मिक धर्म नहीं, पुद्गलनां दळियां छे ते माटे परभाव भासे छे, वली एहवुं विचारे जे परभाव जे विभावदशा, एना संगथी च्यार गतिमां रजलवुं थाय छे, तिणे करी पुण्य पाप बेहु दुष्ट विभाव छे, आत्मधर्म नहि, तथा बीजो अर्थ कहे छे, परभाव रूप विभावदशा ने परसंग तिणेकरीने दुष्ट विभाव जे मोहादिक पामे आत्मस्वरूप न पामे, तिणेकरी संसारमां फरतां अनेक प्रकारे कर्म विटंबना रूप दुःखविपाक भोगवे, पर संग थकी, ते माटे के० ते कारण निज भोगी के० पोताना आत्मस्वभावना भोगमा वर्ते छे तेहने योगीश्वर सुप्रसिगज कहिए, योग जे आत्मस्वभावना ज्ञानदर्शन चारित्ररूप ए ३ भावयोग तेमांहि जेनुं मन सुप्रसन्न के० [illegible] संकल्प विकल्प

हर्ष विषवाद रहित समभावे निर्विकल्पपणे चित्त प्रसन्नपणे रहे छे तेहने मुनिराज कहिये. ते मुनिराज केवा छे ? देवताना सुखने विषे तथा नरकना दुखने विषे सम भावे छे, तृण के० नणखलु तथा मणिरत्न ए बे सरिखा जाणे छे; ए सर्व पौद्गलिक विभाविक सुख दुःख जाणी समभाव चित्ते जे मुनि वर्त्ते छे. ए सर्व शुभाशुभ पुद्गल छे ते विनाशिक भाव छे, माहरा गुणनो अंश नथी एहवुं मुनिराज जाणे. ॥ २६ ॥

तेह समता रसी तत्त्व साधे ।
निश्चलानंद अनुभव आराधे ॥
तीव्र घनघाति निज कर्म तोडे ।
संधि पडिलेहिने ते विछोडे ॥ २७ ॥

अर्थः—ते मुनिराज एवी रीते शुद्ध जाणपणे करी स्वाभाविक समभाव जे अचल समताना रसीया थाये ते पोतानुं तत्त्व के० ज्ञानादिक आत्मतत्त्व साधे के० संपूर्ण भाव निपजावे, निश्चल जे अचल आनंदने उपार्जे, कोइ दहाडे ए आनंद मटे नहीं एहवो जे आनंदमयी अनुभव अमृतरूप सदाकाल जे आत्मधर्मनो भोग आस्वादन करे, आराधे तेवारे आकरां घनघाती कर्म छेते आत्मगुणना घातकारी छे, ते आत्मप्रदेशथी जूदा करे कोनीपरे ? कठीआरानी परे ते कठीआराना हाथमां कुहाडो तिखो छे, ने लाकडुं सामुं छे तेनी संधि जाणे छे. ते लाकडाने चीरतां वार लागे नहि, तिम मुनिराज एवी शुद्ध क्रियारूप जे कुहाडो तेणे जे जाणपणा सहित क्रिया करे [illegible] ॥ २७ ॥

सम्यक् रत्न त्रयी रस राच्यो चेतन राय ।
ज्ञान क्रिया चक्रे चकचूरे सर्व अपाय ॥
चक्र स्वभावथी साधे पूरण साध्य ।
करता कारण कारज एक थया निराबाध ॥२८॥

अर्थ.—सम्यक् के० सम्यक्ज्ञान १ सम्यक् दर्शन २ सम्यक् चारित्र ३ ए जे त्रण रत्नत्रयी रस राच्या के० साथाने मळ्या उमगी चेतन राजानी तेवारे ज्ञान के० स्वपरनु जाणपणु ते आत्मिक ज्ञान, ज्ञानना बे भेद बाह्यज्ञान शास्त्र पठनरूप ते द्रव्यज्ञान १ भावज्ञान आत्मिकज्ञान क्रिया के० क्रिया बे भेदे, योगक्रिया शुभाशुभ बंधरूप आश्रवरूप. उपयोग क्रिया ते २ स्वरूपने विषे रमणरूप चारित्रगुणने विषे वीर्यगुणनो ढळवाणु ए बे-आत्मवीर्य एकत्वपणे परिणमे ते क्रिया मोक्षनी आत्मानी पूर्ण ज्ञान क्रियारूप चक्रेकरी भाव शत्रु कर्मरूपने चकचूर करे, सर्व कष्ट टाळे कारक के० ए षट्कारकरूप चक्र करी पोताना संपूर्ण कार्य प्रते साधे करे, कर्त्ता ते जीव १ कारण ते सम्यक्त्व २ कार्य ते करयो केवलज्ञानरूप ३ अपादान ते कर्मक्षयरूप ४ संप्रदान ते गुणश्रेणि वृद्धिरूप ५ अधिकरण ते आत्माप्रदेश केवलज्ञान रूप ६ कार्यमां ए छये समाय इति ॥ कर्त्ता १ कर्म २ करण ३ संप्रदानं ४ अपादान, अपादान ५ अधिकरण ६ सिध्यादिकारकाणि षट्, कर्त्ता [illegible] १ कारण [illegible] २ कार्य केवलज्ञानादि अनेक [illegible] अनयपणा [illegible] गणुं [illegible] एकठा थाय [illegible]

स्वगुण आयुधथकी कर्म चूरे ।
असंख्यात गुणी निर्जरा तेह पूरे ॥
टळे आवरणथी गुण विकासे ।
साधनाशक्ति तिम तिम प्रकाशे ॥२९॥

अर्थः—स्वगुण के० पोताना ज्ञानादि गुण ते रूप जे हथीआर हाथमां आव्युं ते हथियार कर्म चूरे ते थकी समये २ असंख्यातगुणा कर्मनां दलियांने आत्मप्रदेशथी खेरवी नाखे, तेवारे शुद्ध उपयोगथी स्वगुणे करी आत्माने पूरे, भाव निर्जराए करीने एवी निर्जरा पुष्ट करे, ते थकी जिम २ असंख्यातगुणा कर्मदल खेरवे तिम २ आवरण टळे तेथी गुण विकसेज प्रगट करे ते गुण प्रगटे तिम साधननी शक्ति वधती जाय, पोतानुं आत्मगुण रूप कार्य साधवुं तेने विषे निश्चलता रूप परिणामनी शक्ति वीर्य उल्लास वधतो जाय २ प्रकाश वधतो जाय. अत्रपि विवरण ॥ २९ ॥

प्रगट्या आतम धर्म थया सवि साधन रीत ।
बाधक भाव ग्रहणता भागी जागी नित ॥
उदय उदीरणा ते पण पूरव निर्जरा काज ।
अनभिसंधि बंधकतानिरस आतमराज ॥ ३० ॥

अर्थ—प्रगट्या आत्मधर्म के० जेवारे शक्ति जागी तेवार प्रगट्यो के० अनंत आत्मधर्म प्रगट्यो. आत्मधर्म प्रगटे थके सव [illegible] अनभिसंधि [illegible] ते [illegible]

प्रणमी हती ते तिहां थकी निवारीने पोताना स्वरूप अनुयायि साधनपणे परिणमावी ते कहे छे. आत्मानी कर्तृत्व शक्तिरू ते अनादिकाळनी परकर्त्तापणे अवळी प्रणमी हती तिहांथ निवारीने पोताना स्वरूप कर्त्तारूप साधनपणे प्रणमावी, अ आत्मानी भोक्तृत्वरूप शक्ति अनादिकाळनी पर पुद्गलादि वि भाव दशाना भोगवे विषे प्रणमी हती त्यां थकी निवारी पोताना स्वभाव भोगीपणे प्रणमावी २ अने आत्मानी रक्ष कत्वरूप जे शक्ति ते अनादिकाळनी परपुद्गलादि विभाव दशाना रक्षकपणे प्रणमी हती तिहां थकी निवारीने पोता स्वभाव रक्षकपणे प्रणमावी ३ अने आत्मानी व्यापकतारू जे शक्ति ते अनादिकाळनी पर स्वभावरूप विभावदशाने वि व्यापी रही हती ते तिहांथी निकाळीने पोताना स्वभाव व्य पकपणे प्रणमावी ४ अने आत्मानी ग्राहकत्वरूप जे शक्ति ते अनादिकाळनी परग्राहकपणे परिणमी हती ते त्यां थ निवारीने पोताना स्वभाव ग्राहकपणे परिणमावी ५ एवी री ए पांच शक्ति अनादिकाळनी पर अनुयायिपणे अवळी प्रणम हती ते तिहां थकी निवारीने पोताना स्वरूप अनुग्राहक साधनपणे प्रणमी त्यारे बाधकभाव के० अनादिकाळनो प स्वभावरूप विभावदशा जीवने बाधकभावरूप महणता के० पौद्गलिक विभावमें पेसीने ग्रहण करतो हतो ते हवे विभावन ग्रहणभामां पेसता पेसतो नथी ते विभावनो ग्रहणपणो हत

भाग्यो. [illegible] अनित्य ग्रहण भाव गयो, आर्व के० [illegible] थयो [illegible] स्वरूप [illegible] थयो साध पणे [illegible] छे. [illegible]

कर्मनां पुद्गल लाग्यां छे ते खेंची उदेरी उदयआणी पूर्व कर्मने भोगवीने निर्जरे एटले उदय उदीरणा पण पूर्व कर्म निर्जराने काजे हेतु छे, अनभिसंधि के० अणउपयोग वीर्य अनभिसंधि जे अनुपयोगवीर्य अनेक कर्मग्रहण करतो हतो ते निरस के० कर्मना कषायना रसथी आत्मा लूखो थयो, अनुपयोगे कर्मग्रहण करतो हतो तेथी लूखाशपणे अंतरंगथी न्यारो थयो तेवारे आत्मस्वरूपनो आत्मा राजा जाणवो. ॥ ३० ॥

देशपति जव थयोनीति रंगी ।
तदा कुण थाय कुनय चाल संगी ॥
यदा आतमा आत्मभावे रमाव्यो ।
तदा बाधक भाव दूरे गमाव्यो ॥ ३१ ॥

अर्थः—देशपति के० असंख्यात प्रदेशरूप देश तेने विषे रंगाणो एटले [illegible] रंग लाग्यो, तदाकुण के० तिवारे कुणथाए, कुनय के० मिथ्यात्व जे माठानय अनीति मार्गनो चालनारो न थाय तेहनो संग न करे. सुनय जे समकितनो मार्ग स्वभाव धर्म तेनो स्मरण करे जे मार्गे पोते चाले तेहिज उपदेश दे तेनो संगकरे अने परपरिणतिरूप कुमार्गे चाले तेहनो संग न करे. यदा के० जिवारे पोतानो आत्मा आत्मभाव के० ज्ञानादिक अनंत गुण रूप आत्मभावनेविषे रमाड्यो—रमण कराव्यो. तदा के० तेवार अनादिकालनो [illegible] के० परभाव [illegible] हतो ते दूर गमाव्यो एटले वेगळो कर्यो ॥ ३१

सहेज क्षमा गुण शक्तिथी छेद्यो क्रोध सुभट।
मार्दव भाव प्रभावथी भेद्यो मान मरट्ट ॥
माया आर्जव योगे लोभ ते निस्पृह भाव।
मोह महा भट ध्वंसे ध्वंस्यो सर्व विभाव ॥३२॥

अर्थः—सहज के० स्वाभाविक क्षमागुण अकृत्रिम शक्ति के० आत्मवीर्यथी छेदायो के० हण्यो, मोह राजाना क्रोध सुभटने हण्यो निर्मूल कर्यो मार्दव के० मानरहितपणुं सुकुमाल परिणामि ने नम्रतापणुं आत्मधर्मने विषे नमनो भाव ते मार्दव गुणने प्रभावे करी मान जे अहंकार सुभटनो मरट्ट जे मोटाइ ते उतारी नाख्यु. माया के० कपट तेने आर्जव के० सरल परिणामी द्रव्यभाव वक्रता रहित ते आर्जवगुणे करी करी माया सुभटने हण्यो निर्लोभना ते इच्छानी अभिलाषा रहित एक शुद्धात्म स्वरूपग्राही मोक्षाभिलाषी पण संसाराभिलाषी नही एवो निर्लोभ भाव तेणे करी मोहराजाना लोभ सुभटने हण्यो. मोह के० मोहरूप महासुभट ते सर्व आत्मगुणने विषे [illegible] मुख्य तेने ध्वंस के० हणतो [illegible] नाश करे. सर्व [illegible] जे [illegible] अनादिकालना जीवने [illegible] [illegible] [illegible] मिथ्यात्वने हण्यो. [illegible] सुभटने हण्यो एम कहे छे. ॥ ३२ ॥

इम स्वाभाविक थया आत्मवीर ।
[illegible] ॥

जेह उदयागता प्रकृति वळगी ।
अव्यापक थको खेरवे तेह अळगी ॥३३॥

अर्थः—इन स्त्र के० एवी रीते आत्मानो वीर्य पराक्रमे करी शूरवीर थयो अनंत बळनो धणी कर्म शत्रुने जीतीने पर परिणतिथी निवर्त्यो. आत्म स्वभावे रमण करीने शूरवीर थयो भोगवे के० आत्मानी ज्ञानादिक संपदा दुर्धर के० निर्भय थई भोगवे. जे उदय आवी प्रकृति आत्माने वळगी छे, अव्यापक के० निर्लेप स्वभावे थको उदय आवी कर्म प्रकृति वळगी छे तेने भोगवी खेरवे अळगी करे, समभावपने. ॥ ३३ ॥

धर्मध्यान इक तानमें ध्यावे अरिहा सिद्ध ।
ते परिणतिथी प्रगटी तात्त्विक सहज समृद्ध ॥
स्वस्वरूप एकत्वे तन्मय गुण पर्याय ।
ध्याने ध्यातां निर्मोहीने विकल्प जाय ॥३४॥

अर्थः—धर्मध्यान के० पोतानो आत्मिक धर्म [illegible] विषे अनंतो रह्यो छे. ते धर्मने ओळखी प्रसिद्ध करी, तेहना ध्यानने विषे प्रवर्त्ते ते धर्मध्यानना हेतु शुक्लध्यान [illegible] परिणामरूप एकत्वपणे अरिहंत सिद्धना गुण ते पोताना आत्म तुल्य गणीने ते ध्यावे. [illegible] ओळखीने ध्यावे. ते शुद्ध परिणतिथी प्रगटे [illegible] हवे तेहने [illegible] सहज [illegible] समृद्धि के० [illegible]

विषे एकत्व के० एकत्वपणे सन्मय उपयोगे लयलीन थाय, पोताना आत्मगुण अने आत्मपर्यायना ध्यानने विषे तेहवा ध्यानने विषे एकत्वपणे प्रवर्ते तेवारे ते जीव निर्मोही मोह रहित थयो तेवारे सर्व विकल्प दूर जाय, विकल्प मटे तिवारे शो गुण थाय ? ते कहे छे ॥ ३४ ॥

> यदा निर्विकल्पी थयो शुद्ध ब्रह्म ।
> तदा अनुभवे शुद्ध आनंद शर्म ॥
> भेद रत्न त्रयी तिक्ष्णतायें ।
> अभेद रत्न त्रयीमें समाये ॥ ३५ ॥

अर्थः--यदा के० जेवारे संकल्प विकल्प रहित निर्विकल्प आत्मा थयो, तेवारे शुद्ध ब्रह्म के० शुद्ध ज्ञानमयी थयो एटले पोताना आत्मस्वरूपना शुद्ध ज्ञानमयी थयो, तदा के० तेवारे अनुभवे के० भोगवे, शुद्ध निर्मल आनंदमयी गुणरूप अव्याबाधपणे भोगवे. आत्मिक गुणप्रते भेद रत्नत्रयी के० ज्ञान १ दर्शन २ चारित्र ३ ते भेदपणे ते ज्ञान ज्ञानगुणे जाणे १ दर्शनने दर्शनरूप जाण, श्रद्धा सद्दहणारूपे २ करे जाणे, एवी रीते भेद रत्नत्रयीरूप नीकलवानी रहित थई अभेद रत्नत्रयी के० अभेदरूप सहज तेना ते अभेद रत्नत्रयी ते [illegible] ज्ञानना दिशा [illegible] [illegible] ३ ० [illegible]

दर्शन ज्ञान चरण गुण सम्यग् एक एकना हेतु ।
स्वस्व हेतु थया समकाळे तेह अभेदता खेतु ॥
पूर्ण स्वजाति समाधि घनघाति दल छिन्न ।
क्षायिकभावे प्रगटे आतम धर्म विभिन्न ॥३६॥

अर्थः—दर्शन के० सम्यगदर्शन १ सम्यगृज्ञान २ सम्यग्चारित्ररूप ३ जे गुण एटले दर्शन छे ते जीवने सामान्य उपयोग गुण ज्ञान छे, एटले दर्शन तथा ज्ञान ए बेने विषे थिरतारूप एकाग्रता पणे उपयोगे वर्त्ते ते चारित्र जाणवो, माटे ए त्रण परस्पर एक के० एक एकना हेतु कारणरूप जाणवा. स्वस्व के० पोतपोताना एक समये हेतु थया ज्ञान १ दर्शन २ चारित्ररूप ३ रत्नत्रयी ते एकतापने प्रणमि तेमज स्वक्षेत्र के० आत्माना असंख्याता प्रदेशरूप क्षेत्रने विषे भेद भाव रहित अभेदपने प्रणम्या एकरूप थया तेवारे केवो थयो, घनघातिया कर्मना समूहनां दळीयां आत्मप्रदेशनेविषे लाग्यां हतां, ते छिन्न के० छेदी नाख्यां तेवारे पूर्ण के० संपूर्ण पोतानी जाति जे ज्ञानादि गुणनी समाधि ध्यान तेने करी घनघाती कर्म छेद्यां, क्षायिकभाव के० क्षायिकभावे प्रगटे थके एटले सत्तागतने विषे अनंतो [illegible] धर्म शक्तिपने रह्यो हतो ते व्यक्त के० प्रगटरूप [illegible] थयो तेवार विभिन्न के० अभेद [illegible] ॥३६॥

पछे योग निरोध थया ते अयोगी ।
भाव शैलेशीना [illegible] अभंगी ॥

पंच लघु अक्षरे कार्य कारी ।
भवोपग्रहीकर्म संतति विडारी ॥३७॥

अर्थः—तेरमा गुणठाणाने विषे छेल्ले समये योगत्रिक मन-वचन काया ए त्रण योग रुंधीने सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाती शुक्ल ध्याननो त्रीजो पायो ध्याता चउदमे गुणस्थानके चढे, तिहां प्रथम बादर मनोवाक्काय रुंधे, पछे सूक्ष्मयोग रुंधि अयोगी थयो. भाव के० स्वभावे शैलेसना के० मेरु पर्वतनी परे अकंप अडग अचळ थिरताभावे अडग थयो एवो स्वभाव अचळ थयो, पंचलघु के० चउदमे गुणस्थानके जीव, अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए पांच लघु अक्षररूप उच्चार करे एटलामां स्वसिद्ध कार्य निपजावे, भवोपग्रहिक–भवने आश्रयी जे अघातीकर्म पुद्गलनी श्रेणिअवशेष के० थाकतां रह्यां हतां ते विडारी, ध्यानाग्नि शुक्लध्यानना चोथा पायाने ध्याने करी कर्मक्षय करे तेवार पछी ॥ ३७ ॥

समश्रेणे एक समये पहोता जे लोकांत ।
अफुसमाण गति निर्मळ चेतन भाव महांति ॥
चरम त्रिभाग विहीन प्रमाणे जसु अवगाह ।
आतमप्रदेश अरूप अखंडानंद अवाह ॥३८॥

अर्थः—समश्रेणे करी एक समयने विषे चौदराज लोकने अने लोकाग्रभागे अजरामर स्थानके जे क्षेत्रे अनंता सिद्ध परमात्मा विराजमान वर्ते छे, ते सिद्धक्षेत्र पोहता सिद्धपणे अफुसमाण के० आकाशान्तर क्षेत्रना प्रदेश प्रथम फरस्या छे

तेहज आकाश प्रदेशनी समश्रेणीए वर्त्तता सिद्धि पाम्या, सिद्धि वर्या, कर्मरूप मल थकी रहित निर्मळ थया, तेवारे शुद्ध ज्ञानादिआत्मस्वभावे क्षायिकभावे सदाकाळ शाश्वता रहे. सिद्ध क्षेत्रमें चरम के० छेल्ला शरीरनो त्रीजो भाग घटाडीने अवशेषे के० थाकता बे भागना शरीर प्रमाणे आत्मप्रदेशनो घन करी ते प्रमाणे अवगाहना करी सिद्ध क्षेत्रने विषे विराजमान थया. आत्मप्रदेश के० आत्मप्रदेश अरूपी छे. अखंड आनंदमयी अबाह के० अबाधा के० पीडा रहित स्वक्षेत्रे व्याप्या छे, आत्मस्वभावमें रह्या छे ॥ ३८ ॥

जिहां एक सिद्धात्म तिहां छे अनंता ।
अवन्ना अगंधा नहि फासमंता ॥
आत्मगुण पूर्णतावंत संता ।
निराबाध अत्यंतसुखास्वादवंता ॥३९॥

अर्थः—जिहां एक सिद्धात्म के० जिहां एक सिद्ध परमात्मा छे, ते क्षेत्रने विषे अनंता सिद्ध भेळा मळीने रह्या छे, ते सिद्ध केहेवा छे ? अवन्ना के० पांच वर्ण रहित, अगंधा के० बेगंध रहित. नहीं फासमंता के० आठ फरसरूप थकी पण रहित छे. वळी सिद्ध केहेवा छे ? आत्मगुण के० पोताना आत्माना गुण ज्ञानादि अनंतगुणनी पूर्णता छता भाव प्रगट्या छे. वळी निराबाध के० सर्व प्रकारे अबाधा पीडा थकी रहित सिद्ध छे अत्यंत सुखास्वादवंता के० ज्यारनी कायना देवताना इंद्रय आनंद पौद्गलिक जे सुख ते त्रणे कालनो भेळो करी अनंतगुणो वर्ग वर्गित करीये पण सिद्ध

परमात्मा आत्मिक सुख अनुभवे छे, ते सुखने तुल्य एक समय मात्र पण न आवे, एहवा स्वभाविक सुखनो आस्वादन करे छे. ॥ ३९ ॥

कर्त्ता कारण निज परिणामिक भाव।
ज्ञाता ज्ञायक भोग्यभोग्यता शुद्ध स्वभाव॥
ग्राहक रक्षक व्यापक तन्मयताए लीन।
पूरण आत्मधर्म प्रकासरसे लयलीन ॥४०॥

अर्थः—कर्त्ता कहेतां सिद्धनो जीव १ कार्य के० पोताना ज्ञानादि अनंतगुण संपूर्ण २ अने कारण ते स्वगुण रमणता रूप ३ सिद्ध स्वभावे परिणम्या छे, ज्ञाता के० ज्ञाने करी ज्ञेय पदार्थ जाणे छे, भोग जे भोगववा योग्य शुद्ध स्वज्ञानादि तेहनो भोक्ता छे. ग्राहक के० परस्वरूप विभावदशानो अनादिकालनो ग्रहणपणो कर्यो छे अने स्वस्वरूपथी भिन्न पुद्गलादि वस्तु अनादिकालनी तेहना रक्षकपणानी मति निवारीने स्वस्वभाव रक्षकपणे परिणम्या अने परपरिणतिने विषे अनादिकालनो व्यापकपणो हुतो ते निवारीने स्वभाव व्यापकपणे परिणम्यो तेहने विषे लीनथका वर्त्ते छे, तन्मयपणे पूरण के० संपूर्ण आत्मधर्मनो प्रकाश थयो ते रमेकरी लयलीन छे, साक्षात्कारे मग्नपणे ॥ ४० ॥

द्रव्यथी एक चेतन अलेशी।
क्षेत्रथी जे असंख्य प्रदेशी॥

उत्पाद वळी नाश ध्रुव काळ धर्म ।
शुद्ध उपयोग गुणभाव शर्म ॥४१॥

अर्थः—द्रव्यथी के० द्रव्यथी ज्ञानादि चेतनारूप गुण सहित छे, तेमाटे सिद्ध ते द्रव्यथी के० चेतन कहीए अने कृष्णादि षट लेश्या रहित सिद्ध अलेशी छे, क्षेत्र थकी सिद्ध ते स्वक्षेत्ररूप असंख्यानप्रदेशी छे. उत्पाद के० कालथी सिद्धने जाणवा देखवारूप पर्यायनो समये समये उपजवो थाय छे. जाणवा देखवारूप पूर्वपर्यायनो नाश थाय छे २ अने सिद्धने ज्ञानादि अनंतगुण प्रगट्या छे ते सदाकाल ध्रुवपणे शाश्वता छे ३ अने सिद्धने ज्ञानादि अनंतगुणरूप धर्म छे, ध्रुवपणे प्रगट्यो छे तेहने विषे उत्पाद १ व्यय २ थइ रह्यो छे. शुद्ध उपयोग के० भावथकी सिद्धने पोताना ज्ञानादि अनंत गुणरूप भाव प्रगट्यो छे, तद्रूप परनेविषे सदाकाल शुद्ध उपयोगवंत थका वर्त्ते छे, भाव सुख प्रगट्यो छे. ॥४१॥

सादि अनंत अविनाशी अप्रयासी परिणाम ।
उपादान गुण सहज कारण कारज धाम ॥
शुद्ध निक्षेप चतुष्टय जुत्तो रत्तो पूर्णानंद ।
केवल नाणी जाणे तेहना गुणनो छंद ॥४२॥

अर्थः—सादि अनंत के० [illegible] सिद्ध [illegible] एक सिद्ध [illegible] अनेक सिद्ध आश्री [illegible] छे तेहने [illegible]

त्मिक सुख अनुभवे छे, पोताना परिणामिक भावे वर्त्ते छे. अप्रयासी परिणामे रह्या छे, उपादान के० स्वज्ञानादि अनंतगुण कारणरूप प्रगट्या छे अने अनेकज्ञेय पदार्थ जाणवा देखवारूप पर्यायनो उत्पाद व्यय समये थइ रह्यो छे, ते कार्य पोताना आत्मस्वरूपने विषे निवास कर्यो छे एटले ए त्रणे एकत्तापणे परिणमे छे. शुद्ध के० निर्मळ च्यार निक्षेपे करी युक्त छे सिद्ध एहवो नाम त्रणेकाले एकरूप शाश्वतो वर्त्ते छे १ अने थापना सिद्ध ते त्रिभागे शरीर प्रमाणे क्षेत्र अवगाही रह्या छे २ द्रव्य सिद्ध ते सिद्धनादि गुणरूप छतां पर्याय वस्तुरूप प्रगट्या छे ते द्रव्य सिद्ध ३ सामर्थ्य पर्याय प्रवर्त्तनारूप अनंतो धर्म प्रगट्यो तेणे करी नव नवा ज्ञेयनी वर्त्तनारूप पर्यायनो उत्पाद व्यय समये २ अनंतो थइ रह्यो छे, तेणे सिद्ध अनंतो सुख भोगवे छे, ते भाव सिद्ध ४ ए च्यार निक्षेपे करी सदा रक्त प्रवर्त्ते छे. आत्मिक आनंदसुख भोगवे छे, केवळनाणी के० एहवा सिद्धनो स्वरूप प्रत्यक्षपणे केवळज्ञानी जाणे देखे अने सिद्ध परमात्माने अनंतगुणना समूह प्रगट्या छे तेहने विषे अनंतो सुख भोगवे छे, ते केवळज्ञानी गम्य छे, पण छद्मस्थ मुनिना जाणवामां न आवे. ॥ ४२ ॥

एहवि शुद्ध सिद्धना करण इहा ।
इंद्रिय सुख थकी जे निरीहा ॥
पुद्गली भावना जे अरमगी ।
ते सर्व शुद्ध परमार्थ रसी ॥ ४३ ॥

अर्थ—एहवी के० जे पूर्वे वखाणी शुद्ध निर्मल सिद्धता के० सिद्ध परमात्मानी संपदा छे, तेहवी सिद्ध संपदा प्रगट करवानी जे मुनिने इहा के० वांछा छे, ते मुनि कहेवा छे? इंद्रिय के० पांच इंद्रियना त्रेवीस विषय सुख पौद्गलिक तेहनी वांछा रहित वर्त्ते छे, वळी मुनि केवा छे पौद्गलिक के० स्व स्वरूपथी भिन्न के० जुदा एहवा शुभाऽशुभविभाव दशारूप जे पौद्गलिकभाव तेहना संगथी रहित न्यारा जे मुनि प्रवर्त्ते छे, ते असंगी ते मुनिराज निर्मळ बुद्धिना धणी अने जे साध्य एक अने साधन अनेक एवी रीते सत्ता गतना धर्मने साधे ते मुनि, परमार्थ साधवाना रंगी छे. ॥ ४३ ॥

स्याद्वाद आतम सत्ता रुचि समकित तेह।
आतम धर्मनो भासन निर्मळ ज्ञानी जेह ॥
आतम रमणी चरणी ध्यानी आतम लीन।
आतम धर्म रम्यो तेणे भव्य सदा सुख पीन॥४४

अर्थः—स्याद्वाद के० नित्य अनित्यादि आठ पक्षे करी अनेकांतनयरूप मार्ग ते स्याद्वादे करी आत्मसत्ता रुचिने ओळखीने प्रकट करवानी रुचि प्रवृत्ति ते मुनि, शुद्ध भासनरूप समकित भाव सहित जाणवा. आतमधर्म के० आत्मा शुद्ध निश्चय नयेकरी जोतां तो पोतानी आत्मसत्ताने विषे ज्ञानादि अनंत गुण रूप धर्म रह्यो छे, तेहनो भासन प्रतीत प्रगटी तिवारे निर्मल ज्ञानी थयो निर्मल जाणपणुं थयुं त्यां आतम के० ते मुनि सदाकाल स्वआतम स्वरूप रमण करे तेहने शुद्ध चरित्रनो उपयोग वर्त्यो, तिवारे आत्मस्वरूपना ध्यानने लीन-

त्मिक सुख अनुभवे छे, पोताना परिणामिक भावे वर्त्ते छे. अप्रयासी परिणामे रह्या छे, उपादान के० स्वज्ञानादि अनंतगुण कारणरूप प्रगट्या छे अने अनेकज्ञेय पदार्थ जाणवा देखवारूप पर्यायनो उत्पाद व्यय समये थइ रह्यो छे, ते कार्य पोताना आत्मस्वरूपने विषे निवास कर्यो छे एटले ए प्रणे एकतापणे परिणमे छे. शुद्ध के० निर्मळ च्यार निक्षेपे करी युक्त छे सिद्ध एहवो नाम प्रणेकाले एकरूप शाश्वतो वर्त्ते छे १ अने थापना सिद्ध ते त्रिभागे शरीर प्रमाणे क्षेत्र अवगाही रह्या छे २ द्रव्य सिद्ध ते सिद्धनादि गुणरूप छतां पर्याय वस्तुरूप प्रगट्या छे ते द्रव्य सिद्ध ३ सामर्थ्य पर्याय प्रवर्त्तनारूप अनंतो धर्म प्रगट्यो तेणे करी नव नवा ज्ञेयनी वर्त्तनारूप पर्यायनो उत्पाद व्यय समये २ अनंतो थइ रह्यो छे, तेणे सिद्ध अनंतो सुख भोगवे छे, ते भाव सिद्ध ४ ए च्यार निक्षेपे करी सदा रक्त प्रवर्त्ते छे. आत्मिक आनंदसुख भोगवे छे, केवळनाणी के० एहवा सिद्धनो स्वरूप प्रत्यक्षपणे केवळज्ञानी जाणे देखे अने सिद्ध परमात्माने अनंतगुणना समूह प्रगट्या छे तेहने विषे अनंतो सुख भोगवे छे, ते केवळज्ञानी गम्य छे, पण छद्मस्थ मुनिना जाणवामां न आवे. ॥ ४२ ॥

एहवि शुद्ध सिद्धता करण इहा ।
इंद्रिय सुख थकी जे निरीहा ॥
पुद्गली भावना जे असंगी ।
ते मुनि शुद्ध परमार्थ रंगी ॥ ४३ ॥

अर्थ—एहवी के० जे पूर्वे वखाणी शुद्ध निर्मल सिद्धता के० सिद्ध परमात्मानी संपदा छे, तेहवी सिद्ध संपदा प्रगट करवानी जे मुनिने इहा के० वांछा छे, ते मुनि कहेवा छे? इंद्रिय के० पांच इंद्रियना त्रेवीस विषय सुख पौद्गलिक तेहनी वांछा रहित वर्त्ते छे, वळी मुनि केवा छे पौद्गलिक के० स्व स्वरूपथी भिन्न के० जुदा एहवा शुभाऽशुभविभाव दशारूप जे पौद्गलिकभाव तेहना संगथी रहित न्यारा जे मुनि प्रवर्त्ते छे, ते असंगी ते मुनिराज निर्मळ बुद्धिना धणी अने जे साध्य एक अने साधन अनेक एवी रीते सत्ता गतना धर्मने साधे ते मुनि, परमार्थ साधवाना रंगी छे. ॥ ४३ ॥

स्याद्वाद आतम सत्ता रुचि समकित तेह।
आतम धर्मनो भासन निर्मळ ज्ञानी जेह ॥
आतम रमणी चरणी ध्यानी आतम लीन।
आतम धर्म रम्यो तेणे भव्य सदा सुख पीन॥४४

अर्थः—स्याद्वाद के० नित्य अनित्यादि आठ पक्षे करी अनेकांतस्वरूप मार्ग ते स्याद्वादे करी आत्मसत्ता रुचिने ओळखीने प्रकट करवानी रुचि प्रवृत्ति ते मुनि, शुद्ध भासनरूप समकित भाव सहित जाणवा. आतमधर्म के० आत्मा शुद्ध निश्चय नयेकरी जोतां तो पोतानी आत्मसत्ताने विषे ज्ञानादि अनंत गुण रूप धर्म रह्यो छे, तेहनो भासन प्रतीत प्रगटी तिवारे निर्मळ ज्ञानी थयो निर्मळ जाणपणुं थयुं त्यां आत्म के० ते मुनि सदाकाल स्वआत्मस्वरूप रमण करे तेहने शुद्ध चरित्रनो उपयोग वर्त्यो. तिवारे आत्मस्वरूपनुं ध्याननें लीन-

त्मिक सुख अनुभवे छे, पोताना परिणामिक भावे वर्त्ते छे. अप्रयासी परिणामे रह्या छे, उपादान के० स्वज्ञानादि अनंतगुण कारणरूप प्रगट्या छे अने अनेकज्ञेय पदार्थ जाणवा देखवारूप पर्यायनो उत्पाद व्यय समये थइ रह्यो छे, ते कार्य पोताना आत्मस्वरूपने विषे निवास कर्यो छे एटले ए घणे एकतापणे परिणम्ये छे. शुद्ध के० निर्मळ च्यार निक्षेपे करी युक्त छे सिद्ध एहवो नाम घणेकाले एकरूप शाश्वतो वर्त्ते छे १ अने थापना सिद्ध ते विभागे शरीर प्रमाणे क्षेत्र अवगाही रह्या छे २ द्रव्य सिद्ध ते सिद्धतादि गुणरूप छतां पर्याय वस्तुरूप प्रगट्या छे ते द्रव्य सिद्ध ३ सामर्थ्य पर्याय प्रवर्त्तनारूप अनंतो धर्म प्रगट्यो तेणे करी नव नवा ज्ञेयनी वर्त्तनारूप पर्यायनो उत्पाद व्यय समये २ अनंतो थइ रह्यो छे, तेणे सिद्ध अनंतो सुख भोगवे छे, ते भाव सिद्ध ४ ए च्यार निक्षेपे करी सदा रक्त प्रवर्त्ते छे. आत्मिक आनंदसुख भोगवे छे, केवळनाणी के० एहवा सिद्धनो स्वरूप प्रत्यक्षपणे केवळज्ञानी जाणे देखे अने सिद्ध परमात्माने अनंतगुणना समूह प्रगट्या छे तेहने विषे अनंतो सुख भोगवे छे, ते केवळज्ञानी गम्य छे, पण छद्मस्थ मुनिना जाणवामां न आवे. ॥ ४२ ॥

एहवि शुद्ध सिद्धना करण इहा ।
इंद्रिय सुख थकी जे निरीहा ॥
पुद्गली भावना जे असंगी ।
ते मुनि शुद्ध परमार्थ रंगी ॥ ४३ ॥

अर्थः—[illegible] निश्चये [illegible] व्यवहार धर्म पुण्य-बंधनो हेतु छे. [illegible] ॥ २६ ॥

वस्तु तत्त्वे रम्या ते निर्ग्रंथ ।
तत्त्व अभ्यास तिहां साधु पंथ ॥
तिणे गीतार्थ चरणे रहिजे ।
शुद्ध सिद्धांत रस तो लहिजे ॥ २७ ॥

अर्थः—[illegible]

भणे वांचे संभळावे एवावे पण आत्म स्वरूप ओळख्यो नथी. शुद्ध उपयोगे न वर्तेवे द्रव्य चारित्रिया कहिए. १ भाव चारित्र ते आत्म स्वरूपमां एकत्व थावुं, वे आत्मस्वरूपनी थिरता, आत्मस्वरूपनुं रमण, आत्मस्वरूप निश्चलता आत्मस्वरूप भोगी, परभाव अभोगी ते भाव चारित्र २ तेणे गीतार्थे के० आत्मस्वरूपना जाण एवा गीतार्थ मुनिना चरण कमळ सेवीए, मोक्षाभिलाषी मुनिने सेव्यायी शुं नीपजे ! शुद्ध के० शुद्ध निर्मल यथार्थ निःसंदेहपणे सिद्धांत जे आगम संबंधी या जिन वाणीना ज्ञानरस मते चाखी जे गुरु कृपाथकी तथा आगमनो रहस्य ते इयाने कहीए १ यतः आत्माराम अनुभव भजो, तजो परतणिमाया, एह छे सार जिनवचननुं, वळी एह शिवछाया १ श्री परमात्माए त्रिगडे बेसी एहवी प्ररूपणा करी अहो भव्य जीवो । आत्माने आराम के० रमावे एवो अनुभव भजो सेवो, एटले आत्मानो अनुभव करजो, पर के० पुद्गल परभावनो त्याग करवो एह जिनवचननुं सार छे, वळी शिव तरुनी छाया छे. संसारतापनी टाळणहारि छे. इत्यर्थ ॥ ४७ ॥

श्रुत अभ्यासी चोमासि वासी लिंबडी ठाम ।
शासन रागी सोभागी श्रावकनां बहु धाम ॥
खरतरगच्छ पाठक श्री दीपचंद्र सुपसाय ।
देवचंद्र निज हरखे गायो आतमराय ॥ ४८ ॥

अर्थः—सिद्धांत शास्त्रना अभ्यासी लिंबडी गामनेविषे चोमासुं रहिने ए ग्रंथ रच्यो, जैन शासनना रागी सौभाग्यवंत श्रावकनां घणां घर छे, खरतरगच्छने विषे दीपचंद्र नामा

उपाध्यायजीने प्रसादे देवचंद्र नामा उपाध्याये पोताने हर्षे करी आत्म राजाने गायो, आत्मस्वरूप यथार्थ वर्णवायो. ॥ ४८ ॥

आत्मगुण रमण करवा अभ्यासे ।
शुद्ध सत्ता रसीने उलासे ॥
देवचंद्रे रची अध्यात्मगीता ।
आत्म रमणि मुनि सुप्रतिता ॥ ४९ ॥

अर्थः—भव्य जीवने आत्मगुण रमण करवा अभ्यासे ज्ञानादि गुणवडे रमण करवा स्वरूप जाणवा. अभ्यासने अर्थे शुद्ध आत्म सत्ता ज्ञानादि चेतननी वेहना रसिया जे अर्थीने उल्लास करवाने अर्थे देवचंद्र उपाध्याये अध्यात्मगीता रची, पोताना आत्म रमण करवाने अर्थे अने अध्यात्म ज्ञानवंत मुनिने प्रतीतकारी छे, ए ग्रंथ रचना कीधी स्वरुपने अर्थे ॥ ४० ॥ इति पाठक देवचंद्रकृत अध्यात्मगीता संपूर्णा ॥ ॥ शुभं भवतु ॥

॥ इति श्री अध्यात्मगीता देवचंद्रकृता
॥ संपूर्णा शुभं भवतु ॥

॥ ॐ नमः सिद्धं श्रीगुरुभ्योनमः ॥

॥ अथद्रव्यप्रकाशभाषालिख्यते ॥

॥ दोहा ॥

अज अनादि अक्षयगुणी, नित्य चेतनावान् ।
प्रणमु परमानंदमय, शिवसरूप भगवान् ॥ १ ॥

॥ अथस्याद्वादभावको नमस्कार ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जाके निरखत सबे थिरतासु भाव धरें, वरे निज मोक्षपद हरे भवतावको, करमको बंध वारे मोहको विडारडारे सारे निज-सकति वचारे ज्ञानदावको: एकानेकरूप जाने नित्यानित्यभाव ठानें आपा पर भेदकरी ग्रहे स्व सुभावको, अक्षर त्रिगुण इंद कर्मजालसो अफंद नमतहे देवचंद स्याद्वादभावको. ॥ २ ॥

॥ अथअध्यात्ममाहात्म्यकथनम् ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

अध्यात्मभावको प्रभाव कह्यो कहा ताहि जाको महिमान ज्ञान जगतमे गायोहे, याहिको सभाव लहि आपा पर भेद गहि सम्यक्सुभावमहि बोधिबीज वायोहे: वानको अवार्ती भेद कर्मको मूल छेदि वेद निजभावको परमभाव आयोहे, रिषभदेवाधिदेव अध्यात्मभाव सेव अमर अखंड निज केवलको पायोहे. ॥ ३ ॥

॥ अथमोहविलासकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

लह्योते आरिजकुल गुरुको संजोग वलि पुरवके पुण्यबल एसो जोग लह्योहे, अध्यातमग्रंथसार सुणो कान धरी प्यार पीयो ताको रस निज तत्वशुद्ध मह्योहे; तोभी यह तेरो जीव चाहत विशेष दीव भोगकी ममत्वतासो माचिराचि रह्योहे, जगको जीवनहार एनो सब मोहभार मोहकी मरोरमें जगत लहलह्योहे. ॥४॥

॥ अथप्रथमद्वार ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

प्रथम धरमद्रव्य, दूसरो अधर्मद्रव्य, तीसरो आकाशद्रव्य, लोकालोकमानहे, चोथो कालद्रव्य एक पुद्गलद्रव्यरूपी निजनिज-सत्तावंत अनंत अमानहे; पांचोह अचेतनजं चेतनासरूप छीये छठो ज्ञानवान द्रव्य चेतन सुजानहे, स्यादवादभाव लीये तीहुं अधिकार याके ग्रंथको आरंभ कीनो ग्रंथज्ञान मानहे. ॥५॥

॥ कविलघुताई ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

कोउ बाल मंदमति चित्तसो करे उकति नभके प्रदेश सब गनि देखो कर्मसे, कोउ जन क्षीन तन पुरातन यथातीत वयन सो कहे एसो शुद्ध करो हरिसे; मूधर वामन सो प्रकृति विनु कहे एसो लंबीकरि भुजा मेनो मेरुव्यापारसो, तेसे मैं अल्पबुद्धि महाशुद्ध ग्रंथ मड्यो पंडित हसेगे निज ज्ञानके गर्वसो. ॥६॥

॥ ग्रंथअधिकारीवर्णन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

वन वचन ठानि वचन मरम मानि नाम प्रभाव ऋद्धि धाम सो

उदासी है, आतमके विसरामी ज्ञानके अंतरजामी वायासौ विरनिनित राधाधामवासी है; जालसौ जगतजाके माल सब भेल जैसो अमल अखंड निज ब्रह्मके विलासी है, एसे समकीत धारी शुद्ध नयके विचारी वंदतहे देवचंद ज्ञानके प्रकाशी है. ॥७॥

॥ अथ देशविरति वरणन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

अभक्ष्यके त्यागी हे परम रस पागी एसे परसौ निरागी जिनधर्मके विनीत हे, आत्मिक सुख लहि समतासु धीर गहि विषय कषाय मोह रससौ वितीत हे; परम धीरज धरि आत्मीक बल करि समकित फौज करि मिथ्यासौ अजीत हे, निष्ट नित थोव भापी सिद्धसुख अभिलापी इकवीस गुण धारी श्रावक पुनीत हे ॥ ८ ॥

॥ दोहा ॥

साधक शिवको साधुमुनि; ताके भेद विचार,
जिनवर आचारिजप्रवर, उपाध्याय अनगार ॥ ९ ॥

॥ अर्हंतकोद्रव्यस्तवना ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जाकी देहद्युति अति लोलित अनंततेज जाकी नन चतुराई नाही ध्यान ओर है, जाही जिनराजके वचनको विलास मानो, त्रिभुवन गह शुद्ध अनुभव कोर है. जाके अतिसे अपार, वडे देवदेवी इंद जाकी [illegible] अन्न सुख ठोर है [illegible] सुखकी परमोदन एसो जिन ईश्वर [illegible] है ॥१०॥

॥ दोहा ॥

दर्वितस्तवनाना थकी, करतां पुन्यप्रकाश,
आतमके गुन गावतां, केवलज्ञान विलास. ॥११॥

॥ अथ भावस्तवनं ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

लोकालोक भासक अनंत ज्ञानदृष्टि जाकी वीरज अनंतसुख उपेरै कर्मकंदजू, चरण अनंतवर लोकालोक भावधर पुन्य पापसों व्यतीत सुध सुख वृंदजू; वेद कौन भेद तीनो जोग कौन खेद तहां चेतन प्रकाश भयो कर्मसो अफंदजू; ऐसे जिनराज निज ज्ञानमे विराजमान अमल अखंड नित ध्यावै देवचंदजू. ॥ १२ ॥

॥ आचार्यस्तवनं ॥

॥ सवैया बतीसा ॥

पंचाचार पाले निज श्रद्धाको संभाले भाले-टाले परभाव सब शुद्धभाव भावे है, परमधरम गहे समता सभाव बहे रहे न सराग चित्त नित्त लिव लावे है; दुविध दयाके धार कीनो नारि परिहार परिग्रह दूर डारि नीरलोभी दावे है; परव्याधि दूर टारे रागद्वेष मोह वारे ऐसे आचारज जिको देवचंद ध्यावे है ॥ १३ ॥

॥ अथ उपाध्याय वरणन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

नित्य सो अनित्यरूप एकानेक कोशरुप सदसद्भाव

स्याद्वादको सहाय है, द्रव्य अभेद नय परजाय भेदनय सग- नैगमादिनै असंख भेद पाय है; द्वादशांगी सूत्रसार पठावै सपरिवार तावे शुद्ध कारन जे मोक्षके उपाय है, पंच महाव्रत पाळे दोष सबहिको टाळे पूजनीक भव्यजीको ऐसे उपाध्याय है ॥ १४ ॥

॥ अथ साधु स्तुति ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आतमारामके आरामी निज सुखवीसरामी पुन्यके अकामी पापदृष्टिसौं न काज है, इंद्री सुखकी न आस रहे जगसौं उदास परिग्रह हीन भी अजाचि महाराज हैं, मिथ्यास्यौं विमुख निज ज्ञान भावही के रुख मोक्ष सनमुख सिद्धसुखके समाज है, करम उदिकलेवी करत हे क्रियाकर्म सत्तावीस गुणधारी ऐसे मुनिराज हैं ॥ १५ ॥

॥ दोहा ॥

अविरत आदि अजोग, लगी पहे सिद्धको हेत,
जो गुन जहां पुरन हुवे, सोइ सिद्धको खेत. ॥१६॥

॥ अथ मिथ्यादृष्टिहेय कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आपको न जाने परभावहिको आपा माने गहिके एकांत पक्ष मान्योहे गहलने. ममतसे राच्यो रहे पुन्यकर्महिको चहे वहे अहबुद्धिभाव धरे [illegible] महलने. कुगतिसौं डरे सद्गतिहिकी इछा करे करनीके [illegible] ह्वेके चाहे मोक्ष शैलने. स्यादवाद भावबिनु एते [illegible] मिथ्यादृष्टि [illegible] हेयरूप कह्यो ज्ञानभावके अदलने ॥ १७ ॥

॥ अथ ग्रंथारंभको नमस्कार ॥

॥ दोहा ॥

उद्दोभाव स्याद्वादको, जामे अरथ विलास,
मपहित कारण ग्रंथ यह, नामे द्रव्यप्रकाश. ॥ १८ ॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ दोहा ॥

ज्ञानरूप आदेयजो, जानो चेतन सोय,
जे अर्जीव पुनि हेय है, उन जाने क्या होय. ॥१९॥

॥ अथ गुरुउत्तरकथनं ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

चेतन द्रव्य अनंत गुनाश्रित ध्येय आदेय स्वभाव धरे है, आप विभावि व्रमे भवसिंधुमे आप लखे शिवभाव वरे है, इन षट् द्रव्य लखाइ कुमगति पंचस्वभाव छिपे सिपरे है, शिष्य संदेह निवारन कारन त्याग स्वरूप बखान करे है॥२०॥

॥ दोहा ॥

स्यादे पनको जानिके, गहे आपनो ज्ञान,
या ते हेय पदारथ रहित करे बखान. ॥ २१ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible] ॥ २२ ॥

॥ भेदज्ञान उभयनूल नयवरणन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

सुध नय निहचे अभाल्य नत्पी नन्द व्यवहार क्रिया नय तावे विपरीत है; भेदज्ञान कारन न होय विवहारनय ज्ञानके निहारसे याको त्याग वेही नित है; वस्तुको पीछाने निज शुद्धिको विशुद्ध गने शुद्ध नैतल्प एसो सम्यक्त्वको मीत है, रतन त्रितयको स्वामी देवचो अंतरजामी एसो शुद्धनयसो हमारी नीर मीत है ॥ २३ ॥

॥ पुनःसंज्ञापण ॥

ज्ञान लिंग यह नय विवहार, तत्त्वज्ञान किरिया आचारा; गहन जोग नय शुद्ध रहत विवेकसे, त्यागयोग विवहार ज्ञानको देखसे. ॥ २४ ॥

॥ शुद्धनय महिमा ॥

॥ दोहा ॥

परविमुक्त यह आतम, चिनमय चंदलमान,
आदि मध्य नहि अंत तसु, दोनक निहचे जान. ॥२५॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ दोहा ॥

कह्यो हेय व्यवहार नय [illegible] जो देह
तो कहु कैसे [illegible] [illegible] ॥ २६ ॥

॥ अथ [illegible]

[illegible]

[illegible] है
[illegible] २७ ॥

॥ भेदज्ञान माहात्मकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जे ते केई भव्य जीव लीन ज्ञानमे सदैव करमके बंधको उखारे एक पलमे, ताको मूल हेत एक भेदज्ञानहीकी ढेक ठेकते विवेकको विचार जोयुं दीलमे; बंधको विलासमे मगन तेऊ आठुं जाम परे कर्मबंधमांहे रूले जगजालमे, तेतो भेदज्ञान विनुं निहचे पिछान्यो देव करमको गाढवाढे अज्ञानकी घालमे ॥ २८ ॥

॥ अथ ज्ञानविलास कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आपा पर भेद लीन आनमा स्वज्ञान पीन करमके पुंजको न आने निज देसमे, वसि निज गुनवास भासे आप रूप रास विराजे अखंडरूप आतम प्रदेशमे; अनादि अज्ञानके वशावसि गह्योहे ज्ञानभान जैसे रवि रह्यो घटाके प्रवेशमें, तैसे ए पुराणदेव तत्त्वको पीछाने नाही करमको करतार भयो परदेशमे ॥ २९ ॥

॥ आतमाअकर्ताकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

सहज स्वभाव अब गुरुके वचन सेती जान्यो निज तत्त्व तव जाग्यो जीवराय है, मेरो परद्रव्य नाहि परद्रव्य मेरो नाही ऐसी बुद्ध भासि तव बंध कैसे थाय है; देखी ज्ञानी गह्यो तुम पद अनंत पद आके पद आगे और पद न सुहाय है, प्रमाण

निक्षेप नय जाके तेज आगे अस्त ऐसो निज देव सुद्ध मोखको उपाय है ॥ ३० ॥

॥ अथ आत्मा मुक्तरूपवरणन ॥

॥ दोहा ॥

बंधोदय जोग्य मजुत्त, ए सब पुग्गल जुत्त;
इनसो पर निज चेतनय, मैं हु कर्म विमुत्त. ॥ ३१ ॥

॥ आत्माथिरभावनाकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पवनके झंकसौं कुम्भाव थीर रहे जल तैसो ज्ञाता जीव होइ करम वियोगसौं, जे ते ज्ञान नायके लगेहे परभाव साथ तेते फलानि दूर करे ज्ञानयोगसौं, स्वयंभू चेतनरूप अनघ अनंत रूप ताके थिर ध्यान धरो त्यागना तो लोगसौं, आस्रव विनास होवे संवररूप भयो ताके बंध खोले कौन करम अजोग सौं ॥ ३२ ॥

॥ दोहा ॥

वरणादिक परभाव ए, है सब तनके अंग;
नव नव रंग गहे फटिक, पडुं उपाधिके संग. ॥ ३३ ॥

॥ आत्मफटिकदृष्टांतकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैसे मणिफटिक स्वभाव निरमलरूप तैसे थिर चेतन सदाइ निरमल है. तामें राग दोष मोह आपनी उपाधिसेती वन्यो है तातामें अज्ञान सौ विकल है, तामें मैं नांहि कछ अपनो

स्वभाव द्रव्य, भूप न कहावे बहु कंचन सकल है, तम पक्ष राहू संग चंद्र राहु योग भयो चंद्र कहा तम होइ नित्य जो विमल है ॥ ३४ ॥

॥ संसारीआत्मकथन ॥

॥ कवित ॥

पर परनति निज मानी शुद्ध परनति पर जाने रागादिक संजोग आतमपर भावहि ठाने, रागी रोषी अहं एह विकलप मल मिलीयो करे करमको बंध फीरे जल्पहल फलीयो जिम मृन छाय जुन पुरुष निज मूलभावको इक कहे त्यो जीव एह अज्ञानवसि विविध कर्म बंधन लहे ॥ ३५ ॥

॥ दोहा ॥

चेतन परके जोगसो, परको करता होय,
या ते परको पर लखे, तजे अकर्ता सोय. ॥ ३६ ॥

॥ निजउपादेयपरहेयकथन ॥

॥ दोहा ॥

चेतन विन जे ते दरब, ते अशुद्ध परहेय,
शुद्ध चेतना सगुन, नित्य जीव आदेय. ॥ ३७ ॥
पर द्रव्य जड हेय है, नामी कहीये जेय;
नाम पत्रानो प्रगट. स्याद्वाद नय भेय. ॥ ३८ ॥

॥ [illegible] ॥

[illegible] ॥

[illegible]
[illegible] ॥ ३९ ॥

॥ द्रव्यचतुष्टयस्वरूप ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

धरम अधरम द्रव्य नभ काल च्यारो द्रव्य अरूपी अखंड जड भाव लीये वरते, ताते तिन अस्तिकाय काल विनु जिन कहे गहे गनधार तीन पद अनुसरतैः च्यारो निज गुणवान लछन निधान नित निज निज काज साजे मिले कौन परते, च्यारो तैं विमुक्त निज अविभिन्न भवत जीव तत सिद्ध होय समुद्र तरते ॥ ४० ॥

॥ कालद्रव्य विनुं तीन द्रव्यभाव ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

धरम अधरम नभ तीनोको इकेक खंध अकिरीय निरंतर जैनमें वखाने है, धरम अधर्म दोउं असंख्य प्रदेसवंत लोक असमान मान अचल कहाने है. नभ अंस है अनंत लोकालोक मानवंत गुण परजायवंत अकृत पिछाने है, एते उनसम तोभी ज्ञान विहुं ज्ञेय नाहि ज्ञेय एक जीव जो तो लोकालोक जानेहे ॥ ४१ ॥

॥ अथ द्रव्यलक्षण ॥

॥ दोहा ॥

जीतो पुद्गल जीवको, चलन सहाई होयः
आप अचल अक्रियनित. धर्म द्रव्य है सोय. ॥४२॥

॥ अथ शिष्य प्रश्न ॥

॥ दोहा ॥

शिष्य कहे सद्गुरु सुनो ... ...
जगमें पुद्गल जीवको. ... ... ॥ ४३ ॥

॥ गुरु उत्तर कथन ॥

॥ दोहा ॥

जैसे जलचर जीवकुं, चलनसहाई नीर;
तैसे पुद्गल जीवको, चलन सहाए वीर ॥ ४४ ॥

॥ अधर्म द्रव्य लक्षन ॥

॥ दोहा ॥

अधर्म द्रव्य जो थिर करे, जीव पुद्गलको साहि,
मध्य दीह ग्रीषम समे, ज्युं पंथी तरुछांही. ॥ ४५ ॥

॥ आकाश द्रव्य लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

जो देवें अवगाहना, सो आकाश कहेवाय,
गुणपरजयजुत जा समें, पांचो द्रव्य समाय. ॥ ४६ ॥

॥ अथ सामान्य अष्ट गुण कथन ॥

॥ कवित ॥

पहिलो अस्ति सभाव वस्तु सभावता बीय पिन तीजो द्रव्य सरूप गुन चतुर्थ परमेय परमान पंचम अगुरु लघुत्व छठो सप्रदेश कहीजे, सत्तम चेतनहीन आठमो अरूप लहीजे, ए आठ द्रव्यके जाति गुन कदाकाल नाविभचरै, धर्मादि द्रव्य-त्रय नीत्य ए आठों गुन नित्यप्रत्ये धरै ॥ ४७ ॥ गति हेतु कह्यो धर्मथित हेतु है अधर्म अवगाह दैन तौ अकाशहीको गुन है तिनौ ए विशेष गुन कहै तिनौ द्रव्यहीके अव गुन [illegible]ीध कहिवेकौ मन है. द्रव्यकौ विशेष गुनयहै असाधारन

है साधारन गुन सतपदको कहन है, अचेतन रूप वितु तदुभय गुन कह्यो गुनपर्याय द्रव्य ज्ञानयोग नहै ॥ ४८ ॥

॥ द्रव्यपर्याय कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

गुनके विकारपर जाय कहे जिनराज स्वभाव विभावरूप ताके दोय भेद है, सुधपरजायतौ अगुरु लघुके विकार हानि वृद्धरूप जाके बारह विभेद है; अनंत असंख्य संख्य भाग हानि गुणहानि एतौ छहौ हानी छहौ वृद्धियुं अखेद है, एतौ परयाय छहौ द्रव्यकौ समान भाखे उरि परयाय गुन सुनन उमेद है ४९॥

॥ विभावपर्याय कथन ॥

॥ दोहा ॥

खंध थान गत भेद ले, कहनो वचन विलास,
परपर्याय धर्मादिके, ज्युं घटमठ आकाश. ॥ ५० ॥

॥ आकाशद्रुविध कथन ॥

॥ दोहा ॥

सो आकाश द्विविध भयो, यद्यपि है एक खंध,
लोक अलोकनीके सबे, कहो लक्षन संबंध. ॥ ५१ ॥
ध्रुव उत्पादन अंतगत, जहां एक आकाश,
सादि अनंत अपार जड, सो अलोक परकास. ॥५२॥
जामें गुणपर्याय जुत, छहौ द्रव्यको वास,
आप असंख प्रदेशधर, सोहे लोकाकाश. ॥ ५३ ॥

॥ अथ शिष्य प्रश्न ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

धर्मलोकाकाश मान अधरमताकेमान असंख्य प्रदेशी एक जीव युं अनंत है, लोकालोक नभसम पुद्गलअणु द्रव्य कालके सुछमसमें वरतना अनंत है; आधार लोकाकाससो प्रदेश वे असंखराशि वास थान तुछ अरु आधेय महंत है, तावे कैसे ए समाय कहो सामी को उपाय द्रव्य रिती थिति कीतौ हम मन भ्रांति है ॥ ५४ ॥

॥ अथ गुरु उत्तर ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैसे एक जलधाउं तसमित जलभृत तामे तद्वुचित सरकरा गलि जाय है, तामे लुणका करको गारिडारे वारडारे तामे सूइको समूह योमे टहराय हैं; जैसे एक गउंमांहि पांचो वस्तु टहराहि जलादिक तहकीक प्रगट दीसाय है, तैसे लोकाकाश-मांहि पांचो द्रव्यमाय जाहि अवगाह गुनकी समकि कहयाय है ॥ ५५ ॥

॥ अन्यमति प्रश्नोत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

अन्यमती पक्ष गहे कहै यही थान सब धरम अधर्म द्रव्य जगमांही नाहीं है, परतक्ष दीसे नाही अनुमान ज्ञान नाही उपमान शब्दमांही एनौ न कहाही है; ताते जैन कहे वे न अनुमान लेके यथा इंद्री अग्रहीन भाय जगमांहि होही है, गतिहेत सो उहेत दधिजन घनतन् नेमे अरूपी नित्य द्रव्य जगमांहि है ॥ ५६ ॥

॥ अन्यमति प्रश्नोत्तर ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

कालवादीको उकती गत थिती रीत इत कालके अधीन दीन हीन मत पीन है, बुध कहे कालगुन नव पुरातनपन दोय क्रिया एक द्रव्य कबहु न कीन है; पंचभूत वादी कहे गति वाउ मूत छति थितिरीत समस्त प्रथवी अधीन है, बुध कहे वायुमूर्ति जीव पुद्गलदल वाको बल और याको बल नौन थीन है ॥ ५७॥

॥ दोहा ॥

या ते पुद्गल जीवको, गति थिति हेत सदीवः
धर्म अधर्म दो द्रव्यजड, इनको ज्ञाता जीव. ॥५८॥

॥ कालद्रव्य लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

वरतन परणति जासु नित, क्रियापरा परवानः
नव जीरनको हेतु जो, कालद्रव्य सो जान. ॥५९॥

॥ कालद्रव्य गुणपर्याय कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

अस्ति आदि अष्टगुन युत अप्रदेशी नित समेको मीलन निहं नाहि अस्तिकाय है; वरतना हेतुए विशेष गुन कहे जिन अगुरु लघुत्व भेद याके परयाय हेः आवली प्रमुखपर परजाय हे अनंत उतपाद व्यय ध्रुवमंन कही जाय हे. तो नो द्रव्य एक कहे समय अननवन नखे नमिन वरतनाको उपाय हे ॥ ६०॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ चोपाई ॥

शिष्य कहे तुम काल बखाना, मनुज खेतमित कह्यो सुजाना,
उत्पादादिक सब जगमांही, समेसमेमें क्युं कहवाही ॥६१॥

॥ अथ गुरु उत्तर ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

तव आचारिज एक गहि जिनमत टेक कहे एसि वात परवान पक्ष गहिकै, नरखेत सामे मितकालमांही तीनो हीहि छहो द्रव्यमांही तीन देखे ज्ञान लहीके, तावे उपदेशमांहि कहे जिन वैन एसे गहे गनधार सरधान शुध यहिकै, देख्यो युं अनंत तीन देखेगे अनंतफुनि देखत हैमी अनंतज्ञान सरदहिके ॥ ६२ ॥

॥ अन्य आचारिज वचन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

कहे और गुरु काल द्रव्य है असंख्य थिर रेणुरूप लोक-परदेश परवान है, एकएक रेणुकपै अनंत प्रगट होत समय सब समै काज परवान है, निज निज काज करे अनमिलपने सहाय है अस्तिकायकी कदापि न बखान है, अनंत अतीत काल वैसो अनागतकाल अप्रदेशी परिणामी कालद्रव्य मान है ॥ ६३ ॥

॥ निश्चयकालस्वरूप कथन ॥

॥ दोहा ॥

मनुज खेतमित जो कह्यो, सो व्यवहारीकाल,
निहचै कालो द्रव्यको [illegible] [illegible] ॥ ६४ ॥

कालद्रव्य उपचारहे; पंच आस्तिकी चाली;
और कथन सब शास्त्रके; सो उपच्यारि भाखि. ॥६५॥

॥ हेयउपादेय विवेचन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

उतपाद व्यय ध्रुवपनें जीवसम एमी अगुरुलघु वै परजायमी समान हे, अरूपी अखंड अज अनादि अनंतसंत अनमिल औरसे तीलोकके प्रवानहे; इत्यादिक गुनसोस मान तौमी ए अजान तातें ध्यानध्येयमां ध्येय ज्ञानवान् हे, अनंत त्रिगुणनाथ देवचंद्र गुणनाथ ध्येय उपादेय ब्रह्म ज्ञानको निधान हे ॥ ६६ ॥

॥ इति द्रव्यप्रकाशको प्रथम अधिकार ॥

॥ दोहा ॥

वरने च्यारो द्रव्यपर, जेह अरूप अजान;
अब वरनौ संक्षेपसौं, रूपी जड परमान. ॥ १ ॥

॥ अथ आतमाकरमयोगको दृष्टांत ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैसे नीरनिधि नीर समीरकी भीर भेती उठरे उतंग अति चंचलता विससे, डौलतनदीकोनाथ चपलकल्लोलसाथ रंचनसु थिर होइ आकुलता तिलसे; तैसे ए चेतनभूप अमल अडोलरूप अखंड अनंत ज्ञान सुंदर सनेत्रने, सोइ जीव कर्म प्रेर्यो मोहके पवन धेर्यो फेर्यो फीरे ममतासो क्षोभ भाव क्रोधसौ ॥ २ ॥

॥ पुनः दृष्टांत ॥

जैसे माटी जलसंग–घट दीपकादि चंग–नवनव भाव धरे मृदरूप वोइ है, तैसे कर्मजल जोग–जीव च्यारगति रोग–लहेयें अखंड ध्रुव चेतनत्व सोई है; ऐसो निज गुणवंत–अमल अखंड संत–ताहिको सरूप गहि सिद्धरूप जोइ है, कहे देवचंद वंदि ऐसे चिदानंद विनु मोक्षको साधक भइया और नही कोइ है ॥ ३ ॥

॥ पुद्गल द्रव्य लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

पूरण गलणन सभावधर, अस्तिकायमूर्तिक,
फरस वरण रसगंधमय, पुद्गलद्रव्य सु ठीक ॥ ४ ॥

॥ अथ पुद्गलगुणपर्याय कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जाके मूल गुनगनि रूपी अचेतन भनि अस्तिपन आदि लद आठे ओघ गुन हे, पुरनगलनरूपी अणुको विसेस गुन यहै असाधारनके उरमांही जैन हे ॥; हानिवृद्धिषटविध मूल परयाय याके द्वणुक प्रमुखखंध परजायआने हे, एकवर्ण एक गंध एक रस है फरस पांचो गुन याके मूल परीयेपजाने हे ॥ ५ ॥

॥ पुद्गल द्रव्य सरूप ॥

॥ दोहा ॥

[illegible] यामे सकति मढाय,
अस्तिकाय कहेवाय. ॥ ६ ॥

पुद्गल द्रव्य अनंत हे, सब नभ अंस समान,
ताके खंध अनंत हे, नरदपास संठान. ॥ ७ ॥
सो पुद्गल है दोय विध, इक अणु दूजो खंध;
खंध दुविध एक जीव, विनु जीव कर्मको बंध. ॥८॥

॥ पुद्गलखंध स्वरूप ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

छुटे अनुहे अनंत तेमी खंधने मिलत अणुके सबंध होय खंध अनु होय हे, जे ते अनुहे अनंत ते ते खंध होय नाहि ऐसी बात कहे सोतो मुरख अबोह हे; तासै कहे द्रव्य पुद्गल परावर्त्तकाल मिले कैसी भांति जाकी पुद्गल सोहहे, अनुगति जीवसम थीतिहे अमीतनित कही अनुबात अब खंधको प्रबोहहे ॥ ९ ॥

॥ पुद्गलपर्याय कथन ॥

॥ दोहा ॥

छाया आतप तेजतम, सबदबंध स्थूसूल,
विछुरन मिलन प्रबाहगति, इनकौ पुद्गलमूल. ॥ १० ॥
केइ इंद्री गम्य हे, केइ अगम्य निरधार,
संखअसंख अनंतअनु, त्रिधा खंध विस्तार. ॥ ११ ॥
ज्ञानहीन जडहेय सब, उपादेय जीउ सार;
अब बरनो निज ज्ञानहित, कर्मबंध विस्तार. ॥ १२ ॥

॥ अथ कर्महेतु कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पंचमिथ्याको अविरत बारसंच पंचविस संपराय योग पं

दस है, एतै सगवन हेतु कर्मबंधहीके खेत ताके भेद चौ प्रकृति थितिरस देस है; प्रकृति सभावथिति कालटहरा वरस चिकणाई दल समुदाय परदेस है, करे निजनिज काज भाव- कर्मके समाज मोदकको दृष्टांत च्यारोमे अवस है ॥ १३ ॥

॥ कर्म अष्टप्रकार कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

प्रथम ज्ञानावरणीय ज्ञानको अछादलेय आंखपर पट जैसे याको सब दाव है, भेदमति आदि पंच पांच्यो निज गुण वंचे क्षायकक्षयोपशम यामे दोय भाव है; दरसन उछेदक दरसना वरनीय प्रतिहारसम ध्रुवबंधी टहराव है, दंसनावरन च्यार निंद पांच परकार यामे दोय भाव मोहदृष्टिको उपाव है ॥ १४ ॥ वेदनीकरमभर अव्याबाध रसहर ताके दोय भेद एक सातामी असाता है, असाताको पाप हेतु साता हेतु पुण्य होत मधु- लेपयुत असिधारासी घटान है; मोहनीके भेद दोय दंसनके तीन भेद जगमे कहात है, मिथ्यामोह मिश्रमोह समकित कंखामोह तिनीइ प्रकृति निज गुनकेरे घात है ॥ १५ ॥

॥ मिथ्यामतवरणन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

देहसी प्रीत प्रतीत अनीत सो पुन्यकी रीत सो जाकी मिताई, जीव अजीव विवेककी ठेक न जानत नां कछु आप पराई; करे बहिरंग दयादि क्रियापुनि अंतर ज्ञान भगति न पाई, चंद कहे जिनचंद कृपाबसि ऐसी मिथ्यामति जाई पुलाई ॥ १६ ॥

॥ मिश्रदृष्टिवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

वीतरागके वचनमें, नाहि राग नाहि द्वेष;
पलभक्षीनर आजन्हुं, मिश्रमोहसे देख. ॥ १७ ॥

॥ सम्यक्दृष्टिलक्षन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ज्याको तन भ्रांति नांहि तानापर निदी नांहि ज्ञानरीति ऐसो निज मीन माही बसेहे. निर्मकादि अष्ट लिष्ट इष्ट निज गुनानिष्ट अंतरंग बाहिरंग संगन्स लसेहे; इंद्री सुखसु विमुख निज सुख संमुख निज ज्ञान रूपमें कलुष भाव नसे हैं, पसे धरमराग देवादिकपे मगन याते समकीत मोह राग संग हसे हैं ॥ १८ ॥

॥ दोहा ॥

मिथ्यामोह अशुद्ध दल, शुद्ध सो समकीत नाम.
मध्य शुचि रुचि सो मही, अति घर [illegible]. ॥१९॥

॥ [illegible] ॥

॥ दोहा ॥

[illegible] है [illegible]. [illegible] हु [illegible];
[illegible] ॥२०

॥ [illegible] ॥

॥ दोहा ॥

[illegible]
[illegible] ॥ २१ ॥

॥ नामकर्मभेद ॥

॥ दोहा ॥

नामकर्मके भेद बहु, वरणत बडे गरंथ;
तावे वरनो नाम कछु, जासे कछु अरथ. ॥ २२ ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पैसठि प्रकृति पींड अठावीसहे अपींड सब मिल्यां नामभेद तिराणु कहानहे, तनपंचदशमांहि पांचको गहन कीजे वरनादी वीसमांही च्यारोइ गहनहे; तब सडसठी भेद भये बंधमांही गहे उदय उदीरनामे इनहुको मानहे, सत्ताके सरूपमांही प्रान-येकोहे उछाही देवचंद कर्ममुक्त सदा सुखथान हे. ॥२३॥

॥ अथगोत्रकर्मभेद ॥

॥ दोहा ॥

उंच नीच दो भेदको, गोतकरम जड जान;
मुंदे निजगुन अगुरुलघु, कुंभकारसम जान. ॥ २४ ॥

॥ अंतराय पांच भेद ॥

॥ दोहा ॥

दान लाभ बल भोगको, वली उपभोग प्रकार;
इन पांचोको मुंदले, अंतराय सो धार. ॥ २५ ॥

॥ अष्टकर्म उत्कृष्टथानि कथन ॥

॥ दोहा ॥

ज्ञानदर्शनावरण अरु, वेदनीय अनराय.
इनकि कोडाकोडी थिति, सागर तीस कहाय ॥२६॥

सित्तरी कोडाकोडी थीति, मोहनीयके वीस;
सागर कोडाकोडी थीति, नामगोतके वीस. ॥२७॥

॥ अष्टकर्म जघन्यथीति ॥

॥ दोहा ॥

पंचकर्मकी जघन्य थीति, एक महुरत होय;
परमदेव अरु नरककी, सागर तेतीस जोय. ॥ २८ ॥

॥ अथ रसबंध कथन ॥

॥ दोहा ॥

सर्वघाति उत्कृष्टरस, देस घातको मध्य;
गुन अघातीको हीनरस, आगममांहि प्रसिद्ध. ॥ २९ ॥
वरणगंध अरु फरस ते; रस अनंतगुण होय;
कर्ममांही रस अनंत बिन, कर्म न बंधे कोय. ॥३०॥

॥ अथ प्रदेशबंध अष्ट वरगना सरूप कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

उदारिक वैक्रिय आहारक तेजससौ भासा सासोस्वास मन कारमण अंतहै, एकाधुक आदि है अभव्य जीवसौ अनंत उदारिक अगहन गहन अनंतहै वैक्रीकी अगहन ताही सो अनंत तासो वैक्रिय गहन वरगना अनंत है. आठोइ अनंत पुद्गलदल इद्रमंत इनसौ विमुक्त देवचंद महासंतहै ॥३१॥

॥ अथ कर्मदल विभंजन कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पर्यो मोहकर्मपास बंधे आठ कर्मकाम नव नव धोरे अरु आउके बंधानांचे. ताते नामगोतकर्म अरुहे आविर ताते

॥ नामकर्मभेद ॥

॥ दोहा ॥

नामकर्मके भेद बहु, बरणन बडे गरंथ;
तातें थानो नाम कछु, जामे कछु अरथ. ॥ २२ ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पगटि प्रकृति पीड अठावीसहे अपीड सब मिल्यां नामभेद
तिराणु बखानहे, तनबंधनसमांहि पांचको गहन कीजे बरनादी
बीसमांही च्यारेद्र गहनहे; तब सडसठी भेद भये बंधमांही
गहे उदय उदीरनामे इनहुको मानहे, सत्ताके सरूपमांही व्यान-
वेकोहे उआही देवचंद कर्ममुक्त सदा गुणथान हे. ॥२३॥

॥ अथगोत्रकर्मभेद ॥

॥ दोहा ॥

उंच नीच दो भेदको, गोतकरम जड जान;
सुंदे निरगुन अगुरुलघु, कुंभकारगम जान. ॥ २४ ॥

॥ अंतराय पांच भेद ॥

॥ दोहा ॥

दान लाभ वर भोगको, कही उपभोग प्रकार;
इन पांचेकी रुकहै, अंतराय सो धार. ॥ २५ ॥

॥ अष्टकर्म [illegible] कथन ॥

॥ दोहा ॥

[illegible] अरु, [illegible] प्रकार.
[illegible] ॥२६॥

तिनहि कोडाकोडी थिति, मोहनीयके थाप:
नाम गोत कोडाकोडी थिति, नामगोतके वीस. ॥२७॥

॥ अष्टकर्म जघन्यथिति ॥

॥ दोहा ॥

पंचकर्मकी जघन्य थिति, एक महूरत होय:
[illegible] नामकी, [illegible] होय. ॥ २८ ॥

॥ अथ [illegible] कथन ॥

॥ दोहा ॥

[illegible]
[illegible] ॥ २९ ॥
[illegible] होय:
[illegible] ॥३०॥

॥ अथ [illegible] कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

[illegible] ॥३१॥

॥ अथ [illegible] कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

[illegible]

॥ शिष्यप्रश्न ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

निहचे असुद्धनय व्यापरागादिक चय ताहीको व्यापक होय कर्मसौ करतुहे, सोई व्यवहार लई वेदक सभाव गहि गतसमय कृत क्रिया फलको गहतु हे; कृतकर्म भोगता हे हुतनको करता हे एक समे एक जीव क्रिया दो धरतु हे, हमकुं संदेह एह कहो गुरु गुनगेह तुंहारे सिद्धांत वीचीके सो अभिमतुहे. ॥ ६ ॥

॥ अथ गुरुउत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

सुद्धपने अपने गुनको करता यह जीव जथारथ एही, ज्ञान सरूप अनुप सबे गुण रासि बचे गतरोष अनेही; भावत कर्म करे पर योग विभाव संजोग अज्ञानको गेही, ताही ते द्रव्यत कर्म उपाधि लगे जीउको किरिया द्वयकेही ॥७॥

॥ दोहा ॥

विद्रुप रागादि पर, कीने ताके रोध;
द्रव्यकर्मको रोध हे, ताते निर्मल बोध. ॥ ८ ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ज्ञानरूप ज्ञानमांहि क्रोध भाव क्रोधमांहि ज्ञान क्रोध एकतान होय कहूं वातमे, ज्ञानरूप आनमामे रागदोष मोह नाही वस्तुको स्वभाव भेद सुद्धनाके ध्यानमे; एसो ज्ञान धरे सोनो कर्म कोन बंध करे बरे न अशुद्ध मोह जग्यो भेद ज्ञानमे, चेतनाहे जीव वस्तु कर्म पुद्गल वस्तु वस्तु गुण कृति भेद जिनके बखानमे. ॥ ९ ॥

॥ संवरहेतुकथन ॥

॥ दोहा ॥

जान्यो आतम ज्ञानसो, आतम आस्रवं भेद;
तब आस्रव संवर भयो, गयो कर्मको खेद. ॥१०॥

॥ अथ ज्ञानाजीववरणन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

काहुं एक संत जीव निज गुन गहि लीने पर गुन त्याग जोग पर जानी त्यागे हैं, विरम्यो विरुद्ध सेती रम्यो निज गुन रेती मोहके सुभट जेते ते ते दूर भागे हैं; राती निज आतमासो दूर टर्यो हेतमांसो विमुख होय ज्ञान ध्यान लागे हे, ऐसे शुद्ध जीव देव करे नही कर्म टेव शुद्धता सुथाह पाये संतरस पागे हैं ॥ ११ ॥

॥ उपदेशकथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

मूरख जीव धरे चित्तमे कहा जल्प विकल्प सदा दुखदाई, ध्यावहु मग्न सदा अति उज्वल दूर तजो सब सोज पराई; दर्शन लाभ यहै जगमे वर जीवको काल अनंत सदाई, कहे देवचंद रहो इन सो ध्रुव अक्षर मय गुण प्रीति सदाई॥१२॥

॥ रागादिकसौ शिष्यप्रश्नगुरुउत्तरकथन ॥

॥ सवैया ॥

कोउ कहे रागादिक चेतनको निज नांहि आदि विंदु सदा काल एकही सभाव है, कैसे अनुगर्भी नाही रागी कहो

जीवहीको या ते जीव रागादिक तादात्म्यता दाव हे; संत कहे बंध्ये विनुं छुटे कहनो असत्य रागादिक एक माने मुक्तिको अभाव हे, या ते यह तहकीक कही देवचंद्रजात रागादिक पर द्रव्य कर्मको विभाव हे. ॥ १३ ॥

॥ आतमशिक्षा कथन ॥

॥ चोपाई ॥

सदा अनंत विकलपजल्पको धारते कहा बंधतहो; कर्म नीकरी निज कार तेजो; विकल्प विनु एक नित्य निज अनुभवो, तो न करो पर बंध धरो न भव नवो. ॥ १४ ॥

॥ अथ ज्ञान महिमा ॥

॥ दोहा ॥

यह परमातम ज्ञान गुन, भवतरु छेदनहार;
ध्येयरूप आदेय फुनि, मुनिजन मन आधार. ॥१५॥

॥ शिवभवहेतु कथन ॥

॥ दोहा ॥

जिनवर जन सुखकर कह्यो, यह उपदेश उदार;
शिव थानक निज गुन गहन, निज गुन त्याग संसार.॥१६

॥ जीवमहिमा ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जामे इंद्री पंचनाकी कर्मको प्रपंच नाहि मनको न रंच जामे तनको न अगरे, नाहि कर्म हेतु खेद मार्गनाको भयो छेद ध्यानध्याता भेद नत चेतन नगग हे, ज्ञान ब्रज निरुपाधि

॥ गुरु उत्तर ॥

॥ दोहा ॥

विषें पुद्गल मूर्छा करे, मदिरासे भ्रमभाव;
घमकर्मे आवर्णे गुण, नवनव पुद्गल दाव. ॥ २१ ॥
त्यु ज्ञानावरणादि सबुं, शक्ति जीउकी तोर;
करहि विकल अज्ञानमो, फेरे भवकी दोर. ॥ २२ ॥

॥ शिष्य प्रश्न पुनः ॥

॥ दोहा ॥

हे स्वामी अशुद्रव्यमें, एति शक्ति न होय;
जीव ज्ञानता पुद्गले, चेतनको गुन खोय. ॥ २३ ॥

॥ गुरु उत्तर कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

कोउ गुमान पीये मदपानज होय विशुद्ध करे विकलाई, बुद्धिकी शुद्धि करे चेतनताको मूर्छित जीव हुवे विकलाई, दर्शन कर्म उदै दबे नींदको जीवको जानपनो सब जाई, त्यु यह पुद्गल कर्मके संग मीले जीव अनिको हेतु दखाई. ॥२४॥

॥ दोहा ॥

ज्यो अज्ञान [illegible] करे विशाल;
अरुणी [illegible] न होय [illegible] कुसुम ज्यु आर. ॥२५॥

[illegible]

[illegible]

[illegible] पुद्गल प्रमाण
[illegible] सहाय

ताहीको विनाश होतं पुद्गलके लसेहे; अनादिता कहे याको प्रसंग अनंत होत जैसे ज्ञान चेतनको योग सदा वसेहे, एवे दोषवंत वानि तुम कहि कहा जानि गुरुजी हमारो चित्त संसयमांही धसेहे ॥ २६ ॥

॥ गुरु उत्तर वचन ॥

॥ दोहा ॥

मिटे हेतु विनसे जबे, वस्तु अनादि ज्युं सांत,
कर्मभव्यके पुंनसें, कनक मैल दृष्टांत. ॥ २७ ॥
आतम वरे निजभावको, न करे परपरनाम,
स्वस्वभाव किरिया धरे, सो पावे शिव ठाम. ॥ २८ ॥
असद्भूत नीहचे करे, भावकर्म ए जीव;
द्रव्यकर्मको फुनि मिटे, नयव्यवहार सदीव. ॥ २९ ॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

व्यापक अरु व्यापकको भाव दुई कह्यो दिठ करता करमको या निश्चेकी रितहे, ताहीके अभाव कैसे द्रव्यकर्म-पुद्गल करेगो चेतनराज ताको जो अधीन है; व्याप अरु व्यापकता तनमय [illegible] [illegible] तासो कहीयो अधीन है, तदपि अभाव होत करमको [illegible] अनादि अनंत जीव कहा-वेको नीति है ॥ ३० ॥

॥ गुरु [illegible] ॥

[illegible]

इनके निमित्त [illegible] अनन्त परिणामको निमित्त पाई कर्म है. [illegible] हेतु [illegible] भाव

लगी रह्यो परभाव मेरो एतो भर्म हे; जेसे लोह भ्रमको निमित्त कह्यो चमकको चमककी शक्तिको निमित्त लोहकर्म हे, ऐसे जीव कर्मको संयोग लगी रह्यो तोभी निहचे विचारे भिन्न कर्म जीव धर्म हे ॥ ३१ ॥

॥ अथ मीमांसकमत कथन जैन उत्तर सहित ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

मंद कहे सुखदुःखे भाव शिव आदिककी करता प्रकृति एक जीव ब्रह्म न्यारो हे, करता न काहुको हे भोगता न होय काको करता दिवाको सब प्रकृतिको प्यारो हे; तासो कहे बुद्ध भैया शिव भेद दोउं क्रिया एक करे ऐसो बोध कहा सो विच्यारयो हे, सुखदुखकी निमित्त प्रकृति कहीसो सत्त ताको काके कारिजको कर्ताभोक्ता धारयो हे ॥ ३२ ॥

॥ जिनवचन ॥

॥ दोहा ॥

करता भोक्ता ज्ञानको, निहचे ब्रह्म सदैव;
करे भोगवे कर्मको, विवहारेय जीव. ॥ ३३ ॥

॥ ब्रह्मवादीमत कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ब्रह्मवादी कहे ब्रह्म एकहे अखंड सो तो ध्रुवज्ञान मुद्रा धरि वैकुंठमे रहे हे, ताके मत भ्रम ए ते दीसे जगमांहि जे ते जडज्ञाना नवनव मत वाम लहेहे; पूर्ण नित्य ब्रह्म ज्योति ताकी इछा जब होत तब ताकी भ्रमको भी वैकुंठमे गहे हे, ऐसे शुद्ध ब्रह्म [illegible] निजाधीन तश ताको कर्मवसि सुखी दुःखी कौन कहे ॥ ३४ ॥

॥ ताको जैनउत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैन कहे प्रभु रीत इच्छाभावसौं अतीत गतदोष मोक्षमय इछा दोष गनीये, असंख्यप्रदेशी भी अखंड तिहुं काल सदा ताके खंड करि देखो हेतु कौन जानीयेः तातें जीव हे अनंत निज ज्ञान गुणवंत नित्यानित्य भाववंत शुद्धैं बखानीये, तामैं जे विभाव वसी ते ते भववासी कहे जे ते कर्ममुक्त ते ते सिद्ध बुद्ध मानीये ॥ ६५ ॥

॥ अथ बौद्धमतकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

बुद्ध कहे प्रथम समे मे जोउ जीव हुतो दुतीय समेमे सोउ जीव वस्तु नाहीहै, कर्ता है कर्मको जो सो तो भोगता न होय करे और लहे और मेरे मत मांही हेः जैसे जीव तैसे और वस्तु सब छुही माने जाने न तत्त्व शुद्धबुद्ध रीति सोही हैः परजै सभावको सर्वथा द्रव्य कहे रहे मद मत निज धोव घाता ग्राही है. ॥ ६६ ॥

॥ जैनकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैन कहे वस्तुरूप लोचन अंक नद नित्य निराबाध पर जायनैं अनित्य हे. ... ... नदे होय नव हैसे एती बात जाने यह ऐसे कीनो यह ऐसे द्रव्य हेः आनपने कीनो काम स्वपने पाय आवे एकांत अनित्य पक्ष गहैवे अमत्य हेः तावे

उतपात व्यय ध्रुव धारा तीनो सदा एक समे एक वस्तु वीचि कही सत्य हे. ॥ ३७ ॥

॥ न्यायमति ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ऐसे वानी सुनी मनमांही न सुहानी तव न्यायमति बोल्यो निज पक्षको पकरीके, नारी विनुं होय कैसे संतानके उपज न भोजनको करे कोउ पाक विनुं करेके; उद्यमके कीये विनुं कैसे कार्यसिद्धी होत उद्यम प्रधान याते कह्यो और हरिके, याते करतार जीव कह्यो विश्वनाथ ऐसे वीरजको फोरि निज उद्यमको धरिके ॥ ३८ ॥

॥ याको जैन उत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैन कहे एसो बात कही है एकंतनय स्याद्वाद वादी ऐसी बात नाही कहे है, चेतनको वीरज आगे भागे परभाव सब याते यह उद्यम व्योहारमांही गहेहे; कर्म उदै उद्यम सो पुन वप वहेहे, कर्मको स्वामित्वपनो भेदज्ञान भाव विनुं अहं बुद्धि भाव धरि चेतनही लहेहे ॥ ३९ ॥

॥ नियतमति कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

नियतमति [illegible] कहे सब [illegible] है, [illegible] होय [illegible]

कालपाय फल खिरे जनममरण बात कालहीने लीन है, याते सुखदुख रासी शिववास भववास रवि शशि उदे अस्त कालके आधीन है ॥ ४० ॥

॥ जैनउत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैन कहे सुनो भईया जेती कही तुंम बात तेती सब सांची पे एकांत नाहि गहनो, स्वभाव नियत पूर्व कृत फुनी उद्यम सो पंचमो तो समवाय कालवसि कहनो; पांच समवाय मिले फले तब शिवकाज समवाय मिल्यो विनुं काज नाहि सरबे, मतपक्षपात हरी स्यादवाद भाव धरी नय भंग भेद झुत एसो ज्ञान धरनो ॥ ४१ ॥

॥ सर्वमत एकत्वीकरन जैनमत स्थापन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

मीमांसक कर्ममांनि विवहार पक्ष गहे वेदपाठी ब्रह्म मानी दर्व नय गहतुहे, बोध छिन्न भंग कहे परजाय नय जाप नैयायिक वरे करतार उद्यम गहतुहे; शिवमति कालवादी सर्व कालाधीन मानी पांचो समवाय नाहि टेकने रहतुहे, एम सब अंतवादी अंतगत रीति गहे स्यादवादि सर्व ए अनेकता गहतुहे ॥ ४२ ॥

॥ अथ षट्दर्शन जैनके अंतर्गत कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

विवहार नय गहे वेदांतिहि सुन्य नय निश्चै स्वभाव

ब्रह्म नित्य ज्ञान धाम हे, परजायनें अध्रुव सुक्षम सभाव धर उदिम सभाव लीये करतार राम हे; कालचाल हे प्रवाह पर नाम चक्रगति सुं अनेक अंगपान जीव पर नाम हे, एक अंग तजि सरवंग गहे सो कुबुद्धी एक अंगरंग रागि सो कुबुद्धि खाम हे ॥ ४३ ॥

॥ अथ स्याद्वादस्वरूप कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आपने चतुष्कगुन हेसो नाही परगुन या ते दोउं वात सम कथन रहतुहे, हे भी नाही कह्यो जाय नाहि नाहि कह्यो जाय, कह्यो जाय हेहत न कह्यो सर्व नयमे कहतु*हे; नित्य हे अनित्य हेकी सत्य हे असत्य हेकि अवक्तव्य वक्तव्य सब अभिमतु हे, एसो प्रभु चिदानंद ज्ञानादि त्रिगुन योग देवचंद पद पाय आनंद लहतुहे ॥ ४४ ॥

॥ सविकल्पनिर्विकल्पज्ञान कथन ॥

॥ दोहा ॥

नव नव गुनमय जीव कह्यो, यह सविकल्प ज्ञान;
नास कर्म कर एकमय, निर्विकल्पको ध्यान. ॥ ४५ ॥

॥ निर्विकल्पमहिमाध्यान कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

अनादि अज्ञान लीने रागदोष मद पीये मोह महातम मो महातम वधार्यो हे, जीव लोक जीत लीयो ज्ञानगुन मूढ कीयो कीयो निज राज प्रभावको प्रसार्यो हे नाको पर-

मांस अस्थि रुधिरादिको, करे दुगंछा पेखी;
तन्मय तनको निज गने, यह अज्ञानता देखी. ॥५४॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

देहको नेह तजो तुम चातुर आतुर भाव सदाईन पांही,
व्यंतरके पुरसी छिनभंगुर रूपकी सोभ सो बादर छांहीं;
घणा (?) दिनके सबसि दुरगंधके दुषन गेह वदीं इनमांहीं,
या तनकी ममता न तजो तो (ही,) आतमज्ञान जगे
तुम नांहीं. ॥ ५५ ॥

॥ दोहा ॥

देहादिकको भिन्न गणी, गहि आतम शीवकुल;
परमें निज अभिमानता, यह भव भ्रमणा मूल. ॥५६॥

॥ निस्पृहताभाव कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

अधरम घाती शिव मारगको संघाती एसो रंच नाही पक्ष-पाती अध्यातम राव है, परम नरमवर भेदज्ञान भावधर हरि परदोप कर्म नासको उपाव है; तन मन त्रिया धन योवनादि पर गिनें मोहद्रोहमें नसे न जीतवेको दाव है, नरककी भीत नांहि सुरपद भीति नांहि भवरीति रियो ऐसा निरपृह भाव है ॥ ५७ ॥

॥ दोहा ॥

स्व स्वरुपगत दृष्टिको, नाहि शक्रपद चाहि;
स्व स्वरूपगत दृष्टिको, लघुपद लहे उछाहि. ॥ ५८ ॥
परम ज्योति सुखम्बादरन. योगी जोग निरत्त;
दुखित अन्न ज्यु गग विन, जा नहि विषय अनित्त ॥५९॥

आतम अनुभव सुखसो, भ्रष्ट भये दूरबुद्धि;
विषयन रति चितमें करे, सुकर कादम शुद्ध. ॥ ६० ॥

॥ आतम स्वरूप वरणन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

सुद्ध सुछंद अफंद अनंद आनंदको कंद सदा सुख धारी, ऐसो अनोपम आतमज्ञान सुधाधर कुंडमें जीले अपारी; अनादि अज्ञानके भर्म लग्यो यह कर्म कलंकको मैल पखारी, संत लहे निरवानको धानक दर्शनज्ञान चरित्रसे भारी ॥ ६१ ॥

॥ दोहा ॥

स्व स्वरूप आलंब विन, शिवपथ और नहीज;
मुक्ति स्त्री वश करनको, सोहं ध्यान सुबीज. ॥ ६२ ॥
जेसे पंकजदल अमल, रहे कर्मसौ भिन्न,
त्यौं आतम स्व सभावमय, कर्मखेदनिर्वित्र ॥ ६३ ॥

॥ इंद्रिसुखहेय कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जग इंद्री सुख जेवे वे वे सब दुखरूप कबहुं न समता हे ममता अनंत हे, जेसे पंथी मरुदेश ग्रीषम सने प्रवेश मध्य दीन नीर विन भोजन करत हे; कामभोग रतिमति उचित न तोपे राम पामवाज जेसे दुख राशीमे महंत हे, पन्नग ज्युं दुख देय निहचे सरूप हेय गेय योग उपादेय मागमे अकंत हे ॥ ६४ ॥

॥ दोहा ।

उत्तम पद वे तु पर्यो, सो विभाव अनभाव:
तोमी वाहि मेर्मे, कहाकिहो गुनराव ॥ ६५ ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

यह शरीर हे पीरको पीहरई पर आतमकी हरहेरी, वेरी करेरी परी यह ज्ञायक काई अनेरी रही नही सेरी; ज्ञान सरूपमयी भजि चेतन ए तनये मन प्रीति उवेरी, ज्ञानको मोगर लेकर आतम तोरि तुं मोह जंजीरकी जेरी ॥ ६६ ॥

॥ शरीर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

मेतो तनधारी नांहि एतो तन मेरो नांही मेतो ज्ञान गुणधारी करमस्यो न्यारो हे, मेंतो चेतना सरूप एतो जड भावरूप मेरो याको कोन नेह एह न विचारयो हे; मेंनो नित्य ए अनित्य प्रगट असुचिखानि हानिथान एसो देह मोको कैसे प्यारो हे, मोहके विदंब वेरयो भवकाल थित प्रेरयो ऐसो भेदज्ञान में तो चित्तमें न धारयो हे ॥६७॥

॥ परहेयआनमाउपादेय कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

शुद्ध दृष्टि समकिती प्रकृते विरतचित्त करमको करतन कह्यो कह्यो जान हे, मिथ्यादृष्टि मूरमानि परंग राच्यो संनो पर कृत फलहारो भोगना कहान हे. निज पक्को विवेक करे भेदज्ञान छेरू टंक डारिके अनेक यह जैन ज्ञान हे परभुक्त गुणयुक्ति मुक्ति विन मान्कियन एसो निज चननको देवचन्द ध्यान हे ॥ ६८ ॥

॥ मनसंकल्प कथन ॥

॥ दोहा ॥

विकल्प जाल कल्लोल करि, चपल मनोजलकंद;
चितकंद चेतनता दुरि, ज्युं बादरमें चंद. ॥ ६९ ॥

॥ आतमामोक्षहेतु ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

आतम आतमभाव धरो ध्रुव चेतनता गुनज्ञानकी ठाई,
व्यापकरूपेय अभेद विदाकर व्यावहुं त्याग कलो अपराई;
चंचल भाव तजो भजि एकता चित नांग अनंग हराई,
सादिअनंत महंत अतीत सो पावहु मोक्ष प्रधान लखाई. ७०॥

॥ दोहा ॥

परगुण संगुन ज्ञानसो, चेतन परवस होय;
निज गुण संगुणता लहे, लहे आतम गुण सोय. ॥७१॥

॥ ज्ञानधीनिकरण ॥

॥ दोहा ॥

चित भीति ज्युं देहमें, त्युं चेतनमें होय;
नीर कतक ज्यों कर्मके, चेतन लहे न भेद. ॥ ७२ ॥

॥ आत्मा अबंध कथन ॥

सवैया इकतीसा

[illegible]
[illegible]

चेतनाको ज्ञानादि अभंगरंग जाके संग याही है; अंतरंग बहि-
रंग अंग परसंग भंगि ढूंढीको उमंग तजी जामें परछादि है,
होय जो चेतन एसो जैसो तो सभाव तैसो तोए कर्मबंध
पुन मोहन कहाही है. ॥ ७३ ॥

॥ आत्मसामर्थ्य कथन ॥

॥ दोहा ॥

निष्क्रिय लोहसिया कहे, अयस्कांत मणि योग;
त्युं निष्क्रिय सक्रिय हुआ, जीव कर्मके योग. ॥७४॥

॥ परमात्मास्वरूप कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

शुद्ध बुद्ध निरामय निरंजन श्री सुखद अखंड अमोहरंग
अनादि अनंत है, निरमल परब्रह्म परम ज्योति परम
धाम अतींद्रिय महागम्य है; अविनाशी अज परमात्मा सुजान
शिव निरंजन अमरन चिद् भासन है, एसो जीव कर्मसंग
मल त्यागी आनन्दित स्वरूपमें अनु भावमें रहत है. ॥७५॥

॥ आत्मज्ञानके प्रारंभकु कथन ॥

॥ [illegible] ॥

[illegible] ज्ञानकी [illegible], [illegible] चेतनकि [illegible];
[illegible] ॥७६॥

॥ [illegible] ॥

[illegible]
[illegible]

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ दोहा ॥

एक द्रव्यमे तीन गुण, कैसे रहे एकत्र;
यह इम मन संदेह है, कहो गुरु परमपवित्र. ॥७८॥

॥ अथ गुरु उत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैसे पीत स्निग्धगुरु तीनुं गुन भेद विनुं निरंतर आदि लेके कंचनमे रहो है, दहन पचन फुनि तपन ए तिन गुण अगनिमे एकसमें जिनवर कहे हे; शीतल प्रतल वलि निरमल जलविचि तीनो गुण एकसमे स्वभावसे वहे हे, तैसे जीव द्रव्यमांहि ज्ञानादि त्रिगुन रहे निहचेसु भावसे अभेद रूप गहेहे ॥ ७९ ॥

॥ ज्ञानगुन भेदाभेद कथन ॥

॥ चोपाई ॥

जो विचारीये नय विवहारा, तो ज्ञानादि जीवसु न्यारा;
राहूसीस जैसे यह लीजे, हेअ भेदपे भेद कहीजे. ॥८०॥

॥ भेदज्ञान महिमा कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

कामभोग लालची दे सब जीव वशी कीने मीने मोहरसमे निरंतर विकल है, ताकी छाक दूरहरि आप पर भेद करि ऐसो भेद ज्ञानगुन अदोष अमल हे: धारावाही रीत लीये ताको धरेसो सुबुद्धि करमके मोरनको कारन सबल है, अकल सकल विनुं सकल जगन परि रहे सिद्धके जैसे तोयमे कमलहे ॥ ८१ ॥

॥ आत्मबुद्धि उपादेय कथन ॥

॥ दोहा ॥

आतमबुद्धि शिवको करे, देहबुद्धि संसार;
ता ते तनकी त्यागकें, करि निजगुनसो प्यार. ॥८२॥
पुण्य पाप दोनुं प्रकृति, हे पुद्गलको खंव;
इनपर आतमबुद्धि जो, इह करमको बंध. ॥ ८३ ॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

दुष्टभाव पापहेतु शुभभाव पुण्यहेतु याते दोउं कर्ममांहि हेतुभेद मानीये, पाप उदे हे असाता पुण्य उदे होय साता याते क्षार मिष्टरूप स्वादभेद ठानीये; पापतो कुगति देय पुण्य सदगति देय गतिभेद परतक्ष फलभेद जानिये, पापतो लगे अनिष्ट पुण्य सबहीको इष्ट संकिलेस सोधिसु शुभाशुभेद आनीये ॥८४॥

॥ अथ गुरु उत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

गुरु कहे पाप पुण्य दोनुं कर्म आलरूप हेतु रस गतिफल भेद नाहि देखीये; कंपरोग पापभोग पुण्यहे अकररोग दोनुं पुग्दलानि विनासिकरूप देखीये; पापसो अरुचिभाव पुण्यसेती प्रीतिदाव मिथ्यादृष्टि जीवकुं ए कुमति विशेषीये, दोनुं जडभावरूप दोनुंकुं अज्ञानरूप इनहीसो त्यागे सोइ समकिती देखीये ॥ ८५ ॥

॥ मिथ्यामति वरणन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पारसु विमुख अरु पुग्दलके मनधन गुणजिगु नविचर

कुगतिसुं डरेहै, करतामे कारजको कौनोमें कारज एसो अहंबुद्धि मातो विपरीति धरेहैं: आपको न पहिचाने टाने भ्रमभाव मन तन धन निजगुन कर्मको करेहै, कपटको आसन अज्ञानको विकासन है ऐसो मिथ्यामति भवसागरमे परेहै ॥ ८६ ॥

॥ पुनः मिथ्यामति कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आपकौ न जाने चित पराहिको माने नित टाने भ्रमभाव रत करम कहरने, चित्तमांही धरे बांक सुखहीकी कांक्ष राखे डोलतनिसांकरा कूमतज्यूं सहरने; हानि थान मलखानि जाने न गिलानि आनि राचे ताने अतिविष वेदज्यु जहरने, उलट अरत नित लोटन कबूतरज्युं सुलटत नाहिकव मिथ्याकी लहरने ॥ ८७ ॥

॥ पुनः मिथ्यादृष्टि कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

करगत जीवनज्यो जीवन घटत नीत दिन छीन छीन तन मन भी वहतु है, कालकी न वात जाने करे बहुकाल तात तात मात भात संग सातर्ङ वहतु है; धरम मरम विन भरनके घेर परयो ज्ञान विन कियारत पुन्यको रहतुहे, इतनेमी मूरख पुरुष निज रूख नाहि दुख सुखभयो नित दुःखने अरतुहे ॥ ८८ ॥

॥ पुनः मिथ्यामति कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

ग्रंथ पडे न बडे कछु ज्ञान, अज्ञानमे लीनज्युं पाथरसे,

मौन रहे ग्रहे जोग जुगतिसहि बंधबंधनहे खरसे; आसन मंडि आशा सब छंडि पवनके साधकहे हरसे, इति करतुति करे विनु ज्ञान जे मूढमिथ्यातमति नरसे. ॥ ८९ ॥

॥ मिथ्यामति कथन ॥

॥ दोहा ॥

मिथ्या मति अपराधीनी, परगुन चाहे आप;
ज्युं ज्युं परसंपति बढे, त्युं त्युं होय संताप. ॥ ९० ॥

॥ परवस्तु हेय आत्मा उपादेय ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

वचन जुगति चित्त तनद्युति मनथिति हित अनहित रति *अरतिकी रतिहे, अंतेउर पुरघर असन वसन धनवस्तु गन* अनजहा नयनकी गतिहे, पुण्य पाप आदि देय गेय घेय हेय सब संयोग वियोग थिति जामे निन्य मतिहे, अक्षर त्रिगुन साथ देवचंद गुननाथ उपादेयरूप एक आतमा अमितहे॥९१

॥ पुण्य पाप हेय कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पुण्य पाप द्वंद मलहे अनिष्ट दल खलगुलदल मान ध्यानिक भेद धरेहे, याते पुण्य पाप गेय कीने निज बोध सोधि ध्यावको समाधि राग गेय (हो) जरेहे; ईंधन अभाव जैसे अगनि उद्योत नांहि यानके अभाव जैसे पवनादि टरेहे, तेसे भाव कर्म नाश ज्ञानचेतना प्रकाश परम अनंतसुख देवचंद वरेहे ॥ ९२ ॥

॥ आत्मशिक्षा कथन ॥

। सवैया तेवीसा ।

करम उपाधि अनादिके बंधन प्रीति लगी तुम्ह चापरसों, रागरुं रोसको रंग लग्यो जीउ नीलको रंगज्युं कापरसो; पारकी संपत्ति आपनी थापि के थापन दावनको तरसों, भयो तुंम ब्रह्मकरमके कारक मूरख रास लगे परसों. ॥ ९३ ॥

॥ बंधविधि कथन ॥

॥ दोहा ॥

बंधे अपनी लालसों, कुलीया वरतीरपंच;
त्युं असुद्ध निज भावसो, बंधे आतम खंच. ॥ ९४ ॥

॥ मिथ्यामति गुरुउत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ईश्वरकी रत इन आतमा कहत नित ज्ञान रित मत्त रत मदमत वारेहे, ईश्वरकी इछा करि नर फिरे बहुपरि नरग सरग तिरजग योनि धारे है; एवे परि जैन कहे आतमा अक्रिय संत अरूपी दिगादिवत् अलिपत सारे है, कुगति सुगति याते आनि कोउ नाहि देत निजकृत कर्मफल भोगत विचारेहै ॥९५॥

॥ अज्ञानमहिमा कथन ॥

॥ दोहा ॥

मै अज्ञान वीरजसो. त्रिविध कर्मको आघः
करता भोगमा नाहिको. मान ज्ञान मत साथ. ॥९६॥

॥ आत्माएक क्रिया कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

एक एक कारजके करतार है अनेक एक एक करताके कारीज अनेक है, ऐसे कहे जीव करतार होय परहीको पर करतार चिदानंदकोमी एकहे, एक करतार एक कारजको तहकीक स्यादवाद मनमांहि इहे थिर टेकहे ॥ ९७ ॥

॥ दोहा ॥

चेतन दुरगतिमे परे, पुरवकृत संबंध;
ज्युं विष्टामृत कूपमें, परे मत्त जन अंध. ॥ ९८ ॥

॥ पूर्वज्ञानबल वर्णन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आतमाको ज्ञान ध्यान मुक्तिको है निदान आतमज्ञान विनुं शिव कबहु न जानीये, दान दया तप जप उपसम यम दम ज्ञान विनुं एति क्रिया तुछ फल मानिये; याते दोनुं ख्याति जानि आतमा एकंत आनि मन तन वा निरोधी सिद्धसोधी आनियें, यहे निरवान थान यहे हे केवलज्ञान आनकर कुतिवानि दोषमे बखानीये. ॥ ९९ ॥

॥ अथ आत्ममहिमा ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

धरम अधरम द्रव्य एक असंख्यातदेश उपचार काल नम अनंत प्रदेश है, जीवहे अनंत ताते पुद्गलहे अनंत द्रव्य द्रव्यमे अनंत गुणको प्रवेशहै; गुण गुणमे अनंत परजाय परिणति ज्ञाता सब भावको परम गेय देश है. अनादि अनंत निरद्वद महानंदकंद महोदयी एसो मेरो आतमा द्रवेश है ॥१००॥

॥ परमात्ममहिमा कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

नवतत्त्वके विकल्प धीउपयोगके संकल्प तातैं रहे नित्य हैं निरारौ आतमद्रव्य है; ज्ञानावरणादिक आठ कर्मनांहि रह्यो तौभी चेतनाको रूप निज कबहूंनें मिटै है; गुणरोलु थाह लह्यो इनादिको अंत नाहीं निज थिति सत पलौं न लहै पद है. परम अखंड ज्योति नित्य संत है अजित देवचंद्र तत्त्वरूप जिनराजकौ इष्ट है ॥ १०१ ॥

॥ आत्मा अनेकरूप कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

नित्य हैके अनित्य हैके एकहै अनेक हैके सद्भाव-भावद्धन कै हैत उगाये है, नयनतें नयन हैं एकतें अनेकरूप सकलौ अखंड जिन ग्रंथनमैं गायो है; लोकालोक तीन काल उतपात ध्रुव नास सबको जाननेकीनांहि ज्ञान भलाई है, ऐसो परमातम आतम महातम हरै पाप आनंदरूप देवचंद्र पायो है ॥ १०२ ॥

॥ दोहा ॥

स्वंरूप निज करनरूप, वृंदै श्रेयै सौ;
तैसौ ज्ञान निज रूप, केवल जिन सदैव. ॥१०३॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

सवैया इकतीसा

हम जैसे जीवनिकै अवसर कैसे ज्ञान हूवे तन हम समझै न सुनेनें आगमनिमें एक किये जो मन

जेति तेति फल वीतुं वीतुं काजकी कहांनि है; दान दया तप जप दम उपसम भाव तजेंगे कठीन वात जेते जग प्रानी है, रहेगे प्रमादरत निरबंध अंध जेसे ज्ञान मत बंधके अबंध मति टाली है ॥ १०४ ॥

॥ अथ गुरुउत्तर वचन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैसे विषवेद नर विषको विकार जाने करि ताकूं उपचार विष अपहरे है, सोइ आप विष भखे तोमि कछु नाहि लखे मूरछा न पावे सो नौ लोक विष हरे है; जैसे नाग मंत्रधर नागसे गहावे अंग आपनिःसंग रहे नागहीसो लरेहै, तेसे ज्ञानपूर्व कर्म जोग भोग भोगवे पै रहे अलिपत ताते बंध नाही वरे है ॥ १०५ ॥

॥ पुनः गुरुवचन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैसे कहीं दावानल जले अतिही चपल झाले पुर वन जामे गिरिकूट जले है, तब कोउ मंत्रवादी मंत्रकी सकतीसेती, अग्निशक्ति बंध रखे तब ताप टले है; सोनो मंत्रधर वर तामे कूदंकूदपरे फीरेधीरे इनउन तोभी नाही बले है, तैसे ज्ञाना बोधशक्ति बंधशक्ति रोधकिनी भोगवेपे भोग तोभी कर्ममे न लिहै है. ॥ १०६ ॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ सवैया इकतीसा

शिष्य कहे स्वामी तुम कही एति ग्यान माचि नोमि हम

मननांहि संदेहतो छोडे है, मूढ जैसे भोगसंत सम्यक्ती भोगवे हे तोभी उन चैनने अबंध रीत कहे है; जैसे कोउ नटनर नाचे आरति नाहि रति लाही चाहि कहे गंध नाही गहे है; तैसे ज्ञाता द्रव्य भोगवेपै राग बिहें अभिनव कर्मको तो बंध नाहि लहे है. ॥ १०७ ॥

॥ जिनमत कथन ॥

॥ दोहा ॥

सर्व भाव निज रूप गत, यह जिनवरकी वानि;
ताते कर्ता कर्मको, कृपा विवेक वखानि. ॥१०८॥

॥ मूढमति कथन ॥

॥ चौपाई ॥

सर्वभाव निजभाव निहारे, परसंगको कोप न धारे;
ताते मूढ अहंबी रान्यो, सदा रहे परगुनहू मान्यो. ॥१०९॥

॥ हेयोपादेय कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

कर्मके भरम परयो यह चेतन पुद्गलसे मन प्रीति बढावे;
ज्ञानवंत तब सुधि करि जब देहतें प्रीति अप्रीति उतारे;
राग निवारिके द्वेष हरिके निर्मल भाव सदा उर धारे;
ज्ञान निधान स्वरूपको जानके आतम ज्योति सुधि आत्म निहारे. ११०

॥ आत्मकर्मक्षयहेतु कथन ॥

सवैया इकतीसा

ऐसे चेतन करे अत जब भेद करि परिहरे परभाव

तापे प्रीति टारीकें, अखंड अनंत ज्ञानवंत निज आतमामें चित्त थीर आनी जीव औरकुं विसारिकें; ज्ञान जोर कर्मझोरी, भोरी माया डोरी तोरी मोरीकें मनोरी निज ज्ञानकु पसारिके, भानिको विकार आनी पायो निरवान थान जाको महिमान असमान सम धारिके. ॥ १११ ॥

॥ आनमासिद्धसम कथन ॥

॥ दोहा ॥

अष्ट कर्म वन दाहिके, भये सिद्ध जिनचंद;
ता सम जो आपा लखे, ताको वंदे चंद. ॥ ११२ ॥

॥ मोक्षपरंपरा कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

प्रथम ग्रंथि भेदीकरी उपसम भाव धरि क्षायक अंकुर भयो मिथ्या डर गयो हैं, उनेकी ने हे कषाय ज्ञान गुन दोउ पाय बढ्यो गुनथान ध्यान श्रेणियान आयो है; सूक्ष्मसंपराय-चीन छीन मोह लयलीन छीन कीन कर्मतीन केवलको पायो हैं, ज्ञानादि त्रिगुन राय देवचंद पद पाय ध्यान ध्याता ध्येय-भेद मूलसे गमायो हैं. ॥ ११३ ॥

॥ पुनःमोक्षपरंपरा कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

सूक्ष्मक्रिय छिन्नक्रिय ध्यानक्रिय ज्ञान दीप छिप निरवान पद आपनीजो आधि है, अष्ट कष्ट नष्टभये इष्ट अष्ट गुन गहे वहे महानंदको अनादिको जे साय हैं; जामे लोकरीति नाहि हार जीति भीति नाहि मीत प्रीत नीत नांहि जानको समाय

है, अजोगी अभोगी योगी अवेदि अछेदवेदी अलेसी अभेदी ऐसो देवचंदनाथ हे. ॥ ११४ ॥

॥ आत्मशुद्धता कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पीछे कर्मके प्रपंच रंच न अरुचि संच वंचक सभाव षंच सुद्धरूप भयो हैं, परभाव सागरमें भ्रमजके वेगवेग बुडो चिरकालको सभाव सोउ तरचोहे; दीप्त करके प्रकरता करी दलित तम अष्ट करम मल दलि अष्ठ गुन वरयो हैं, ऐसो जो परम जोति सदा काल जयवंत तमतम खंडवेकुं रविसम धरचो हैं. ॥ ११५ ॥

॥ आत्मगुण वरणन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

करतार भोगतार एसे जे विकार भार अपहार करि वर थिरभाव लह्यो हे, गुन घन घाती च्यार ताको बंध तोरिडारि अमंद आनंद कंद मोदवृंद वरयो है; शुद्ध सांत हे अनंत अहत्तविचित्त वृत्ति परज्योति सत्य नित्य सत्यरूप रह्यो हैं, सब ज्ञेयमे ज्ञेय करि हेय हरि शुद्ध बुद्ध ब्रह्म मेरो सदाकाल कह्यो हैं. ॥ ११६ ॥

॥ आतमरूप ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

मुक्तिको माग सुवाग विरागको दर्शन ज्ञान चरित्र त्रयी हे,
तन्मय आतम आतमवेदिके मोह उछेदन रीति लयी हे;
आतमज्ञान कलाकलिते जसुनिर्मल संवर वृद्धि भयी हे,
सोनरको कछु कर्म करे सोनो पूर्वकर्म उदीकमयी हैं.॥११७॥

॥ अशुद्धजीव कथन बहिरात्मीकि निंदा ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

ग्रंथ भने सब सासनके अभिमान धरै विचरै जगजेते,
आपको पंडित मुख्य कहायकरै नित्य वाद विवाद अचेते;
आतम बुद्धि तजे न शरीरसौं क्या पढिके गुनके समजेते,
पाठ पढ्यो गुन कारन नां कछु रामहिराम जपत ज्युं तोते. १२५॥

॥ जिनधर्मप्राप्ति कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

में बहुकाल अज्ञानकी चालमें आपके रूपको भाव भुलानो,
सो निजरूप लह्यो सुलह्यो अब मैं सबमें भवसौसु लजानो;
चेतनवंत सदा अतिउज्वल संत अनंतसुज्ञानी मिलानो,
ज्ञानको बीज अबीज निरंजन मज्जन श्रीजिनधर्म पीछानो. १२६

॥ आत्मपाठ स्तुति कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

आतमसुं मथि आतमज्ञानको भानु उद्योत ज्युं जोति बढेहैं,
वासको काठघटान ज्युं आपमे आपसु ज्युं दयदावकढे हैं;
याहिते आतम मग्नमती विरति सुव्रति शिवमाग चढेहैं,
आत्मज्ञान विना सबगौन न साधकआतमपाठ पढे है. ॥१२७

॥ चोपाई ॥

जेसे रजु सरप भ्रम माने, त्यु अजान मिथ्यामति ठाने;
देहबुद्धिको आत्म विचारे. याते भव भ्रमहेतु पसारे. ॥१२८॥

॥ अज्ञानविलास कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

मै बहु वेर अज्ञानके फेरमें औरकीओरति हेरनधायो,
वव्यो भवलोह विमोहकी निंदमे ज्ञायक दृष्टिको तेज दवायो;
आतम बुद्धि भइ परपै डरपै अरपै निज नित कहायो,
चंद कहे गुणचंद लहे विनुं काल अनंन भमंत गमायो.॥१२९॥

॥ ज्ञानजागृतदशा ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

याहीके पीछान्यो अतिअतिसे चेतनसत्ति जागे जाने तिंन-लोक अलोक समाने है, याहिके सरूप जान्यो जाने खट भाव सब एते खट भावके पिछानकु कहाने है; अतिहीनि सतिमति शास्त्रके विचित्तताइ जाके जानपने विनुं भ्रमरूप ठानेहे, जैसे कन विनुं तुस खंडनहे निकारन तैसे ज्ञान विनुं सब काज निफलाने है. ॥ १३० ॥

॥ पुनः ॥

जाके अनुभवसेती भागे भरमीत निज परतीत सो अनित नित २ जागी है, जैसे भानके उद्योत सब जग ज्योति होत भासे घट पट भाव अंधकार भागे है; तैसे जाके तेज आगे राग द्वेष ग्रंथी भागे लागे न करम नव शिव जाके आगे है, परम आनंदकंद देवचंद सुखकर घरमी वर्ती मुनीस जाके ध्यान लागे है.

॥ दोहा ॥

आतम आतमध्यान गत, न भजे और उपाय;
जैसे पावक काठ विनुं, सहजे उपशम थाय. ॥१३१॥

॥ पुनः आत्मगुन कथन ॥

॥ छप्पय ॥

परम सुखी श्रीयान नाहि को दुजो याते, निरभय पद ए मुख्य और सब जनकों वाते, यहे संतरस जान मोष मारगमी एही, कर्मवृक्षके छेदय हे फरसीज अवेही, इह ज्ञानवान भगवान वर ज्ञानादिक गुन मय वहे, यह भजो रमो जानो इहे सबमां इह सुरगम इहे. ॥ १३२ ॥

॥ अथ चेतनगुन कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

ज्ञान अज्ञानके हेतु भए तुम आपनही भमते भवमांही,
कारक बुद्धि भई परसो नरसो चित्तमें सुख संपती पाही;
आपको जानीके ध्यानमे आनिके शुद्ध मुनि निरवानको जाहीं,
आपको थापक आपही चेतन चेतनना गुनज्ञानको चाही.॥१३३
मोग संजोगहुं भोगके गेह ते नेह तेपामय ते विरचे जे,
भावही आतम आतमने वर आतमज्ञान कला अरचे जे;
मोहकी जेलरो छेलके ते नर या भवके सुख नां परपेडे,
सम्यक ध्यानहिसो निज आनिके कर्मको भर्म सही रसपेडे.१३४
रोग विना जन नित्त कमाय ज्युं ओषधस्यु चित प्रीति उतारे,
आतमना विनु भानु ते नर देहकी मार कर दिलमारे,
दर्शन मोह विना चित मूर्ति चेतन चेतनगुन्य समारे,
भोग संयोगको जोग कर नहीं भानु सदा चित ज्ञानको धारे.१३५

॥ पुनः चेतनगुन कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

[illegible]
[illegible]

मोहकी निंदमें घूमित चेतन देखत स्वभा भवादि उलासै,
आपमे आप समाय रहे ध्रुव शुद्ध निरंजन भाव अभ्यासै. ॥१३६॥

॥ ज्ञानविलास कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

ज्ञान विलास अभ्यास कीया विनुं कर्मको भर्म सहीउ वधारै,
इंद्रीय पंच प्रपंच करै चित या रस प्यार अपार संभारै;
फीरैं भवमैं नव वेस करै नित भावीत कर्म उपाधि ले लारैं,
सो निज थान वसे जव देव ए हर्ष प्रकर्षकि नैन वधारै. ॥१३७॥

॥ पुनः परमात्म वरणन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ज्याकी ज्ञानज्योतिहीमें फुरत परम रस सरस परस विनु जामे रस एनहे; लोकालोक लोकनकुं अमल विमल तेज योगादिक क्रिया विनुं ज्याकी आराधन हैः मूलसे दलित अतिमोह गलके पटल अखिल विज्ञानवंत संत गुन घन है, एसौ देवचंद इदं निगुण आनंदकंद ताहीसो प्रतिति प्रीति थीर मेरे मन है ॥ १३८ ॥

॥ सम्यक्आत्मवर्णनं ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जाके उर अंतरमें राग दोष मोह नांहि आपमे समाय रहैं आपही अनंत है, और द्रव्यसु न प्यार समें सार ध्यान धार धरीके संभार सार संत रस संत है; टंक सौ उकेरयो जैसो रतन अभंग जोति तैसो परब्रह्म निज ज्ञानसो महंत है, निर्द्वंद है अबंध चेतनाको खंध संत अमलान ज्ञानगुन सन-मंधवंत हैं ॥ १३९ ॥

॥ आत्माअबंध कथन ॥

॥ दोहा ॥

जे थीर आतम ध्यानमे, आतम ज्ञानविलीन;
जे निजगुन थिरता लहे, गहे न कर्म नवीन. ॥१४०॥
नव नव भव तरु छेदको, यह रीत शास्त्र उदार;
ध्यान पवित्र मुनिसको, रहे ध्येय गुन धार. ॥१४१॥
दुरगम पद पथ अगम ए, लहि ऐसो निज योग;
वृथा बाह्य करनी करे, दंडे तीनो योग. ॥ १४२ ॥

॥ करनी स्वरूप कथन ॥

॥ दोहा ॥

करनी निज गुनक तरनी, धरनी दोष अथांहि;
दुखमें या भवसमुद्रकी, तरनी वरनी नाही. ॥१४३॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

या करनी धरनी परनतिमे मोह महीपतिकी तरनी है,
या करनी धरनी तलकी फीरनी करनी परनी सरनी है;
या करनी हरनी गुनकी अरनीढुर संवरकी टरनी है;
या करनी करे निच सभावको कोह महादवकी अरनी है.॥१४४

॥ दोहा ॥

करनी करता करमकी, इनमे चेतन दीन;
जब चेतन समता मिले, तबे लहे सुखपीन. ॥१४५॥

॥ परमात्मास्तुति ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

परम निधान हैकि निरवान थान हैकि असमान ज्ञानवान

सदा अमलान है, स्वंय निरबंध निरबंध कर्म हीन पीन छीन-मसक्षीनभाव भावसो अदीन है; चितने चेतन ग्यान दरसन भासमान अनुभव ज्ञान जान अनगुन हीन है, अक्षर त्रिगुण इंद देववंद महानंद परम अमृत संतपद लय लीनहे.॥१४६॥

॥ कुंडलीयो ॥

ऐसो चेतन मछ्छर, समता नारि वियोग, चित्त थिरता न रहे कहुं, पावहि बहुविधि सोग, पावहि बहुविधि सोग जन्म मरन निखेद, अति भव भवभ्रमण अनंत; जह रज्जु विरह चित्त, क्षणभंगुर गुन हीन ठ्टो आत्म करण तन, निज प्रिय विन कहु भर्म मछ्छर एसो चेतन ॥ १४७ ॥

॥ आत्म समता वियोग ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

नित विरोनमें दीन भयो अति मोर्चान सौथिरता न रहे है,
यह जगने दीन राति निरंतर अंतरते थिरता न गहे है;
आतम मीतके सुख वियोगसु दुख पयो सुखदहु न चहे है,
सो दुख तो निज ज्ञानरे आगम जो कछु पक्ष न रहे है.१४८

॥ पुनः आत्मादि चिद्गुण कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

उदिता चिन्ता [illegible] [illegible] देख्यो नहि रहेंगे,
चित महातेरे अति [illegible] च गुन ज्ञानके ठीक रहेंगे;
ज्यों हते चेतनका दुखके [illegible] [illegible] गुन श्रवन रहेंगे,
देखरे [illegible] [illegible] मे च [illegible] [illegible] ॥१४९॥

॥ चेतनता समताप्रीति कथन ॥

॥ दोहा ॥

चेतन चेतनता सहित, परम धरम गुनथान;
पावे यर निरवान पद, समता प्रीति निदान. ॥१५०॥

॥ अथ कवि निज लघुताइ कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

मै जिनआगमते जो उलंघिके जो कछु बात विरुद्ध बखानी,
सो तुम सोधिके माफ्नहु पंडित पंडित जाहीकी मोह नीसानी;
गह्यो गुनमी सुनिके तुम सज्जन शास्त्रको अर्थसु तत्त्व पीछानी,
बोधिसु श्रोयक ग्रंथ गह्यो सुखतारिके संपति पूह विरानी. १५१

॥ अथ पूर्व कविगरके गुन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पाटक सुपाटहीके निधान आटहीके हंसराज राजपति नामे हंसराजहै, ताके शीनिदेमलम शन अडतीस ज्युन ज्ञानहीके जान अलदंमनके गाज है; तनके पीछान जान ताहिको निदान मान दिपड अमल सब ग्रंथ शिर ताज है, आगा पर भेद का पाखमहमाय भा सुख सन्धान धर लन्ताके काज है. ॥ १५२ ॥

॥ दोहा ॥

हिंदु धर्मसंकालना, कीर्तिपुन्य श्रीमान,
लिहा ए लिख उनने कीनो दय अवदान. ॥१५३॥

॥ अथ [illegible] गुरुके नाम कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

[illegible]

ज्ञान वान सब कहे हैं, जिनवर धर्मपरि जाकी परतीति थिर और मत वात चितमाहि नाहि गहे है; जिनदत्तसूरीवर कही जो क्रियाप्रवर खरतर खरतर सुद्ध रीति वहै है; पुण्यके प्रधान ध्यान सागरसुमतिहीके साधुरंग साधुरंग राजसारलहे है ॥१९४॥

॥ दोहा ॥

सब पाठक सिरसेहरो, राजसार गुनवान;
विचरे आरीजदेशमें, भवि जन छत्र समान. ॥१९५॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ताके शीश है विनीत परमीनसौ वितीत साधुरीत नीत धारी गुन अभिराम है, आत्मज्ञान धर्मवर वाचक सिवंतवर अतिउपसंत चित्त ज्ञान धर्मनाम है; ताके शिष्य राजहंस राजहंस मानसर सुप्रवान उद्यमादि गुन गन धाम है, अंतेवासी देवचंद कीनो ए गरंथ वर अपनो चेतन राम खेलिवेकुं ठाम है ॥ १९६ ॥

॥ दोहा ॥

कीनो यहां सहाय अति, दुर्गदास शुभचित्त;
समजावन निज मित्तको, कीनो ग्रंथ पवित्त. ॥१९७॥

॥ अथ शास्त्रके श्रोता तिनके नाम ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आतम सभाव मितु मद्दको पहारी दिठो मेरुदास मेउदास मुलचंद जान हैं, ज्ञानदेख राजवर पाम्य स्वभाव वर सोमजीव तत्त्वपरि जाकी सरधान हैः ज्ञानादि त्रिगुनमंन अध्यातम ध्यानमंन मुलतांन थांन वासी श्रावक सुजान है, ताकी धर्म

प्रीति मन आनिके गरंथ कीनो गुनपरजाय घर जामे द्रव्य-ज्ञान है ॥ १५८ ॥

॥ दोहा ॥

अध्यातमसैली सरस, जे मांनत सो जैन;
ते वाचेंगें ग्रंथ यह, ज्ञानामृत रस लेन. ॥ १५९ ॥
गुन लच्छन पहिचानिकें, हेयवस्तु करि हेय;
चिदानंद चितमय अगम, शुद्ध ब्रह्म आदेय. ॥१६०॥
परमारम नय शुद्ध धरि, शिवमारग एहीज;
यहै मोहमें नत्र भर्म, यहै ग्रंथको बीज. ॥१६१॥

॥ संवत् कथन ॥

॥ दोहा ॥

विक्रम संवतमान यह, भय लेश्याके भेद;
शुद्ध संयम अर्तमोदिकें, करि आश्रवको छेद(१७६७)॥१६२॥
ता दिन या पोथी रची, वर्त्यो अधिक संतोष;
शुभ वासर पूरन भई, प्रथम जिनेसर मोष. ॥१६३॥

॥ अथ ग्रंथ महिमा ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

गुनको निधान हैकि मानो निग्यान है कि साची जिन-बान यामे अधिक उदार है, मानो मद भंजन है मिथ्या मति-भंजन है ज्ञानदृष्टि अंजन शिवाका मुखकारदे; रामको रमनहै कि दुष्टदोदमन हैकि परकोविमन है अपार पारावार है, संतको सवाद हैकि शुद्ध स्याद्वाद यामे आपको विवादनाहि ज्ञानि उदार है. ॥ १६४ ॥

॥ दोहा ॥

स्यादवादयुत द्रव्य पद, जहां बखाने ठीक;
ताते द्रव्य प्रकाशयों, ज्ञानग्रंथ तहकीक ॥ १६५ ॥

॥ पुनः ग्रंथमहिमा ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

परतु प्रतीत नाहि पुण्य पाप भीति नांहि रागदोष रिति नांहि आतम विलास है, साधककों सिद्धि है कि बुज्झंवे कु बुद्धि है की रीजवेकों रिद्धिज्ञान भानको विकास है; सजन सुहाय दुज चंद ज्युं चढाव है कि उत्तमभाव पाय अधिक उल्लास है, अन्यमतसौं अफंद वंदनहे देवचंद ऐसे जैन आगमेंमें द्रव्यको प्रकाश है ॥ १६६ ॥

॥ दोहा ॥

ज्ञान ध्यान गुणथान यह, यह मुनिनिको पंथ;
जीवद्वार नमय है (नव यह है) पुन भयो ग्रन्थ ॥१६७॥

॥ इति श्री देवचंद्रमुनि विरचिते द्रव्यप्रकाश(व्रज)भाषाग्रंथे तृतीयं जीवद्वारं समाप्तम् ॥

त्यागेन च तत्काले यत्र करोति तदेकमायनिष्ठतया तत्प्रीत्यनुष्ठानं ज्ञेयमिति." जिहां आचरण करवावालानुं अति आदर सहित उद्यमनुं अतिशयपणुं होय, ते प्रीति जाणवी, ते प्रीतिना विलास विना चाले नहीं, माटे तेहना रुचि अभिलाषी जीवें बीजां सर्व कार्य तजीने तेहज करवुं. तथा तिहांज एक निष्ठ प्रतीति करवी, तेने प्रीतिअनुष्ठान जाणवुं ॥ इति भावार्थः ॥ ते प्रीति संसारी भावथी सर्व जीवोने छे, पण ते पलटावीने गुणीथी करवी, ते कहे छे.

॥ अथ प्रथम श्रीऋषभजिन स्तवन ॥

॥ निंदरडी वेरण हुइ रही ॥ ए देशी ॥

ऋषभ जिणंदशुं प्रीतडी,
किम कीजें हो कहो चतुर विचार ॥
प्रभुजी जइ अलगा वश्या,
तिहां किणें नवि हो कोइ वचन उच्चार ॥ऋ०॥१॥

अर्थः—श्रीनाभिकुलघरनी भार्या, श्रीमरुदेवी स्वामिनीनी कुक्षिनेविषे उत्पन्न थईने जेणे अढार कोडा कोडी सागरोपम सुधी, निर्वाण मार्गने विघ्न हतुं ते निवार्युं, एवा श्रीऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर, रागद्वेष गहननाथी जिन कहिये, तथा उपकारसंपदा, अने अतिशय संपदायुक्त विराजमानपणाथी जिणंद कहिये तेनाथी प्रीतिविश्राम करवानो अर्थी भव्य जीव, मोक्षाभिलाषी विचारे छे के, नागणो ऋषभ पुरुषोत्तम साथ शी रीते प्रीति कीजे ? ए वीतरागथी प्रीति, माहारा आत्माये पहेलां

पहोंचे नहीं. तथा कागल नहीं पहोंचे तो कोई माणस मूकीयें, पण तिहां सिद्धावस्थाने विषे कोई प्रधान पण पहोंचे नहीं; के जेनी सार्थे विनति कहावियें. इहां कोई जीवने संशय उपजे के रत्नत्रयी आराधीने अनेक जीव मोक्षे जाय छे, तो कोई न पहोंचे एम केम कहो छो ? ते उपर कहे छे, जे तिहां सिद्धावस्थाने विषे जे पहोंचे ते तुम समो, तुम जेवो प्रभुतामय, वीतराग, अयोगी, असंगी, सकलज्ञायक, पण वचनरहित, एटले अर्थात् ते पण परमपूज्य ते कोइनुं व्यवधान कहेतां आंतरो भेद कहे नहीं, माटे प्रीतिना त्रण उपाय मांहेलो कोई उपाय दीसतो नथी, तेमाटे श्रीयुगादिदेव सार्थे प्रीति केम करियें ? ॥ इति ॥ २ ॥

प्रीति करे ते रागीया,
जिनवरजी हो तुमें तो वीतराग ॥
प्रीतडी जेह अरागीथी,
भेलवी ते हो लोकोत्तर माग ॥ ऋ० ॥३॥

अर्थः—हवे वळी कहे छे के संसारी जीव मुझ सरीखा तथा सम्यग्दृष्टि प्रमुख पण जे श्रीसर्वज्ञ त्रैलोकीतिलकथी प्रीति करवा चाहे तेतो रागी राग सहित छे, अने हे जिनवरजी ! तुमें तो वीतराग छो, रागरहित छो, रागीने अनेक रीतें रीझवीयें, पण जे पोतें रागी नहीं, ते केम रीझ पामे ? इहां कोई जीव कहेशे जे तेवार वीतरागथी प्रीति न करवी ? तिहां कहे छे. जे अरागी राग रहित तेहथी ते प्रीति भेळवी, तेनो लोकोत्तर मार्ग छे. एटले एम जाणवुं, जे रागीथी रागी

अरिहंत उपर राग करवो, ते निर्विष करवो, लेमां विषयाभिलाषपणुं नहीं, वर्णादिकनी रीझ नहीं, तथा इहलोक, परलोक, इंद्रियसुखाभिलाष नहीं, प्रभुना ज्ञानादिक गुण छे ते मने आपे, एवी अभिलाषा नहीं. एक अरूपी, अज, अविनाशी, अकृत्रिम, शुद्धज्ञानादिक गुण सकल व्यक्त थया, स्वरूपभोगी, स्वरूपरमणी, स्वरूपाश्रित, एवा गुणनो राग, एकलो गुण प्रकट करवा वास्ते करवो ते राग, निर्विष जाणवो, ते निर्विष प्रीति करवानी मुझमां तो शक्ति नथी, ते माटे हवे ए बनाव केम बने? हे उपकारी पुरुषो ! ते तमे कहो ॥ इति चतुर्थगाथार्थः॥४॥

प्रीति अनंती परथकी,
जे तोडे हो ते जोडे एह ॥
परम पुरुषथी रागता,
एकत्वता हो दाखी गुण गेह ॥ ऋ० ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे चतुर पुरुष, उपाय कहे छे, प्रीति कहेतां राग अनंतो परथकी एटले पुद्गलभावथी अथवा शरीरी जीवथी छे, ते सर्व जे जीव तोडे कहेतां टाले, ते जीव ए गुणी अरिहंतादिकथी प्रीति जोडे, एटले सर्व परभावथी राग तजे, ते गुणीराग करी शके. तिहां कोई पूछशे जे गुणी अरिहंतादिकथी गुणे मळे, पण राग तो पापस्थानक छे, ते शामाटे करिये ? तिहां कहे छे जे, परम पुरुष, वीतरागथी रागता कहेतां रागीपणुं ते पण गुणनुं घर कयुं छे, अने श्रीअरिहंतादिकथी गुणें एकत्वपणानें मळवुं, ते पण गुणनुं गेह कयुं छे, तेमाटे प्रथम श्रीअरिहंत उपर राग करवो, तेहीज वीतरागतानुं कारण छे ॥ इति पंचमगाथार्थ ॥ ५ ॥

प्रभुजीने अवलंबतां,
निज प्रभुता हो प्रगटे गुणरास ॥
देवचंद्रनी सेवना,
आपे मुज हो अविचल सुखवास ॥रु०॥६॥

अर्थः—ए रीतें प्रभुजीने अवलंबतां कहेतां आश्रयतां पोतानी प्रभुता अनंतगुणपर्यायरूप प्रगटे, निरावरण थाए, गुणनो राशि समूह, सर्व व्यक्त थाय, तेमाटे देव जे चार निकायना देवता अथवा नरदेवादिकमांहे चंद्रमा समान श्रीअरिहंत देव, तेहनी सेवना भक्ति, द्रव्यथी तथा भावथी करवी, ते आपे कहेतां दे, मुने अविचल सुख, अव्याबाध सुख, तेहनो वास कहेतां रहेवुं, एटले भावार्थ ए जे, श्रीपरमात्मा, परमपुरुषोत्तम अरिहंतनी सेवना असंयम आस्रवत्याग, संयम संवररूपपरिणमन, ते सेवना कहियें ॥ उक्तं च ॥ आणाकारी भत्तो, आणा छेईओ तो अभत्तोत्ति ॥ इति ॥ तथा अरिहंत प्रभु पोतें तो पोतानी सेवनाना अर्थी नथी, पण सर्व जीवोने स्वहित करवा वास्ते एहीज कह्युं छे, अने अरिहंत आज्ञा ते कोईनो हुकम मनाववो नथी, पण श्रीअरिहंत देवें केवल ज्ञाने दीठुं. जे सर्व जीवोने पोतानां ज्ञान, दर्शन, चारित्र. ते परमानंदहेतु छे. तेमाटे जे रीतें ज्ञान. दर्शन, चरित्र नीपजे. ते मार्ग उपदेश्यो, ते प्रमाण करवुं. ते अरिहंतना वचन करता निश्चय मोक्षपद. सर्व उत्तम तत्त्व पामे. [illegible] अविचल सुख [illegible] सर्व [illegible]

पईने, एक परमोपकारी, तत्त्वोपदेशी, धर्मनायक, श्रीअरिहंत देवनी सेवना करवी ॥६॥ इति श्रीऋषभजिनस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ द्वितीय श्रीअजितजिनस्तवनं ॥

॥ देखो गति दैवनी रे ॥ ए देशी ॥

ज्ञानादिक गुणसंपदा रे, तुज अनंत अपार ॥
ते सांभलतां ऊपनी रे, रुचि तेणें पार उतार ॥
अजित जिन तारजो रे, तारजो दीन दयाल ॥
अजित जिन तारजो रे ॥ १ ॥

अर्थ—हवे श्रीअजितनाथ स्वामीनी स्तवना करे छे. कारण कार्यभावनी मार्गणना देखाडे छे, जे कारण मळे, ते कार्य नीपजे, ते कारणना बे भेद छे. एक निमित्त कारण, बीजुं उपादान कारण. पण उपादान कारणनी कारणता निमित्त कारणथी प्रगटे. ते निमित्त कारणनी पुष्टतायें थाय, अने मोक्षनुं निमित्त कारण, श्रीअरिहंत छे, ते कारणे कार्य नीपजे, ते परिपाटी देखाडे छे. सकल पर्यास्तिकाय गुणपर्यायादि विशेष सर्वे, समस्त सामान्य, त्रिकालवर्त्ती, ते केवल ज्ञान तथा सकल [illegible] ते केवल दर्शन अने [illegible] ते [illegible], वली अनंत [illegible] प्रमुख गुणनी संपदा, ते प्रभुजी [illegible] अनंत छे. [illegible] छे, तेमांथी [illegible] अनंत गुण. [illegible] [illegible] अनंतगुणा. [illegible] [illegible] अनंतगुणा [illegible] ते [illegible]

छे. तथा नास्तिपर्याय ते पण वस्तुनो स्वधर्म छे, श्री विशेषावश्यकमांहे श्रुतज्ञानाधिकारें कह्युं छे.

॥ एवं उक्ते सति परः प्राह ॥ जइ ते परपज्जाया, न तस्स अह तस्स न परपज्जाया ॥ जं तं मिय संबद्धा, तो परपज्जाय ववएसो ॥ १ ॥ इह स्वपर्यायाणामेव तत्पर्यायता युक्ता ये चान्ये परपर्यायास्ते यदि घटादीनां तर्हि नाक्षरस्य तथाक्षरस्य ते तर्हि न घटादीनां ननु यदि परस्य पर्यायास्तर्हि तस्य कथं ? तस्य चेत्परस्य कथमिति विरोध स्वदुक्तमतिप्रायापरिज्ञानाद्यस्मात् कारणात् तस्मिन्नकाराद्यक्षरे घटादिपर्याया अस्तित्वेनासंबद्धास्तत्तेषां परपर्यायव्यपदेशोऽन्यथा व्यावृत्तेन रूपेण तेऽपि संबद्धा एवेत्यतस्तेषामपि व्यावृत्तरूपतया पारमार्थिकस्वपर्यायत्वं न विरुध्यते अस्तित्वेन तु घटादिपर्याया घटादिष्वेव प्रतिबद्धा इत्यक्षरस्य ते परपर्याया व्यपदेश्यन्ते इति भावः ॥ द्विविधं हि वस्तुनः स्वरूपं, अस्तित्वं नास्तित्वं च ततो ये यत्रास्तित्वेन प्रतिबद्धास्ते तस्य स्वपर्याया उच्यंते, येतु यत्र नास्तित्वेन संबद्धास्ते तस्य परपर्यायाः प्रतिपाद्यंते ॥ इति निमित्तभेदव्यापनमेवेव स्वपरशब्दौ, नत्वेकेषां तत्र सर्वथा संबंधनिराकरणपरौ. ॥ वत्थुसहावंपइतंपि सपरपज्जायभेयओ भिन्नं ॥ तं जेण जीवभावो, भिन्ना इत [illegible] यापा ॥ १ ॥ वस्तुस्वभावं प्रति यथावस्थितं वस्तुस्वरूपमाश्रित्य तदपि केवलज्ञान अक्षरमप्यनन्त [illegible] स्वपरपर्यायभेदतो भिन्नमेव ॥ ननु यथोक्तनीत्याः [illegible] ॥ कुतः ? इत्याह ॥ येन कारणेन [illegible] निजोजीवपर्यायो न घटादिस्वरूप, [illegible] किंतु ततो

भिन्ना इति ते ज्ञायमाना अपि ते कथं तस्य स्वपर्यायाभवेयुः ? सर्वसंकरैकत्वादिप्रसंगात्तस्मादमूर्तत्वचेतनत्वसर्ववेतृत्वाप्रतिपाती च निरावरणत्वादयःकेवलज्ञानस्यस्वपर्यायावस्थादिपर्यायास्तु व्यावृत्तिमाश्रित्य परपर्यायाः ॥ अन्ये तु व्याचक्षते ॥ सर्वद्रव्यगतान् सर्वानपि पर्यायान् केवलं ज्ञानं जानाति येन च स्वभावेनैकं पर्यायं जानाति न तेनैवापरमपि किंतु स्वभावभेदेनान्यथा सर्व द्रव्यपर्यायैकत्वप्रसंगस्तस्मात् सर्वे द्रव्यपर्यायराशितुल्याःस्वभावभेदलक्षणकेवलज्ञानस्य स्वपर्यायाः सर्वे द्रव्यपर्यायास्तु परपर्यायाः इत्येवं स्वपर्यायाः परपर्यायाश्चोभयेऽपि परस्परं तुल्याः केवलस्येति ॥ इत्यादि अधिकारं सर्वं माहाभाष्यथी जाणजो. ते अस्ति पर्याय ते जीवद्रव्यना सर्वथी अनंतगुणा छे, ते सर्वे प्रभुजी तुमारा निरावरण थया, ते अनंतगुणमयी परमानंदसंपदा तमारी आगममांथी सांभलतां मुझने पण ए रुचि उपनी, जे एहवी सिद्धता माहरे प्रगटे, एहवो अभिलाष उपनो तेथी कहुं छुं के हे परमपुरुष ! मुझ अनाथ दीन कर्मवशें भवभमताने भवसमुद्रथी पार उतार, संसारथी पार उतारवानी विनति तुम विना बीजा कोण आगल कहुं ? जे भवपार पाम्या ते आगल भवपार पामवानी विनति करुं ? ते भणी स्वामी ! मुझने संसार निस्तार करो. ए विनति जे जीव, भवथी उद्विग्न मोक्षाभिलाषी थयो, ते आतुर थइने कहे छे के हे अजित जिन ! मुने तारजो, संसारथी पार उतारजो. तारजो हे प्रभुजी तुमे दीनदयाल छो. हे स्वामी ! परमभावकरुणाना करणहार छो ॥ इति प्रथमगाथार्थः ॥ १ ॥

जे जे कारण जेहनुं रे, सामग्रीसंयोग ॥
मलतां कारज नीपजे रे, करतातणे प्रयोग ॥अ०॥२॥

अर्थः—हवे जे कार्यनुं जे कारण छे, ते कारण तथा सामग्री ए बेनो संयोग मळ्यां कार्य नीपजे. जेम घटरूप कार्य, तेहने दंड, चक्र, चीवर, निमित्त कारण छे; तथा मृत्तिका उपादान कारण छे. अने कुंभकार कर्ता छे; जे कार्य अनेक तेहनो तेहनो कर्ता पण अनेक, जे कार्य कर्ताथी भिन्न, तेनो कर्ता पण भिन्नः एटले घटकार्य ते परवस्तु छे, तेहनो कर्ता कुंभकार पण भिन्न छे. अने सिद्धतारूप कार्य आत्माथी अभिन्न छे, तो तेहनो कर्ता आत्मा पण अभिन्न छे.

हवे आत्मा कर्ताने तत्त्वस्वरूपसंपत्ति रूप जे सिद्धता, ते कार्य. तेहने देव श्री अरिहंत देवाधिदेव तथा गुरुनिर्ग्रंथादिक ते निमित्त कारण मल्यां, अने सामग्री कर्म भूमि मनुष्यादिक संयोग मल्यां मोक्षरूप कार्य नीपजे, माटे माहरे मोक्षरूप कार्य तेना निमित्तकारण श्री वीतराग तुमे छो, तेथी तमने आश्रयवाथी मोक्षरूप कार्य नीपजे. पण कारण सर्व मल्यां, अने कर्ता जे आत्मा ते जो तेम उपादानपणानो व्यापार न करे, तो कार्य नीपजे नहि. केमके अरिहंतदेवना निमित्त पामीने पण अनेक जीव आत्मा उपादानना नथी, सम्यग्-दर्शने पण तिम मोक्षरूपं निष्पन्न थिन हुआं संसा-रमां भ्रमण करे छे. तेमाटे कर्ता ते आत्मा ते जे मोक्ष-साधन करे, तेने सिद्धरूप कार्य नीपजे ॥ इति ॥ द्वितीयगाथार्थः ॥ २ ॥

कार्य सिद्धि कर्ता वसु रे, लहि कारण संयोग ॥
निजपद कारक प्रभु मल्या रे, होय निमित्तह भोग ॥

अ० ॥ ३ ॥

अर्थः—माटे कार्यसिद्धतानी निष्पत्ति ते कर्त्ताने हाथ छे, जेम दंडरूप कारण तेने जो कर्त्ता घटरूप कार्य करवाने प्रवर्त्तावे तो घटरूप कार्य करे, अने तेज दंड जो घटध्वंसने प्रवर्तावे तो घटध्वंस करे, ते माटे निमित्तनी प्रवृत्ति ते कर्त्ता ले कार्य करवाने प्रवर्त्तावे ते कार्य करे, माटे कार्यनी सिद्धि ते कर्त्ताने हाथ छे, पण कारणनिमित्तादिक तेनो संयोग मल्यां कार्य निपजे, ए पद्धति छे. माटे कोई संसारी आत्मा निज कहेतां पोतानुं आत्मिक पद परमानंद महोदयरूप तेहनो कारक कहेतां करवावंत तेने मोक्षना पुष्टकारण प्रभुजी श्री अरिहंत मल्यां थकां अवश्य निमत्तनो भोग थाय, एटले जे जीव संसारथी उभग्यो मोक्षाभिलाषी थयो, ते मोक्षना निमित्त श्री तीर्थंकर देव पामीने, हर्षनो भोग आस्वादन पामे घणो विलास उपजे कार्योथी कारणनी पुष्टता वांछे, ए नीति छे इति ॥३॥

अजकुलगत केसरी लहे रे, निजपद सिंह निहाल॥
तिम प्रभुभक्तें भवि लहे रे, आतमशक्ति संभाल॥
अ० ॥ ४ ॥

अर्थः—ते उपर दृष्टांत कहे छे. जेम कोई केसरी सिंह जन्मकालथी बकराना टोलामां वध्यो छे तो ते एम जाणे जे बकरानो टोलो तेज माहेरुं कुटुंब छे, त्यां किवारें बीजो सिंह आवे, तेवारें बकरा सर्व नासे, अने पोतें पण नासे, एम करतां किवारें सिंहनो आकार देखीने पोता सामु जुए, त्यारें ते पोतानो समान आकार जोईने विचार जे एहनुंने मारुं नो तुल्यपणुं दीसे छे, ने हुं पण सिंह छु, पछी निर्भय थाय.

ए रीतें अज केतां बकरानां कुल केतां टोलामांहें गत केतां रह्यो जे सिंह, ते सिंहपणुं भूली गयो, ते बीजा सिंहने देखीने पोतानुं सिंहपणुं संभारे, तिम केहतां ते रीतें प्रभुनी भक्ति करतां भव्यजीव लहे, कहेतां पामे. पोतानी आत्मशक्तिनी संभाल कहेतां ओलखाण पामे, जे वीतराग देव देखीने तेनी भक्ति करतां तथा सेवतां थकां उपजे जे वस्तुस्वरूपसत्तायमें हुं पण वीतराग निःकर्मा शुद्धस्वरूपी छुं, ए पण पहेलां संसारी जीवद्रव्य हता, पछी सिद्ध थया, तेम हुं पण प्रथमथी संसारी छुं, पण जो साधुं, तो सिद्धरूप थाउं. ए सर्व ओलखाण, प्रभुसेवना करतां निपजे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

कारण पद कर्त्तापणें रे, करी आरोप अभेद ॥
निज पदअर्थी प्रभुथकी रे, करे अनेक उमेद ॥अ०५॥

अर्थः—तेवारें कोई कहेश जे अरिहंत देव तो अन्य जीवना मोक्षकर्त्ता नथी. तो अरिहंतदेव पासे मोक्ष मागो छो? तेने उत्तर कहे छे. के कारणपद जे अरिहंतादिक ते अतिपुष्टालंबन छे, माटे जे कारण तेनेज अनेककर्त्तापणें आरोप करीने निज कहेतां पोतानुं पद जे शुद्ध सिद्धना. तेहनो अर्थी जे भव्य जीव, ते प्रभु श्रीतीर्थंकर देवथी अनेक सम्यक्त्वादिक गुणनी उमेद कहेतां आशा करे. जे हे प्रभुजी! मुजने मोक्षनां कारण तथा मोक्ष तेम आपो. एटले निमित्त कारणने कर्त्तापणे आरोप करी स्तुति करे ॥ ५ ॥

अहवा परमातम प्रभु रे, परमानंद स्वरूप ॥
स्याद्वादसत्ता रसी रे, अमल अखंड अनूप ॥अ०६॥

अर्थः—हवे जे निमित्त पामीने उपादान समरे, पलटण पामे, ते रीत कहे छे, अथवा प्रभु परमात्मा तेहनुं स्वरूप कहे छे. आत्मा त्रण प्रकारना छे, एक बहिरात्मा, बीजो अंतरात्मा, त्रीजो परमात्मा. तिहां जे शरीरादिक औदयिकभाव-कर्मजनितने आत्मपणे गणे, ते बहिरात्मा कहियें, अने जे शरीरादिक औदयिकभावथी आत्मा असंख्यात प्रदेशी, चेतनाल-क्षणज्ञानादि अनंतगुण पर्याय सहित अरूपी भिन्न एटले आत्मा अरूपी, शरीर रूपी, आत्मा सहज अकृत्रिम, शरीर संयोगी कृत्रिम, तेमाटे कर्मयोगें शरीरादिमध्ये रह्यो, पण भिन्न छे, एहवो भेदज्ञानवंत, समकित गुणठाणाथी मांडी क्षीणमोह गुणठाणाना चरम समय पर्यंत अंतरात्मा जाणवो, तथा ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनी, अंतराय, ए चार कर्म क्षय गयां, केवलज्ञानी ते सयोगी अने अयोगी केवली तथा अष्टकर्ममुक्त सिद्धात्मा, ते परमात्मा जाणवो, एटले श्रीअजितनाथ अरिहंत एवंभूतनयें परमात्मा छे, प्रभु छे, सर्व सिद्ध वस्तुगतें पोताना गुणपर्यायरूप संपदाना प्रभु छे, कोई द्रव्य, अन्यद्रव्यनुं स्वामी होयज नहीं, ज्यां सुधी जे द्रव्यना चिंतनमांहे पण परद्रव्यनुं स्वामिपणुं छे, त्यां सुधी ते द्रव्य शुद्ध नहीं, तेमाटे श्रीअजित अरिहंत पोताना स्वभावना प्रभु छे, अने उत्तम जीव पोताने कर्मवश पराधीन मोहें मुग्ध जाणी, पोताने रंक समान गणे, अने अमोही स्वाधीन थया तेहने प्रभु कहे, अने अमोहीने अवलंबवा पोतें स्वसंपदाना धणी थाय माटे तेहना अवलंबनथी पोतानुं प्रभुपणुं पामीयें, तेहने प्रभु कहीयें, स्तवीयें. जगत्माहे पुरुषना संयोगें जे कुल करेंपाय छे, तेवो आरोपमात्र छे, एटले मात्र गुण मही

थनुं स्वरुप छे, जीवादि षट् द्रव्य छे, तेमध्ये पंचास्तिकाय ते परमार्थे द्रव्य छे, तथा छठो काल ते उपचारद्रव्य छे. ए चर्चा, तत्वार्थ, विशेषावश्यक तथा धर्मसंग्रहणी मध्येथी जोवी. तेमध्ये एक एक द्रव्यने विषे अनंता गुण, अनंता पर्याय छे, ते अनेकता जाणवी, अने एक द्रव्यने विषे एक समये स्यान्नित्यं स्यादनित्यं, स्यात् एकं, स्यात् अनेकं, स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् भिन्नं, स्यात् अभिन्नं, स्यात् वक्तव्यं, स्यात् अवक्तव्यं. ए सर्वे स्वभाव, समकाळे वर्त्तता पामीयें छीयें, एटला धर्म समकाळे जेमांहें वरते, ते धर्मनी अनंत प्रवृत्तिने स्याद्वावाद कहियें ।। स्यात् इति पदं अनेकांतोद्योतकं एहवी स्याद्वादमयी जे आत्मानी गुणपर्यायरूप सत्ता छे, तेना रसी कहेतां रसीया छो, एटले स्याद्वादमयी आत्मसत्ता, तेहना भोगी छो, तथा अमल कहेतां कर्ममल रहित छो, अखंड कहेतां किवारें खंड न पामो, अनुप कहेतां जेहनी उपमा नथी, एहवा प्रभु देखीने माहारे लाभ थयो ।। ६ ।।

आरोपित सुख भ्रम टल्यो रे, भास्यो अव्याबाध ॥
समर्यो अभिलाषीपणो रे, कर्त्ता साधन साध्य ॥अ० ७

अर्थः—एहवा प्रभुजी आत्मानंद भोगी, आत्मस्वरूप रमणी, तत्वविलासी, तेमनें जोइने माहरे अनादि कालनुं इंद्रियसुखने विषे जे सुखनुं भासन ते आरोपितसुखभ्रम हतो, ते टल्यो, अने अव्याबाध, आत्मिकआनंद सुख ते भास्युं. जिहां सुधि विषय सुख उपर सुखबुद्धि हती, तिहां सुधि विषय सुखनो अभिलाष हतो. ते हवे नो सर्व विषय रहित, अव्याबाध सुखी श्री प्रभुजी दीठा, तेथी ते भव्य जीवने पण

सारमां आठ कर्मरूप उपाधिनुं उपादान कारण हतो, हवे शुद्ध स्वरूपी, निःकर्मा, तत्त्वदेव देखीने पोताना शुद्ध स्वरूपनुं उपादान कारण थयो, एटला काल सुधि ए आत्मा आठ कर्म रूप कार्यनो कर्ता हतो, हवे परमदेवनी श्रद्धा पामीने संवर निर्जरा रूप कार्यनो कर्ता थयो; माटे हे परमेश्वर ! हे जगदाधार ! हे दीनबंधो ! तुमारे अनुयायी मारी चेतना प्रवर्ती तेथी कारण तथा कार्य इत्यादि बीजी पण अनंती आत्मशक्ति, ते सर्व समरथ लागी, एटले सर्व आत्मानी शक्ते आत्मभाव ग्रह्यो, अने परभाव तजवा मांड्यो ॥८॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

श्रद्धा भासन रमणता रे, दानादिक परिणाम ॥
सकल थया सत्ता रसी रे, जिनवर दरिसण पाम
॥ अ० ॥ ९ ॥

अर्थः—एटला काल सुधि उदक पुण्य प्रकृति तेनो विपाक जे शातावेदनी प्रमुख गुणरोधक सत्त्वविमुख तेना स्वाद, जीवने मीठा लागता हता, तेथी ते पुण्यना उदयने सुख मानतो हतो, ते हवे एवी श्रद्धा थइ जे अव्याबाध निःकर्म पद, तेहीज सार साध्य छे, तथा जे वस्तुनी यथार्थतानुं ज्ञान थयुं, ते भासन थया आत्मा ने पण समर्थ, अने रमण जे पुद्‌गलना [illegible] हतुं, ते संवर रूप रमण थयुं, तथा १ दान, २ लाभ, ३ भोग, ४ उपभोग, ५ वीर्य ए पांचेनो [illegible] ते एटला काल सुधि [illegible] हतो. लाभ [illegible] हतो [illegible] उपभोग [illegible]

पकपणे रह्यो जे सम्यक् ज्ञान, सम्यक दर्शन, सम्यक् चारित्ररूप भावधर्म तेना दातार छो. एटले हे प्रभु! तुम दीठां भावधर्म सांभरे, तमे भावधर्मना उपदेशक छो, सर्व जीवने भावधर्मना दातार छो ॥१०॥ इति श्री अजितजिनस्तवनम् ॥

॥अथ तृतीय श्रीसंभवजिन स्तवन प्रारंभः॥

॥ घणरा ढोला ॥ ए देशी ॥

श्रीसंभव जिनराजजी रे,
ताहरुं अकल स्वरूप ॥ जिनवर पूजो ॥
स्वपरप्रकाशक दिनमणि रे,
समतारसनो भूप ॥ जि०॥ १ ॥
पूजो पूजो रे भविकजिन पूजो,
हांरे प्रभु पूज्यां परमानंद ॥ जि० ॥

अर्थः—हवे श्रीसंभवनाथ जिन कहेतां श्रुतकेवळी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी प्रमुखमांहे राजा समान, एवा हे संभव प्रभु! ताहरुं कहेतां तमारुं अकल कहेतां कोइथी कलाय नहीं एहवुं स्वरूप छे, एहवा जिनवरने पूजो. अहो भव्यो! तमे एहवा परम पूज्य परमेश्वरने पूजो; वळी प्रभु केहवा छे? जे स्व केतां पोतानो धर्म अने पर केतां धर्मास्तिकायादिकनो धर्म, तेने प्रकाशवाने दिनमणि केहेतां सूर्य जेवा छे, तथा समता जे सर्वने विषे राग द्वेष रहितपणुं, तेहना भूप केतां

राजा छे, एहवा तत्त्वप्रकाशक अरिहंतने पूजो, वारंवार पूजो, भविक केतां मोक्ष योग्य मोक्षरुचि जीव, तमे पूजो, ए स्वरूपभोगी, निर्मलानंदमयी, अज, अविनाशी, अक्षय, अणाहारी, अशरीरी, अनंतज्ञानमयी, अनंतदर्शनमयी, शुद्धस्वरूपी, देवतत्त्वने पूज्यां परमानंद थाय. जे पुद्गलयोगथी सुख उपजे, ते उपचारसुख माटे ते परमानंद नहीं, अने जे आत्मानुं सहज अविनाशी, अमयासी, स्वरूपनुं सुख अव्याबाधरूप तेने परमानंद कहीयें, ते सुख, अरिहंत देवने पूज्यां पामीजें. यद्यपि अरिहंत देव, कोइ अन्य जीवना अव्याबाधादि गुणना कर्त्ता नथी, पण जे भव्यजीव, पोतानुं शुद्धपारिणामिक परमसिद्धता स्वरूप साध्य करीने वीतराग परमात्माने सेवे, अवलंबे, ते नियमा पोतानुं तत्त्व प्रगट करे, नियामिक कारण माटे, एहथी स्वरूप प्रगट थाय एमज धारवुं ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

अविसंवाद निमित्त छो रे,
जगत जंतु सुखकाज ॥ जि० ॥
हेतु सत्य बहुमानथी रे,
जिन सेव्यां शिवराज ॥ जि० ॥ २ ॥

अर्थः—वळी हे प्रभुजी ! तमें अविसंवादि केतां विसंवाद जे निर्धार नहीं ते, अने तमें निश्चय निर्धार कार्यने करो, माटे अविसंवादनिमित्त ... छो ॥ निमित्त लक्षणं ॥ कार्यभिन्नत्वे सति कर्तृव्यापा[र] वत्वे सति हेतुर्निमित्तमिति ॥ माटे हे प्रभु ! तुमें जगत्‌ना जीव तेना आत्मिक सुखरूप कार्य निपजाववाने प्रधान निमित्त छोजी. माटे हेतु केहेतां कारण ते

सत्य केहेतां साचुं तेने बहुमान केहेतां माहामोटमपणे सेवतां जे मुज सरिखो मोहवश पड्यो, तृष्णायें ग्रस्यो, पुद्गलनो रागी, असंयममयी, मिथ्यात्वें मूल्यो भाव, ते निराधार, अशरण एहवो हुं, तेने श्रीतीर्थंकर देव, परमतत्त्वमय, त्रैलोक्योपकारी, जेना नामथी परम कल्याण थाय, एहवा परमेश्वरनो योग मल्यो, माटे मारे ए वेला, ए घडी, धन्य. एम असंख्यात प्रदेशें निःकर्मा, निःसंगी, स्वरूपभोगी देवतत्त्वनुं बहुमान करतो थको जे जिन केतां वीतरागने सेवे, ते जीव, परम कल्याणमयी पोतें थाय. इहां सत्यपद येने जोडवुं, हेतु सत्य ते अरिहंत देव आपणा मोक्षरूप कार्यना हेतु छे, तेनुं सत्य केहेतां साचुं बहुमान करवुं, एटले इहलोक, परलोक, इंद्रियसुखनी आशंसा टालीने अद्भुत वर्ण, गंध, संस्थानातिशय, वचनातिशय, प्रातिहार्य प्रमुख सर्व शुद्ध बहुमान कारण माटे बहुमान करवा योग्य छे, ते द्रव्यबहुमान पण जे अरिहंतना शुद्ध ज्ञानादि गुण अनंतानुं सकल पुद्गलातीतपणानुं परम अरूपी अनींद्रियपणानुं बहुमान ते सत्यबहुमान कहिए. एटले जिनशासनमध्ये १ नाम, २ थापना, ३ द्रव्य, ए त्रण निक्षेपा ते कारण छे. अने चोथो भावनिक्षेपो, ते कार्यवस्तु छे, माटे जिहां सुधी प्रभुना अतिशयादिकना योग विकल्प तिहां सुधी द्रव्यबहुमान छे, अने जे दर्शनगुणें प्रभुनानु भासन थयाथी तत्त्वप्राग्भावनुं जे बहुमान, ते भावबहुमान कहिए. अने नामादिक त्रण निक्षेपा ते भावना कर्ता छे, अथवा भावाभिरागी छे, तो ते पण सत्यबहुमान जाणवुं. ते सत्यबहुमानथी जे जिनेश्वरना तेज प्रभुनी आज्ञायें परभाव त्याग स्वभाव ग्रहण करतां शिव-निरुपद्रव जे सिद्धपद, ते गत पामीयें. एटले सांसारिक शिव

से उपादानसे ते केवारे उपजे ? त्यां कहे छे, के जेवारे कर्मां कार्यकरि थाय, तेवारें आत्माना ज्ञाने, पुद्गले भय तथा अभय मां धीर थाय मिलनानां उपादान छे, पण सौ मिलता [illegible] नथी, इण माटे ए ज कारणपणुं नथी, जो कारणानां प्रगट, तो थावे मिले, माटे सर्व आत्मा पोत पोताना गुणपणमांथी मिलन कार्यना उपादान आश्रय छे, पण श्री [illegible] शुद्धपणे [illegible] कारणना निपजावे, माटे पुष्ट [illegible] निमित्त [illegible] अरिहंत देव छे, [illegible] तिना आत्मा [illegible] आपी [illegible] तरावे आवी [illegible] माटे [illegible] आत्मधर्मनो विलास, तेहुथी [illegible] समाधान [illegible] तेने आत्मधर्म [illegible] जो जगत् जी-वना [illegible] आत्मधर्मां धर्मा आत्मधर्म [illegible] ते भाव श्रीजे तेहुनी [illegible] आश्रय छे, हवे श्री [illegible] पुष्टालंबन [illegible] तेनुं कारण कहे छे, ते [illegible] उपादान [illegible] पण ते आ-[illegible] उपादान [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

उत्ता निपजे, माटे तमारी सिद्धता ते माहारे साधनरूप छे, जेथी हुं जे माहरूं स्वरूप प्रगट करूं, ते उपकार तमारो छे, तेथी माहारे तो आधार, त्राण, शरण, सर्व हे देव ! तमेज छो ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

एकवार प्रभुवंदना रे, आगम रीतें थाय ॥
कारणसत्यें कार्यनी रे, सिद्धि प्रतीत कराय ॥जि० ५॥

अर्थ.—माटे श्रीअरिहंत अनंतज्ञानी, अनंतदर्शनी, शुद्धचारित्री, अविकारी, अकषायी, स्वरूपभोगी, स्वरूपरमणी, स्वरूपविलासी, त्रैलोक्यपूज्य, त्रैलोक्यउपकारी, भावना आश्रय, कर्मरोगना महावैद्य, परमेश्वर, परमोपकारी, तेने एकवार पण जे रीतें आगम कहेतां सिद्धांतमां कह्युं छे, ते रीतें जो वंदन थाय, एटले अनशन वर्जीने गुणठाणाने अनुभवना, आश्चर्यना, बहुलिंद्रियलग्नाय जो थाय, तो माहरूं मोक्षरूप कार्य निपजे, एहवी प्रतीति कराय, शा माटे ? जे कारणने कहेतां हेतु कारणे सत्यता कारण सत्य कार्यनी सिद्धि एटले निपजवानी प्रतीति थाय. अने कार्य पण निपजे, एटले श्रीप्रभु परमात्माने निमित्त करता कार्यां उपादान जे आत्मा, ते गुणानुयायी थई, [illegible] निमित्त [illegible] उपादान [illegible] कारण [illegible] [illegible] निमित्त [illegible] उपादानी थाय. [illegible] कार्य निपजे छे. [illegible]

आधारभूत एहवा श्रीजिन कहेतां वीतरागना चरणने जे उल्लास कहेतां हर्ष धरीने वंदे, कहेतां वांदे, तेनो जन्म कृतार्थ॥७॥

निज सत्ता निज भावथी रे, गुण अनंतनुं ठाण ॥
देवचंद्र जिनराजजी रे, शुद्ध सिद्ध सुखखाण ॥जि०८

अर्थः—ते प्रभु निज कहेतां पोतानी सत्ता अनंतगुण पर्याय रूप ते निज भावथी कहेतां पोताने भाव स्वभावेथी थया छे. एहवा जे गुणज्ञानादिक अनंत तेनुं ठाण कहेतां ठेकाणुं छे. सर्व देवमां चंद्रमा समान जिनराज, ते कहेवा छे? शुद्ध सिद्ध कहेतां निष्पन्न गुणनी खाण छे ॥ ८ ॥ इति संभवजिनस्तवनं ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थ श्रीअभिनंदनजिनस्तवनम् ॥

॥ ब्रह्मचर्यपद पूजीयें ॥ ए देशी ॥

क्युं जाणुं क्युं बनी आवशे,
अभिनंदन रस रीति हो मित्त ॥
पुद्गल अनुभव त्यागथी,
करवी जसु परतीत हो मित्त ॥ क्युं० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीअभिनंदन प्रभुनी स्तुति कहे छे. कोइ भव्य जीवने श्रीअभिनंदनदेवथी पृथक्पणे मन्यान् मन थयुं, पण प्रभुजीने मळवानी अनि पोताना आ देवनो विचारे छे. ते एहवा परम प्रभु देवनन्दन [illegible] केम मिळाय ? तेनो विर-

सर्व प्रकारें स्वाधीन, निर्दोषी तेथी परमेश्वर वली केहवा छे? जे वस्तुगतें कहेतां मूलवस्तुवर्में अलिप्त छे, एटले सर्व जीव द्रव्य शुद्धसंग्रहनयें अलिप्त छे, पण कोइ अन्यद्रव्य तथा रागादि अशुद्ध परिणतिथी लेपाय नहीं, अने अभिनंदन प्रभु तो सर्वनयें विशुद्ध थया छे, टंकोत्कर्णन्यायें प्राग्भावधर्मी थया छे, ते सर्व रीते परथी अलिप्त छे, एटले जे लेपाय, ते मले, पण जे लेपाय नहीं, ते केम मले ? हवे छ द्रव्य छे, तेनां नाम कहे छे. १ असंख्यात प्रदेशी, लोकप्रमाण, अरूपी अक्रिय, अचल, अचेतन,चेतन तथा जीव अने पुद्गल ए बे द्रव्य, गतिपरिणामी छे तेने गतिनो सहायी थाय, ते धर्मास्तिकाय द्रव्य जाणवुं. २ असंख्यातप्रदेशी, लोकप्रमाण, अरूपी, अचेतन, अक्रिय, स्थितिपरिणामी, एटले जे जीवपुद्गलने स्थिर रहेवानुं सहाय आपे, ते अधर्मास्तिकाय, ३ अनंतप्रदेशी, लोकालोकप्रमाण, अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने सर्व द्रव्यना पोतें अवगाहक परिणामी, तेने अवगाहनानुं हेतु, ते आकास्तिकाय द्रव्य, ४ पुद्गलपरमाणु, अनंतारूपी, अचेतन, सक्रिय, पूर्णगलनधर्ममयी, १ वर्ण, २ गंध, ३ रस, ४ स्पर्शयुक्त, एक एक परमाणु, एहवा अनंत परमाणु ते सर्वलोकमांहे जाणवा, पण लोकथी बाहेर नहीं, ते पुद्गलास्तिकायद्रव्य, ५ चेतनालक्षण, १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ वीर्य, ६ उपयोग, लक्षण तथा अरूपी, स्वभावनु कर्त्ता, असंख्यात प्रदेशी, एहवुं एक जीवद्रव्य, तेहवा अनंता जीव, ते जीवास्तिकायद्रव्य कहियें, ए पांच द्रव्यने प्रदेशनो संबंध छे, माटे अस्तिकाय कहियें. ६ तथा छठुं अप्रदेशी, अरूपी वर्तनालक्षण, निश्चयनयथी पचास्तिकायनी वर्तना छे अने व्यवहारे उपचारथी ज्योतिश्च-

अने चोर ओलखाय, ते काळद्रव्य, ए छ द्रव्यनां नाम कह्यां. तेमां १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ काल, ए चार द्रव्य, अपरिणामी कोइथी मिळे नहीं, अने १ जीव, २ पुद्गल, ए बे द्रव्य परिणामी, एटले अन्यद्रव्यथी मिळे, तेमांहे पुद्गलद्रव्य मांहोमांहे संबपणुं पामे, अने परानुयायी हेतुपणे परिणम्यो जे जीव, तेने प्रदेशे कर्मपणे वळगे, पण एक जीवथी बीजो जीव मळे नहीं अने पुद्गल तो संसारी जीवथी मळे, पण माहारा अभिनंदन परमेश्वर तो सिद्ध थया छे, मिथ्यात्वादिक हेतुथी मुक्त थया छे, तेने पुद्गल लागी शके नहीं, ए स्वरूप छे, माटे द्रव्यथी द्रव्य मळे नहीं. एटले शुद्ध जीव ते अशुद्ध जीवथी मळे नहीं. बीजुं पण मूलनयें कोइ द्रव्य कोइ द्रव्यथी मळे नहीं. ते द्रव्ये तो मळवुं नथी, तथापि कदाचित् भावें मळे तोपण भाव कहेतां वस्तुनी मूलपरिणति प्रशस्तिरूप तेथी अन्यजीव तथा अन्य पुद्गलनुं अन्यपणुं छे, एटले व्यापे नहीं. ते परभावरक्तता ते उपाधियी छे. अने प्रभु श्रीअभिनंदन देवनो भावधर्म ते परम निर्मल थयो छे, सर्वस्वभावने अनुपम थयो छ. एटले कर्ता, भोक्ता, ग्राहकता, व्यापकता, आधारता, रमणता, अव्याबाधता, इत्यादिक सर्व स्वरूपपणे निपन्यां छे. ते केम अन्यद्रव्यने आवे ? तेथी प्रभुजीनां १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काळ, ४ भाव, सर्व शुद्धपणे छे, ए द्रव्यादि [illegible] ॥ गाथा ॥ [illegible] [illegible]. जिन [illegible] [illegible]. [illegible] जिन [illegible] ॥ [illegible] [illegible], अने [illegible]

[illegible]

पोताना गुणपर्यायनी प्रवर्त्ति ते भाव, एम द्रव्यादि चारनी परिणति ते वस्तुधर्म छे, माटे ते प्रभु केम मळे ? ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

शुद्ध सरूप सनातनो, निर्मल जे निःसंग हो मित्त ॥
आतम विभूतें परिणम्यो, न करे ते परसंग हो मित्त ॥
॥ क्युं० ॥ ३ ॥

अर्थः—वळी श्रीवीतरागदेव केहेवा छे ? शुद्ध केहेतां सर्वदोषरहित, एहवुं स्वरूप जेहवुं सनातनो केहेतां नित्य छे, यद्यपि पर्यायें अनित्य छे, पण इहां कूटस्थ नित्यतायें नित्य छे, निर्मळ ज्ञानावरणादि मल रहित, वळी निस्संग केहेतां सर्व संग रहित, जेहनो असंख्यातप्रदेशमध्ये द्रव्यथी कोइ परभाव भाव रह्यो नथी, अने भावथी जेहनी परिणतिमांहे रागी द्वेषीपणे कांइ अन्य भाव नथी, एहवो निस्संग छे ते परमेश्वर, वळी आत्मविभूति केहेतां पोतानी शुद्धस्याद्वादरूप, अनंत, अज, अविनाशी, अनंद, स्वरूपें परिणम्यो छे, एहवो जे परमेश्वर ते पर-केहेतां बीजा द्रव्यनो संग एटले संबंध करे नहीं, एटले सदाये जीवद्रव्य परसंगी नथी, विभावे परसंगी थयो छे, पण जे सम्यक् स्वरूपी रूप भासनवाळो परिणमीने शुद्धरूपे थया ते कोइ रीते परनो संग करे नहीं, तो एहवा प्रभुथी केम मळाय ? माटे हे प्रभु ! तुमने मळ्या विना मुजने सुख केम थाय ? ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

पण जाणुं आगम बले, मिलवुं तुम प्रभु साथ हो मित्त॥
प्रभु तो स्वसंपत्तिमयी शुद्ध स्वरूपना नाथ हो मित्त॥
क्युं ॥ ४ ॥

अर्थः—एम विचारतां उपयोग आव्यो ते कहे छे, पण-जाणुं आगमवडें केहेतां जे आगममांहें कयुं ते गुरुमुखें सांभल्युं, तेना बलथकी जाणुं छुं, जे हे भव्यजीव! प्रभुश्री वीतराग तायें आपणे मलडुं छे, जेहने गरज होय, ते मळे, एटले पोतानी संपदा प्रगट करवानो रुचिवंत मळे, प्रभु तो स्व केहेतां पोतानी संपत्ति जे स्वक्षेत्र असंख्यात स्व प्रदेशविषे व्यापकपने रह्या जे अनंतज्ञानादिक गुण, ते संपदाधनी छे, शुद्ध स्वरूपनो नाथ केहेतां धनी छे, माटे निष्पन्नपरमानंदभोगी शुद्ध स्वरूपी ते कोइथी मळे नहीं ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

परपरिणामिकता अछे, जे तुझ पुद्गलयोग हो मित्त ॥
जड चल जगनी एंठनो, न घटे तुझने भोग हो मित्त ॥
क्युं० ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे कोई पुछशे जे सर्वद्रव्यमांहे परथी मलवानी शक्ति नथी, तो सावकडुं जीवद्रव्य पण, वस्तुधर्मे शुद्ध छे, तेने प्रभुथी मलवुं, ते पण तेनी सत्तामां तो नथी, तो हवे केवी रीतें मिळे ? त्यां कहे छे. जे अनादि अतीतकाल ए संसारी जीवडुं आत्मिक सुख सर्व अवराणुं अने भोगधर्म, क्षयोपशमी छे, ते कांईक भोगव्यो जोईयें, ते स्वरूपने अण पामवे, पुद्गलना वर्ण, गंध, रस, फरस, जे अभोग्य छे, तेने भोगवतो थको परभोगी थयो, परपरिणामी थयो, ए परपरिणामिकतानी चाल ते अनादिनी टेव छे, एटले कर्ता परनो, भोक्ता परनो, रमण परने विषे, ग्राहक परनो, एम सर्व, पर-

भावमयी थयो छे. इहां कोई पूछशे जे शुद्ध द्रव्यधर्मी, ते परपरिणामी केम थाय ? तेने कहे छे. जे पुद्गलना योगें पुद्गलावलंबी चेतना थइ, एटले कहे छे जे हे जीव ! पुद्गलने योगें जे तारी परपरिणामिकता ते अनादिनी अशुद्धता विजातीयपणे छे, दोषरूप छे, अने आत्माने सर्व अवहित छे, केम जे पुद्गल ते जड छे, तथा चल कहेतां विनाशी [illegible] जगत्नी एठ छे, ते पुद्गल द्रव्य द्रव्यें ध्रुव छे, अने पर्यायें अध्रुव छे, वर्णादिक, संस्थानादिक पर्याय सर्व पलटे छे, अने सर्व संसारी एकेका जीवें एकेको पुद्गलपरमाणु, तेने शरीरपणे, भाषापणे, मनपणे, आहारपणे, अनंती वार ग्रहि ग्रहीने मूक्यो छे, ते माटे ए पुद्गल ते सर्व, जीवोनी एंठ छे अने जीवद्रव्य ते स्वरूपभोगी छे, माटे हे चेतन ! तुने ए पुद्गलनो भोग घटतो नथी, केम जे हंस केवारें कचरामां चांच घाले नहीं ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

शुद्धनिमित्ती प्रभु महो, करी अशुद्ध पर हेय हो मित्त॥
आत्मालंबी गुण लयी, सहु साधकनो ध्येय हो मित्त॥
क्युं० ॥ ६ ॥

अर्थः—माटे परभोगीपणुं अशुद्ध निमित्त जे पुद्गलादिक, तेने वर्जीने शुद्ध, निःकर्मा, पूर्णानंदमय प्रभुने अवलंबो, एटले ए आत्मत्व सिद्धि [illegible] छे, ते प्रगटवाने माटे प्रथम अशुद्धात्मक वर्जन अरिहंतात्मकी [illegible]. तेथी शुद्धनिमित्त ते निर्मल [illegible] [illegible] छे ते प्रभुने भजो, तेथी, पण सर्व परमसु [illegible] [illegible] करीने एटले

सर्व परभाव त्याग करीने प्रभुने भजो. ते प्रभु केहेवा छे ? जे आत्मार्थी केहेतां सर्वने पोतानी आत्माने अवलंब्या छे, एटले पोताना आत्माने विषेज तन्मय थया छे, तथा गुणरूपी करेतां गुणने विषे रूप केहेतां विश्राम लेहनो छे वली श्रीवीतरागतत्त्व केहेवुं छे ? सर्वमोहने निवारवनारा साधक एहवा जे सम्यग्दृष्टि, देशविरति, सर्व विरति, श्रेणिना वाला, ध्यानारूढ जीवो तेने ध्येय छे, एटले सर्व आत्माने श्री सिद्ध परमात्मा ध्येय छे. ध्यान बे प्रकारनुं छे, एक सालंबन, बीजुं निरालंबन. तेमां जे अरिहंतसिद्धनुं तत्त्व स्वरूप अवलंबीने ध्यान करवुं, ते सालंबन ध्यान छे तेने श्रीअभिनंदन प्रभु सर्वने ध्यावा योग्य छे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

जिम जिनवर आलंबनें, वधे सधे एकतान हो मित्त॥
तेम तेम आत्मालंबनी, ग्रहे स्वरूप निदान हो मित्त॥
क्युं० ॥ ७ ॥

अर्थः—हवे जेम जेम साधक ते आत्मार्थी जीव, ते श्रीजिनवरदेवनां तत्त्वस्वरूपने आलंबने वधे, केहेतां सर्व-प्रदेशमां [illegible] अरिहंतना गुणमां तन्मय थई थाय, एकतान केहेतां एकत्वपणुं सधे निश्चे, एटले [illegible] एक निश्चय [illegible] स्वरूपे तेना [illegible], तेम तेम ते साधक जीव, तेमने आत्मा आलं-बन [illegible] स्वरूपने [illegible] चिदानंदमय [illegible], तेनी एक स्वरूप निजना करेता [illegible] ग्रहे, अरिहंत हवे ॥ इति ॥ ७ ॥

स्वस्वरूप एकत्वता, साधे पूर्णानंद हो मित्त ॥
रमे भोगवे आतमा, रत्नत्रयी गुणवृंद हो मित्त ॥
क्युं० ॥ ८ ॥

अर्थः—ते जेवारें स्वस्वरूपएकाग्रता ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप प्रहे, तेवारें परिणामिक परमतत्त्वने विषे एकत्वता शुद्धस्वरूपरमण, शुद्धस्वरूपभोगी थाय, तेथी सर्वे कहेतां निपजे, पूर्णानंद कहेतां संपूर्ण, आत्यंतिक, एकांतिक, अनंतातिशय, अबाधक, केवलनिराबाध, स्वाधीन आत्मसुख निपजे, पछी ए आत्मा पोतानी रत्नत्रयी आदिक गुणवृंदने विषे रमे, तेहनेज भोगवे, तन्मय, तद्विलासी, स्वभावआनंदी थको रहे, सादि अनंतोकाळ, स्वपरिणामिक प्रगटपणे वर्ते ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

अभिनंदन अवलंबने, परमानंद विलास हो मित्त॥
देवचंद्र प्रभु सेवना, करो अनुभव अभ्यास हो मित्त
॥ क्युं० ॥ ९ ॥

अर्थः—ए रीतें श्रीअभिनंदन प्रभुने अवलंबने परमानंदनो विलास थाय, सर्वदेवमांहे चंद्रमा समान जे अरिहंत देव, तेहुनी सेवना, अथवा स्तुतिकर्त्तानुं नाम पण देवचंद्र तेमाटे पोताने संबोधने हे देवचंद्रप्रभु ! तमारी सेवना करे, पण अनुभवना अभ्यासथी पूर्ण अनुभवयुक्त थई. एहीज आत्मा निरावरणपणुं प्रगट करवा छे. माटे प्रभुने सेवो, आदरो ॥९॥ इति ॥

विना भोगवे छे, माटे अकामी छे, एटले स्वक्षेत्रथी वेगलो जे पुद्गलना वर्ण, गंध, रस, फरसनो भोग, ते वांछतो नथी, तेने कामना कहियें, पण तेनो भोगी आत्मा नथी, आत्मा तो ज्ञानादिक गुण जे स्वक्षेत्रव्यापकपणे प्रगटभोग तेहनो भोगी छे, ते भोगवतां कामना न जोइयें, माटे कामना विना भोगी छे, ए अथरज जाणवुं ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

ऊपजे व्यय लहे तहवि तेहवो रहे;
गुण प्रमुख बहुलता तहवि पिंडी ॥
आत्मभावें रहे अपरता नवि ग्रहे,
लोक प्रदेश मित पण अखंडी ॥ अ० ॥२॥

अर्थः—हवे नित्यनादिक धर्म कहि समजावे छे. सर्वद्रव्य छ छे, तेमध्ये काल ते उपचार द्रव्य छे, तथा धर्मास्तिकायादि पांच द्रव्य अस्तिकाय छे, तेमां १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय. ए त्रण एकेक द्रव्य छे, जीव अनंता द्रव्य छे, पुद्गल अनंता द्रव्य छे, द्रव्यनुं अगुरुलघुपर्यायनुं षट्गुण हानि वृद्धिरूप चक्र फरतुं जलावर्त्तनी पेठें वर्त्ते, ते एकद्रव्य, जेनुं चक्र भिन्न फरतुं ते भिन्नद्रव्य, ए सर्व द्रव्य, उत्पाद, व्यय, ध्रुवयुक्त छे, तेमाटे नित्यानित्य छे ॥ उक्तं च विशेषावश्यकभाष्ये ॥ तं जइ जीवो नामो, तं नामो होउ सव्वहा नत्थि ॥ जं नो उप्पायवयं, धुवं व्व पज्जाओ ॥ १ ॥ पुनः ॥ सव्वंपि य उप्पायवय, उप्पायाउ नासएय निगं च ॥ एवं च य गुरुलघु कम का लोकवदु मवमतो ॥२॥ इहां [illegible]

नित्यानित्य स्वभाव छे, ते कहे छे; अभिनवपर्याय उपजे छे,
पूर्वपर्याय व्यय थाय छे, यथा एक प्रदेशें अगुरुलघुपर्याय अनंत
गुणो छे, बीजे प्रदेशें तेथी अनंतभागहीन छे; त्रीजे प्रदेशें
असंख्यात गुण वधतो छे; चोथे प्रदेशें संख्यात गुण वृद्धि
छे, एम असंख्यात विभाग छे, ते प्रतिसमय परावर्तरूप छे,
ते जिहां अनंतगुण तिहां असंख्यात गुण थाय; तेथी जे
प्रदेशें अनंत गुणपणुं टल्युं, ते व्यय थयो, अने असंख्यात-
पणुं उपजयुं थयुं, ते उत्पाद थयो, तथा अगुरुलघु सत्ताने ध्रुवे,
ते ध्रुव जाणवो, तथा ज्ञेयनुं जाणवुं. ए ज्ञाननो धर्म छे, ते ज्ञेयने
पलटवे जो ज्ञान नित्य होय, तो जणाय नहीं. जेमाटे विवक्षित
समयने विषे केवलज्ञान अनंता अतीत धर्म थया, तेने जाणे.
वर्तमानें अनंता धर्म छे तेने जाणे, तथा अनागत अनंता थाशे
ते पण जाणे; यद्यपि थया छे थशे ए धर्म. ज्ञेयना छे, पण ते
सर्वने जाणवानो धर्म, ज्ञाननो छे. अने पर्यायने आकारने
ज्ञान परावर्त्ती थाय छे " विषयभेदात् विषयिणोऽपि भेदः
ज्ञेयभेदात् ज्ञानभेदः. पुन. ज्ञान वर्तनाऽपि ज्ञेयस्य पर्याय-
[illegible] इति [illegible] " तथा जे
ज्ञान वर्तमानपणे जाणतो, तेहने अतीतपणे जाणे, अने जे
अनागत तेहने वर्तमानपणे जाणे, ए ज्ञानना पर्याय भासन-
[illegible] ते सर्व [illegible] पलटे. तेज पूर्वपणानो व्यय,
उत्तरपर्यायनो उत्पाद. अने ज्ञान [illegible] [illegible],
सर्व [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] ? [illegible]
छे, अने [illegible] [illegible]
न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

ते नित्यता. ए बे स्वभाव कह्या. तथा एक आत्माने विषे ज्ञानगुण, दर्शनगुण, चारित्रगुण, वीर्यगुण, दानगुण, लाभगुण, भोगगुण, अरूपीगुण, अगुरुलघुगुण, अव्याबाधगुण. इत्यादिक अनंता गुण छे, ते सर्व गुण भिन्न भिन्न छे, तेथी अनेकता छे, तथा ते सर्वगुण समुदायरूप छे, पण केवारें भिन्नश्रेनी न थाय, ते अनंत गुणपर्यायनो एकपिंड एहवो आत्मा छे, माटे एकरूपनो, वली प्रभुजी तमे केहवा छो ? जे स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावपणे अस्ति छो, ते अस्तिभाव कोइ वॉर टलनो नथी, तेणें हे प्रभु । तमें आत्मभावें रहो छो, पण कोइ वॉर अपर केनां बीजा द्रव्यनो भाव केतां धर्म लेना नथी, माटे स्यातअस्तिपणे छो, पोताना धर्में रहो छो, पर द्रव्यनो धर्म स्यात्नास्तिपणे छे, ते कोइवारें तेमें (तेमां) ते पणे परिणमना नथी, माटे स्यात्अस्तिनास्तिरूप छो. हवे इहां सप्तभंगी उपजे, ते कहे छे. १ स्वद्रव्य ते पोताना गुण अने पर्यायनो समुदाय तथा स्वक्षेत्र, ते पोतानो अगरुलघु स्वभाव, विभागीकृत असंख्यातप्रदेशें, स्वकाल ते उत्पाद व्ययरूप प्रवर्त्तना स्वभाव ते अनंना ज्ञानना पर्याय, अनंता दर्शनना पर्याय, अनंता चारित्रना पर्याय, अनंता अगरुलघु पर्याय, तेणें स्यात्अस्ति ए पहेलो भांगो थयो. २ परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावपणे स्यात्नास्ति ए बीजो भांगो. ३ तथा अस्ति, नास्ति, ए बे [illegible] कह्या छे, माटे स्यात्अस्ति, [illegible] ४ एहवो धर्म एक स- [illegible] धर्म, वचनें गोचर नहीं एहवा [illegible] तथा स्यात् कदचित्पणे अवक्तव्य ए चोथो [illegible] ते अवक्तव्यपणुं अस्ति-

धर्मनुं पण छे, माटे स्यात्अस्ति अवक्तव्यं ए पांचमो भांगो थयो. ६ ते अवक्तव्यपणुं नास्तिधर्मनुं पण छे, ते माटे स्यात्नास्ति अवक्तव्यं ए छठो भांगो. ७ एहवो वस्तुधर्म समुदाय पर्यायपणे स्यात्अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्यं ए पदार्थ धर्म छे, ए सातमो भांगो थयो. ए सामान्यें सप्तभंगी कही, तेमज नित्य तथा अनित्यनी सप्तभंगी, एक अनेकनी सप्तभंगी, वक्तव्य तथा अवक्तव्यनी सप्तभंगी तथा गुणपर्यायनी सप्तभंगी, तथा द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिकनी सप्तभंगी, एम अनंती सप्तभंगी वस्तुधर्मे छे, ते सप्तभंगीयें सर्व पदार्थ पोताना स्वभावनें पलटता नथी, ते कारणे हे प्रभुजी ! तुमें अस्तिनास्तिपणे छो, स्वधर्मपणे रहो छो, परधर्म ग्रहण करता नथी. वली हे प्रभु ! तमें केहेवा छो ? तोके चउद राजलोकना जेटला आकाशप्रदेश छे, तेटला तमारा आत्मप्रदेश छे, पण ते असंख्यातप्रदेशनुं जे स्वरूप, षट्गुण हानिवृद्धिरूप, अगुरुलघुपर्यायनो तरतमयोग, विभागपने रहेवुं. शृंखलाअवयवनी परे ज्ञानादि गुणोनुं अवस्थान क्षेत्र, क्षयोपशम काले कार्याभ्यासे तरतमता, तेहनुं स्वरूप कम्मपयडी विषे योगस्थान अधिकारे तथा बृहत्कल्पभाष्यमध्ये संयमश्रेणिअधिकारथी जाणजो, तथा क्षायिकभावें सर्वगुणनी सामान्यता, परंतु अगुरुलघुपर्यायनुं तारतम्य सदा छे, तेथी प्रदेशधर्म छे, अथवा सर्वगुण पर्याय तुल्यविभागे असंख्यातप्रदेशपने वेहेंचाय पण कोइ वारें जुदा खंडाता नथी, माटे अखंडरूप छो. एटले असंख्याता प्रदेशरूप अवयवता छे, पण भिन्न थाय नहीं. ते आश्चर्य जाणवुं॥२॥

॥ इति द्वितीय गाथार्थ ॥

कार्यकारणपणे प्रणमे तहवो ध्रुव,
कार्यभेदें करे पण अभेदी ॥
कर्तृता परिणमे नव्यता नवि रमे,
सकल वेत्ता थको पण अवेदी ॥ ३ ॥

अर्थः—वली उत्पादव्ययरूप धर्म कहे छे. जीवद्रव्यने विषे जेटला गुण छे, ते सर्व पोतानुं कार्य करे छे, अने उपादानरूप कारण तेहीज कार्य थाय छे. इहां कोइ कहेशे जे पूर्वकालें कारण, पश्चात्कालें कार्य, एतो जमालीनो मत छे, जो कारणकाल, कार्यकाल भिन्न होय, तो कारणकाल विनाशी तदनंतर कार्यकालें कारण विना कार्योत्पत्ति थाय, अने कारण विना कार्य मानतां अनेक दोष थाय, तेवारें घटें पट कार्य थाय, पटें घटकार्य थाय, माटे कारण विना कार्य नथी, एटले कारणभाव, तथा कार्यभाव, ए बे एक समर्मे छे, ए जैननी श्रद्धा छे, श्रीविशेषावश्यकमध्ये पणं वखाण्युं छे, जो बाह्य उत्पन्न कारण कार्यविषे एक कालता छे, तो सहज अकृत्रिम कारण कार्यता एकसमयेंज होय, तेमाटे जीवनो केवलज्ञानगुण, ते विशेषभाव सर्व जाणे छे, तिहां सर्वनुं जाणवुं, ते कार्य छे, अने ज्ञानगुण, जाणवा रीतें प्रवर्त्ते, ते कारण छे, तेहज समयें कारण कार्यपणे परिणमे छे. अने ज्ञानगुण पणे सदा ध्रुव छे, तेम केवल दर्शनादि गुण अनंता छे, ते सर्व ए रीतें परिणमे छे, कारणना व्यय, तिहांज कार्यता उत्पाद, कार्यतान्यय, तिहाज कारणना उत्पाद, इम सर्व द्रव्यने विषे, उत्पादव्यय धर्म छे. इहां कोइ कहे छे जे उत्पादव्यय स्वतः

नथी, परमधर्मी छे, एम कहे छे तेनी मूढ छे, जे परम-
धर्मी धर्म, ते लक्षण न थाय, लक्षण ते स्वधर्मइज थाय,
तिहां श्रीश्वेतांबर गच्छी तत्त्वार्थटीकाकारनी साख लखे छे ॥
अथ ये व्याचक्षते स्वधर्मोत्पादो न स्वतो ध्येयः किंतु परम-
स्वभावान्वितेऽवगाहकताविधानापत्तङ्क्याद्स्यधानिति तेषां कथन-
मेतत्स रेऽवगाहत्वाभावात् अर्द्धैवनलं च लतोलक्षणं लक्षणस्य
साध्याऽभावितं वेद्यते लिपन्धुतादस्यधर्मानिति. अत्रोच्यते य
एवं महाज्ञानसर्वदर्शी स्वबुद्धिबलेन पदार्थस्वरूपं तेऽत्र निवृ-
त्ताज्ञतुपेतताः कथनेनड यदं तु निखिलावरणेनेन सर्वद-
र्शन तु यावादिस्वविज्ञान प्रयोगवरिष्ठस्या जीवत्कुशलानालिप्तं
तावद्दर्शनमविच्छिन्नज्ञानभावे आत्महृतार्थांदृशुपेनैव च
भ्रान्तव्यतेत्युच्यते ॥ ए वचन कोइ श्रद्धा यथार्थ करवी,
माटे हे प्रभुजी ! तमारा गुण. साधकने परिणमे छे, तेथी
तेनो उपकार थाय छे, अने तुमको अभाव थातो नथी, ते शुद्ध
धर्म छे, तेथी स्वधर्मनिष्ठ. स्वगुणनिष्ठ, ए स्वरूप छे, ते अ-
हीयां [illegible] छे. [illegible] करे तेहने कहीये
ते [illegible]
[illegible] छे. ते नवे जिननी
[illegible] करे छे, [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

ए कार्यमेदें अण धर्म पामीयें छैयें, परंतु केवारें भिन्न थाता नथी, तिम जीवना अनंतगुण भिन्न भिन्न कार्य करे छे, परंतु वस्तुधर्मे भिन्न नथी. कार्य तो सर्व मेदें कहेतां भिन्नपणे करे छे, पण अमेदी कहेतां मेदरहित छे. वळी प्रतिसमय कर्तृता-पणे छे, एटले पंचास्तिकायमध्ये चार अस्तिकाय ते अकर्ता छे, अने एक जीवास्तिकाय स्वतंत्रकर्त्ता छे, ते स्वाधीनपणे कारणावलंबी थइ कार्यने निपजावे, ते कर्त्ता, तथा जेम पर-कार्य घट, तेनो कर्त्ता कुंभकार तेम ज्ञानादि कार्यनो कर्त्ता जीव छे, माटे कर्तृतापणे परिणमे छे. पण कांइ नव्यपणे नथी रमतो, एटले जे प्रतिसमये पर्यायने करे, पण कांइ नवो नथी करतो, अस्तिधर्म छे, तेमज रहे छे, वळी सकल कहेतां सर्व द्रव्य छ तेहना गुणपर्याय स्वभाव, तेना उत्पादरूप, व्ययरूप, ध्रुवरूप, अतीत अनागत वर्तमानकाळ सर्व त्रणे काळना वेत्ता कहेतां जाण छो, ए सर्वने जाणो छो, पण अवेदी कहेतां पुरुष, स्त्री, नपुंसकरूप वेद रहित छो, माटे वेत्ता थका पण वचनधर्मे अवेदी छो, ए अचरिज जाणवुं ॥ २ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

> शुद्धता बुद्धता देवपरमात्मता,
> सहज निज भावभोगी अयोगी ॥
> स्वपर उपयोगी तादात्म्यसत्ता रमी,
> शक्ति प्रयुंजनो न प्रयोगी ॥ अ० ॥ ४ ॥

[illegible] कहेतां [illegible] रहित, [illegible] छो, तेम

अनंती शक्ति छे, ते सकर्मा जीवनी सर्व शक्ति दबाणी छे, अने तेमें साध्य साधक भाव करीने सर्व कर्मपडलने दळवे करीने सर्व शक्ति प्रगट करी छे अने ते सर्व शक्तिनी भिन्न भिन्न प्रवृत्ति छे, ते सर्व शक्तिने प्रयुंजता छो एटले सर्व कर्तृत्व, भोक्तृत्व, ज्ञापकत्व, पारिणामिकत्व, ग्राहकत्व, आधारत्वादि शक्ति प्रवर्त्ते छे, पण कोई शक्ति अण प्रवर्ती रहेती नथी, तथापि न प्रयोगी कहेतां शक्ति प्रवर्तावतां कोई जातिनो प्रयोग कहेतां प्रयास उद्यम विकल्प करवो पडतो नथी, एटले सर्व शक्ति सहेजें प्रवर्त्ते छे ॥४॥ इति चतुर्थगाथार्थः ॥

वस्तु निज परिणतें सर्व परिणामिकी,
एटले कोई प्रभुता न पामे ॥
करे जाणे रमे अनुभवे ते प्रभु,
तत्वसामित्व शुचि तत्व धामें ॥ अ० ॥५॥

अर्थः—हवे १ नित्य, २ अनित्य, ३ एक, ४ अनेक, ५ अस्ति, ६ नास्ति, ७ भेद, ८ अभेद. इत्यादिक, अनंत धर्म प्रभुमां छे ते माटे परमेश्वरपणुं छे तेनी ओळखाण करवाने कहे छे. जे नित्यानित्यादिक धर्म तो सर्व द्रव्यमां छे. एटले वस्तु केतां जीवादि पदार्थ ते निज परिणतियें केतां पोतानी स्याद्वाद परिणतियें सर्व केतां समस्त द्रव्य परिणामिकी केतां परिणामी छे. एटले नित्यानित्यादिक धर्मपणे सर्व द्रव्य परिणामी छे, पण तेथी कोइ परमेश्वरपणुं न पामे, सर्व द्रव्य साधारणधर्मी माटे एमां शी अधिकाइ ? एटले केतां

कहे छे. तत्त्व केतां वस्तुनो मूलधर्म, स्वामित्व केहेतां तेनुं स्वामिपणुं ते परमेश्वर पणुं शुचि कहेतां पवित्र कर्म रहित निर्मल तत्त्व सिद्धतानुं धाम कहेतां घर ते निष्पन्न सिद्धावस्था तेज परमेश्वर पणुं छे, बाकी सर्वसंसारी जीव, सत्तायें परमगुणी छे, पण जेना गुण प्रगट थया, ते पूज्य जाणवा. माटे श्रीयशोविजयजी उपाध्यायें कह्युं छे ॥ गाथा ॥ जे जे अंशे रे निरुपाधिरूपणुं, ते ते कहीयें रे धर्म ॥ सम्यग्दृष्टि रे गुणठाणा थकी, जाव लहे शिवशर्म ॥ १ ॥ माटे जे परम पूज्य ते सिद्ध छे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

> जीव नवि पुग्गली नैवपुग्गल कदा,
> पुग्गलाधार नहीं तास रंगी ॥
> परतणो ईश नहिं अपर ऐश्वर्यता,
> वस्तुधर्मे कदा न परसंगी ॥ अ० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे जीवनो जे मूल धर्म छे, ते श्रीसुमतिनाथ अरिहंतने निपज्यो छे, ते कहे छे. जे जीव नवि पुग्गली कहेतां जीव ते कोइ वारें पुद्गली नथी अनंतो काल संसारावस्थायें पुद्गलथी एकठो रह्यो, पण केवारें पुद्गलरूप थयो नहीं, तथा जीव ते पुद्गलनो आधार नथी, कारण जे क्षेत्रद्रव्य तो आकाश छे, धर्म, अधर्म, जीव, पुद्गल, ए सर्व आकाशद्रव्य मध्ये रह्यां छे, पण जीवना प्रदेशे पुद्गलनुं रहेवुं, ते जीवनी भावअशुद्धतायें थयुं छे. जेम जे सर्व संसारी जीवोने भोग तथा उपभोग गुणनो सदाकाल क्षयोपशम वर्ते छे पण स्वभोगनी प्रगटता नथी, तथा पराभोग वर्ते छे. श्रीदेवचंद्रजीनो

क्षयोपशम पामीयें ते वीर्य पण परानुयायी थयुं, तथा कर्त्ता, ग्राहकता, व्यापकता, भोक्तापणुं सदा निरावरण छे, अने कार्य, ग्राह्य, व्याप्य, भोग, आवरणां छे, तेथी पुद्गलग्राह्य, पुद्गलानुयायी प्रवृत्ति ते कार्य, पुद्गलभोगपणें तेहना वर्णादिकनां व्यापक थयो, पुद्गलने ग्रहे छे, पछी जेने भोगव्यो, तेनीज होंश उपजे, एटले पुद्गलनो रुचि ते फरी पुद्गलने ग्रहे, तथा भोगवे, तेथी आत्मप्रदेशें पुद्गल रह्या छे, आत्मप्रदेश ते स्वगुणपर्यायपणुं क्षेत्र छे, पण परपुद्गलद्रव्यपणुं क्षेत्र नथी, तथा मूलवस्तुधर्मे पुद्गलनो रंगी नथी, स्वधर्मना आस्वादन विना ए पुद्गलनो रंगी थयो छे, पण वस्तुरीतें विचारतां एने पुद्गलथी श्यो संबंध छे? वली आत्मा परभावनो स्वामी नथी, परभावें एनी ऐश्वर्यता कहेतां ठकुराई नथी, एटले वस्तुधर्मे कदा कहेतां कोइ वेला परवस्तुनो संगी नथी, जीवद्रव्यनो सत्ताधर्म एहवो छे, माटे माहारो सुमतिनाथ परमेश्वर शुद्धदेव, ते पुद्गलनो आधार तथा रागी केम होय? सर्व पुद्गलातीत छे ॥ ६ ॥

संग्रहे नहीं आपे नहीं परभणी,
नवि करे आदरे न पर राखे ॥
शुद्धस्याद्वाद निजभाव भोगी जिके,
तेह परभावने केम चाखे ॥ अ० ॥ ७ ॥

अर्थः—वली सुमतिनाथ परमात्मा केहेवा छे? जे परभणी कहेतां परवस्तु भणी माहारापणे संग्रहे नहीं, ते परवस्तु कोइ बीजाने आपे नहीं, परवस्तुने करे नहीं, परवस्तुने आदरे नहीं, परवस्तुने परिग्रह धनपणे राखे नहीं, ए शुद्धद्रव्य-

नो धर्म छे, तथा शुद्ध कहेतां निर्दोष स्याद्वाद कहेतां अनंत-धर्मात्मक निज कहेतां पोतानो, भाव कहेतां धर्म, अनंत ज्ञान दर्शनादिक, तेहना जे भोगी आस्वादी एटले स्वभोग्यना जे भोगी थया, ते परभाव जे रागद्वेषादिक अथवा पुद्गल-वर्णादिक, तेहने निष्पन्नपरमात्मा केम चाखे कहेतां आस्वादे ? माटे परमात्मा ते परभावने चाखे नहीं, स्वरूपभोगीज होय ॥ ७ ॥ इति

> ताहरी शुद्धता भास आश्चर्यथी,
> उपजे रुचि तेणें तत्त्व ईहे ॥
> रंगी थयो दोषथी उभग्यो,
> दोषत्यागे ढलें तत्त्व लीहे ॥ अ० ॥ ८ ॥

अर्थः—हवे साधन धर्म कहे छे. तिहां श्रीसुमतिनाथ पोतें मुक्त थइ कृत कृत्य थया, ते परजीवनी मुक्तिना कर्त्ता नहीं, तो शा वास्ते स्तवो छो ? नमो छो ? त्यां कहे छे, जे ताहेरी कहेतां हे प्रभु ! तुमारी शुद्धता, निःकर्मता, अनंत-गुण प्रगटता, तेहनुं जेवारें भासन कहेतां जाणपणुं थाय, ते जेम जेम गुणनी घोषणा करे, तेम तेम गुणनुं भासन थाय, तेथी आश्चर्यना उपजे, जे अहो प्रभुनुं ज्ञान ! त्रण लोकगत षड्द्रव्य त्रण काल पर्यायोने सहित एक समयें जाणे, तेमज अहो प्रभुनुं दर्शन ! अहो प्रभुनुं चारित्र ! सकल पुद्गल अ-भोगी ! अहो प्रभुनो आनंद ! इत्यादिक आश्चर्यथी आश्चर्य उपजे, तेथी पोताने तेहवा [illegible] नी रुचि उपजे, ईहा उपजे. पछी ते मोक्षरुचि जीव विचार ने केवार माहारो

ते कारणपणे परिणमे, जेम कार्य निपजे, तेम तेनी कारणता ध्वंस पामे, एम आत्मसिद्धे साधना नवि टके, जेवारें वस्तु कहेतां जीवपदार्थ, उत्सर्गरीतें संपूर्ण आत्मा पोतानी समाधि परमानंद पामे, तेवारें कारणता रहे नहीं, सिद्धपणे वस्तुनो मूलधर्म प्रगटे, तेवारें साधनपणुं रहे नहीं ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

माहरी शुद्ध सत्तातणी पूर्णता,
तेहनो हेतु प्रभु तुंही साचो ॥
देवचंद्रे स्तव्यो मुनि गणें अनुभव्यो,
तत्त्वभक्तें भविक सकल राचो ॥ अ० १० ॥

अर्थः—माटे हे प्रभुजी ! माहरी शुद्ध निर्मल आत्मसत्ता, तेहनी पूर्णता कहेतां संपूर्णता तेहनो हेतु कहेतां निमित्त कारण हे प्रभु तुंहीज साचो छो, तमारा जेवा शुद्धदेवनुं निमित्त पाम्या विना माहारे निर्मल मोक्ष केम निपजे ? सर्व जीवनी पूर्णता परिणति छे, जे निमित्तावलंबी थइ, उपादानावलंबी थाय, देव जे श्री निरावरण, तेहमां चंद्रमासमान कहेता तेणें स्तव्यो, तथा मुनि जे निर्ग्रंथ मोक्षाभिलाषी तेने अनुभव्यो, तेहना गुणनुं आस्वादन कर्युं, एहवो जे अरिहंत देव, तेनी नमस्कार जे भक्ति, एटले वस्तुगत गुणनी बहुमानता, तेना रूप मर्म अनुभवी जीवो तमे राचो, मग्न थाओ ॥१०॥ इति दशम गाथार्थः ॥ इति श्रीसुमतिजिन स्तवन ॥

स्वरूप निर्धार, स्वरूप रुचिरूप प्रगट्यो, तो आत्मा मोहमल्लथी रहित थाय, माटे परम पवित्र छे ॥ उक्तं च ॥ सम्मत्तेणं सुद्धो, सयग्गु किच्चो हवइ सिवदेऊ ॥ संवरबुद्धी तह निज्जरा य, धम्ममूलं च सम्मत्तं ॥ १ ॥ मूलं दारं पइठाणं, आहारो भायणं निहि ॥ दुमुक्कं सावियम्मस्स, सम्मत्तं परिकित्तियं ॥ २ ॥ वली दर्शन कहेतां हे प्रभुजी ! ताहरुं देखवुं अथवा शुद्धश्रद्धा ते जे जीव, शब्दनयें करे, ते जीवनो जे सर्वजीवसंग्रहनयें सिद्ध समान छे, ते जेवारें पोताना सर्व आवरणक्षय करी संपूर्णसिद्ध थाय, तेवारें एवंभूतनय सिद्ध कहियें. ते माटे संग्रह ते एवंभूत थाय, इहां नयनुं स्वरूप संक्षेप कहियें छैयें. " सत्ताग्राही संग्रहः " वस्तुनी सत्ताने ग्रहे, ते संग्रहनय कहियें. अने वस्तुना नामपदनो जे अर्थ, तेपणे परिणम्यो, तेथ सर्वपर्दे भावनिक्षपें ते शब्दनय कहियें. वली सकलपर्यायपरिणामिकतारूप प्रगटपणे संपूर्ण वस्तु, ते एवंभूत नय कहियें. पहेले ताहरुं दर्शन जे देखवुं, ते अंतरंग अरिहंतना स्वरूपभासन आस्वादन सहित प्रभुनानुं अवलोकन ते शब्दनयें प्रभुनुं देखवु थयु. १ योगनी चपलता, तथा उपयोग अन्यकार्यनो, मात्र एकलुं चक्षुइंद्रियें करी प्रभुमुद्राने जोवुं, ते नैगमनयें प्रभु दीठा. ३ वंदन, नमन, आशातना वर्जनपणे जे प्रभुमुद्रा तथा प्रभुना आगमनुं देखवुं, ते व्यवहारनयें प्रभु दीठा. ४ योग तथा विकल्परूप उपयोग प्रभुना गुणनो, अने सर्वइंद्रिय [illegible] जोग, मनने, एकाग्र करे, चपलता मटाडे, तथा हर्ष सहित [illegible] वासना स्मरणताये जोडे त्यारे, ते ऋजुसूत्रनयें [illegible] तथा परिणाम परिणति [illegible] शब्दनयें [illegible]

सर्व प्रभुत्वता. तथा प्रभुनुं शरीर तिहां वलगा अंतरंग आत्मसत्ता प्रगट करवारूप साध्यरुचि थयों थको प्रभुतानुं तत्त्वसंपदारूप अवलोकन ते शब्दनयें प्रभुजी दीठा. ए रीतें श्री प्रभुजीने देखे, ते नियमा स्वसत्ता प्रगट करे, माटे ए निमित्त कारणरूप प्रभुदर्शन जाणवुं. एम सम्यक्त्वना पण नय करीने शब्दनयें जे शुद्ध श्रद्धारूप समकित ते संसारी जीवनी सत्ता प्राग्भावनुं कारण छे ॥ १ ॥ २ ॥

वीजें वृक्ष अनंतता रे लाल,
पसरे भूजल योग रे ॥ वा० ॥
तिम मूळ आतम संपदा रे लाल.
प्रगटे प्रभु संयोग रे ॥ वा० ॥ तु० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे कारणकार्य भाव कहे छे. जेम बीज होय तेनां अनंता वृक्ष उपजवानी छती छे, पण भू कहेतां माटीमां नाखे, तथा जल कहेतां पाणी सींचे, एवो संयोग मळे, तेवारें उगे, एटले माटी तथा पाणीना संयोगे वधे. ए रीत छे, जेम उपादानधर्म ते निमित्तकारण विना प्रगटे नहीं. ए रीतें माहारी आत्मसंपदा पण्यनि सत्तारूपें छती छे पण जेवारें प्रभु श्रीवीतराग देव शुद्धस्वरूपीनो योग मळे, तेवारे प्रगटे ते आलंबी तत्त्वने आलंबने वर्त्ते, तो ते निपजे, एम महारे आत्माविषे सत्ता सर्व छे पण श्री अरिहंतरूप निमित्त मळे, तेवारें सिद्धि नीपजे ॥३॥ इति तृतीय गाथार्थः॥

जगतजंतु कारज रुचि रे लाल.
साधे उदयें भाण रे ॥ वा० ॥

चिदानंद सुविलासता रे लाल,
वाधे जिनवर जाण रे ॥ वा० ॥ तु० ॥४॥

अर्थः—सर्व जगत्वासी जीव आहार, विषय, परिग्रह मेलववारूप कार्यना रुचि कहेतां अभिलाषी छे, एटले पोत पोताना कार्य करवा रूप परिणाम सर्व जीवोने छे, पण सूर्य उद्योतरूप निमित्त पाम्या विना कार्य करी शके नहीं. सूर्य उद्योतरूप निमित्तकारण पामे, तेवारें सर्वलोक कार्य करवा लागे, ए रीत प्रगट देखाय छे, तेम माहारी आत्मा चिद् कहेतां ज्ञान, आनंद कहेतां अव्याबाधसुख अथवा सकलज्ञेय ज्ञायकता रूप जे ज्ञान तेहनो जे आनंद, तेने चिदानंद कहियें, तेनी सुविलासता कहेतां शुद्धपणे विलास एटले भोगववुं, ते आत्मानंद भोगीपणुं ते यद्यपि सत्तानेविषे छतुं छे, तो पण जेवारें श्रीजिनराजनो वर कहेतां प्रधान अनुष्ठानदोष, तथा एकांत दोष, तथा अर्थापत्तिदोष रहित ध्यान करियें, तेवारें आत्मानंद प्रगटे, उपादान छे पण हे प्रभु ! तमारा जेवुं निमित्त मले प्रगट थाय. माटे माहारे प्रभुसमान उपकारी कोइ नहीं, ते कारणे हे परमेश्वर ! ताहरुं दर्शन मने व्हालुं छे, जे अनंता भव भमता न पाम्यो ते जो मले, तो माहरुं अनाग[illegible] अनंत [illegible] अनंता काल्न [illegible] जाय ॥ उक्तं च ॥ [illegible] न मोहतिमिरा[illegible]. पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ॥ मर्माविधो विधुरयंति हि मामनर्था प्रोद्य-त्प्रबंधगतयः कथमन्यथैते ॥ १ ॥ एटले प्रभुनं दर्शन दुर्लभ

४॥

लब्धि सिद्ध मंत्राक्षरें रे लाल,
उपजे साधक संग रे ॥ वा० ॥
सहज अध्यातम तत्वता रे लाल,
प्रगटे तत्त्वीरंग रे ॥ वा० ॥तु०॥५॥

अर्थः—वली दृष्टांत कहे छे. जेम आकाशगमन प्रमुख लब्धियो तेनी जे सिद्धि ते विद्याशक्ति मंत्राक्षरमां छे, पण ते तेहवो उत्तर साधक मळे. तेवारें नीपजे, तेम सहज स्वभावरूप जे अध्यात्म कहेतां आत्मायी तन्मयपणे रही, जे स्याद्वादरूप ज्ञानदर्शनादिक आत्मिकपरिणतिरूप तत्त्वता, ते यद्यपि वस्तुधर्मे आत्माने विषे छती छे, पण जेवारें निष्पतत्त्वी शुद्ध निर्मल, निरावरण, आत्मस्वरूपभोगी, आत्मरमणी, आत्माश्रयी, असंख्यात प्रदेश पुद्गलसंश्लेषरहित, एवा शुद्धदेवने आलंबनें एक रंग करे. तेवारें ज्ञानावरणादि कर्मथी रहित निरावरणरूप प्रगट भावतुं छतापणुं नीपजे ॥ ५ ॥

लोह धातु कांचन हुवे रे लाल,
पारस फरसन पामि रे ॥ वा० ॥
प्रगटे अध्यातमदशा रे लाल,
व्यक्तगुणी गुणग्राम रे ॥ वा० ॥तु०॥६॥

अर्थः—बीजो दृष्टांत कहे छे. लोहधातुमध्ये कांचन कहेतां सुवर्ण थवानी सत्ता छे, तोपण पारस प[illegible] प्रमुख बाह्य निमित्त पामीने पोतानुं सोनापणुं लहे छे [illegible] जीवनी पण शुद्ध आत्मिकदशा यद्यपि सत्तारूपे छे, पण व्यक्त

कहेतां प्रगट कर्मावरण रहित जे गुणी अरिहंत तेहना गुण-ग्राम करतां, स्मरण करतां, आपणो आत्मा गुणानुयायी थइ, संपूर्ण गुणीपणुं पामे, तेवारें सत्ता प्रगटे. इहां कोई पूछशे जे निमित्त विनाज सिद्धपणुं केम न पामे ? तेने उत्तर कहे छे. जे आत्मा अनादिनो पुद्गलरूप परनिमित्त पामीने बंधपद्धति करे छे, ते जो पुद्गलरूप परनिमित्त मूके, तो मुक्त थाय, ते पुद्गलरूप परनिमित्त तो अरिहंतरूप शुद्ध निमित्तने अवलंब्या विना टळे नहीं. माटे श्री वीतरागदेवरूप शुद्ध निमित्त पामेथी, आपणुं तत्त्व प्रगटे ॥ ६ ॥

आत्मसिद्धि कारज भणी रे लाल,
सहज नियामक हेतु रे ॥ वा० ॥
नामादिक जिनराजनां रे लाल,
भवसागरमहासेतु रे ॥ वा० तु० ॥७॥

अर्थः—तेमाटे आत्मसिद्धिरूप जे कार्य, ते करवाने सहज अकृत्रिम नियामक केतां निर्धार, हेतु केतां कारण जे श्रीवीतराग देव तेने पामीने निश्चें भव्य जीवने मोक्ष नीपजे, ए निर्द्धार थयो. नामादि केतां नामनिक्षेपादि ते अरिहंत एहवुं नाम तेने श्रवणें, उच्चारणें, स्मरणें करी पण अनेक जीव गुणावलंबी थइ समकित प्रमुख गुण पामीने सिद्ध थया. तथा श्रीअरिहंतनी स्थापना जे मुद्रा समतानी समुद्र, विषयविकार रहित, अतिशयमय, एवी जिनस्थापना देखी घणा भव्य गु-णवंत अनन्त [illegible] गुणावलंबी थइ अनेक [illegible] सिद्ध थया, तथा [illegible] प्रथमी [illegible] निक्षेपा [illegible] अरिहंतनी

जिनराज, तेहना विहार उपदेश समवसरण देखी अद्भुतताने अवलंबी, गुणावलंबी थइ अनेक जीव स्वधर्मसंपदा वरी सिद्धि पाम्या तथा अरिहंतनो भावनिक्षेपो ते अरिहंत द्रव्यना गुण जे केवलज्ञानादि तथा पर्याय ते अगुरुलघुतादि तेहनी अनंत परिणतिनुं जे भासन, श्रद्धान तथा रमण करतां पोतानुं तत्त्व तेने अवलंबतां अनेक जीव मोक्षरूप लक्ष्मी पाम्या; माटे ए श्री अरिहंतना जे नामादि चार निक्षेपा छे, ते भवरूप महा समुद्रमध्ये सेतु केतां मोहोटी पाज समान छे. माटे प्रभुना नामादि चार निक्षेपाने अवलंबीने आत्मसिद्धि करवी ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

स्थंभन इंद्रिय योगनो रे लाल,
रक्तवर्ण गुण राय रे ॥ वा० ॥
देवचंद्र वृंदें स्तव्यो रे लाल,
आप अवर्ण अकाय रे ॥ वा० ॥तु०॥८॥

अर्थः—वली श्रीपद्मप्रभ स्वामीनुं रक्तवर्ण शरीर ते साधा जीवना इंद्रिय तथा योगनुं स्थंभन छे, एटले इंद्रियो वर्णादिकने अवलंबीने रहे माटे प्रभुजी राते वर्णे छे, गुणगांभीर्यादिक तेहना राजा छे. देव ते धर्म देव ते साधु. नरदेव ते चक्रवर्ती. भावदेव ते भवनपति प्रमुख. तेहमां चद्रमा समान, वली इंद्र नागचंद्रादिक तेहना इंद्र कहेता समूह. तेणे स्तव्या. पण प्रभु केहवा छे? अवर्ण छे. अगंध, अफरस, एहवा अकाय छे. अशरीर एहवा छे. एटले भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मरहित छे. सकल पुद्गलातीत छे. एहवा श्रीपद्मप्रभ देव

ते मने आधारभूत छे, परमशरण छे, एना निमित्तें परमपद नीपजे ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥ इति षष्ठ पद्मप्रभजिन स्तवनं संपूर्ण ॥

॥ अथ सप्तम श्री सुपार्श्वजिन स्तवनं ॥

हवे श्रीसुपार्श्व प्रभुने सहजधर्मरूप तत्त्व संपदापणे स्तवे छे. जगत्ना जीव पुद्गलानंदी छे, ते नवा पुद्गलने लेवे करी आनंद पामे छे, पण ते पुद्गलसंयोगजन्यसुख, तथा दुःख, ते आत्महित नहीं विभाव छे माटे, अने जे आत्मानुं सहज सुख ते आत्मधर्म छे, ए रीतें आगममध्ये उपदेश छे, ते कहे छे जे आत्माना अनंता गुण छे, ते गुणगुणनुं सुख जूदुं जूदुं छे, अने एक अव्याबाध सुखरूप आत्मधर्म जूदो छे, एक एहवी व्याख्या छे तथा आत्माना ज्ञान दर्शनरूप गुण, ते मूलगुण छे, अने वीर्यादिक सर्व ते गुणनी प्रवृत्तिरूप धर्म छे. एक एवी पण व्याख्या छे. अने १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ दान, ५ लाभ, ६ भोग, ७ उपभोग. इत्यादिक अनंतगुण आत्माने विषे छे, तथा विशेषावश्यकमांहे कह्युं छे.

क्षायिक सम्यक्त्व केवलज्ञान केवलदर्शन सिद्धत्वानि पुनः सिद्धावस्थायामपि भवंति । अन्ये तु दानादिलब्धिपञ्चक चारित्रसिद्धत्वानीच्छंति तदावरणस्य तत्राऽप्यभावात् आवरणाऽभावेपि च तदसत्त्वे क्षीणमोहादिष्वपि तदसत्त्वप्रसंगात् ततस्तन्मते चारित्रादीनां सिद्धावस्थायामपि सद्भाव पुनरनत्वार्थं पुनरग्यादि-ग्रहण कुर्वन ज्ञापयति ॥ अत्राऽनन्तधर्मात्मकत्वाऽशक्या प्र-नाययितुं सर्वे धर्मा प्रतिपदमप्रवचनतज्ञेन तु धर्मा यथा सम-

यथायोजनीयाः क्रियावत्त्वं पर्यायोपयोगिता प्रदेशाष्टकनिश्चलता एवं प्रकाराः सन्ति भूयांसः । अपि समुच्चये । एवं प्रकारा अनादिपारिणामिका भवन्ति जीवस्य भावाः । इहां जीवने विषे अनंता धर्म जुदा जुदा कह्या, तथा रत्नाकरावतारिकामध्ये सप्तभंग्यधिकारे । नन्वेकस्मिन् जीवादौ प्रतिवस्तुन्यनंतधर्मात्मकत्वेनानंतधर्मवत्त्वमेव । स्याद्वादरत्नाकरे । एकत्र वस्तुन्येकैकधर्मपर्यायानुयोगवशादविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्चविधिनिषेधयोः स्यात्कारांकितः सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभंगीति । नन्वेकस्मिन् जीवादिवस्तुन्यनंताविधीयमाननिषिध्यमानानानाधर्माः स्याद्वादीनां भवेयुः । वाच्येयता यत्तत्वा ह्वाचकेयतायाः ततोविरुद्धैव सप्तभंगीति शुचाणं निरस्यति । एकत्र वस्तुनि विधीयमाननिषिध्यमानानंतधर्माऽभ्युपगमेनानंतभंगी प्रसंगेव सप्तभंगीति न चेतसि निधेयमिति अत्र हेतुमाह ॥ विधिनिषेधप्रकारेणैका प्रतिपर्यायवस्तुन्यनंतानामपि सप्तभंगीनामेव संभवादिति तथाप्येकैकपर्यायमाश्रित्य विधिनिषेधविकल्पाभ्यां व्यस्तसमस्ताभ्यां सप्तैव भंगाः संभवंति न पुनरनंतानन्त[illegible]प्रसंगादित्यनंतं सप्तभंग्याः समुत्पद्यते [illegible] [illegible]र्यायमाहुः । प्रतिपर्यायं प्रतिपद्य तु पर्यनुयोगानां [illegible] संभवादिति अनंतधर्मैकस्या सप्तभंगीनामनंत्य [illegible] तत्सिद्धमेव ॥

एटले वस्तुविषे धर्म अनन्ता छे [illegible] ते धर्म तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सप्तभंगीना [illegible] [illegible] वस्तुविषे [illegible]विवे विषे एक [illegible] [illegible] थाय छे. ए [illegible] [illegible] विषे [illegible]

गुण अने धर्म ए बेहु एकज छे, श्रीविशेषावश्यके " जह सो विसेस धम्मो, चेयण तह मया किरिया " इहां चेतना-गुणने धर्म कही बोलाव्यो छे.

वली भाष्यने विषे । आह ननु गुणस्वभावयोर्भेदएव तद्भेदनिबंधनधर्मभेदाभावात् ।। इत्यादि ।। हवे भेद गुणना भांगीजें, तिहां अस्तिकना लहियें जी ।। ए पाठ द्रव्यगुण-पर्यायना रासमां यशोविजयजी उपाध्यायें पण अस्तित्वा धर्मने गुण कही बोलाव्यो छे. वली सिद्धांतमां पण उपयोगादिक अव्याबाध तथा अवनेआदिक अनेक गुण कह्या छे, तथा तत्त्वार्थमां मुक्त आत्मा निष्क्रियः तथा क्षायिकसम्यक्त्ववीर्य-सिद्धत्वदर्शनज्ञानैरन्यत्रेति वैः. संयुक्तोनिर्द्वंद्वेनापि गुणेन तथाऽन्यकापत्यगुणवत्त्वानादित्वासंख्येयप्रदेशवत्त्वनित्यत्वादयः संत्येव जीवस्य.

यद्यपि भगवती सूत्रमां सिद्धने अवीर्या तथा अचारित्रीया कह्या छे. तेतो करणरूप वीर्यनी अपेक्षायें कह्या, पण तेहीज श्रीअनुयोग द्वारमां क्षायिकलब्धि अधिकारें तथा पन्नवणासूत्रमां वीर्य ते जीवलक्षण छे. एम कह्युं छे. तथा चारित्र प्रवृत्तिरूपनी ना छे, पण स्थिरतारूपचारित्र ते तो जीवनुं स्वलक्षण छे. ते उत्तराध्ययनना अठ्ठावीसमा अध्ययननी गाथ, तथा [illegible] सिद्धस्तुति अधि-कार [illegible] गुणा [illegible]

एम द्रव्यार्थे तथा आत्मानांतादिक अनेक भेदोनां कह्युं छे, माटे आत्मानी जेवी रीतें भेदव्याख्या करियें, तेवी रीतें गुण अनंता, एक एक गुणने विषे अविभाग अनंता, एक एक अविभागने विषे अनंता पर्याय, ए सम्यक्पदार्थने विषे व्याख्या देखाय छे, अने तेज अविभाग तथा पर्यायनुं एकपणुं पण श्रीभगवतीनी टीकामां देखाय छे, अने संक्षेप व्याख्यायें गुणपर्याय बेहुने एक पर्यायास्तिक नयें बोलाव्या छे. एम नाविनिगम अर्थने श्रद्धा राखवी. इहां श्रीअरिहंत द्रव्यने विशेषें ओलखाववा निमित्तें गुणगुणनी जुदी जुदी व्याख्या जणाववा माटे तथा पोतानी सत्तानी रुचि प्रगट करवा माटे गुणगुणनो जुदो जुदो वर्ण कही स्तवना करियें छैयें. ए प्रशस्ति थइ.

॥ हो सुंदर तव सरिखुं जग कोइ नहीं ॥ ए देशी ॥

श्री सुपास आनंदमें.
गुण अनंतनो कंद हो ॥ जिन जी ॥
ज्ञानानंदें पूरणो.
पवित्र चारित्रानंद हो ॥ जि० ॥ श्री०॥१॥

अर्थः—श्री सुपार्श्वप्रभु आनंदमयी छे. इहां आनंद ते एने विषे छे, जेमांहे परनो भेळ नथी. स्वरूप सुख छे, वळी सुपार्श्वप्रभु केहवा छे ? के गुण जे सहभावी अथवा 'द्रव्याश्रिता गुणाः' एटले द्रव्य जे समुदाय तेहने आश्रि रह्या ते गुण, पण तेमां अन्य गुणपणुं नहीं, गुणमध्ये तो पर्याय छे. ॥तम्मे समन्नाया गुणा इति कम्मभाष्यवचनात्॥ तथा अनन्तने

जाणणा नत्थि इति आवश्यकनिर्युक्तिवचनात्॥ माटे गुणने विषे पर्याय छे, पण गुणने विषे अन्य गुण नथी, श्रीनयचक्रमां कहे छे, जे गुणने विषे अन्यगुण पणुं होय तो गुण ते द्रव्यपणुं पामे, तेमाटे गुण ते निर्गुण छे, एटले सुपास प्रभुरूप द्रव्य छे, ते ज्ञानादिक अनंत गुणनो कंद छे एटले मूल छे. तिहां ज्ञान जे आत्मानो विशेषावबोधरूप सकल विशेष धर्म गुण-पर्याय, तेहनी अनंती परिणति तेहनो ज्ञायक नित्यानित्यादिक अनंत धर्मनुं ज्ञायकत्व, वेत्तृत्व, अगुरुलघुत्व, अनंतपर्यायनो पिंड, ते ज्ञानगुण ते लोकालोक सकल प्रत्यक्षरूप सर्वप्रदेश-निरावरणरूप तेहने आनंदे करी पावनो कहेतां पवित्र छे, पूर्ण छे. वली कषाय तथा पुद्गल फल आशारूप दोषरहित एवुं स्वरूप स्थिरतारूप जे चारित्र, अनंतपर्यायात्मक, अक-षायता, अवेदता, असंगता, परमक्षमा, परममार्दव, परमनिर्लो-भतारूप, स्वरूप एकत्वरूप पास प्रभु ! ताहारे विषे छे, एटले चारित्रानंदमयी छो, ते माटे पवित्र निर्मल छो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

संरक्षण विण नाथ छो,
द्रव्य विना धनवंत हो ॥ जि० ॥
कर्त्ता पद किरिया विना,
संत अजेय अनंत हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥२॥

अर्थ —वली हे प्रभु ! तमे संरक्षण विना नाथ कहेतां धणी छो, एटले कोई अन्य जीवना तथा अन्यद्रव्यनो रख-वाळी करता नथी, केम के संरक्षण पण करव. ■ तमारे

जना व्यापक पोताना ज्ञायकादिक गुण, तेनी प्रवृति सहित जे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यादिक गुण, अन्वयी गुण कहियें, तेहीज ऋद्धि कहेतां संपदा तेहना समूह छो, अने कषायादि दोषने टाळ्ये करी जे अकषायादिक गुण उपना, ते व्यतिरेक गुण कहियें, तथी सति सद्भावो पूर्वले जे छते पामियें, ते अन्वयी गुण कहियें, तेहना समूह छो. वळी वर्ण, गंध, रस, फरस, ते पुद्गलधर्म छे, तेथी तमें रहित छो, अने निज कहेतां पोतानो जे स्वरूपधर्म, तेहना भोक्ता छो, गुणना व्यूह कहेतां समूह छो ॥ ३ ॥ इति ॥

अक्षय दान अचिंतना,
लाभ अयत्ने भोग हो ॥ जिन० ॥
वीर्य शक्ति अप्रयासना,
शुद्ध स्वगुण उपभोग हो ॥जि०॥श्री०॥४॥

अर्थः—वळी हे प्रभुजी ! तमारा अनंता गुणनी प्रवृत्ति केवी रीतें छे ? ते कहे छे. वीर्यगुण ते सर्वगुणने सहकार दिये छे, तेम ज्ञान गुणना उपयोग विना वीर्य फुरी शके नहीं, तेथी वीर्यने सहाय ज्ञानगुणनें छे, तथा ज्ञानमां रमण ते चारित्रनुं सहाय छे, अने परगमन न करे, ते चारित्रने ज्ञाननुं सहाय छे. एम एक गुणने अनंत गुणनुं सहाय छे. हवे जे गुण सहाय दिये छे, ते तो आत्मना गुणना दान-दर्ने छे. एम [illegible] नव दर्शनादि अनंत स्वगुणसहाय-[illegible] रूपी नहीं [illegible]

तमें सादि अनंत काल स्वाधीन पणे स्वगुणरूप पात्रने अनंतुं दान आपवाने दाता छो. पण केवारें क्षीण न थाशे माटे अक्षय थका दान आपो छो. एहवो दानगुण तमारे विषे छे, अने जे गुणनी सहायरूप शक्तिनी प्राप्ति. ते लाभ छे, पोताने जे मिलवे. ते लाभ थाय ते पण निर्धार नहीं, अने हे प्रभुजी! तमारे विषे पिंडना विकल्परूप जे लाभार्थीपणुं ते नथी, तोपण लाभ अनंतो छे, माटे अनालिप्सा लाभना धणी छो. एहवो लाभगुण छे. वळी हे प्रभुजी! तमें पोताना पर्यायने प्रतिसमये भोगवो छो. पण प्रयास विना भोगवो छो. माटे तमें यत्नविना प्रयत्नविना भोगवनो छो, [illegible] सर्व गुणनी जे प्रवृत्ति हेतु सहाय जे वीर्य, ते अनंतुं अभ्यन्तराय विना फुरी रह्युं छे, पण ते वीर्यनी फुरणा, विना प्रयत्ने एहवे उद्यम विना वीर्य फुरे छे, वळी शुद्ध स्वगुण पेतां स्वभाविक जे स्वगुण तेहनो उपभोग छे. ए पांच अंतरायनी प्रकृतिना क्षय थवाथी पांच गुण प्रगट्या छे, एहवे हे प्रभुजी! तमने स्वरूप दान स्वरूपनो लाभ, स्वपर्यायनो भोग, स्वगुणनो उपभोग स्वरूपवर्त्तनारूप सहकार शक्ति, ते वीर्य. ए [illegible] छे ॥४॥इति॥

एकांतिक आत्यंतिको,
सहज अकृत स्वाधीन हो ॥ जि० ॥
निरुपचरित निर्द्वंद्व सुख
अन्य अहेतुक पीन [illegible] ॥श्री०॥५॥

अर्थ—[illegible] सुख [illegible] छे,
ते सुख [illegible] एहवुं सुख. ते

पाछो दुःख पामे नहीं, वली आत्यंतिको केतां जेथी बीजुं वधारे सुख कोइ नथी, एटले सर्वथी अधिक ते पण सहज केतां स्वभावनुं अकृत केतां अणकीधुं पण कोइनुं करेलुं नहीं, वली ते पोताने स्वाधीन पोताने वश पण पराधीन नहीं. वली निरुपचरित केतां जे उपचाररूप नहीं, अछता आरोपने उपचार कहियें, ते ए सुखमां कांइ उपचारपणुं नथी, संसारमां शातावेदनीनुं सुख, ते उपचरित सुख छे, केमके शातामध्ये सुखधर्म नथी, पण अज्ञान मूलें, संसारी आत्मा, सुख मानें छे, पण वडेरा एने सुख कहेता नथी, जे संसाराभिनंदी मोहें मूढ परमार्थने अजाणता विषयगृद्ध थका इंद्रियदेहजनित विषयसुखने सुख माने छे, ते जानें सुख नहीं ॥ यतः ॥ विसयसुहं दुखं चिय, दुःख पडियारओ तिगच्छंव्व ॥ तं सुहमुवयाराओ, न उवयारो विणा तचं ॥ १ ॥ इति विशेषावश्यके ॥ तथा शातानो उदय, ते पण स्वधर्मरोधक छे, अने पुद्गल कर्मनो विपाक छे माटे ते सुख नहीं ॥ सायासायं दुःखं, तव्विरहंमि य सुहं जउत्तेणं ॥ देहिंदियेसु दुख्खं, सुखं देहिंदिया भावो ॥ इति ॥ १ ॥ एम औदयिक सुख, ते सुख नहीं, अने जे सिद्धनिरुपम अनंत आत्मस्वभाव प्राग्भाव भोक्तापणे नेज सुख जाणवुं. वली निर्द्वंद्व कहेतां जेमांहे अन्य जीव तथा अजीव द्रव्यनो संयोग नहीं, एटले परवस्तुनो मेल नथी. कदापि परवस्तु कारण पामीने उपनुं होय ? तिहां कहे छे. जे ते सिद्धसुख कहेवुं छे, के अन्य केतां बीजां द्रव्यनुं हेतुपणुं जेमां नथी वली पीन केता पुष्ट छे, प्रधान छे. माटे श्रीमुराधिजिनना ते आत्मिक सुख ते महानंद छे.

एक प्रदेशें ताहरे,
अव्याबाध समाय हो ॥ जि० ॥
तसु पर्याय अविभागता,
सर्वाकाश न माय हो ॥ जि० ॥श्री०॥६॥

अर्थः—वली हे प्रभु ! तमारा आत्माना एक प्रदेशने विषे अनंत गुण, अनंत पर्याय छे. तेमांहे हे प्रभुजी ! ताहारे एक प्रदेशें जे अव्याबाध गुण समाइ रह्यो छे, ते अनंतो छे, ते अव्याबाध सुखना पर्याय तेना अविभाग ते केवलीनी प्रज्ञायें जेहना एक खंडना बे खंड न थाय, तेने अविभाग कहियें, ते अविभाग लोक तथा अलोकाकाशना एकेका प्रदेशें एकेको सुखनो अविभाग राखियें, तोपण सर्वाकाश कहेतां लोक अलोक रूप सर्व आकाशमां समाय नहीं, एटले आकाशना प्रदेशथी पण तमारे एक प्रदेशें रह्युं जे अव्याबाध सुख, तेना अविभाग अनंत गुणा छे ॥ यत॰ ॥ खित्ताओ भावधम्मा अणंतगुणा ॥ इति ॥ सदा द्रव्यधर्मथी भावधर्म अनंत गुणा छे ॥ ६ ॥ इति ॥

एम अनंत गुणनो धणी,
गुण गुणनो आनंद हो ॥ जि० ॥
भोग रमण आस्वादयुत,
प्रभु तुं परमानन्द हो ॥ जि० ॥श्री०॥७॥

अर्थः—एम तेना प्र ... हे प्रभुजी ! तमे अनंत गुणना धणी छो. ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, अव्याबाध, अमू-

संता, अगुरुलघु, दान, लाभ, भोग, उपभोग, कर्त्ता, भोक्ता पारिणामिकता, अचल, अविनाशी, अनंत, अज, अनाश्रयी अशरीरी, अणाहारी, अयोगी, अलेशी, अवेदी, अकषायी असंख्यप्रदेशी, अचल, अक्रिय, शुद्धसत्ताप्रागभावरूप, नित्य, अनित्य. एक, अनेक, सत्, असत्, भेद, अभेद, भव्यत्व, अभव्यत्व, सामान्य, विशेष, इत्यादि अनंत गुण पर्यायरूप धर्मना धणी छो. ते गुणनो जुदो जुदो आनंद छे, तिहां दृष्टांत कहे छे. जेम संसारी जीवने धननुं सुख भिन्न छे, रूपनुं सुख भिन्न, भोजननुं सुख भिन्न, देखवानुं सुख भिन्न, स्थानकनुं सुख भिन्न छे, तेम सिद्ध आत्माने पण गुण गुणनुं सुख भिन्न भिन्न छे, तेथी अनंतो अनंत रीतें आनंद छे, एटला सर्व गुणनो आनंद छे, ते सर्वनो भोग पण छे, केम के भोगव्या विना आनंद थतो नथी, एटले अनंता गुणना आनंदनो भोग अनंतो छे, तेमज ते सर्व गुणने विषे अनंतुं रमण पण छे, तेम अनंतो आस्वाद पण छे, केम के अनंता गुणने आस्वादीने भोगी थयो थको आनंदने विलसे छे, माटे अनंतो आस्वाद पण छे, तेथी हे प्रभु ! तमें परमानंद छो. इहां गुणगुणीनो अभेद उपचार बोलाव्यो, जे परमानंदमयी तेहीज परमानंद, एहवा परम देव छो ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

अव्याबाध रुचि थई,
साधे अव्याबाध हो ॥ जि० ॥
देवचंद्र पद ते लहे,
परमानंद समाध हो ॥ जि० ॥श्री०॥८॥

अर्थः—एहवुं परमानंदरूप अव्याबाध सुख श्रीपरमात्म-प्रभुने विषे छे, ते में निर्धार कर्यो, तेवारें जाण्युं के जेवुं अव्याबाध सुख श्री सुपार्श्व प्रभुने विषे छे, एहवुंज सुख माहारे विषे पण छे, एहवुं जाणपणुं प्रगट्युं. तेथी भव्य जीवने उपयोग आव्यो, जे हुं पण ज्ञानादि अनंत गुणी छुं, हवे माहारो शुद्धानंद भोग केवारें प्रगटे ? एहवा उपयोगें जे जीव ज्येष्ट महिनामां जेम बपैयो तृषातुर थइने वरसादने अभिलाषे वरते, तेनी परें जे जीव, अव्याबाध सुखनो रुचि अभिलाषी थइने पुद्गलसंयोगजन्य जे सुख तेनो विषभक्षण समान आत्मस्वरूपनां घातक जाणीने तेथी उभग्यो थको एक आत्मानंद केवारें प्रगटे ? एवो थको वर्त्ते, पछी तेहना साधक जे मुनिराज तेनां चरण सेवतां उदासीन थइने साधे, केतां निपजावे, आत्मिक अव्याबाध सुख प्रत्यें. एटले उत्तम जीव स्याद्वाद आगम श्रवण करी, पांच आश्रवथी विरमी शुद्धसंयमी थइ, देहनिस्पृही थको मोक्षने साधे ॥ उक्तं च ॥ यतः ॥ पंचासव विरत्ता, विसय विजुत्ता समाहि संपत्ता ॥ राग दोस विमुत्ता, मुणिणो साहंति परमथ्थं ॥ १ ॥ आउस्स खीणभाग, सुप्पाणवियोगेवि जे समाहिपया ॥ तावय दइढवयावि हु, मुणिणो साहंति परमथ्थं ॥ २ ॥ एहवा मुनिराज त्रिकाल विषयना अवांछक, तत्त्वगवेषी, तत्त्वरसिया, तत्त्वानंदरुचि, पोतानुं तत्त्व, अनादिनुं कर्मसंगे ढंकाणुं ते प्रगट करवा माटे सकल पुद्गलभावथी विरक्त थइने जे आत्म निपजावे छे ते जीव, निमित्तावलंबनी थइ स्वरूपावलंबन करनां स्वरूपमध्ये एकत्व पामीने क्षपकश्रेणि आरोहण करी घनघाति कर्म खपावीने सयोगी केवली थइ, पछी शैलेशीकरण करी निःकर्मा थइने

देव जे धर्मदेव मुनिराज, तेमांहे चंद्रमा समान एहवुं अरिहंत पद तेने ते जीव पामे, जेमां परमानंदनी समाधि छे, अने सकर्मारूप अवस्था ते महाव्याधि छे, माटे निरावरण निःकर्मावस्था ते परम समाधिरूप छे, ते अवस्था श्रीसुपार्श्व परमात्माने अवलंबनें जीव पामे, माटे श्रीसुपार्श्व प्रभुनी सदा सेवना करवी. एहीज आधार, त्राण, शरण छे ॥ ८ ॥

॥ अथ अष्टम श्री चंद्रप्रभजिनस्तवनं ॥

॥ श्री श्रेयांस जिन अंतरजामी ॥ ए देशी ॥

श्रीचंद्रप्रभ जिनपद सेवा,
हेवायें जे हलिया जी ॥
आतमगुण अनुभवथी मलिया,
ते भवभयथी टलिया जी ॥श्री०॥१॥

अर्थः—हवे श्रीचंद्रप्रभ भगवान्नी स्तवना कहे छे, अने सेवना पण ओलखावे छे, ते श्रीचंद्रप्रभनामा आठमा प्रभुनां पद केतां चरणनी सेवा अथवा अरिहंत पदनी सेवना, तेहनी छे हेवा केतां चाल रीत, तेहमां जे हलिया केतां तेवी टेवें पड्या छे, तेहने प्रभुसेवन विना काल जाय नहीं, जेहने असंख्यात प्रदेशें श्रीप्रभु परमात्मा परमपूज्यपणुं आराध्यपणुं छे, ते जीव आत्मा चेतनालक्षण असंख्यात प्रदेशी स्वधर्मना कर्त्ता, स्वधर्मना भोक्ता पोताना गुण ज्ञानदर्शनादिक, तेहनो अनुभव केता भोगवव, तेहथी मल्या छे, एटले आत्मगुणभोगी

थया छे. तेज जीव भव केतां चार गतिरूप संसार तेहनो जे भय, जन्म मरण स्वरूपरोधक कर्माधीनतारूप, तेहथी टल्या छे, एटले यथार्थ रीतें जे परमात्माने सेवे, ते अवश्य असंसारी थाय. तेमाटे टलवा योग्य थया ते टल्या. ए न्यायें, हर्षतुं वचन छे, जो कारण मले, तो कार्य नीपजे. तेम उत्तम जीव अरिहंत सेवन परिणम्या प्रभु मल्याना हर्षे संसार समुद्रने गोपदसमान माने छे ॥ १ ॥ इति प्रथम० ॥

द्रव्यसेव वंदन नमनादिक,
अर्चन वली गुणग्रामो जी ॥
भाव अभेद थावानी ईहा,
परभावें निःकामो जी ॥श्री०॥२॥

अर्थः—ते सेवना चार प्रकारनी छे. १ नामसेवना, २ स्थापनासेवना, ३ द्रव्यसेवना, ४ भावसेवना. तेमां नाम तथा स्थापना, ए बे सेवना तो सुगम छे. अने द्रव्य निक्षेपाना बे भेद छे. एक आगमथी द्रव्यनिक्षेपो. अने बीजो नोआगमथी द्रव्यनिक्षेपो, तिहां जे आगमथी द्रव्यनिक्षेपो, तेतो जे सेवनापदनो अर्थ विधि जाणे. पण ते काले ते अर्थनो उपयोग नथी, ते आगमथी द्रव्यनिक्षेपो कहियें। अनुपयोगो द्रव्यं । इति अनुयोगद्वारवचनात् हवे बीजो नोआगमथी द्रव्यनिक्षेपो, तेहना वली त्रण भेद छे एक ज्ञशरीर, बीजुं भव्यशरीर, त्रीजुं तद्व्यतिरिक्त. ज्ञशरीर तिहां जे ए सेवना भावथी परिणम्या हता. पण ते मुक्त थया. तेहनुं शरीर, ते ज्ञशरीर द्रव्यनिक्षेपे छे. ए पहेलो भेद. तथा जे जीव हमणां तो सेवना-

देव जे धर्मदेव मुनिराज, तेमांहे चंद्रमा समान एहवुं अरिहंत पद तेने ते जीव पामे, जेमां परमानंदनी समाधि छे, अने सकर्मीरूप अवस्था ते महाव्याधि छे, माटे निरावरण निःकर्मावस्था ते परम समाधिरूप छे, ते अवस्था श्रीसुपार्श्व परमात्माने अवलंबनां जीव पामे. माटे श्रीसुपार्श्व प्रभुनी सदा सेवना करवी. एहीज आधार, त्राण, शरण छे ॥ ८ ॥

॥ अथ अष्टम श्री चंद्रप्रभजिनस्तवनं ॥

॥ श्री श्रेयांस जिन अंतरजामी ॥ ए देशी ॥

श्रीचंद्रप्रभ जिनपद सेवा,
हेवायें जे हलिया जी ॥
आतमगुण अनुभवथी मलिया,
ते भवभयथी टलिया जी ॥श्री०॥१॥

अर्थः—हवे श्रीचंद्रप्रभ भगवाननी स्तवना करे छे, अने सेवना पण ओलखावे छे, ते श्रीचंद्रप्रभनामा आठमा प्रभुनां पद चरणनी सेवा अथवा अरिहंत पदनी सेवना, तेहनी जे हेवा थया एटले टेव, तेहमां जे हलिया थया तेनी टेवें पड्या छे, तेहने प्रभुसेवन विना काइ गमे नहीं, जेहने अरिहंत पदेंसें श्रीप्रभु पदनमां पक्षपातवंत अनुभवतां छे, ते [illegible] प्रगट केवलज्ञान अनंतगुण प्रदेशें सरबंधतां करी, [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], तेहने अव-

[illegible]

थया छे, तेज जीव भव केतां चार गतिरूप संसार तेहनो जे भय, जन्म मरण स्वरूपरोधक कर्माधीनतारूप, तेहथी टल्या छे, एटले यथार्थ रीतें जे परमात्माने सेवे, ते अवश्य असंसारी थाय. तेमाटे टलवा योग्य थया ते टल्या. ए न्यायें, हर्षलुं वचन छे, जो कारण मले, तो कार्य नीपजे. तेम उत्तम जीव अरिहंत सेवन परिणम्या प्रभु मल्याना हर्षे संसार समुद्रने गोपदसमान माने छे ॥ १ ॥ इति प्रथम० ॥

द्रव्यसेव वंदन नमनादिक,
अर्चन वली गुणग्रामो जी ॥
भाव अभेद थावानी ईहा,
परभावें निःकामो जी ॥श्री०॥२॥

अर्थः—ते सेवना चार प्रकारनी छे. १ नामसेवना, २ स्थापनासेवना, ३ द्रव्यसेवना, ४ भावसेवना. तेमां नाम तथा स्थापना, ए बे सेवना तो सुगम छे, अने द्रव्य निक्षेपाना बे भेद छे. एक आगमथी द्रव्यनिक्षेपो, अने बीजो नोआगमथी द्रव्यनिक्षेपो, तिहां जे आगमथी द्रव्यनिक्षेपो, तेतो जे सेवनापदनो अर्थ विधि जाणे, पण ते कालें ते अर्थनो उपयोग नथी, ते आगमथी द्रव्यनिक्षेपो कहियें। अणुवओगो दवं । इति अनुयोगद्वारवचनात्" हवे बीजो नोआगमथी द्रव्यनिक्षेपो, तेहना वली त्रण भेद छे. एक ज्ञशरीर, बीजुं भव्यशरीर, त्रीजुं तद्व्यतिरिक्त शरीर. तिहां जे जे सेवना भावरूपें परिणम्या हता, पण प्राणमुक्त थया, तेहनां शरीर, ते ज्ञशरीर द्रव्यनिक्षेपे छे, ए पहेलो भेद. तथा जे जीव हमणां तो सेवना-

देव जे धर्मदेव मुनिराज, तेमांहे चंद्रमा समान एहवुं अरिहंत पद तेने ते जीव पामे, जेमां परमानंदनी समाधि छे, अने सकर्मरूप अवस्था ते महाव्याधि छे, माटे निरावरण निःकर्मा वस्था ते परम समाधिरूप छे, ते अवस्था श्रीसुपार्श्व परमात्माने भवदेवनां जीव पामे, माटे श्रीसुपार्श्व प्रभुनी सदा सेवना करवी, एहीज आधार, शरण, शरण छे ॥ ८ ॥

॥ अथ अष्टम श्री चंद्रप्रभजिनस्तवनं ॥

॥ श्री श्रेयांस जिन अंतरजामी ॥ ए देशी ॥

श्रीचंद्रप्रभ जिनपद सेवा,
हेवायें जे हलिया जी ॥
आतमगुण अनुभवथी मलिया,
ने भवभयथी टलिया जी ॥श्री०॥१॥

अर्थ—हवे श्रीचंद्रप्रभ भगवान्नी स्तवना करे छे, अने सेवना पण ओलखावे छे, ते श्रीचंद्रप्रभनामा आठमा प्रभुना पद तेनां चरणनी सेवा अथवा अरिहंत पदनी सेवना, तेहनी छे हेवा तेनां चाल गति, तेहमां जे हलिया तेनां तेवी टेवें पड्या छे, तेहने प्रभुसेवन विना काइ गमे नहीं, तेहने असंख्यात प्रदेशी आत्म [illegible] [illegible] [illegible] छे, ते [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्पर्शना करी, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अनु-
[illegible] अनुभवयोगी

सुद्धं न याणंति ॥ १ ॥ नाणाहिओवरतरं, हीणोवि हु पवयणं पभावंतो ॥ नयदुक्करं करंतो, सुट्ठुवि अप्पागमो पुरिसो ॥२॥ इत्यादिक वचनें भावधर्म ते मुख्य छे. द्रव्य विना भाव ते गुणकारि छे, पण भाव साध्यरुचि विना एकलुं द्रव्य ते कामनुं नथी, ए परंपरा छे, वली परभाव जे आत्मधर्मथी अन्य पुण्यबंध शुभकर्मनो विपाक तेहनी कामना अभिलाष विना जे द्रव्यसेवना, ते कामनी जाणवी. ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

भावसेव अपवादें नैगम, प्रभुगुणने संकल्पें जी ॥
संग्रह सत्ता तुल्यारोपें, भेदाभेद विकल्पें जी ॥
श्री० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे भावनिक्षेपाना बे भेद छे, ते कहे छे. एक आगम भावनिक्षेपो, बीजो नोआगम भावनिक्षेपो. तिहां भावसेवनाना पदना अर्थने जाणतो थको तेवा उपयोगें प्रवृत्ते, ते पुरुषने आगमथी भावसेवना कहिएं, ए आधाराधेयनो अभेद ग्रही, निक्षेपो कह्यो, तथा जे जीव भावसेवनायें परिणम्या, तेहनी भक्ति, साधना, परिणति, ते नोआगमथी भावसेवना कहियें. इहां मूल वस्तुधर्में विचारतां आत्मद्रव्यने विषे सेव्यसेवक भाव नथी, सत्तायें सर्व द्रव्य समान छे, अने कोइ द्रव्य कोईनो धर्म लेतां देतां नथी, पण जे संसारी जीव ते ते अनादिनो अढार पापस्थानके परिणम्यो, विभावभावित थको कर्ममयी थईने संसारी पुद्गलनो भिखारी, तत्त्वनो चूक्यो, मोहने बंदीखाने दुःखमयी थयो छे. ते जेवारें स्वरूपने पामे, तेवारें सिद्ध परमेश्वर थाय. तेनो श्री अरिहंत निःकर्मा तत्त्व-

पणे परिणम्या नथी, पण अनागतकालें भावसेवनापणे परिणमशे, ते भव्यशरीर द्रव्यनिक्षेपो कहियें, ए सर्व द्रव्यनिक्षेपो ते नैगमनयने मतें छे, ते बीजो भेद. तथा जे सेवनानी प्रवृत्ति अंतरंग भावसेवनाने कारणपणे वर्त्ते, ते तद्व्यतिरिक्त द्रव्यनिक्षेपे सेवना कहियें. ए त्रीजो भेद कह्यो.

तेमांहे जे योगनी वंदन नमनादिक प्रवृत्ति, ते व्यवहारनयें द्रव्यसेवना. अने जे अंतरंग विकल्पें बहुमानादिक, ते ऋजुसूत्रनयें द्रव्यसेवना. ए रीतें द्रव्यसेवनानुं स्वरूप कयुं, एटले जे अरिहंतना चार निक्षेपरूप कारण दृष्टिगोचर, श्रवणगोचर, स्मरणगोचरपणुं पामीने जे जीव, वंदन, करजोडन, नमन, मस्तक नमाववुं, इत्यादिक अभ्युत्थान अंजलि, आविनतादिकरण, चंदन पुष्पादिकें करीने अर्चन, वली गुणग्राम जे मुखथी मधुर ध्वनियें गुण कहेवा, ते द्रव्यसेवा जाणवी, अने जे आत्मा संसार पराङ्मुख अरिहंतना गुणनुं अत्यंत बहुमान, असंख्यात प्रदेशें अरिहंतनी अरिहंततानी आश्चर्यता, अद्भुतता, तथा अरिहंतनिमित्तना विरहें अक्षमता, अने अरिहंत ईहारूप परिणाम तेथी अभेदपणे थवानी भावपणे निपजाववानी ईहा, ते द्रव्यसेवा लेखे छे, परंतु भावरुचिपणा विना द्रव्यप्रवृत्ति ते बाललीला समान छे, तेमाटे इहां कह्यो जे भाव तेथी अभेद थवानी ईहा सहित जे सेवा ते द्रव्यसेवा जाणवी, * द्रव्यप्रवृत्ति विना एकला भावधर्मने पण तत्त्वार्थटीकामां आचार्यें साधन कह्युं छे. तथा सम्मतिग्रंथे । चरण करण प्पहाणा, ससमय परसमय मुक्कवावारा ॥ चरणकरणस्स सारं, निच्छय य

भोगीने पूज्यपणे अविलंबतां नीपजे, माटे स्वकार्य करवाने जे परमात्मा निष्पन्न सिद्ध तेहने निमित्त कारणपणे अवलंबीने अंतरंगपरिणतियी सेवे, ते जिहां सुधी एनी शुद्धसत्ता संपूर्ण पर्दे न थाय, तिहां सुधी ए सेवक अने संपूर्ण शुद्धानंदमयी थया, ते सेव्य जाणवा, ए निमित्तावलंबी सेवा, ते अपवाद सेवा, अने ते सेवा करतां पोतानु साध्य निपजाववुं, ते उत्सर्ग सेवा कहियें ॥ उक्तं च ॥ उक्कोसो उस्सग्गो, जस्स संपुण्ण वत्थुसप्भावो ॥ अववाओ तस्साहण, तस्सुद्धिकरो अणेगविहो ॥ इति ॥ १ ॥

जे जेहनो उत्कृष्ठो संपूर्ण निर्मल निर्दोष स्वभाव थयो, जेथी आगल बीजी अवस्था कांहिं नही, ते उत्सर्ग कहियें, अने ए उत्सर्गने निपजाववा माटे कारणरूप जे मार्ग अंगीकार करवो, ते अपवाद कहियें. इहां सेवा मध्ये जे आत्मसाधन थयुं, ते उत्कृष्ट अने ते आत्मसाधन निपजाववाने जे कारण अविलंब्यां जोइए, ते सर्व अपवादें जाणवुं. तेमां अरिहंतनी सेवना ते आत्मसाधननुं कारण छे, तेथी ए अपवाद सेवना छे, ते सात नयें करी सात भेदें छे, ते सात नयनुं संक्षेपें स्वरूप बतावे छे.

१ अनेके गमा. सकल्पारोपाग्रआश्रयाद्या यस्य स नैगमः । जिहां अनेक नामादिक गमा ग्रहवाने नया संकल्पे, आरोपे, अने अंशोपण वस्तुने माने, ते नैगमनय कहियें.

२ संगृह्णाति वस्तुसत्तात्मकं सामान्य स संग्रहः । जे सामान्यपना ग्रहे,

३ संग्रहगृहीतं अर्थविशेषेण विभजतीति व्यवहारः। संग्रहनयें ग्रह्युं जे सामान्य, तेहने अंश अंशभेदें जुदुं जुदुं वेहेंचे, ते व्यवहारनय कहियें.

४ ऋजु अतीतानागतवक्रत्वपरिहारेण ऋजु सरलं वर्तमानं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः। जे ऋजु सरल वर्तमान अवस्थानें ग्रहे, अतीत अनागतनी वक्रतानें लेये नहिं, ते ऋजुसूत्रनय कहियें.

५ शब्दार्थस्य तद्वर्णस्य परिणतिः इति शब्दः। प्रकृतिप्रत्ययादिक व्याकरण व्युत्पत्तिए सिद्ध थयेलो शब्द, तेहना जे पर्यायार्थ थोडे. ते पण परिहरे. वस्तुने वस्तु माने. तत्त्वार्थवृत्तौ शब्दवशादर्थप्रतिपत्तिरिति शब्दनयः शब्दानुरूपं अर्थं निरूपति। ते शब्दनय कहियें.

६ तत्त्वतः प्रत्येकमर्थपर्यायवचनपर्यायिनः नरत्वमिव वचन भिन्नार्थत्वेन नानार्थतामवबुद्ध्वा ग्रहक इति समभिरूढनयः। जे वस्तुना एकार्थ पर्याय तथा जे नामना पर्याय शब्दपर्याय छे. ते सर्वे शब्दे भिन्न छे. यथा घट कुंभ इत्यादि. ते शब्दे भिन्न तेहनो अर्थ पण तद्भावरूपपणे भिन्न छे. ते सर्व वचनपर्यायभिन्नपणानी वस्तुनें वस्तुपणे ग्रहे. ते समभिरूढनय कहिये.

७ सर्व अर्थवत्त्वे प्रतिक्रियापर्यायेण तद् तदर्थेन [illegible] एवंभूत। [illegible] सर्वें [illegible] तेहनें भिन्न [illegible] ग्रहे, ते [illegible]

इ [illegible] ३

व्यवहार, ४ ऋजुसूत्र. ए चार नयने द्रव्यार्थिकपणे द्रव्यनिक्षेपे मान्या छे, अने शब्दादिक त्रण नयने पर्यायार्थिकपणे भावनिक्षेपे मान्या छे, तथा ऋजुसूत्रादिक चार नयने भावपणे कह्या छे, तेनो आशय कहे छे जे वस्तुनी अवस्था त्रण छे, १ प्रवृत्ति, २ संकल्प, ३ परिणति, ए त्रण भेद छे. तेमां जे योगव्यापार संकल्प, ते चेतनाना योग सहित मनना विकल्प, तेने श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमण प्रवृत्तिधर्म कहे छे. तथा संकल्पधर्मने उद्रेक मिश्रपणा माटे द्रव्य निक्षेपे कहे छे, मात्र एक परिणति धर्मने भावनिक्षेपो कह्यो छे.

अने सिद्धसेनदिवाकरें विकल्प ते चेतना माटे भावनय गवेष्यो छे, अने प्रवृत्तिनी सीम, व्यवहारनय छे, अने संकल्प ते ऋजुसूत्रनय छे, तथा एक वचनपर्यायरूप परिणति ते शब्दनय छे, अने सकल वचन पर्यायरूप परिणति ते समभिरूढनय छे, तथा वचन पर्याय अर्थ पर्याय रूप संपूर्ण ते एवंभूत नय छे, माटे ए शब्दादिक त्रण ते विशुद्धनय छे, भावधर्ममध्ये मुख्यभावने उत्तर उत्तर सूक्ष्मनाना ग्राहक छे, ए रीतें नयनो अधिकार संक्षेपें कह्यो. हवे ए साते नयें करी अपवाद भावसेवनाना सात भेद कहे छे.

१ श्रीअरिहंतरूप स्वजाति अन्यद्रव्य तेहना स्वरूपने चिंतवते जे चेतनानो अंश प्रभुना गुणने अनुयायी संकल्प पहेलां केवारें न थयो हतो. ते संकल्पविपर्यादिकथी निवारीने प्रभुगुणे जोड्यो, ए निमित्तावलंबीपणा माटे अपवाद अनुगत परिणाम ते भावसेवना [illegible] माटे नैगमनय अपवाद भावसेवना [illegible] कारण छे.

२ श्री अरिहंतदेवनी निष्पन्न असंख्यात प्रदेशें निरावरण सर्व स्वशक्तिने वितववे पोतानी सत्ता पण तेहवी विचारे, उभयनो तुल्यारोप करे, अने अगनिपनानो पश्चात्ताप करे, निपनालुं परमात्मधर्मनुं बहुमान करे, तथा भेद कहेतां द्रव्यथी क्षेत्रथी, कालथी, भावथी, श्रीप्रभुजी तथा माहरुं द्रव्य भिन्न छे, अने सत्ताधर्में अभेद छे, एहवा सापेक्षपणे जे बहुमान युक्त सत्ता प्रगट करवानी रुचिवंत एवो विकल्प ते संग्रहनये अपवाद भावसेवना कहियें ॥ ३ ॥ इति गाथार्थः

व्यवहारें बहुमान ज्ञान निज,
चरणें जिनगुण रमणा जी ॥
प्रभुगुण आलंबी परिणामें,
ऋजुपद ध्यान स्मरणा जी ॥ श्री० ॥४॥

३ अर्थः—पोताना क्षयोपशमभावि जे ज्ञान, दर्शन, वीर्य, तेमव्यें प्रतिसमयें भासन श्रीअरिहंतनी शुद्ध स्वरूप संपदा, केवल ज्ञानादिक- अने उपकारसंपदा जे देशना धर्मकथन, ते शुद्धउपकारीपणुं छे. तथा चोत्रीश अतिशय, पांत्रीश वचनातिशय, आठ प्रातिहार्यरूप संपदा, तिहांज उपयोग राखे, अने केवारें श्रीप्रभुजीनी प्रभुता विसारे नहीं. बहुमानमव्यें श्रीवीतराग ते सर्वथी अधिक मोटापणे सद्दहे, वीर्य ते जिनभक्तिने विषे फोरवे. तथा चरण कहेतां चारित्रने श्रीअरिहंतना गुणने विषे रमण एकत्व तन्मयतापणुं पामीने रहे, इहां जे क्षायोपशमी आत्मागुणना प्रवृत्ति भासनादिक- ते सर्व श्रीअरिहंत अनुयायी थइ. ते माटे ए व्यवहारनये अपवाद भावसेवना कहियें.

४ प्रभु श्रीपरमात्मा अयोगी अलेशी, तेना गुणने अव-लंबीने आदरीने परिणाम जे अंतरंग आत्मद्रव्यनी क्षयोपशमी परिणति सामान्यचक्रभावरूप, तेमर्ये तन्मयपणे जे नहीं वीसरे एवा स्मरणपणे तदुपयोगें रहे, ते जिहां सुधी धर्मध्यानरूपें आलंबी साधे, तिहां सुधी, रुजुसूत्रनयें अपवादभावसेवना कहियें. ए पण आत्मसाधनरूप उत्सर्गभावसेवा तेहनुं कारणपणुं छे, तेथी ए अपवादसेवा कही ॥४॥ इति चतुर्थ गाथार्थः॥

शब्दें शुक्ल ध्यानारोहण,
समभिरूढ गुणदशमे जी ॥
बीय शुक्ल अविकल्प एकत्वें,
एवंभूत ते अममे जी ॥ श्री० ॥ ५ ॥

५ अर्थः—हवे श्रीप्रभुरूप शुद्धद्रव्यने आलंबीने जे जीव भावमुनिनिरुपरुचि थइ दर्शन, ज्ञान, चारित्र, ए रत्नत्र-यीमयी परिणमीने जे पृथकत्ववितर्क सप्रविचाररूप शुक्ल ध्या-नपणे परिणम्यो, तेवारें ए जीव शब्दनयें भावसेवनावंत थयो, एटले रुजुसूत्रनयमां तो प्रशस्तउदेक सहित अरिहंत गुणनी इष्टतादिक परिणामने सहकारें हतो, अने जिहां शब्द-नय थयो, तिहां प्रशस्तालंबननुं कार्य पडे नहीं. साधक जे भव्यजीव, तेहना गुण ते सर्वप्रभुगुणथी एकत्व थइ स्वरुप एकत्वना पाम्या शुक्लध्याननी शुद्धताने परिणम्या, तेवारें शब्द-नय, अपवादभाव सेवना कहियें. इहां पण निमित्तपूर्वक मंडाण छे, तेमाटे अपवादें भावसेवना कही, अथवा साधनपणा माटे अपवाद कहि बोलाव्यो.

६ जेवारें साधक जीव दशमे सूक्ष्मसंपराय गुणठाणे चड्यो शुक्लध्यानना प्रथम पायाने अंतें आव्यो, परमनिर्मल-भाव वर्यो, ते वेलाए जेटली आत्मगुणनी साधना करतां योगवीर्यनी सहायें साधकता थाय, ते सर्व अपवादें छे, अने उत्सर्गमार्गे तो योगवर्त्त पण आत्माने तजवा योग्य छे, ते पण वेदालें साधनारूप छे, तेमाटे इहां कारणिक ग्रह्यो, पण स्वरूपनत्वें नही. अने जेटलुं कारणरूप ग्रहियें, ते सर्व अप-वाद छे, माटे दशमे गुणठाणे समभिरूढनयें अपवाद भावसे-वना छे, ए पण साधकनां आसन छे.

७ जेवारें शुक्लध्यानने बीजे पाये एकत्ववितर्क अप्रवि-चाररूपें चड्यो भावमुनि निर्विकल्प समाधि वर्यो, स्वरूपए-कत्वें परिणम्यो, तेवारें साधनानुं पूर्णपणुं थयुं. ते माटे एवंभू-तनय सेवना थइ. तो कोइ पूछे जे अयोगी गुणठाणा सुधी साधना छे, तो इहां क्षीणमोहगुणठाणे सेवनानो एवंभूत केम कह्यो छो ? तेने उत्तर कहे छे जे अयोगी सुधी तो उत्स-र्गसाधना छे, अने इहां तो अपवादसाधनानो अधिकार छे, तेथी अपवादसाधना इहां पूर्ण थइ. वली कोइ पूछे जे अनंत निर्मोह अवस्थामां शुं अपवादपणुं छे ? तेहनो उत्तर. जे शुक्लध्यानने बीजो पायो पण हजी सवेदनताए एक आत्म-धर्म ग्रहवुं. ते प्रयोग छे. हजी सयोगवीर्य [illegible] सहाय छे. तथा श्रुतज्ञाननुं [illegible] छे. अने [illegible]योगनी [illegible] ने [illegible] अने तेहनुं आलंबन छे. तिहां [illegible] निर्मोही [illegible] एकत्वने [illegible]. ए

अपवाद भाव सेवनाना सात नयें करी सात भेद कह्या ॥५॥ इति पंचम ॥

उत्सर्गे समकितगुण प्रगट्यो,
नैगमप्रभुता अंशे जी ॥
संग्रह आतम सत्तालंबी,
मुनिपद भाव प्रशंसें जी ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे उत्सर्गमार्गे भावसेवनाना सातनयें करी सात भेद कहे छे. इहां जेटलुं आत्मधर्मरूप स्वकार्य नीपजे छे, ते उत्सर्गसेवा कहियें, एटले करवा योग्य जे कार्य ते उत्कृष्ट करवुं, पण तेमां जेटली ऊणता होय, तेमाटे नयकहापणा जोइयें, ते कहावी देखाडे छे.

१ ज्यारें आत्मानो शंकादिपांच अतिचार रहित क्षायिक आत्मिक तत्त्व निर्धाररूप शुद्धसमकितरूप गुण प्रगट्यो, त्यारें ए साधकआत्मानो एक अंशे प्रभुतानो गुण प्रगट्यो, तेथी आत्मानुं एक अंश कार्य थयुं. तेमाटे नैगमनय उत्सर्ग भावसेवा थई इहां [illegible] गुण निपन्यो तेने सेवा केम कहो छो [illegible] थई कहेवुं एतले [illegible] थयुं छे, अथवा जो [illegible] अनंता गुणनो [illegible] [illegible] आत्मसत्ता [illegible] [illegible]

समववाय शुद्धदेवोचि ॥ ए टीकामध्यें छे, तेथी उपादाननिष्पत्ति ते उत्सर्गसेवा जाणवी. इहां आत्माना अनंत गुण छे, तेमांथी एक समकित गुण प्रगट्यो, ते आत्मानो एक अंश प्रगट्यो, तेथीज ए नैगमनयें उत्सर्गभावसेवा थइ, अने एहीज उत्सर्ग आत्मगुणप्रभुता पण प्रगटी.

२ जेवारें ते भावमुनियें यद्यपि पोतानी आत्मसत्ता आवरी छे, तो पण जे छती हती तेने निर्धार करीने भासनगत करी, ते हवे स्वसत्तालंबी शुद्ध धर्ममयी थयो, तेहीज आत्मसत्ताभासन रमण, एकत्वसत्तासन्मुख थको रहे, एटले ए जीव आज सुधी स्वसत्तालंबी थयो हतो नहीं, ते थयो. एटलुं उपादान समर्थ्यु, माटे संग्रहनय उत्सर्गभाव सेवा कहियें.

३ जेवारें ते साधक जीव, अप्रमत्तमुनिराज अवस्था पामीने उपादान कारणता सर्वस्वरूपालंबी करी, ते अवस्था आत्मानी परिणामप्रवृत्ति ग्राहकता, व्यापकता, भोक्तृता, कर्तृता आदिक सर्व स्वरूपें वलगी, तेवारे अंतरंग वस्तुगत जे व्यवहार, ते वस्तुस्वरूपें थयो, ते व्यवहारनय उत्सर्ग भावसेवना कहियें. ए मुनिपदनो जे भाव, तेहने प्रशंसे कहेतां वखाणे ॥ ६ ॥

ऋजुसूत्रें जे श्रेणिपदस्थें, आत्मशक्ति प्रकासे जी ॥
यथाख्यात पद शब्दस्वरूपें, शुद्धधर्म उल्लासें जी॥
श्री० ॥ ७ ॥

४ अर्थः—जे आत्मा क्षपकश्रेणिपदे रह्यो थको पोता

आत्मिक शक्ति प्रकासे केतां प्रगट करे, तेने ऋजुसूत्रनय उत्सर्ग भावसेवना कहियें.

५ जेवारें आत्मानें यथाख्यात क्षायिकचारित्र प्रगट थयुं, तेवारें जे चारित्र सहकारी आत्मशक्ति प्रगटे, शुद्ध अकषायी, असंगी, निस्पृहरूप शुद्ध धर्म उल्लास पामे, चारित्र सहकारी जे वीर्यादिक तेपण जे कषायानुयायी फरता हता, ते सर्व आत्मरमणी थया, ए धर्म जेटलो उल्लास पामे, ते सर्वशब्दनयें उत्सर्गे भावसेवना जाणवी. इहां स्वरूपरमणी असहायी थयो, ते जेटलुं अन्य असहायीपणुं नीपन्युं, तेटलुं उत्सर्गसेवन जाणवुं ॥ ७ ॥ इति

भाव सयोगी अयोगीशैलेसे,
अंतिम दुग नय जाणो जी ॥
साधनताए निजगुण व्यक्ति,
तेह सेवना वखाणो जी ॥ श्री० ॥ ८ ॥

६ अर्थः—जेवारें ए आत्मायें सर्व घनघातिकर्म क्षय करीने अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य, ए चार मोटां अनंतक प्रगट कर्यां, ए चार गुणने संकर तथा सहकारें जे बीजा वक्तव्य तथा अवक्तव्य अनंता स्वधर्मीगुण प्रगट थया, आत्मिक आनंदी थया, तेवारें समभिरूढनयें उत्सर्ग भावसेवा थई.

७ जे काले शैलेशीकरण करे, आत्मप्रदेशनो घन करे, अयोगीकेवलीपणुं थाय. तेवारें एवंभूतनयें उत्सर्ग भावसेवना

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

आरोभाव ते भावद्रव्य पद,
बाह्यप्रवृत्ति निःसर्गे जी ॥ श्री० ॥ ९ ॥

अर्थः—इहां जेटलो कारणभाव, ते सर्वे अपवादें जाणवो, अने जेटलुं कार्य जे स्वगुणनिष्पत्ति, तेटलो उत्सर्ग जाणवो. ए उत्सर्ग तथा अपवादनां लक्षण तथा फलावगी सर्व बृहत्कल्पभाष्यमांथी तथा तेनी टीकाथी विस्तारपणे जोइ लेजो, अने जेटलुं बाह्यप्रवर्त्तन ते द्रव्यनिक्षेपो जाणवो. एहवी श्री चंद्रप्रभस्वामीनी सेवायें जे हलिया, ते आत्मधर्म संपूर्ण वरे ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

कारणभाव परंपर सेवन,
प्रगटे कारजभावो जी ॥
कारज सिद्धें कारणता व्यय,
शुचि परिणामिक भावो जी ॥ श्री० ॥१०॥

अर्थः—हवे कारणभाव जे श्री अरिहंतदेव तेहनी परंपराये द्रव्यभावना करतां थकां भावसेवा प्रगटे, अने भावसेवाथी उत्सर्ग धर्म प्रगटे, अने उत्सर्ग धर्म प्रगट्यो, तेवारें पोतानुं कार्य शुद्धस्वरूप अनुभवरूप प्रगटे, अने कार्य जे शुद्ध सिद्धतारूप ते सधे केतां नीपजे, ते कार्य नीपने कारणता जे हती तेहनो व्यय केनां नाश थाय, केमके कार्यनी ऊंणतायें कारणता छे, परतु कार्य नीपने कारणधर्म रहे नही, तेवारें शुं रहे ? ते कहे छे. जे शुचि केना पवित्र भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म रूप हेतुमद्भावरूप मल रहित जे आत्मानो

पारिणामिक भाव छे, जेपणे एनुं मूल लक्षण छे, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावरूप तेपणुं रहे, परमानंद अविनाशी अवस्था वरे ॥ १० ॥ इति ॥

परमगुणी सेवन तन्मयता,
निश्चय ध्यानें ध्यावे जी ॥
शुद्धातम अनुभव आस्वादि,
देवचंद्र पद पावे जी ॥ श्री० ॥ ११ ॥

अर्थः—ए रीतें परम केतां उत्कृष्ट गुणी जे श्री अरिहंत शुद्धदेव तेहनी सेवा अति दुर्लभ छे, ते पामीने तेहमांहे तन्मय थईने जे जीव निश्चय केतां निर्धारे, अथवा निश्चय केतां पोताने स्वरूपध्यानें एकत्वता रूपें जे ध्यावे, ते जीव, शुद्ध निष्कलंक जे आत्मा चिदानंद घन, तेहनो जे अनुभव केतां यथार्थ ज्ञान वेद्य संवेद्य पद सहित तेहने आस्वादिने देव जे निर्ग्रंथ अथवा भुवनपति प्रमुख चार निकायना, तेहमां चंद्रमा समान भाव उद्योत समता शीतलतानां कारण जे अरिहंत ते रूप पद-स्थानक ते प्रत्यें पामे, एटले अहो भव्य जीवो ! जो तमें पोताना आत्मसुखना इच्छक थया छो, अने शुद्धानंदने विलसो, एवी अभिलाषा तमने छे, तो श्रीचंद्रप्रभस्वामी शुद्धदेव, अशरणना शरण, जगदाधार, जगज्जीवना परोपकारी, मोह तिमिरनो ध्वंस करवाने भावसूर्य जेहवा, कर्मरोगना परम वैद्य, महा माहण, महा गोप, महानिर्यामक, महासार्थवाह, सम्यक्दृष्टि जीवना जीवनप्राण, देशविरतिने तो महामंत्रनी परें जपवा योग्य, मात्रु निग्रंथ जेहना आज्ञाए चाले छे, उपाध्या-

आत्मभाव ते भावद्रव्य पद,
बाह्यप्रवृत्ति निःसर्गे जी ॥ श्री० ॥ ९ ॥

अर्थः—इहां जेटलो कारणभाव, ते सर्व अपवादें जाणवो, अने जेटलुं कार्य जे स्वगुणनिष्पत्ति, तेटलो उत्सर्ग जाणवो. ए उत्सर्ग तथा अपवादनां लक्षण तथा फलावणी सर्व बृहत्कल्पभाष्यमांथी तथा तेनी टीकाथी विस्तारपणे जोइ लेजो, अने जेटलुं बाह्यप्रवर्त्तन ते द्रव्यनिक्षेपो जाणवो. एहवी श्री चंद्रप्रभस्वामीनी सेवायें जे हलिया, ते आत्मधर्म संपूर्ण वरे ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

कारणभाव परंपर सेवन,
प्रगटे कारजभावो जी ॥
कारज सिद्धे कारणता व्यय,
शुचि परिणामिक भावो जी ॥ श्री० ॥१०॥

अर्थः—हवे कारणभाव जे श्री अरिहंतदेव तेहनी परंपरायें द्रव्यभावना करतां थकां भावसेवा प्रगटे, अने भावसेवाथी उत्सर्ग धर्म प्रगटे, अने उत्सर्ग धर्म प्रगटयो, तेवारें पोतानुं कार्य शुद्धस्वरूप अनुभवरूप प्रगटे, अने कार्य जे शुद्ध सिद्धतारूप ते सधे केतां नीपजे, ते कार्य नीपने कारणता जे हती तेहनो व्यय केतां नाश थाय, केमके कार्यनी ऊणतायें कारणता छे, परंतु कार्य नीपने कारणधर्म रहे नहीं, तेवारें शुं रहे ? ते कहे छे. जे शुचि केतां पवित्र भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म रूप हेतुसद्भावरूप मल रहित जे आत्मानो

परिणामिक [illegible] छे, [illegible] छे. [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] अविनाशी अवस्था करे ॥ १० ॥ इति ॥

परमगुणी सेवन तन्मयता,
निश्चय ध्यानें ध्यावे जी ॥
शुद्धातम अनुभव आस्वादी,
देवचंद्र पद पावे जी ॥ श्री० ॥ ११ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे. [illegible] [illegible] ध्याने, ते [illegible] [illegible] वेहनो जे अनुभव [illegible] पद सहित वेहने आस्वादिने [illegible] [illegible] महत्व धार निकापना, वेहनुं [illegible] [illegible] समता शीतलतानां [illegible] [illegible] ते प्रत्ये पावे, एटले [illegible] [illegible] पोतना आत्मगुणना [illegible] [illegible] [illegible] एवी अभिलाषा [illegible] [illegible] [illegible]

यना हृदयरूप सरोवरना हंस, आचार्यजीना नाथ, गणधरना साक्षात् मोक्षहेतु अने स्याद्वादधर्मना उपदेशक, एहवा श्री अरिहंतदेव तेनी सेवा करो, एहज आधार छे, ए श्रीदेवचंद्र-भनी सेवा जिहां सुधि तमारी संपूर्ण सिद्धता न थाय, तिहां सुधि अखंड रहेजो, एहीज सार छे ॥ ११ ॥

॥अथ नवम श्री सुविधिनाथजिन स्तवनं॥

थारा महेला उपर जरूसे बीजली हो लाल ॥ जरूसे॥ए देशी

दीठो सुविधि जिणंद, समाधिरसें भर्यो हो लाल ॥स०॥
भास्यो आत्मस्वरूप, अनादिनो वीसर्यो हो लाल ॥अ०
सकल विभाव उपाधि, थकी मन ओसर्यो हो लाल॥थ०
सत्तासाधन मार्ग, भणी ए संचर्यो हो लाल॥भ० ॥१॥

अर्थः—हवे श्री सुविधिनाथपरमात्मानी स्तुति करे छे. कोइक भव्य जीव अनादिकालनो मिथ्यात्व, असंयम, कषाय-योग रूप द्रव्यभाव हेतुपणे परिणम्यो, एकेंद्रिय सूक्ष्म, बादर, तथा बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्री, पंचेंद्रीपणे अनंता भव सुधी भव-भ्रमणमां फरतो अनेक कुदेवनी वासनायें वासित थको कुदेवने देवबुद्धिए मानतो अथवा सुदेव जे श्रीवीतराग तेहने कर्तृत्व प्रमुख दोषे मानतो थको कोइ कालें श्रीवीतराग प्रभुनी प्रभुता दीठी नहीं, ते केटलेक भवस्थितिनो परिपाक करी, कोइक पुण्यना उदयें श्रीसुविधिनाथ परमेश्वरनी मुद्रा दीठी, ते पण अरूपी अनंतगुण रमणतायें श्रद्धान भासन गोचर थई. ते

श्री अरिहंतनी प्रभुता देखीने उल्लसितचित्तें ते भव्य जीव. श्री वीतरागनी उपकारता पाम्यो, तेवारें ते प्रीतें हर्षथी बोले छे, जे दीठो केतां भासनपणे प्रतीत सहित सुविधिनाथ प्रभुजी दीठो, पण ते केहवो दीठो ? जे समाधि केतां आत्मगुणनुं विपरीतप्रवर्त्तन ते उपाधि, अथवा विषय कषायने अनुयायि जे प्रवर्त्तन, ते पण उपाधि, तथा जे तप्त उद्धत वक्रता परिणामादिक, सर्वविभाव ते पण उपाधि तेने निवृत्तें सकलगुण स्वरूप परिणामी थये जे आत्मगुणनी वस्तुगतें स्थिरता ते समाधि तेहनो रस, तेणें करी भरयो केतां संपूर्ण एटले परमसमाधिमयी श्रीसुविधिनाथ दीठो, ते दीठाथी एक मोटो लाभ थयो, ते शुं लाभ थयो ? तोके भास्यो केतां जाणपणामां आव्यो, पोताना आत्मानुं स्वरूप ते शुद्धचिदानंदलक्षण जाण्युं, जे अनादि अतीत कालनो विसरचो भूली गयो हतो, ते श्रीप्रभु दीठां भास्युं तेथी सकल केतां सर्व जे विभाव दोष आत्मिक अशुद्धतारूप जे उपाधि तेहथकी मन केतां चित्त ओसरयो केतां पाछो हठ्यो, जे ए विभाव परिणति हुं नहीं तथा विभाव परिणतिनो हुं कर्त्ता पण नहीं, ए मुने करवुं भोगववुं परिणमवुं घटे पण नहीं, ते जेटली क्षयोपशमी आत्मपरिणति ते सर्व राग द्वेष असंयमथी निवृत्तवा लागी, अने सत्ता केतां जे अनंतगुणरूप आत्मानी सत्ता तेहना साधननी रीत केतां चाल (मार्ग) ते सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यग्चारित्ररूप जे आत्मिक कार्य, ते मार्ग भणी ए भव्यजीव परिणम्यो, एटले जेथी आत्मसत्ता प्रगट थाय, ते मार्ग भणी ए आत्मा संचरयो केतां प्रवर्त्यो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

तुम प्रभु जाणग रीति, सर्व जग देखता हो लाल ॥स०॥
निजसत्तायें शुद्ध, सहुने लेखता हो लाल ॥स०॥
परपरिणति अद्वेष, पणे उवेखता हो लाल ॥प०॥
भोग्यपणे निजशक्ति, अनंत गवेखता हो लाल
॥ अ० ॥ २ ॥

अर्थः—वली हे प्रभुजी ! तुमें जगत्षडात्मक तेने केवलज्ञान, तथा केवलदर्शने करी देखो छो, पण जाणंग रीतें एटले राग द्वेष रहित जे एक आत्मानो जाणंग गुण छे, तेथी सर्वभाव जाणो छो, परंतु तेमां शुभपरिणामी वस्तुना ग्राहक नथी, अने अशुभपरिणामी वस्तुना द्वेषी नथी, यथार्थ रीतें जगत्‌ना जाण छो, कर्त्तापणं, भोक्तापणं, ग्राहकपणुं स्वामिपणुं एटलां वानां टालीने अहंबुद्धि रहित सर्वभावना जाणंग छो, वली हे प्रभुजी ! तुमें केहवा छो ? जे सर्वद्रव्यने पोताना सत्तायमें शुद्ध, निर्दोष, निःसंग लेखो छो, एटले पंचास्तिकायमां पण अस्तिकाय तो परसंग विना छे, अने पुद्गलनुं संयोगीपणुं ते भेदसंघातधर्म छे, पण कर्त्तापणे नथी, जातें स्वसत्ताने लोपतो नथी, अने जीवने यद्यपि अनादि विभाव छे, परंतु सत्तारूपें मूलधर्मेज छे, ते प्रभुजी ! तुमें जीवपणुं मूलसत्तायेंज लेखवो छो, तेमां परपरिणति भावअशुद्धता, ज्ञानावरणादि कर्म, [illegible] क्रोधादिक सर्वने अद्वेषपणे आत्मधर्मथी भिन्न माटे [illegible] छो तेनो [illegible] करता नथी [illegible] जे नजे, तेने त्याग न [illegible], समता [illegible] त्याग [illegible] छो, केम के समता

तुमे भोगपणे पोतानो भोग भोगवो छो, निजशक्ति जे अनंतगुणपर्याय रूप, परमचैतन्यरूप, परमानंदरूप, सहजसुखरूप, एवी जे अनंती तत्त्वविलासता तेने भोग्यपणे गणो छो, स्वधर्मनेज भोग्य जाणो छो, माटे हे सुविधि परमेश्वर ! तमे परमात्मतारूप परम धर्मना भोगी छो जी ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

दानादिक निज भाव, हता जे परवशा हो लाल ॥ह०॥
ते निजसन्मुख भाव, ग्रही लही तुज दशा हो लाल॥ग्र०
प्रभुनो अद्भुत योग, सरूपतणी रसा हो लाल ॥स०॥
भासे वासे तास, जास गुण तुज जिसा हो लाल
॥ जा० ॥ ३ ॥

अर्थः—दानादिक आत्मधर्म जे क्षयोपशमी छे, ते सर्व परानुयायी छे, पुद्गलानुयायी छे, ते अनादिना परवश थई रह्या छे, ते सर्व, हे प्रभु ! ताहरी शुद्ध वीतराग दशा [illegible] तेनो पामीने ते क्षायोपशमीभाव सर्व आत्म सत्तानो सन्मुख थयो [illegible]. [illegible] थाय. एटले अरिहंतावलंबनी थया पछी एटले संपूर्ण ते स्वरूपावलंबनी थाय, गुणावलंबनी थाय अने हे प्रभुजी ! ताहरो योग तेनो [illegible] स्वरूपनो रस तेना [illegible] अद्भुत छे. निर्विकार, निःस्पृह [illegible], [illegible] ज्ञान अने [illegible] निर्विकार [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], हे [illegible] अनंत स्वभाव

अनंत पर्याय उत्पाद, व्यय, ध्रुव, भेदाभेद, अस्ति नास्तिरूप स्वरूपने लीने वर्ते छे, एहवी रत्नत्रयी, हे परमेश्वर ! ताहारे विषे परिणमी छे, तेहनी प्रतीत ते वासना तथा ओलखाण ते भासन ते तेहने थाय, जेहने तुज पेखतां तुमारा जेवा गुण प्रगटपा होय, एटले हे नाथ ! हे सर्वज्ञ ! हे त्रैलोक्य-दीपक ! माहरी रत्नत्रयी ते तुझ समान गुणी होय, तेहनाज भासनमां आवे ॥ ३ ॥

मोहादिकनी घूमि, अनादिनी उतरे हो लाल ॥अ०॥
अमल अखंड अलिप्त, स्वभावज सांभरे हो लाल ॥स्व०
तत्त्वरमणशुचि ध्यान, भणी जे आदरे हो लाल ॥भ०॥
ते समतारस धाम स्वामिमुद्रा वरे हो लाल ॥स्वा०॥४॥

अर्थः—हे प्रभु ! ताहरी मुद्रा ते परम समताई धाम छे, एवी बीजी कोइनी न होय, केम के एहवी सकल परभाव रहित परिणति, तो जेणे एम कर्म्य होय, तेनेज निरखे, ते कहे छे, मोह ते मूढता परिणाम, तेहनी भूमि जे स्वरूप अग्राहकता, परभावग्राहकता, परभावरमणतारूप विभावता ते अनादि कालनी आत्माने विषे छे,

इहां प्रश्न- जे ए विभावता अनादिनी छे, ते आत्मानो स्वपरिणाम छे किंवा परपरिणाम छे ? जो स्वपरिणाम छे, तो विभाव शा माटे कहो छो ? अने जो परपरिणाम छे तो अनादि केम कहिये ? तेहने उत्तर- जे आदि केतां पहेलो जीव अने पछी कर्म कहिये तो पहेला सिद्ध पछी कर्म लागे, अथवा पहेला कर्म अने पछी जीव, एम कहिये तो कर्ता

विना कर्म केम संभवे ? ए पक्ष उपजे, ते माटे अनादि सहजातसंयोग छे. तिहां कोइ पूछे जे उभय संयोग एकठो कह्यो, तो कारण कार्यनो संबंध केम रहे ? तेहने उत्तर जे, उपादान धर्मे एक समयमां एकठोज कार्यकारणता छे, जेम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानने छे, तेनी पेरें इहां पण श्री विशेषावश्यकथी जाणवुं,

यदुक्तं ॥ गाथा ॥ नव कम्मस्स य पुव्वं, कत्तुरभावे समुप्भवो जुत्तो ॥ निक्कारणओ सोविय, तह जुगवयुपत्ति भावे य ॥ १ ॥ इत्यादि गाथाथी जाणवो. कोइ पूछशे जे अनादिनो मळेलो तेनो वियोग केम थाय ? तेहनें कहियें ॥ गाथा ॥ जह चेह कंचणोव्वल, संयोगो णाइ संतय गओवि ॥ वुच्छइई सोवायं, तह जोगो जीव कम्माणं ॥१॥ इति पूज्यवाक्यात्. एटले ए विभावपरिणाम यद्यपि अनादिनो छे, पण प्रकृतिक छे, स्वरूप नथी, माटे एनो वियोग ते कीधो थाय. तेवारें कोइ कहेशे जे ए विभावनुं कर्त्तापणुं केम छे ? तेने कहे छे. जे आत्मा स्वरूपकर्त्ता तेहने स्वरूपआवर्णे परभावसंयोगें परकर्त्तापणुं थयुं छे, ते विभावनोहनी भूमि उतरे, मिथ्यात्वनी भुल टळे, तेवारें अमल केतां रागद्वेष रहित अखंड केतां केवारें खंडाय नहीं, अलिप्त केतां परसंगना लेपरहित एहवो पोतानो सहजस्वभाव सांभरे, भासन गोचरमां आवे, यद्यपि कर्मे लेपाणो छे, तो पण स्वभावें अलिप्त छे, निरामय छे, कर्मसंबंध छे पण कर्मथी न्यारो छे, निःसंग छे, एहवो आत्मा जेवारें ओळखाणमां आवे, पछी तेहज साधक आत्मा पोतानुं तत्त्व जे शुद्धनिश्चयनयथी वस्तुस्वभाव तेहमां रमे, अनादि पौद्गलिक अशुद्धवर्णादिग्मन तजीने. पोताना

ज्ञानादि अनंतगुणमां रमे, एहज तत्त्व चारित्रता प्रगटे, पछी शुचि केतां पवित्र निर्मल ध्यानते प्रथम अरिहंतादि गुणीना गुण स्वरूपमां तन्मयता रूपधर्मध्यान ध्यायीने पोताना अनंता पर्यायनी परिणति आगमथी अनुभवेकत्व सत्तागत तिरोभावीनुं भासन एकत्व शुक्लध्यान भणी जे पुरुष आदरे, केतां अंगीकार करे, ते पुरुष सर्व विभाव क्षय करीने परम समतारसना धाम एहवा स्वामी श्री जिनेंद्र देव, तेहनी मुद्रा पामे, एटले वीतरागावस्था पामे, निर्मल पूर्णानंदी थाय ॥४॥

प्रभु छो त्रिभुवन नाथ, दास हुं ताहरो लाल ॥ दास० ॥
करुणानिधि अभिलाप, अछे मुझ ए खरो हो लाल ॥अ०॥
आतमवस्तु स्वभाव, सदा मुझ सांभरो हो लाल ॥स०॥
भासन वासन एह, चरण ध्यानें धरो हो लाल ॥च०॥५॥

अर्थः—हवे प्रभुथी विनति करी पोतानो मनोरथ कहे छे, हे प्रभु ! तमें त्रिभुवनना नाथ छो, सम्यग्दर्शनादि गुण प्रगटावाना तथा रक्षवाना परम कारण छो, अने हुं तमारो दास छुं, इहां श्री वीतरागनुं दासपणुं तो समकिती, देशविरति, तथा सर्वविरतिने विषे छे, पण इहां तो नम्रतावाचक उपचार वचन छे, माटे हे करुणानिधि ! हे करुणाना समुद्र ! मुझने ए खरो अभिलाष छे, ते कहुं छुं, जे माहरो आत्मानो वस्तुस्वभाव
" मेय दीवेम हम्मेण वंदेम नमेम सेवमेण परिमंडलेम
विज्जेय नंदेम दोदीसुम हुविट्टेम मुट्ठिकोम गुत्तिम गुत्तिमा
तिनेम वदुरुम समादुम अविसेम हुदुम गुरुदुम गदुम
... हवेम निजरुम कुमरुम वाडुम वदुम धवम गुरुम

पुरिसेण अभहापरिणेसणे उवमाणविज्झति अरूवी सत्ता अपयस्स पयं नत्थी सेणं सद्देणं रूवेणं गंधेणं फासेणं इति आचारांगोक्तं " तथा शुद्धस्वसत्ता स्वरूपी, अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, अनंत स्वरूपकर्त्ता, स्वरूपभोक्ता, स्वरूपपरिणामी, असंख्यप्रदेशी, प्रतिप्रदेशें अनंतपर्यायी नित्यानित्यादि अनंतस्वभावी, स्वकीयकारकचक्रपरिणामीरूप माहारो स्वभाव, ते सदा निरंतर मने सांभरो, भासनमां रहो, वासना, प्रतीत, भासन, ज्ञान, चरण, तेमांहे रमणध्यान तेहज स्वभावमां तन्मयता धरो. ए मनोरथ सदा माहरो छे, साधकभावें साधक रीतें सिद्धावस्थायें सिद्धरीतें सदा रहेजो ए अभिलाप छे ॥ ५ ॥ इति ॥

प्रभुमुद्रानो योग, प्रभु प्रभुता लखे हो लाल ॥प्र०॥
द्रव्यतणे साधर्म्य स्वसंपत्ति ओलखे हो लाल ॥स्व०॥
ओलखतां बहु मान, सहित रुचि पण वधे हो लाल॥स०
रुचि अनुयायी वीर्य, चरणधारा सधे हो लाल
॥ च० ॥ ६ ॥

अर्थः—इहां कोइ पूछे जे तुं माहरा आत्मधर्मनो रुचिवंत थयो, तेवारें प्रभुजीनुं शुं काम छे? तेने उत्तर जे, आत्मस्वभाव विसरी, परभावरंगी थइ, ए माहरो आत्मा शरीरसंगी, धनसंगी, अनंगी, कुलिंगी, तथा लिंगीपणे ममतालिंगी थइ रह्यो छे. स्वसत्ता धर्म विसरी गयो छे, ते हवे अनंतज्ञानी, परम अक्रोधी, प्रभुनी मुद्रा, भावनिक्षेपरूप तेहनो योग मले, तेवारें अनंतगुण रूप, [illegible] [illegible], शुद्धात्मस्वरूप एवी शांतमुद्रा प्रभुनी तेने लखे, तेने ओलखे, ते ओलखतां

पछी जीवद्रव्यपणाना साधर्मे केतां सरखापणे जे सिद्ध यया, ते पण जीव अने हुं पण जीव माटे सत्तापें सरिखा छैयें. गुणपर्याय स्वभावें तुल्य छैयें. तो जेवी संपदा श्रीसुविधिनाथ परमेश्वरने प्रगट थई छे, तेहलीज संपदा माहरी सत्तामां पण छे, तेथी हुं पण ते परमेश्वर जेटली संपदानो धणी छुं, एम ओलख्या पछी ते संपदा उपर बहुमान आवे, तेथी ते संपदानी रुचि प्रगटे, जे एहवी संपदा माहारे केवारें नीपजशे ? अने जेनी रुचि होय, तेहनो उद्यम थाय, तेवारें वीर्यगुणनुं स्फुरण ते पण रुचिने अनुयायी छे, अने जे दिशें वीर्य स्फुरे, तेह-मांज रमण थाय. एटले तेहनुंज नीपजवानुं आचरण थाय, एटले प्रभु दीठे प्रभुनी प्रभुता भासे, ते प्रभुता पोतामां जाणे पछी ते प्रगट करवानी रुचि उपजे, तेथी रुचिनुं वीर्य तथा चारित्र जे रमण, ते पण ते दिशें चाले, तेवारें ते सिद्धता प्रगटे, तेथी जिनमुद्रानो योग ते थयुं साधन छे, ए मार्ग कह्यो ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

क्षायोपशमिक गुण सर्व, थया तुज गुणरसी हो लाल ॥थ०
सत्ता साधन शक्ति, व्यक्तता उल्लसी हो लाल ॥व्य०॥
हवे संपूरण सिद्धि, तणी शी वार छे हो लाल ॥त०॥
देवचंद्र जिनराज, जगत्र आधार छे हो लाल

॥ ज० ॥ ७ ॥

अर्थ — पछी क्षायोपशमिगुण चेतना वीर्य, दानादि सर्व, तेवारें तुझ केता ताग गुणना रसी थया, तेवारें ते नियम-गुन रसा शक्ता थवाथी अनन्तगुणरूप मत्ता नेहज साधन

निपजाववानी आत्मशक्ति ढंकानी हती, ते व्यक्त केतां प्रगटपणे उल्लसी केतां उल्लास पामी. हवे निमित्त कारण मळे उपादान कारण प्रगटे, आत्मा तत्वरुचि, तात्त्विक, तत्त्वालंबी थाय, तो संपूर्ण अविनाशी सिद्धता निपजतां शी वार छे ? एटले पुष्टकारणें नियमा कार्य निपजे, तेमाटे देवचंद्र स्तुतिकर्त्ता, अथवा सर्वदेवमांहे चंद्रमा समान ते जिनराज, श्रीवीतराग, ते सर्वजीवना आधार छे, एटले जिनमुद्राने आलंबनें अनंत जीव सिद्धि वरया, तेथी अरिहंतालंबने सिद्धता निपजे, ए नियामक छे, वास्ते अरिहंतस्मरण, वंदन, नमन, स्तवन, ध्यान करो. हे भव्य जीवो ! तमने एहीज आधार छे ॥७॥ इति श्रीसुविधिजिनस्त० ॥

॥ अथ दशम श्रीशीतलनाथजिन स्तवनं ॥

॥ आदर जीव क्षमागुण आदर ॥ ए देशी ॥

शीतल जिनपति प्रभुता प्रभुनी,
मुझथी कहीय न जाय जी ॥
अनंतता निर्मलता पूर्णता,
ज्ञान विना न जणाय जी ॥शी०॥ १ ॥

अर्थः—हवे दशमा परमेश्वर श्रीशीतलनाथजीनी स्तवना करे छे. श्रीशीतलनाथनी अनंत अविनश्वर आत्मिक प्रभुता ते प्रत्यक्ष तो केवळज्ञान गम्य छे, अने सम्यग्दृष्टि [illegible]वेने तो श्रद्धामां छे, ते कहे छे. हे शीतल जिनपति ! तुमने

कषाय, तृष्णा, नोकषाय, तापरहित परम वीतरागता, निस्पृहता, परम परभाव अभोग्यता रूप, शीतलता प्रगटी छे अने पति केतां क्षीणमोही प्रभुखना पति तेनी प्रभुता ठकुराइ अनंत सहज संपदातेमुज अल्पज्ञानीयी तो कही न जाय, केम जे सिद्धना अभिलाप्य, अनभिलाप्य, सर्वपर्याय निरावरण प्रगट थया छे, तेमां अनभिलाप्य पर्याय श्रीकेवली जाणे, पण वचनें अगोचर छे, माटे कहि शके नहीं, अने अभिलाप्य पर्याय अनंता छे, ते पण वचननो क्रम प्रवर्त्तन छे माटे. मित आउखें कहेवाय नहीं. तिहां अनंता जीवद्रव्य, ते एकेका द्रव्यना प्रदेश असंख्याता छे, ते वली एकेका प्रदेशें ज्ञानादि गुण अनंता छे, ते वली एकेका गुणना पर्याय अनंता छे तेमध्ये स्वभाव अनंता छे ॥ उक्तं [redacted] ॥ जीवा-पुग्गल समया, दव्वपएसा य पज्जवा चेव ॥ थोवाणंताणंता विसेसमहिया दुवेणंता ॥ १ इति तथा निर्मलता ते ए सर्व पर्याय निरावरण, निःसंग निःसहाय छे. अने पूर्णता केतां सर्व शक्ति प्रगटभावे पूर्ण छे, ते सर्व केवल ज्ञान विना जणाय नहीं ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

चरम जलधि जल मिणे अंजलि,
गति झींपे अतिवाय जी ॥
सर्व आकाश ओलंघे चरणें,
पण प्रभुता न गणाय जी ॥ शी० ॥ २ ॥

अर्थः—त्यां दृष्टांत, जेम चरम केतां छेल्लो जेनी साधिक तीन रज्जु, बाह्य परिधि छे, एहवो जलधि केतां स्वयंभूरमण समुद्र तेहनुं प्रबल जल, तेने कोइ अंजलियें मापी

शके अथवा कोइ एहवो पग होय जे अत्यंत प्रलय काल ना मोहोटा वायरानी गतें चाले, तथा कोइ अनंता लोकालोक भरी सर्व आकाश तेने चरणे केतां पगे करी ओलंघे एहवो तो कोइ होय नहीं, परंतु दृष्टांत मात्र दीधो छे, ते एहवा शक्तिमंतपणे पण निष्पन्न श्रीसिद्धपरमेश्वरनी जे प्रभुता ते क्षायोपशम शक्तिवालायी गनी जाय नहीं, अने श्रीवीतराग सर्वज्ञनी प्रभुता संपूर्ण ज्ञानी जाणे. परंतु ते पण वचनयोगें कही शके नहीं, तेमाटे अनंत छे ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

सर्वद्रव्य प्रदेश अनंता,
तेहथी गुणपर्याय जी ॥
तास वर्गथी अनंत गुणुं प्रभु.
केवल ज्ञान कहाय जी ॥ शी० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे ते अनंतता कहे छे. सर्व जीवद्रव्य अने अजीवद्रव्य अनंता छे, तेथी सर्वद्रव्यना प्रदेश अनंता छे, तेनां आकाश प्रदेशनी अनंतता अति मोटी छे, तेहथी [illegible] गुणनी अनंतता घणीज मोटी छे, तेहथी वळी [illegible] गुणा छे, ए अधिकार अन्य [illegible] पर्याय ते छे. ते मूळथी गुणना [illegible] [illegible]

सूत्रे छे ॥ उक्तं च ॥ दव्वाणय गुणाणय, पज्जावाण नाणेणं ॥ नाणे नाणेहिं दंसिये ॥ इति पुनः गुणाणामासओ दव्वं, एग-दव्वस्सिया गुणा ॥ लक्खणं पज्जवाणंतु, उभओ निस्सिया भवे ॥ १ ॥ इत्यादिकथी भिन्न व्याख्या छे, तिहां पन्नवणा-सूत्रे कह्युं छे. ए सेणं भंते जीवाणं पुग्गलाणं सव्वदव्वाणं सव्वपएसाणं सव्वपज्जवाणय कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा सव्व थोवा जीवा पुग्गला अणंतगुणा अद्धा समया अणंतगुणा सव्वदव्वा विसेसाहिया सव्वपएसा अणंत-गुणा सव्वपज्जवा अणंतगुणा ॥ इति गणधरवाक्यात् एटले श्रीप्रभुजीनो केवलज्ञानगुण तेनी अनंतता ते आवी रीतें छे के छ द्रव्यना गुण पर्याय सर्व अस्तिपणे रह्या छे, ते सर्वने जाणे, तथा तेनी परस्परनी अपेक्षायें नास्तिपणुं अनंतुं रह्युं छे, ते सर्वने पण श्रीप्रभुनो केवलज्ञानगुण जाणे, तथा ए सर्वथी अनंत गुणा वळी बीजा भाव होय, तो तेने पण जाणे, एम अनंती शक्ति छे, तेम दर्शननी पण तेटलीज शक्ति छे, तेमाटे द्रव्यना प्रदेश पर्याय तेना वर्ग करियें, तेहने वळी अनंतगुणो गुणाकार करियें एटलुं हे प्रभु ! हे परमेश्वरजी ! तमारु केवलज्ञान कहेवाय छे. ते श्री भगवती सूत्रे ॥ असियं नाण केवलिस्स ॥ एम कह्युं छे ॥३॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥

केवल दर्शन एम अनन्तुं,
ग्रहे सामान्य स्वभाव जी ॥
स्वपर [illegible] अनन्त
समकाल [illegible] जी ॥ सो० ॥ ४ ॥

अर्थः—एटला सर्व भाव ते सर्व सामान्य युक्त छे, ते सर्व केवलज्ञानगम्य छे, अथवा सामान्याश्रयी छे, जे विशेष ते सामान्य विना नहीं, अने सामान्य ते विशेष विना नहीं. सर्व पदार्थ सामान्यविशेष रूप छे ॥ न सामन्न तओ नत्थि, विसेसो खपुप्फं वा ॥ तथाच ॥ संमतौ ॥ दव्वं पज्जव विउअं, दव्व विउत्ता पज्जवा नत्थि ॥ उप्पायठिइ भंगा, हवइ दविय लख्खणं एवं ॥ १ ॥ इति ॥ तेमाटे सर्व द्रव्यनेविषे सामान्य धर्म अनंता छे, ते सर्व केवल दर्शनगुणें देखे छे. तेथी पण अनंत गुणा सामान्य धर्मने देखी शके एवी शक्ति छे, तेथी एटला पर्यायमय केवल दर्शन गुण छे.

उक्तं च विशेषावश्यके ॥ यावंतोहि ज्ञेयस्य पर्याया स्तावंतस्तदवभासकत्वेन ज्ञानस्याप्येष्टव्याः ॥ तथा भगवत्यंगे ॥ अणंता दंसणपज्जवा इति ॥ वास्ते केवल दर्शन पण अनंतुं छे, ए दर्शन, सर्व पदार्थना अस्तित्व सत्व वस्तुत्व प्रमेयत्वादि सामान्य द्रव्यास्तिकने देखे छे. एम चारित्र गुण ते पण अनंतपर्यायी छे, पोताना आत्माना सर्व पर्याय ते सर्वस्व धर्म छे तथा पोनाथी भिन्न अनंता जीव द्रव्य तथा सर्व अजीव द्रव्य तेहना धर्म ते परधर्म छे, एटले सर्वस्वधर्ममां रमण, परधर्ममां अरमण. ए सर्व पर्याय चारित्रना छे, एटले स्वरूपरमण, परभावनिवृत्ति, ए चारित्रनी परिणति छे. अने अनादिनुं जे पररमणीयपणुं मूलथी थयुं हतुं. ते निवारीने स्वशक्ति चेतनावीर्यादिकनी परिणति. ते परभावथी रोकीने स्वरूप विषे राखवी ए संवरभाव ते चारित्रना अनंता छे. ते संयमश्रेणी श्री व्यवहारभाष्ये कह्या छे. जे सर्व जीवथी अनंतगुणा चारित्रना

उवाडा विभागनी एकवर्गणा करियें, तेवी असंख्याती वर्गणायें एक स्पर्द्धक थाय. तेवा असंख्यात स्पर्द्धकें एक संयमस्थानक थाय. ते सर्व जघन्य संयमस्थान ते वळी असंख्य पट्गुणरीतें असंख्यपट्गुण करतां सर्वोत्कृष्ट असंख्यातमुं संयमस्थान थाय. ए चारित्रनी अविभागनी अनंतता देखाडी, ते सर्व चारित्रगुण हे प्रभु ! तमारो निरावरण छे, तेमाटे चारित्र अनंतुं छे ॥ इति ॥

द्रव्य क्षेत्र ने काल भाव गुण, राजनीति ए चार जी ॥
त्रास विना जड चेतन प्रभुनी, कोइ न लोपे कारजी॥
शी० ॥ ५ ॥

अर्थः—एम वीर्यादिक गुणनी स्वधर्में अनंतता जाणवी, एवी अनंत स्वगुण संपदामयी छो, वळी हे नाथ ! हे परमेश्वर ! तमें जगत्मां जीव तथा अजीव तेहना जे गुण, स्वभाव, पर्याय, ते सर्वे १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काळ, ४ भाव, ए रीतें चार परिणमनपणे छे, अने तमारा ज्ञानादिक गुण, ते पण द्रव्यादिक चार परिणमने परिणमे छे, अने सर्व स्वपररूपधर्मनुं जाणपणुं करे छे, ते पण चार प्रकारें परिच्छेदन करे छे. ते चार प्रकार कहे छे. १ समुदाय, ते द्रव्यधर्म जाणवो. २ आधारता ते क्षेत्रधर्म जाणवो. ३ वर्त्तना उत्पादव्ययरूपभाव, ते काळधर्म जाणवो, निश्चे विचारना तो काल द्रव्य भिन्न नथी, केमके पंचास्तिकायनी वर्त्तना ते काळधर्म छे, ए तत्त्वार्थ तथा धर्मसंग्रहणी अने विशेषावश्यकमध्ये घणी चर्चा छे. अनपेक्षित द्रव्यास्तिकनयें एहने द्रव्य कह्यु छे, परन्तु जाते द्रव्यास्तिकपणुं एम नथी, तेथी द्रव्यना वर्त्तना ते काळ, ४ तथा द्रव्यनो

मूलधर्म छे माटे. ए रीतें [illegible] छे. [illegible] निश्चयतत्वी प्रभुनी [illegible] छे. वळी श्रीप्रभुनी आज्ञा सर्वें [illegible] छे. [illegible] छे. ते [illegible] कोइ न माने. पण हे प्रभु! ते रीतें [illegible] छे ते रीतें तमारुं ज्ञान [illegible] छे. [illegible] छे. ते रीतें [illegible] परिणति छे, माटे [illegible] [illegible] सम्यग्दृष्टि, देशविरति, [illegible] छे. [illegible] निःप्रपंच [illegible] छे ॥ इति ॥ २ ॥

शुद्धाशय थिर प्रभु उपयोगें.
जे समरे तुझ नाम जी ॥
अव्याबाध अनंतु पामे
परम अमृतसुख धाम जी ॥ शी० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे प्रभुसेवा [illegible] शुद्ध निर्मल आशय [illegible] [illegible] रहित [illegible] कहुं छे ॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible] [illegible] [illegible]

अनुष्ठान ते साध्य शून्यसापेक्षना विना जे करवुं, इत्यादि दोष टाली जिन आज्ञा प्रमाणे, विधि सहित, प्रीति, भक्ति, वचन असंगरीतें. तद्‌हेतु तथा अमृत अनुष्ठानें. तिहां तद्‌हेतु ते, जे एक नेहीज साधन सानुं करवाने अर्थें मोक्ष निपजाववा माटे. अने अमृत ते त्रिकरण योगनी एकता हर्षसहित तन्मयपणे निरामय साधन. ए रीतें थिर थईने शंकादि चपलता रहित श्रीप्रभुजीना स्वजाति स्वभाविकगुणें करी उपयोग प्रभु गुणें जोडीने जे भव्यजीव आत्मार्थी थईने श्रीदीनदयाल परमसमतामयी प्रभुनुं ध्यान करवाने तेहनुं नाम समरे केतां संभारे, ते जीव अष्टकर्म गुणोने आलवने आत्मोपादानी थईने निष्कर्मा थाय, तेवारें ते अनन्त अव्याबाध सुख, पर्यंग रहित आत्मात्मिक सुख पामे. ते सुख केहवुं छे ? तो के परम उत्कृष्ट अमृत अविनाशी सहज आनन्दादिक अनंत सुखनुं धाम छे ॥ उक्तं च ॥ सिव मयल मरुय मणंत मक्खय मव्याबाह, मप्पुणरावित्ति सिद्धिगइ नामधेय ठाणं संपत्ताणं ॥ तथा संमतिग्रंथें ॥ अह मुइय मयल जगसिहर मरुय निरुवम सहाव सिद्धिसुह ॥ अनिहण मव्वाबाहं तिरियणसारं अणुहवंति ॥ १ ॥ एहवा सुख पामे ॥ ६ ॥ इति षष्ट गाथार्थः ॥

आणा ईश्वरना निर्भयना.
निर्वांछकतारूप जो ॥
भावस्याद्वित ते अव्यय मेनें
[illegible] ॥ ७ ॥

अनुष्ठान ते साध्य शून्यसापेक्षता विना जे करवुं, इत्यादि दोष टाळी जिन आज्ञा प्रमाणे, विधि सहित, प्रीति, भक्ति, वचन असंगरीतें. तद्हेतु तथा अमृत अनुष्ठानें. तिहां तद्हेतु ते, जे एक तेहीज साधन साधुं करवाने अर्थे मोक्ष निराशता माटे. अने अमृत ते निकरण योगनी एकता हर्षसहित तन्मयपणे निरामय साधन. ए रीतें थिर थइने शंकादि यातना रहित श्रीप्रभुजीना स्वजाति स्वभाविकगुणें करी उपयोग प्रभु गुणें जोडीने जे भव्यजीव आत्मार्थी थइने अंशीनलनाग परमसमतामयी प्रभुनुं ध्यान करवाने तेहनुं नाम समरे तेना संभारे, ते जीव अनुक्रमें गुणीने आलंबने आत्मोपादानी थइने निष्कर्मी थाय, तेवारें ते अनंतुं अव्याबाध सुख, परसंग रहित आध्यात्मिक सुख पामे. ते सुख केहवुं छे? तो के परम उत्कृष्ट अमृत अविनाशी सहज ज्ञानानंदादिक अनंत गुणनुं धाम छे ॥ उक्तं च ॥ सिव मयल मरुय मणंत मक्खय मव्वाबाह, मप्पुणराविति सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं संपत्ताणं ॥ तथा संमतिग्रंथे ॥ अह सुहय सयल जगसिहर मरुय निरुवम सहाव सिद्धिसुहं ॥ अनिहण मव्वाबाहं तिरयणसारं अणुहवंति ॥ १ ॥ एहवा सुख पामे ॥ ६ ॥ इति षष्ट गाथार्थः ॥

आणा ईश्वरता निर्भयता,
निर्वांछकतारूप जो ॥
भावस्वाधीन ते अव्यय रीतें,
एम अनंतगुण भूप जो ॥ शी० ॥ ७ ॥

बीजानी आज्ञा तो स्वार्थें तथा भयथी कोइ माने, अने प्रभु श्रीअरिहंतनी आज्ञा तो सहेजें कोइ द्रव्य लोपतुं नथी, तथा जे लौकिक प्रभुताना धणी, तेतो पौद्गलिक मानोपेत संपदाना धणी छे, अने श्रीतीर्थंकर तो जगदुपकारी अनंत सहज संपदाना ईश्वर छे, तेथी ईश्वरता अद्भुत छे. बीजा राजादिक तो मात्र पोताना सेवकोथीज भय पामे नहीं, परंतु परचक्र तथा मरणादि भय सहित छे. अने म्हारो परमेश्वर निर्मलानंद कारण शुद्ध देव तो सर्वकाल सर्वभय रहित छे, स्व अखंड अविनाशी संपदा परमनिर्भयतावंत छे, तथा जगत्मां इंद्र, चंद्र, चक्रवर्ति, ते तृष्णाने उदयें इच्छादोषमयी छे, इच्छाथी संपदा अपूर्ण छे, अने श्रीवीतराग तो स्वसंपदापूर्ण प्रागभावना भोगी छे, तेथी समस्त परसंपदाने अवांछे, माटे निर्वेच्छकतामयी छे. वली श्रीप्रभु परमात्मा तेहना जे भाव केतां भावधर्म शुद्धचिदानंदादिक ते सर्वस्वाधीन छे. पराधीन नथी. वली ते अव्यय केतां अविनाशीपणे ध्वंसरहित छे. ए रीते अनंतगुण जे पूर्वे कह्या तेना राजा छे ॥इति सप्तम गाथार्थः॥

अव्याबाध सुख निर्मल ते तो,
करणज्ञानें न जणाय जी ॥
तेहज एहनो जाणग भोक्ता,
जे तुम समगुण रायजो ॥ शी० ॥ ८ ॥

अर्थः—हे प्रभुजी ! जे अव्याबाध अतींद्रिय सुख ते अनंतुं स्वभोगीपणे तमे भोगवो छो. ते अव्याबाध सुखनुं ज्ञान केतां जाणपणुं ते करण केता इंद्रियोने आधीन जे

मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान छे, तेर्णे करी जणाय नहीं, तथा अवधि मनःपर्यवज्ञान ते यद्यपि इंद्रियोने आधीन नथी, तो पण ते रूपीभावना जाणग छे, पण जीवस्वरूपने जाणी शके नहीं, जे माटे क्षयोपशमज्ञानें अव्याबाधनुं स्वरूप जाण्युं न जाय, पण जे जीव तुझ समान गुणना राय केतां स्वामी थया, तेहज परमात्मा, ए अव्याबाध गुणनुं स्वरूप जाणे, तथा भोगवे, बीजाने प्रगट नथी, केम के आत्मधर्म अतींद्रिय छे माटे तेहना भोगी सिद्ध भगवंत छे, बीजाथी ए भोगवाय नहीं ॥ ८ ॥ इति ॥

एम अनंत दानादिक निजगुण,
वचनातीत पंडूर जी ॥
वासन भासन भावें दुर्लभ,
प्रापति तो अति दूर जी ॥ शी० ॥ ९ ॥

अर्थः—एम अनंतादानादिक केतां दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सिद्धत्व प्रमुखगुण, हे प्रभुजी! ताहरे प्रगट छे, ते वचनने गम्य नथी, पंडूर केतां मोहोटा छे, एहवा आत्मगुणनी वासन केतां श्रद्धा, भासन केतां जाणपणुं, ते पामवुं दुर्लभ छे, तो प्रगटपणे एहवी सिद्धता पामवी सिद्धतानी प्राप्ति थवी तेनो [illegible] वेगली छे ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

सकल प्रत्यक्षपणे त्रिभुवनगुरु,
जाणुं तुझ गुण ग्राम जी ॥

वीजुं कांहिं न मागुं स्वामी,
एहि करो मुज काम जी ॥ शी० ॥ १० ॥

अर्थः—हे त्रिभुवनगुरो ! ताहरी गुणसंपदा अनंती ते सर्व हुं प्रत्यक्षपणे जाणुं एहीज मागुं छुं, एहीज इच्छा छे, माहरे एहीज काम छे, जे ताहरी संपदा ते केवलीने प्रत्यक्ष छे, माटे केवल ज्ञान मागुं छुं. परंतु हे प्रभुजी ! हुं वीजुं कांहिं पण मागतो नथी ॥ १० ॥ इति दशम गाथार्थः ॥

एम अनंत प्रभुता सद्दहतां,
अर्चे जे प्रभु रूप जी ॥
देवचंद्र प्रभुता ते पामे,
परमानंद स्वरूप जी ॥ शी० ॥ ११ ॥

अर्थः—एम अनंती प्रभुनी प्रभुता, परमात्मता, सर्वप्रदेश निरावरणता अनंत पर्याय, निरावरणना सकलज्ञानादि गुण निरावरणता, तेने सद्दहतां समकित गुण प्रगटे, ते प्रभुना गुणनी बहु मान सहित प्रतीत करतां जे जीव श्रीशीतलनाथ प्रभुना योगें प्रभुने अर्चे, ते प्रभुने अर्चवानो अधिकार श्रीरायप्पसेणी सूत्रमध्यें कह्युं छे.

॥ अर्चेनइया [illegible] [illegible] सक्कारवत्ति- याए सम्माणवत्तियाए [illegible] पुच्छसमाणो अच्छे गइया [illegible] जीव मेवेति ॥ ए आलावानो [illegible] छे. तथा प्रभुजीनो योग न मळे तो प्रभुना [illegible] ते पण प्रभु समान छे. जे

श्रीअरिहंतने वांदवानुं फल सूत्रें कह्युं छे ॥ हियाए सुहाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए ॥ अने जिनप्रतिमाने वांदवानुं फल पण एहीज आलावे कह्युं छे, तथा साधुने अधिकारें महाव्रत पालवानुं फल पण एहीज कह्यु, एम सूत्रें अनेक अधिकार कह्या छे, तेमाटे प्रभुना स्थापन पूजवानो मोटो लाभ छे, कोइ द्रव्यहिंसा देखीने भय पामे, तेणें उपयोग देवो जे सूत्रें परजीवनी दयानुं फल शातावेदनी कही छे, अने आपणो आत्मा ज्ञानादिकगुणें ओळखीयें, तो भावदया थाय ते मोक्षहेतु छे, अने भावहिंसा ते हिंसा छे, तथा द्रव्यहिंसा ते भावहिंसानुं कारण छे, परन्तु हिंसा नहीं. इहां श्रीभाष्यकारनुं वचन दर्शावे छे ॥

पुरमहिंसा भावो, जीव वहोति नगनरिओ मिहिंसं ॥ सत्यो-वहय मर्तार, नयजीत भणिनो हिंसा ॥ १ ॥ तत्रोर्थः सति लोकस्पर्शिते पृथिव्यादिजीव वधव्याप हिंसाप्रभावः सर्वेषामपि अहिंसकत्वमिति निवारितुमशक्यमिति, माटे पांच थावर थाव-रनी सूक्ष्मजीवों मारवें पण आहार, विहार, वदन, विनय, वैया-वच्चादिक करतां, अहिंसकपणुं केम रहे ? त्यां कहे छे. जीव-कुले लोके [illegible] ग्रह करे-हिंसको न [illegible] ? [illegible] थाय हिंसे, थायतोति [illegible] ॥ [illegible] जीवो [illegible] सो हिंसो ॥ २ ॥ [illegible] अहिंस-त्त ॥ [illegible] हिंसो ॥३॥ [illegible] हिंसा, [illegible] अमुधो जो [illegible] अहिंसे

॥ अथ एकादश श्री श्रेयांसजिनस्तवनं ॥

॥प्राणी प्राणी जिनतणी, तुमें धारो चित्त मझार रे ॥ ए देशी॥

श्री श्रेयांस प्रभुतणो,
अति अद्भुत सहजानंद रे ॥
गुण एक विध त्रिक परिणम्यां,
एम गुण अनंतनो वृंद रे ॥
मुनि चंदजिणंद अमंद दिणंद परें,
नित्य दीपतो सुखकंद रे ॥१॥

अर्थः—श्रीश्रेयांस प्रभु परमेश्वर निर्मल निरावरण स्वस्वरूपभोगीनो अति केहवो अत्यंत उत्कृष्ट अद्भुत केहवो आश्चर्यकारी सहजानंद केहवो अकृत्रिम सहज स्वभावनो आनंद छे. श्रीश्रेयांसप्रभुजी ते जीवद्रव्य छे, मानवजन्मथकी परिणमीने सिद्ध थया छे, ते सिद्धपणे असंख्यात प्रदेशी छे, अनंतगुणी छे, अनंतपर्यायी छे, ते प्रभुनो एक एक गुण ते सर्व सर्व परिणमिकत्व छे, सर्वद्रव्यनुं अर्थ क्रियाकारीपणुं ते गुणप्रवर्त्तन छे, तेमांथी असाधारण विशेषगुणनी मुख्यताये छे, अने साधारण गुणनी प्रवृत्ति सर्व कर्तादिक कारकने थाय छे, कर्त्ता करे तो कार्य. कर्त्ता न कर, तो न थाने पांच अक्रमी द्रव्यनी गुणप्रवृत्ति सदा परिणमे छे, ए स्थिर छे, अने जीव द्रव्यनी गुणप्रवृत्ति, सिद्ध अवस्थाये सदा वर्ते छे, पण कोइक कालना कर्मसंगी थाने छे, तेमज अवस्थाना प्रमा-

दिक जे गुण छे, ते त्रिविधें परिणमे छे. ए रीतें त्रिविधता ते करण, कार्य, अने क्रिया, ते गुणनी तेहीज गुणमां छे, ए त्रण परिणामनो कर्त्ता ते आत्मा छे, तिहां उपादानपणे प्रकृष्ट कारण ते करण अने ते करणनुं फल साध्य ते कार्य तथा ते करवारूप प्रवृत्ति ते क्रिया, कर्त्तानो व्यापार ते सिद्धअवस्थायें अभेदरूप छे, जेम ज्ञानगुण ते करण जाणवुं, अने ते ज्ञानगुणथी जे ज्ञेय पदार्थोनुं ज्ञान थाय ते एनुं साध्य फल छे माटे ए कार्य जाणवुं, तथा ते कार्य जाणवाने जे ज्ञाननी स्फुरणा एटले प्रवृत्ति ते क्रिया जाणवी, ए त्रणे अभेद छे, ए त्रिविधपरिणामें परिणम्या, एवा अनंतगुणना वृंद छे, ए श्रीश्रेयांस प्रभुना सर्वगुण व्यक्तपणे स्वकार्यताने करे छे ॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥ जं कज्ज कारणाई, पज्जाया वत्थुणो जओ तेण ॥ अन्नेणन्नेण मया, तो कारण कज्ज भयणेज्ज ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥

एम कारण कार्य क्रियानी अभेदता पण छे, तथा भेदता पण छे, कालें अभेदता छे, तत्व. प्रमेयत्वें अभेदता छे, अने संज्ञा संख्या लक्षणें भेदता छे. माटे एवी व्याख्या छे ॥ मुनिचंद केतां मुनि जे त्रिकाल अविषयी तत्त्वज्ञानी तेमांहे चंद्रमासमान अथवा मुनिचंद जिणंद ते जिन सामान्यकेवलीमां चंद्रमा समान, वली अमंद केतां देदीप्यमान दिणंद केतां सूर्य तेनी परें दीपतुं छे. तेम जेम तथा सुखकंद केतां सुखनो समूह छे जेने एहवा श्री श्रेयांस प्रभु तेहना सर्व गुण व्यक्तपणे स्वकार्य करे छे ॥ ९ ॥

हवे आत्माना अनंता गुण छे तेमां हे मुख्य गुण ते

उपयोग छे ॥ सव्वाओ लद्धिओसागारोवउत्तस्स उववज्जइ तो अणगारो वउत्तस्स इति ॥ ते उपयोगमां प्रथम ज्ञानगुण छे. माटे प्रथम ज्ञानगुणनी विविचता कहे छे ॥ इति ॥

निजज्ञानें करी ज्ञेयनो,
ज्ञायकज्ञातापद ईश रे ॥
देखे निजदर्शन करी,
निज दृश्यसामान्य जगीश रे ॥ मु० ॥ २ ॥

अर्थः—लोकालोकमां जे वर्तमान छे, तथा अतीतकालें हतुं, अने आगमीककालें थाशे, ते सर्व पोताना भावप्रमेयत्वपणा माटे ते ज्ञेय छे, एटले जाणवा योग्य छे, तेहनुं जाणवुं ते आत्माना असंख्यातप्रदेश निष्टित ज्ञानगुण छे, ते ज्ञान; आत्मानो स्वधर्म छे, सर्वविशेषनो जाणंग छे, तेथी निज केतां पोताना ज्ञानगुणें करीने जाणे एटले ज्ञान ते जाणवारूप कार्यनुं कारण थयुं, उपादानकारण कार्यना एक समय छे, अने ते जाणवारूप कार्यनी प्रवृत्ति, ते वीर्यने सहकारें क्रिया थाय छे, जो गुणनी प्रवृत्ति विना जाणवा रूप कार्य मानीयें, तो दर्शनोपयोग कालें ज्ञानगुणनुं निरावरणपणुं छतुं छे, पण क्रिया विना उपयोग नथी, तेमाटे कारणभूत ज्ञानें करी सर्वज्ञेयने जाणो छो, पोताना ज्ञानगुणें करी सर्वज्ञेयना ज्ञायक केतां जाणनार छो, तेथी हे प्रभु ! तमें जाणंगपणा माटे ज्ञातापदना ईश छो, स्वामी छो. ज्ञानमयी छो, सर्व जाण छो, तेथी ज्ञाता छो

हवे दर्शनगुणनी विविचना कहे छे. हे प्रभुजी ! तमें

पोताना दर्शनगुणें करीने निज केतां पोताना द्रव्य केतां देखवा योग्य जे सर्व अस्तिकायनी सामान्यता, अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वादि, नित्यत्वाऽनित्यत्वादि, सामान्यपणे जे जगीश केतां संपदा एटले आत्माने विषे अनंती सत्त्व द्रव्यत्वादि सामान्यसंपदा छे, तेने दर्शनगुणें देखे, ते " दर्शनेन द्रव्यभावानां दर्शनं करोति आत्मा " इहां आत्मा ते देखणहारो दर्शनगुणें करणभूतें देखवा योग्य जे पदार्थ, ते सर्वने देखे छे, एटले देखवुं ते कार्य, दर्शनगुण ते कारण, दर्शनगुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया, देखणहारो आत्मा ते कर्त्ता, ए दर्शनगुणनुं त्रिविध परिणमन जाणवुं ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

निजरम्यें रमण करो,
प्रभु चारित्रें रमता राम रे ॥
भोग्य अनंतने भोगवो,
भोगे तेणें भोक्ता स्वाम रे ॥ मु० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे चारित्रगुणनी त्रिविध परिणति कहे छे. हे प्रभुजी ! हे परमेश्वर ! हे परमानंद पूर्णानंदी ! ताहरो अनंत आत्मधर्म ते तमने रम्य छे, रमवा योग्य छे, ते शुद्धात्मपरिणतिरूप निजरम्यविषे तमें रमण करो छो. चारित्रगुणें करीने एटले चारित्र गुण करणें स्वरूपने विषे जे रमण ते रूपकार्य अने चरणगुण प्रवृत्तिरूप क्रिया तेने करो छो, तेमाटे हे प्रभुजी ! तमें रमता राम छो. पोताना स्वरूपमां रमता छो, तेथी स्वरूपरमणी स्वरूपानुभवी स्वरूपविश्रामी छोजी ॥

हवे भोगगुणनी त्रिविधता कहे छे. भोग्य कहेतां भोगववा योग्य जे प्रगट आत्मस्वरूप अनंतज्ञानादि गुण, तेहने तमें भोगगुणें करी भोगवो छो, ते केम ? जे भोगांतराय कर्मनो क्षय तमने प्रगट थयो, ते भोगगुण तेणें करीने तमें पोतानी भोग्ययोग्य जे अनंतात्म संपदा तेहने भोगवो छो, माटे हे स्वामिन् ! तमें भोक्ता छो, जे बीजाजीव क्षयोपशम भोगी पुद्गलादि अशुद्ध परिणतिने भोगवे छे, तेतो अशुद्धभोक्ता छे, अने तमे शुद्ध भोक्ता छो, एटले भोगगुणकरणें करीने निजभोक्तापणारूप कार्यने करो छो. भोगगुणनी प्रवृत्ति, ते क्रियाने कहवे करीने छे. अत्ता सहावभोई, ते अस्सहावाओ अत्तपरिणामा ॥ इति वाक्यात् ॥ माटे भोक्तागुणना स्वामी छो ॥३॥ इति तृतीयः॥

देय दान नीत दीजते,
अतिदाता प्रभु स्वयमेव रे ॥
पात्र तुमें निज शक्तिना,
ग्राहक व्यापकमय देव रे ॥ मु० ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे दानगुण, जे दानांतराय कर्मना क्षयथी प्रगट्यो छे, माटे ते दान गुण तथा लाभगुणनी त्रिविधपरिणति कहे छे. इहां दान ते सिद्धतामां स्वगुणना प्रवर्तनने स्वकीय क्षायिक वीर्यनी सहकारताउं देवुं ते दान अने सहकारतानी प्राप्ति जे गुणने थई ते लाभ, ए रीतें दान तथा लाभ प्रवर्ते छे, देय कहेतां देवा योग्य जे गुण तेहने सहकार ते दान, ते दान नित्य केतां सदा दीजते थके हे परमेश्वर ! तुमें अति दाता छो, अनंतगुणने सहकाररूप अनलुं दान दीयो छो, स्वयमेव कहेतां पोतायीज

पोताने आपो छो, एटले दानगुण ते करण. अने दानगुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया तथा ग्राहकपणे दान दीधुं ते कार्य. ए सर्वनो स्वामी आत्मा ते दाता छे, आत्माने ए शुद्ध दान छे, तथा शुद्ध दान छे, अने जे परभावनुं देवुं तथा लेवुं तेतो विभाव छे, ते आत्माने घटतो नथी, वळी हे स्वामी ! तुमें निज करेतां पोतानी शक्ति अनंतगुणपर्यायरूप तेहना पात्र केतां आधार छो, तथा ते आत्मशक्तिना ग्राहक तुमें छो, अने ए आत्मशक्तिना व्यापक तन्मयतारूप अवस्थाए पण तमेंज छो ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

परिणामी कारज तणो,
कर्त्ता गुण करणें नाथ रे ॥
अक्रिय अक्षय स्थितिमयी,
निकलंक अनंती आथ रे ॥ मु० ॥ ५ ॥

अर्थः—वळी हे देव ! हे जिनेश्वर ! तमारा अनेक अस्तित्व तथा अनभिलाप्य गुण सर्व प्रागभाव थया, तेहनी कर्त्ता परिणति करे छे. परिणामिकपणे ते अव्याबाधादिक अनंतु कार्य, तेहना कर्त्ता छो, गुणपर्याये करीने एटले गुण ते करण अने ते करणनुं जे फळ ते कार्य, तथा गुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया, ए करण, कार्य, क्रियाना कर्त्ता हे नाथ ! तमें छो, ते तुमारे सर्व परिणामिकपणे तेहना तुमेंज कर्त्ता छो, पोताना स्वरूपनां कर्तापणे [illegible] तेथी अक्रिय छो. क्रिया ते चलोपकरण [illegible] ते अचळ छे तेथी अक्रिय छो. [illegible] अक्षय स्थितिमयी छो,

जे आउखानी स्थिति तेतो सयोगीभावनी छे, अने श्रीसिद्ध-भगवंत तेतो सहजगुणी छे, तेथी अविनाशी स्थिति तुमारी छे. वळी निकलंक केतां सर्व कर्मकलंक रहित छो, तथा निरावरणी एवी जे अनंती आय केतां संपदा तेना तमें धणी छो ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

परिणामिक सत्तातणो,
आविर्भाव विलास निवास रे ॥
सहज अकृत्रिम अपराश्रयी,
निर्विकल्पने निःप्रयास रे ॥ मु० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे कदाचित् कोई कहेशे जे कोई गुण अधुरो हशे ? माटे तेने पूर्णता कही देखाडे छे. परिणामिकपणुं ते सत्ता कहेतां छती तेहनो आविर्भाव कहेतां प्रगटपणुं एटले प्राग्भाव ते अनंतगुणपर्याय निरावरण सकल प्रदेशांग रहित थवे संपूर्णसत्ता तिरोभावी हती, ते प्रगट थइ छे, ते प्राग्भावी सत्ताना विलासना अनुभवनो हे प्रभुजी ! तुं निवास केतां घर छो. स्वगुणभोगी छो, स्वस्वभावना अनुभवी छो, वळी हे प्रभु ! तुमें सहज केता स्वभावनो जे मूलधर्म तेना अकृत्रिम ते पण अपराश्रयी केता परवस्तुना आधार विना, ते वळी निर्विकल्प केतां मनोचिंतना विना, ते वळी निःप्रयास केतां प्रयास उद्यम विना जे आत्मधर्म, तेहनो अनुभव ते तमें भोगवो छो ॥ ६ ॥

प्रभु प्रभुना संभारनां,
गानां करनां गुणग्राम रे ॥

सेवक साधनता वरे,
निजसंवर परिणति पाम रे ॥ मु० ॥ ७ ॥

अर्थः—एहवा प्रभुनी सेवनाथी जे फल थाय, ते कहे छे. प्रभु जे श्री श्रेयांसनाथजिनेश्वरतत्त्वी, निरामयी, निरावरणी, तेहनी प्रभुता अनंतज्ञानमयी, सर्वसंवरी अनंतानंदरूप परमेश्वरता, असहायता, सर्वशक्ति निरावरणता, अनंतपर्याय स्वकीयकार्य कर्त्तानिजरूप निष्कर्मता, निःसंगता, प्रभुत्व, विभुत्व, ग्राहकत्व, व्यापकत्व, आधारत्व, कारकत्व, कारणत्व, कार्यत्व, इत्यादि प्रभुना एक एक प्रदेशें अनंतगुण पर्याय प्राग्भाव परिणमन रूप स्वरूपसंपदाने संभारतां, चिंतनां स्मरण करतां, तथा गातां, केतां, स्तवोगें गावतां गुणनो ग्रान संग्रह करतां थकां, सेवक तत्त्वरुचि आत्मसिद्धतानो अर्थी ते निश्चय पर ध्यान प्रमानथी जीव अनादिनो बाधक, स्वरूपग्राहकगुण थइ छे. जे जीव साधनना ते आत्मस्वरूप निरावरण करवा परावृत्त अवस्था. उत्सर्ग अपवाद समकितथी मांडी अयोगी पर्यंत सतरूप गुणस्थानारोहण, दोषत्याग, गुणप्राग्भाव अधिक गुणनी रुचि. पूर्ण तत्त्वनी ईहारूप साधनानइं पामे, ते निज कहेतां पोतानी संवरपरिणतिने पामी कहीने एटले प्रभुगुणउपयोगें वर्त्ततो थको चेतना गुणीना गुणने अनुपमी थाय. तेणे स्वरूप ईहा रूप दर्शनगुण परिणमे, तेथी पोतानी संवरपरिणतिने पामे ते जीव तत्त्वज्ञाने साधे, अने साध्यरुचिनी जे साधकता ते उपादानहेतु कारण छे ॥७॥
इति सप्तम गाथार्थः ॥

प्रगटभरागा ध्यातां,
निजतत्त्वनो ध्याता थाय रे ॥
तत्त्वरमण एकाग्रता,
पूरणतत्त्वे एह समाय रे ॥ सु० ॥ ८ ॥

अर्थ.—[illegible] ते आत्माने पोतानी जे [illegible] कर्वे आत्म छे, ते आत्मनामां आरी दुर्लभ छे, अने जिनाज्ञा [illegible] ते प्रगट छे, ते पूर्णतामां [illegible] श्रीअरिहंत सिद्ध, निरावरण [illegible] ध्याता थया, श्री पोतानी [illegible] ध्याता थाय छे, [illegible] ध्यानी तत्त्व- [illegible] छे, [illegible] ते [illegible] एकाग्र [illegible] पूर्णतामां [illegible] छे, [illegible] पूर्णतामयी [illegible] थाय छे, [illegible] [illegible] छे, ते [illegible] वीर्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ८ ॥ [illegible]

प्रभु दीठे मुझ सांभरे,
परमातम पूर्णानंद रे ॥
देवचंद्र जिनराजना,
नित्य वंदो पय अरविंद रे ॥ मु० ॥ ९ ॥

अर्थः—ते माटे प्रभु दीठे एटले प्रभुनो स्थापनानिक्षेपो दीठे मुने सांभरे केतां स्मरणमां आवे, शुं स्मरणमां आवे ? तो के परमात्मा, सिद्ध, भगवान्, अचल, असंगी, अभोगी, अयोगी, तेहनो पूर्ण अनंतपर्यायी त्रिकाल अविनाशी आनंद केतां गुणानंदादिक ते सांभरे, अने जे प्रभु स्वरूपाश्रित चेतना करवी, तेहज पोतानो आत्मा साधवानो परम उपाय छे, ते माटे देव जे निर्ग्रंथादिक तेमां चंद्रमासमान जे जिनराज वीतराग श्री श्रेयांस परमेश्वर, तेना पदरूप अरविंद केतां कमल तेने नित्य वंदो, सदा प्रणमो, तथा स्तुतिकर्त्तानुं नाम पण देवचंद्र छे. ते पोताने पण कहे छे. जे श्री अरिहंतना चरण नित्य सेवो, अरिहंतसेवन तेहज संसार महासमुद्र मोहावर्त्त अज्ञानांधकार मिथ्यात्वकर्दममग्न जीवने निस्तार पार करवानो पुष्ट उपाय छे, अरिहंत प्रतिमाने आलंबने अनंत जीव पूर्णानंदी थया, वली जे यथार्थ ओलखाणे पुद्गलाशंसा रहितपणे श्री अरिहंतनुं सेवन करशे, ते परमसुख पामशे. एहज शरण त्राण आधार छे ॥ ९ ॥ इति एकादश श्री श्रेयांसजिन स्तवनं संपूर्ण ॥ ११ ॥

॥अथ द्वादश श्रीवासुपूज्यजिन स्तवनं॥

हवे प्रभुसेवन जे पूजना तेहना द्रव्यभाव ओळखावना-रूप धारपा प्रभु श्री वासुपूज्यजी तेनि स्तुति करीयें छैयें. तिहां निक्षेपा चार लखीयें छैयें. १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, ४ भाव. तिहां नामनिक्षेपानुं लक्षण गाथाथी कहे छे. पज्जायाणभिधेयं, ठिपमणत्थे पयत्थ निरवेक्खं ॥ जा इच्छिये च नाम, जाव दव्वं च पायेणं ॥ १ ॥ तथा थापनालक्षणं ॥ गाथा ॥ जं पुण तयत्थ सुन्नं, तयभिप्पाएण तारिसा-गारं ॥ कीर इय निरागारं, इत्तर मियरं च सा ठवणा ॥२॥ द्रव्य लक्षणं ॥ गाथा ॥ दव्वए दुयए दो रवयए, विगाये गुणाणं संदावो ॥ दव्वं भवं भावस्स, भूयभावं च जं जोगं ॥ ३ ॥ अथवा यच्च कारणं तत् द्रव्यं ॥ भूतस्य भाविनो वा, भावस्य हि कारणं तु यल्लोके तत् द्रव्यं, इत्यादि ॥ भावल-क्षणं हरिभद्रपूज्यैः ॥ भावो विवक्षितक्रियानुभूतियुक्तो हि विधिः समाख्यातः सर्वज्ञैरिंद्रादिवद्वंदनादिक्रियानुभवात् ॥इति॥

ए रीतें चार निक्षेपा छे, तथा कोइक नामादि निक्षेपा उपचारें माने छे, तेहने कहियें जे भिन्न वस्तुने नामादिक करिए, ते भिन्न छे, परंतु पोत पोतानी वस्तुनां नामादि चारे ते वस्तुधर्मज छे, तेमाटे कयुं छे, श्रीजिनभद्रपूज्यैः ॥ इह भावोच्चिय वत्थु, तदत्थ सुन्नेहिं किंच सेसेहिं ॥ नामा-दओ विभागा, जं तेवि हु वत्थुपज्जाया ॥ इति ॥ यदस्माव हेतुभि नामादयो वस्तुन. पर्याया धर्मा तथा छयपिहडदयवस्तु-स्वरूपिने नामादयोपि भर्मविनाय ॥ एम कह्यं छे.

भावनिक्षेपाने जैते तदेवं भिन्नवस्तुषु विशेषतश्चिन्त्यमानानां नामादीनां प्रधानेतरभावोदर्शितः सामान्यतः पुनश्चिन्त्यमानानां सर्ववस्तुषु प्रत्येकं चतुर्णामप्यमीषां स्वभावः प्राप्यतएवेति दर्शयन्नाह ॥ अहवा वत्थुभिहाणं, नामं ठवणाय जो तयागारो ॥ कारणयासेदव्वं, कज्जाय वन्नं तयं भावो ॥ १ ॥ ए गाथायें चार निक्षेपा एक वस्तुनां कह्या, तथा वली नामादि नयने परस्पर विवादें मिथ्यात्वीपणुं पूर्व्वें कह्युं छे ॥ एवं विवयंति नया, मिच्छाभिनिवेसओ परोप्परओ ॥ इतिवचनात् ॥ वली पूज्यतुंज वचन छे जे, नामाइतियंदव्य, बुद्धिपरिणामभावओ नियमं ॥ जं वत्थुअत्थिलोए, च उपजायं भयं सव्वं ॥ १ ॥ इति ए रीतें नामादिक चारे निक्षेप ते वस्तुना स्वपर्याय छे, एम श्रद्धा करवी, ए निक्षेपानुं स्वरूप विस्तारें श्रीविशेषावश्यक मां कह्युं छे. तिहांथी ए गाथा लखी छे. ॥ इति प्रशस्तिः ॥

॥ पंथडो निहालुं रे बीजा जिन तणो रे ॥ ए देशी ॥

पूजना तो कीजें रे बारमा जिनतणी रे,
जसु प्रगट्यो पूज्य स्वभाव ॥
परकृतपूजा रे जे इच्छे नहीं रे,
साधक कारज दाव ॥ पू० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे बारमा श्री वासुपूज्य स्वामीनी स्तवना करे छे. हे भव्य जीवो ! तमारे जो आत्माने शुद्ध करवानुं मन छे, तो बारमा जिन वीतराग श्रीवासुपूज्य पुरुषोत्तमनी पूजना कीजें, एटले सकलपुद्गलनिरावरण, परमचारित्री, परमज्ञानी,

अयोगी, अभोगी, अलेशी, अवेदी, असहायी, अकषायी, अरूपी, शुद्धस्वरूपी जे सिद्ध, सकलपरभाव अभोगी, पुद्गलोपचाररहित एहवो पूज्यस्वभाव जेहनो प्रगट्यो छे, तेहनी पूजा कीजें, जे भक्तिना रागी नहीं, अने अभक्तिना द्वेषी नहीं, एहवा सर्वज्ञ तेहीज पूजवा योग्य छे ॥ उक्तं च आप्तमीमांसायां ॥ देवागमनभोयान, चामरादिविभूतयः ॥ मायाविष्वपि दृश्यंते, अत स्त्वमसि नो महान् ॥ १ ॥ सूक्ष्मांतरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचित् यथा ॥ अनु मे तत्त्वतोज्ञान, मिति सर्वज्ञसंसितम् ॥ १ ॥ अड्सय पाडिहेरा, सव्व कम्म उदयसंभुआ ॥ तेणं न विम्हओ मे, विम्हओ वीयरागते ॥ १ ॥

वळी प्रभुनुं पूज्यपणुं कहे छे. जे परकृत देवता मनुष्य गुणरागी थका अनेक प्रकारनी भक्ति, पूजा करे छे, परंतु परमेश्वर, कोइनी पूजा इच्छता वांछता नथी, इच्छादोष रहित छे, माटे परभावना संग, तथा परकृतपूजाने वांछता नथी, ते पूज्य जाणवा. अने साधक जे मोक्षना अर्थी, मार्गानुसारी, समकिती, देशविरति, संवेगपक्षी मुनिराज, तेहनुं कार्य, जे संपूर्णसिद्धता, तेहना दाव लेतां उपाय छे, तेहीज निमित्त योगें अनंत सिद्ध नित्यना, माटे पोतें पूजाना अवांछक, अने पूजे तेहने परमानंद पूर्णता निपजे ॥ १ ॥ इति

द्रव्यथी पूजा रे कारण भावनुं रे,
भाव प्रशस्तने शुद्ध ॥
परम इष्ट वल्लभ त्रिभुवन धणी रे,
वासुपूज्य स्वयं बुद्ध ॥ पू० ॥ २ ॥

अर्थः—ते पूजाना वे भेद छे. एक द्रव्यपूजा, बीजी भावपूजा, तिहां न्हवण विलेपनादिक जे बाह्य उपचार, योग समारवाने करियें, ते द्रव्य पूजा जाणवी. तिहां अढार पापस्थानक छे, ते सर्व आत्माने दुःखहेतु छे, ते सर्व पलटाववाने पूजामां प्रशस्त राग करियें, ते आत्माने तज्जातीय तजवा योग्य जे कर्म ते कर्म निर्जरवानी नीति छे, माटे जिनपूजा ते संवर छे, तेथी अवश्य करवा योग्य छे, तेमां बाह्यथी जे फूल, केसर प्रमुखनी पूजा ते द्रव्यरूप छे, ते भावपूजा जे गुणगुणी एकत्वता रूप तेहनुं कारण छे, माटे द्रव्यनिक्षेपो ते तेहनेज कहियें, के जे भावनुं कारण होय. हवे भावनिक्षेपें पूजा वे वे प्रकारनी छे. प्रथम प्रशस्तभावनिक्षेपें पूजन, बीजुं शुद्धभावनिक्षेपे पूजन तेहमां भाव ते आत्मानी परिणति, अने प्रशस्त ते गुणी ऊपर राग जाणवो ॥ उक्तं च ॥ गाथा ॥ अरिहंते सुयरागो, रागो सुमुणीसु पवयणेसु य ॥ ए सुपसत्थो रागो, इति वचनात् ॥ तथा चउसरणपयन्नामां कह्युं छे ॥ सुकयाण राय समुप्पन्न, पुन पुलयं कुरु करालो ॥ इति वचनात् ॥ हवे प्रशस्तनुं स्वरूप लिखे छे. तेमां जे विषय परिग्रह उपर राग छे, तेथी तो कर्मबंध उपजे, अने अनुकंपा ते शातावेदनीनो हेतु छे, तेतो सर्वनिर्गुणी जीव उपर पण छे, तथा गुणी उपर अनुकंपा करवी, ते निंदवा गरहवा योग्य छे ॥ उक्तं च आवश्यके ॥ सुहिएसु अ दुहिएसु अ, जा मे असंजएसु अणुकंपा ॥ रागेण व दोसेण व, तं निंदे तं च गरिहामि ॥ १ ॥ इति वाक्यात् ॥ तथा जे अरिहंतादि पंच परमेष्ठी अने आगम, साधर्मिक उपर पक्षपात विना गुणप्रेम माटे जे राग, ते प्रशस्त राग जाणवो. ते यद्यपि पुण्यबंधनो हेतु छे, तथापि

छता आत्मगुणने स्थिर थवानो तथा नवा प्रगट करवानो हेतु छे. पुण्यानुबंधी पुण्यनो हेतु छे, ए श्री हरिभद्र पूज्ये पंच वस्तुग्रंथमां कह्युं छे ॥ गाथा ॥ नाणाइ गुणरुइ खलु, तारथीय गुणसंपयं संपत्तो ॥ चत्तो गुणसंपत्तो, पसत्थरागं तिहिं कुणई ॥ १ ॥ गुणरुइ मूलं पुयं, तेणं गुणवुढिहेउअं भणियं ॥ जह इलाइपुत्तो, पसत्थरागेण गुणपत्तो ॥ २ ॥ इति वचनात् ॥ इहां कोइ पूछे जे, श्री गौतमस्वामीने त्रिभुवन दयाळ, त्रिशलानंदन, श्रीवीर परमात्मा उपर राग हतो, ते केवळज्ञानने रोधक केम थयो ? तेहने उत्तर कहे छे. जे श्रीगौतमनो प्रशस्त राग, क्षयोपशम रत्नत्रयीनो तो दीपक हतो, पण श्रीवीर विद्यमान छतां, रागनी मंदता थइ नहीं, केमके छते कारणे राग टळवो दुःकर छे, पण जेवारें कारण मट्युं तेथी रागनी अवस्था अटकी, तेवारें श्रेणी थई, तेम प्रशस्त राग सर्व जीवोने क्षयोपशमी रत्नत्रयीनो विरोधी नथी, क्षायकज्ञानी इहायुक्त, क्षायकज्ञाने नजीक करे, परंतु क्षायकरत्नत्रयी थवा दीये नहीं ॥ उक्तं च श्रीसंवेगरंगशालायां श्रीजिनेश्वर सूरिपूज्यैः संवेगरंगशालायां ॥ सिद्धे रत्तो नग्गुण, इंदाए छउमए गुणे सव्वे ॥ तेणं अरिहंताई, सुगुण्य सुगुण समाहिओ ॥ १ ॥ ते माटे प्रशस्त भावपूजा ते पण साधकनामां छे. हवे शुद्ध भावपूजा ते, जे आत्मानुं सामान्य चक्र, विशेषचक्र, क्षयोपशमी चेतनावीर्य, ते सर्व, श्रीअरिहंत परमात्माना क्षायकसिद्धत्वादिगुणानुयायी प्रवर्त्ते, ते शुद्ध भावपूजा जाणवी, एटले गुणरागी थइने गुणबहुमानी थवुं. पछी स्वस्वरूपमां तन्मयपणे थके स्वरूपरमणता नियजे, ए योगनो मार्ग छे. हवे प्रशस्त भावपूजानुं स्वरूप कहे छे. श्री अरिहंत प्रभुरूप स्वामी, स्वयं केवा छे? पोताथी शुद्ध थया, एटला त्रिभु-

वननाथ ते परम केतां अत्यंत इष्ट केतां रलियामणा वल्लभ केतां वाल्हा लागे, ते प्रशस्तरागरूप भाव पूजा जाणवी ॥२॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

अतिशय महिमा रे अति उपगारता रे,
निर्मल प्रभु गुणराग ॥
सुरमणि सुरघट सुरतरु तुच्छ ते रे,
जिनरागी महाभाग ॥ पू० ॥ ३ ॥

अर्थः—वळी प्रशस्तरागीपणुं ओळखावे छे. जे श्री अरिहंत अतिशयना महिमा उपर अद्भुतना आश्चर्यना तथा आठ प्रातिहार्यनी विस्मयता इत्यादि देखीने अथवा सांभळीने जे राग उपजे, ते सर्व प्रशस्तराग जाणवो, तथा जगत्‌ना जीवोने महामोहांधकार निवारणरूप धर्मदेशना देईने विसरी गएलो जे आत्मधर्म, तेने देखाडे सर्व संदेह टाळे ए उपगार, भाव-आजीविकाना दातार, तत्त्वथी भूले पड्या जीवोने तत्त्वना देखाडनार, एहवुं उपकारीपणुं श्रीअरिहंतनुं छे, ते उपकारीपणा उपर जे इष्टता, तथा निर्मल कर्म आवरणे रहित केवल ज्ञान, केवल दर्शन, वीतरागता, असंगता, स्वरूप भोगी प्रमुख गुण उपर राग ते पण प्रशस्त राग कहियें. वळी सुरमणि केतां कामकुंभ तथा सुरतरु केतां कल्पवृक्ष ते सर्व तुच्छ भासे, केमके एतो इहलोकसुखना हेतु; तथा भवअशुद्धताना वधारवा वाला छे; तेहने असार जाणीने तुच्छ गणे, अने श्रीअरिहंतनो राग ते परंपरायें आत्मसुखनो हेतु छे, आत्माना गुणनी वृद्धि करवानुं पुष्ट निमित्त छे, ते माटे श्री जिनराज, परमदयाल,

स्वगुणभोगी, माहागोप, परमोपकारी, माहारी तत्त्व संपादना उपदेशक, ते उपर जे जीवने साची ओलखाणें राग प्रगटे, ते जीव महाभाग्यवान्, तथा पवित्र जाणवा, जे जीव कामराग, दृष्टिराग, स्नेहरागनी भीड टालीने, श्रीपुरुषोत्तम, परमानंदी श्रीवासुपूज्य प्रभु उपर रागी थयो, तेने धन्य छे. ते महंत जीव, मोहोटा भाग्यनो धणी जाणवो, ए सर्वं प्रशस्त रागभाव पूजा कही ॥ इति तृतीयगाथार्थः ॥ ३ ॥

दर्शन ज्ञानादिकगुण आत्मना रे,
प्रभु प्रभुता लयलीन ॥
शुद्ध स्वरूपी रूपें तन्मयो रे,
तसु आस्वादन पीन ॥ पू० ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे शुद्धभावपूजा कहे छे, तिहां जे आत्माना क्षयोपशमभावी दर्शनगुण, तथा ज्ञानादिगुण, ते सर्व प्रभुनी प्रभुतायी लयलीन थया छे, बहुमान श्रीअरिहंतनुं छे, भासन पण अरिहंत गुणनी अनंतनानुं छे, रमण श्री अरिहंत गुणना स्वरूप भासननुं छे. अनुभव पण अरिहंत गुणना भासननो छे, एम जेटली आत्मशक्ति प्रगटी छे, ते सर्वअरिहंत गुणने अनुयायी करीने, तन्मयताऋप करे, ते शुद्धभाव पुजा जाणवी ते आवी रीतेः—प्रभु तेनो निरधारभासननुं आस्वादन, ते आनंदतायें मग्न रहेवुं, शुद्रस्वरूपी परमात्मा तेहनुंस्वरूप जे ते वस्तुधर्म, तेमज्यें तन्मयी थईने, तेना आस्वादने अनुभवें, पीन केतां पुष्ट रहे, ते भावथी भक्ति जाणवी, तथा वंदन नमनादिकते योग भक्ति जाणवी तथा प्रभु उपर इष्टता ते

राग भक्ति जाणवी. तथा हुं सहुथी मोटो माहरे अरिहंत परमेश्वर जेवो धणी छे, हुं मोक्षना मार्गने पाम्यो, अने पोताना आत्मगुणने प्रभुनी प्रभुताने अनुयायीपणे वर्त्तावे, एहवो लीन थको रहे, तेहने तत्त्वभक्तिवंत कहिएं. एहवा समकिति, देशविरति, सर्वविरति, जेणें पोतानी मूलपरिणति प्रभुतायें मेलवी छे. आत्मपरिणतिरूपउत्संगें प्रभुनी प्रभुताने रमावी रह्या छे, महानुभाव छे, ते शुद्धभावपूजा जाणवी ॥४॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

शुद्धतत्त्व रस रंगी चेतना रे,
पामे आत्मस्वभाव ॥
आत्मालंबी निजगुण साधतो रे,
प्रगटे पूज्यस्वभाव ॥ पू० ॥ ५ ॥

अर्थः—एम शुद्धनिर्मल तत्त्वी श्रीअरिहंतदेव सिद्ध भगवान् तेहनारसें रंगाणी थकी तेहना गुणनी भोगी जेवारे चेतना थयी, अन्य विकल्प टाली अनुभवभावना सहित प्रभुत्वरूपे रसीली थइ तेवारे ते चेतना पोताना आत्मस्वभावने पामे, आत्मस्वभावरुचि, आत्मस्वभावोपयोगी, आत्मस्वभावरमणी, आत्मानुभवी थयो, एटले उपादानावस्थानी अवस्था पामे; अने जेवारें ए भव्यजीव आत्मालंबन थाय, तेवारें पोताना गुणने मारतो निपजावतो. सम्यग् दर्शनादिक गुणने प्रगट करतो. शुक्लध्यान श्रेणें [illegible] हणी शुद्धनायक स्वरूपप्रकाश स्वरूपानुभवी थतो थको निर्मलताने निपजा- [illegible]

करे, एटले पहेलां हुं परमपूज्य अनंतगुणी छुं, ए निर्धाररूप सम्यक् दर्शन प्रगटे, स्याद्वादसत्तानुं भासन थाये, पछी जे सत्ता प्रगटी, तेहनो रमण अनुभवरूप चारित्रगुण प्रगटे, पछी निरावरण केवलज्ञान नीपजे, ए परमपूज्य श्रीअरिहंतने पूजवायी पोतानो पूज्यस्वभाव प्रगटे ॥ ५ ॥

आप अकर्त्ता सेवाथी हुवे रे,
सेवक पूरणसिद्धि ॥
निजधन न दिए पण आश्रित लहे रे,
अक्षय अक्षर ऋद्धि ॥ पू० ॥ ६ ॥

अर्थः—श्री वीतराग पोते परजीवना मोक्षना अकर्त्ता छे, केम जे परकर्त्तापणुं जीवद्रव्यनो धर्म नथी, तेमाटे पोते परजीवनी सिद्धिना अकर्त्ता छे, पण श्रीप्रभुजीनी सेवाथी सेवक जे भक्त, तेहने हुवे केतां थाय शुं थाय तो के संपूर्ण सिद्धता निपजे, निज केतां पोतानो धन जे अनंत ज्ञानादिकगुण ते प्रभु कोइ बीजाने आपता नथी, एटले कोइ पोतानो गुण बीजाने आपे नहीं, अने ते गुण पण पोताना द्रव्यने मुकी बीजामां वर्त्ते नहीं, अने कोइ द्रव्य कोइ द्रव्यनो गुण ग्रहे पण नहीं, सर्व द्रव्य पोतें पोतानी सत्ताना स्वामी छे, तेमाटे अरिहंत पोते कांइ आपताज नथी परंतु जे अरिहंतने आश्रित सेवे, ते निश्चे अक्षय केतां जेहनो क्षय न थाय तथा जे विनाश न पामे, तथा अक्षर केतां खरवुं जरवुं जेहमां नथी एवी अविनाशी अक्षर अनंत आत्मसंपदा पूर्णानंदादिक ऋद्धि लहे केतां पामे, माटे जिन-

भक्ति [illegible] जिनवरनी पूर्ण उपाय छे ॥ ६ ॥
इति षष्ठ गाथार्थः ॥

जिनवर पूजा रे ते निजपूजना रे,
प्रगटे अन्वयशक्ति ॥
परमानंद विलासी अनुभवे रे,
देवचंद्र पद व्यक्ति ॥ पू० ॥ ७ ॥

अर्थः—जे जिनराजनी पूजा भक्ति करी ते पोताना आत्मानी पूजना करी छे. आत्मगुण प्रगटता छे, आत्मानंद [illegible] शुद्ध करी छे, केमके जिनदेवनी भक्ति पोताना आत्मानी [illegible] ते सहजज्ञानादिक अनंतशक्ति ते प्रगटे, प्रगटे, निरावरण थाय ते आत्मरमणतानो विलासी थई, अनुभवे वेदतां भोगवे, सर्वदेवमां चंद्रमा समान जे पद परमात्मा, इत्यादि निरावरण, निरामय, परमेश्वर, सच्चिदानंदरूप, तेहनी व्यक्ति [illegible] करतां आत्मानी [illegible] छे, ते [illegible] अक्रिय, अव्याबाध, [illegible] प्रगटे, शुद्ध थाय, तेमाटे निश्चय जिनभक्ति ते परमात्मा [illegible] थाय छे, तेमाटे हे भव्यजीवो [illegible] श्रीवीतराग अरिहंतपूजना ते विधि सहित [illegible] करो, एहवा उत्तम उपाय छे ॥ इति श्रीवासुपूज्यजिनस्तव ॥

॥ अथ त्रयोदश श्री विमलजिन स्तवनं ॥

॥ दासअरदास सीपरे करे जी ए देशी ॥

विमल जिन विमलता ताहरी जी,
अवर बीजे न कहाय ॥
लघु नदी जिम तिम लंघीयें जी,
स्वयंभुरमण न तराय ॥ वि० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्री विमलनाथ प्रभुजीनी स्तुति कहे छे हे विमलजिन ! हे परमेश्वर ! ताहरी विमलता केतां तमारी निर्मलता केहेवी छे ? जे समस्तद्रव्यकर्म भावकर्मपराबुजापीतादि दोष रहित पणे छे एहवी निर्मलता ते अवर केतां बीजा कोइ छद्मस्थ जीवे न कहाय केतां कहि शकाय नहीं, सिद्धस्वरूपस्य अनंतत्वात् वाचःक्रमपरिणतत्वात् आयुष्याल्पत्वात्, तेनवक्तुंनशक्यते केन इतिभाष्यवचनात्, तेमाटे कहेवाय नहीं तेना उपर दृष्टांत कहे छे. जेम लघु नदी केतां नान्ही नदी तेने जेम तेम लंघीयें, केतां उतरीयें, पण असंख्याता कोडी जोजननो स्वयंभुरमण नामा समुद्र, ते कोइ पामर जनथी तर्यो जाय नहीं, अने प्रभुना गुण तो स्वयंभू रमण समुद्रथी पण अनंतगुणा छे, ते सर्व वचने कह्यो जाय नहीं ॥ १ ॥

सयल पु थ्वी गिरि जल तरु जी,
कोइ ताल एक हथ्थ ॥

तेह पण तुझ गुणगण भणी जी,
भाखवा नहीं समरथ ॥ वि० ॥ २ ॥

अर्थः—तथा सयल केतां सर्व पृथ्वी, गिरि ते पर्वत, जल ते पाणी, तरु ते वनस्पति, ए सर्वने कोइ एक हाथे तोले केतां उपाडे एहवो बलवंत पण ते बाल वीर्यवंत होय तेथी तेपण प्रभुजी ! ताहरा गुणना गण केतां समूह तेने भाखवा केतां केहवाने समर्थ नहीं, कारण तेहमां बालवीर्यनी शक्ति छे, अने तमारुं निर्मल स्वरूप ते केवलज्ञानी क्षायक-वीर्यवंतने गम्य छे, तेने पण सर्ववचनें गोचर थायज नहीं, तो बालवीर्यवंतथी केम केहेवाय ! इति द्वितीय गाथार्थः ॥२॥

सर्व पुद्गल नभ धर्मना जी,
तेम अधर्म प्रदेश ॥
तास गुण धर्म पज्जव सहुजी,
तुझ गुण एकतणो लेश ॥ वि० ॥ ३ ॥

अर्थः—सर्व पुद्गल द्रव्य तथा नभ केतां आकाश द्रव्य, धर्म केतां धर्मास्तिकाय द्रव्य, तेमज अधर्मास्तिकायना प्रदेश, एटले ए पंचास्तिकायना प्रदेश अनंता तेहना गुण अनंता ते गुणधर्म नित्यत्वादि ते पण अनंता तेहना पर्याय वळी तेहथी अनंतगुणा छे, ते सर्व मळी पण हे प्रभुजी ! ताहरो एक गुण जे केवलज्ञानरूप तेहनो लेशमात्र छे, केम जे ए सर्व पंचा-स्तिकायना भाव वर्तमान काले छे, अने केवली तो ए सर्वना अतीत, अनागत, अने वर्तमान, ए त्रणे कालना पर्याय उत्पाद,

व्यय, ध्रुवरूप तेहने एक समयमां जाणे, तेवा एवी अनंतगुणा बीजा धर्मने पण एक समयमां जाणे, ते माटे केवलज्ञाननी शक्ति अनंतगुणी छे ॥ उक्तं च ॥ विशेषावश्यके ॥ दे हि केवलरूप निःशेषज्ञेयगता विषयभूता पर्यायास्ते ज्ञानादिनयमतेन ज्ञानरूपत्वाद्‌पर्यायैव स्वपर्यायाः मोक्ता ननु परपर्यायापेक्षया इत्यविशेषकेवलत्वविरोधो नाशंकनीय इति ॥ इति ॥ ३ ॥

एम निजभाव अनंतनो जी,
अस्तिता केटली थाय ॥
नास्तिता स्वपरपद अस्तिताजी,
तुझ सम काल समाय ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थः—ए रीते जेम केवलज्ञानगुण अनंतपर्यायी छे, तेम जे केवल दर्शनादिक निज केता पोताना भाव गुण पर्याय अनंता छे, तेहनी अनंतता केटली थाय छे जे स्वरूप क्षेत्र काल भाव रूप अस्तिपणुं ते अनंतु छे, तेम परपर्याय जे बीजा जीवद्रव्य तथा पुद्गलादि अजीव द्रव्य तेहना प्रदेश तेहना स्वभाव तेहना गुण पर्यायनो जे अनंतता ते सर्वनुं नास्तिपणुं समागमता छे, ते पण अनंतु छे, ते [illegible] [illegible] [illegible] ॥ इतिश्री [illegible] तथा च हेम सूरिः [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

ते माटे नास्तिपणानो वस्तुथी संबंधज छे, ते स्वपद केतां स्वद्रव्यना गुणांतरनी विवक्षितगुणमां नास्तिता तथा परपद केतां परद्रव्यना गुणनी नास्तिता ए नास्तिता सर्व वस्तुधर्मे पारिणामिक भावे रही छे, ते सर्व निरावर्णपणे हे श्रीविमल प्रभु ! तमारी परिणामिकत्तामध्ये तथा कर्तृतामध्ये भोक्तृतामध्ये समकाळे केतां प्रतिसमये समाये छे, एटली अनंतता तमारे विषे छे, हे प्रभुजी तमारी निर्मलता ते सम- कैति जीवने श्रद्धागोचर छे, तथा पूर्वधरने परोक्षभासन गोचर छे, अने केवलीने प्रत्यक्ष छे, ए रीतें अभिलाप्य तथा अनभिलाप्यनी अनंतता छे, ते बीजा कोइथी कहाय नहीं, माटे हे नाथ ताहरूं ज्ञान, दर्शन, सुखधर्मनी अनंतता ते जे भव्यजीवने स्याद्वादोपेत भासन प्रतीत गोचर थइ, ते जीवने धन्य छे, तो हे प्रभुजी ! तमारी शी वात कहुं ! तमे तो महापूज्य छो, महोटा छो ॥

ताहरा शुद्धस्वभावने जी,
आदरे धरी बहुमान ॥
तेहने तेहिज नीपजे जी,
ए कोई अद्भुत तान ॥ वि० ॥ ५ ॥

अर्थः—हे प्रभुजी ताहरो जे शुद्ध निर्दोष स्वभाव, अ- नंतानंदादि रूप अक्रिया, अक्षय, तेहने जे आदरे केतां अंगीकार करे, वंदन, सेवन, स्मरण, ध्यानादिकपणे आदरे, घणी बहुमान केतां अत्यादरपणे जे ग्रहे, ते साध्यार्थी सेवकनो तेहवोज पोतानो स्वभाव शुद्ध थाय, निःकर्मना नीपजे, प्र-

भुना दीहवो स्वभाव निर्मल थाय, माटे हे प्रभो ! ए कोइ अद्भुततान केतां तत्त्व छे जे अरिहंत प्रभुनुं शुद्धस्वरूप चिंतवतां ध्यान करतां, पोतानुं स्वरूप नीपजे, एहिज आश्चर्य छे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

तुम प्रभु तुम तारक विभूजी,
तुम समो अवर न कोय ॥
तुम दरिसणथकी हुं तर्योजी,
शुद्ध आलंवन होय ॥ वि ॥ ६ ॥

अर्थः—माटे हे श्रीविमलनाथ ! माहरा प्रभु अधिपति तुमेज छो, वली मुजने संसारमांथी तारवा वाला परमनिर्यामक परमसामर्थ्यवंत तुमे छो, हे देव ! हे कृपासिंधु ! हे ज्ञानभानु तुम समान माहरे बीजो कोइ नथी त्रिभुवन मांहे तमेज दयाळ छो, हे जगद्वत्सल ! ! ताहरो दर्शन केता देखवुं अथवा दर्शन ते समकित तेने पामे थके हुं नदी समान समुद्रने ओलंगी पार थयो, इहां कारण पामे थके [illegible] उपकार [illegible] वर्तुं, एम [illegible] निर्मल स्वरूपनो [illegible] थयो हे नाथ ! ताहरा स्वरूपने [illegible] स्वरूप ओल-खुं, ते [illegible] स्वरूप [illegible] अनुभवतानी [illegible] नथी ए भाव [illegible] मनपणे [illegible] छे ॥ ६ ॥ इति [illegible] ॥

प्रभुतणी विमलता ओलखी जी.
जे करे थिरमन सेव ॥

देवचंद्र पद ते लहे जी,
विमल आनंद स्वयमेव ॥ त्रि० ॥ ७ ॥

अर्थः—ए रीतें प्रभुजीनी विमलता केतां निर्मलता तेने ओळखीने जे प्राणी थिरमन केतां दृढमने सेवा भक्ति करे, ते समकिति, देशविरति सर्वविरति जीव, सर्वदेवमां चंद्रमा समान पद परमात्मपद लहे केतां पामे, अनादि संततिसंयोगी भावकर्म उपाधिनो क्षय करीने, निर्मल सिद्ध शुद्ध आत्मतत्वनी पूर्णता ते पामे, इहां स्तुतिकर्तानुं नाम पण देवचंद्र छे, ते सूचव्युं ए पद कहेवुं छे जे मध्ये विमल केतां निर्मल आनंद ते स्वयमेव केतां पोतेज छे, ते पोतानो आनंद पोते भोगवे एहवा अनंत धर्म प्राग्भाव रूप श्रीविमलनाथनी सेवना करो, मोक्षार्थी जीवने श्रीअरिहंत सेवना तेहिज मोटुं कारण छे, अनादिनी भ्रांति टालवानुं पुष्टनिमित्त छे, ॥ ७ ॥ इति त्रयोदशम श्री विमल जिन स्तवनं संपूर्ण ॥

॥ अथ चतुर्दश श्री अनंत जिन स्तवनं ॥

॥ दीठी हो प्रभु दीठी जग गुरु तुज ॥ ए देशी ॥

मूरति हो प्रभु मूरति अनंत जिणंद,
ताहरी हो प्रभु ताहरी मुझ नयणे वसी जी ॥
समता हो प्रभु समता रसनो कंद,
सहेजें हो प्रभु सहेजें अनुभव रस लसी जी ॥ १ ॥

अर्थः—हवे चौदमा प्रभु श्री अनंतनाथजीनी स्तवना करे छे, हे अनंतनाथजिनेंद्र ताहरी केतां तुमारी मूरति केतां मुद्रा एटले आकार ते माहारा नयने केतां नेत्रने विषे वसी छे ! ते मुद्रा केहेवी छे तो के समता जे राग द्वेष रहितपणुं ते रूप जे रस तेनो कंद छे. वली सहजे प्रयास विना अनुभव स्वभोगीपणुं ज्ञान तेहना रसथी लीन छे तन्मय छे ॥ १ ॥

भवदव हो प्रभु भवदव तापित जीव,
तेहने हो प्रभु तेहने अमृतघन समी जी ॥
मिथ्याविष हो प्रभु मिथ्या विषनीखीव,
हरवा हो प्रभु हरवा जांगुली मनरमी जी ॥२॥

अर्थः—वली भवने चारगतिरूप संसार, ते रूप दव केतां दावानलना तापे करीने बली रहेला आकुलित जीवोने परम शीतलता करवाने ताहरी मूर्ति ते अमृतना मेह समान छे, एटले संसारनो ताप समता करीनेथी मटे छे, माटे. वली मिथ्यात्वरूपविष तेहनी खीव केतां भ्रांति-मूर्छा तेहने हरवाने जांगुली केतां गारुडीना मंत्र समान ताहरी मूर्ति छे ॥ २ ॥ इति० ॥

भाव हो प्रभु भावचिंतामणि एह,
आतम हो प्रभु आतम संपत्ति आपवा जी ॥
एहिज हो प्रभु एहिज शिवसुख गेह,
तत्त्व हो प्रभु तत्त्वालंबन थापवा जी ॥ ३ ॥

अर्थः—वली हे प्रभु ! तुमारी मुद्रा भावचिंतामणि रत्न-समान छे, एटले चिंतामणि रत्न ते इंद्रियसुखनो हेतु छे, ते तो द्रव्य चिंतामणि छे, अने श्रीवीतरागनी मुद्रा ते मोक्षसुखनो हेतु छे, माटे भाव चिंतामणि समान छे, आत्मानी पोतानी अनंतज्ञानादिक संपत्ति आपवाने भाव चिंतामणि रत्न समान छे, माटे एहिज शिव सुखनुं घर छे, तत्त्व जे वस्तुनो मूळधर्म छे, ते स्वरूप आलंबवाने तुमारी मूर्ति श्रेष्ठ कारण छे, ॥ ३ इति० ॥

जाए हो प्रभु जाए आश्रव चाल,
दीठे हो प्रभु दीठे संवर वधे जी ॥
रत्न हो प्रभु रत्नत्रयी गुणमाल,
अध्यातम हो प्रभु अध्यातम साधन सधे जी॥४

अर्थः—वली जाय केतां नाश पामे आश्रव केतां नवां कर्म लेवानी चाल नाश पामे, तथा प्रभुजीनी मूर्ति दीठे, संवरनी वृद्धि थाय, आत्मधर्मरमणरूपता थवे, वली रत्नत्रयी केतां सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप जे गुणनीमाला केतां निर्मल श्रेणि ते जेहमां छे, एहवो अध्यात्मआत्मस्वरूप, तेहनुं साधन केतां नीपजाववानो उपाय ते सधे केतां नीपजे ॥ ४ ॥

मीठी हो प्रभु मीठी मूरत तुझ,
दीठी हो प्रभु दीठी रुचि बहुमानथी जी॥
तुझ गुण हो प्रभु तुझगुण भासन युक्त,
[illegible] भव नथी जी ॥ ५ ॥

अर्थः—हे प्रभुजी ताहरी स्तुत केनां थापना जे आकाररूप सुंदर मुद्रा दीठी ते घणीज मीठी केनां मिष्ट लागी पण केवी दीठी जे रुचि मोक्षाभिलाषयुक्त तथा बहुमान संयुक्त अत्यंत हरखे दीठी, जे आज हुं धन्य कृतपुण्य जेम वसुदेव हिंडमध्ये कयुं छे. कोविहु पुन्नविओ, वविओ पुव्वं च भव सहस्सेहिं ॥ जेणं जिणवरदंसण, दंभोनयंच जे दक्खो॥१॥ तेथी अहो वीतरागता ! अहोज्ञानता ! अहो उपकारता ! अद्भुतता ! आश्चर्यता जे हुं रंक दीन मोहेमग्न असंपन्नीने ए प्रभु मुद्रानो योग बन्यो. ते घणीज मोटी वात थई एहवा बहुमाने दीठी. एहवी अरिहंतमुद्रा ते अरिहंतना केवल ज्ञानादिक गुण जे अनंत चतुष्टय तेहना भासन उपयोग युक्त जे जीव सेवे, पर्युपासना द्रव्य तथा भावथी करे तेहने भव केतां संसारनो भय नथी, जे अरिहंतनी भक्ति करे ते संसार भ्रमण करे नहीं ॥ उक्तं च ॥ इक्को वि नमुक्कारो, जिणवर वसहस्स वद्धमाणस्स ॥ संसारसागराओ. तारेइ नरं व नारिं वा ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥५॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

नामे हो प्रभु नामे अद्भुत रंग,
ठवणा हो प्रभु ठवणा दीठे उल्लसे जी ॥
गुण आस्वाद हो प्रभु गुण आस्वाद अभंग,
तन्मय हो प्रभु तन्मयताये जे धसे जी ॥ ६ ॥

अर्थः—वळी हे प्रभु ताहरा नाम सांभळवाथी अद्भुत जेनो निरुपम रंग उपजे. वळी हे प्रभु ! ताहरी स्थापना मुद्रा दीठाथी उल्लास थाय छे. प्रभु थापना साक्षे-

प्रकारी छे, जे दीठे पोतानुं स्वरूपपणुं सांभरे वळी थापनाने निमित्ते गुण जे अनंत चतुष्टयादिक, परम निर्मल यथार्थोपदेशादिक वचनातिशय अशोक वृक्ष, इंद्रध्वजादिक देखीने अभंग गुणनुं आस्वादन थाय ते गुण आस्वादन केवो छे तो के अभंग छे ते कोने नीपजे के जे जीव, तन्मयतापणे श्रीप्रभुना गुणथी घसे, तेहने नीपजे तेनेज इत्यादिक वातोनो आनंद थाय ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥ ६ ॥

गुण अनंत हो प्रभु गुण अनंतनो वृंद,
नाथ हो प्रभु नाथ अनंतने आदरे जी ॥
देवचंद्र हो प्रभुदेवचंद्रने आणंद,
परम हो प्रभु परम महोदय ते वरे जी ॥ ७ ॥

अर्थः—एम ज्ञानादिक अनंत गुणना वृंद केतां समूह एहवा नाथ केतां श्री अनंतनाथ स्वामी तेने जे आदरे, उपादेय करे, ते प्राणी देवचंद्र जे स्तुति कर्ता अथवा देवचंद्र ते चोसठ इंद्र तेहने आनंद केतां परमानंदमयी एवो जे परममहोदयवंत मोक्षरूप स्थानक ते भक्तिवंत जीव वरे केतां पामे नियामक छे. ए प्रभुजीने सेवनां कर्म क्लेशथी रहित थाय ॥ ७ ॥ इति चतुर्दश श्री अनंत जिन स्तवनं संपूरणम् ॥ १४ ॥

॥ अथ पंचदश श्री धर्मनाथजिन स्तवनं ॥

॥ सफल संसार अवतार ए हुं गणुं ए देशी ॥

धर्म जगनाथनो धर्म शुचि गाईयें,
आपणो आतमा तेहवो भावियें ॥
जाति जसु एकता तेह पलटे नहीं,
सुद्ध गुणपज्जवा वस्तु सत्तामयी ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीधर्मनाथ भगवाननी स्तुति करे छे अने आत्मद्रव्यने साधकना साधकतानो उपयोग आपे छे. तिहां धर्म एहवे नामें पनरमा तीर्थंकर जगदुपकारी परमतत्त्वी जगत्ना नाथ, तेहने परमहितकारी धर्म प्रगट्यो छे, ते आत्म स्वभावी धर्म छे. ॥ उक्तं च ॥ संग्रहण्यां ॥ जो पुण आय सहावो, धम्मोपगिस्स इत्यादि अथवा उभयरूपरेज इत्यादि पुनः भावधर्माधिकारे ॥जीवाणं भावधम्मो, कम्माभावेण जो खलु सहावो ॥इत्यादि॥ कम्मविप्पमुक्करूवो, अणिंदियत्ता अतिंदियमेज्जाओ ॥ रूवादि विरहतो वा, अणाइ परिणाम भावाओ ॥ १ ॥ इत्यादिधर्मस्य स्वरूपं उक्तं ॥

एहवो श्रीधर्मनाथ स्वामीनो धर्म शुचि केतां पवित्र निरावरण परानुपाधिपणारहित तेने गाइयें, वारंवार संभारीयें, तत्त्वप्रगटरूप ते स्तवियें. अने पोतानो आत्मापण तेहवोज भावीयें, केतां विचारीयें, एटले जेहवो धर्म नाथस्वामीनो धर्म छे, तेहवोज अमारो आत्मानो धर्म छे. तथा च सिद्धान्त-

मूलटीकायां ॥ जारिससिद्धसहावो, तारिसभावो हु सव जीवाणं ॥ तेणं सिद्धंतरुइ, कायव्वा भवजीवेहिं ॥ १ ॥ तथा च तत्त्वार्थटीकायां ॥ जीवोजीवत्वावस्थःसिद्धः इति ते माटे सिद्धपणुं ते जीवनी पोतानी अवस्था छे, ईहां कोइ पूछे जे सिद्ध तथा संसारी सकर्मा, समोही, मिथ्यात्वी, असंयमीने तुल्य केम कहो छो. तेहने कहे छे. जे वस्तुनी जाती एकता पणे छे, ते किवारें पलटे नहीं. माटे जीव द्रव्यपणुं, एहिज धर्म छे जे अनादिनो कर्मावृत्त थयो तो पण पलटे नहीं, स्वजाति मुके नहीं, तो मारी तथा श्रीधर्मनाथ स्वामीनी जीवनीजाति एक छे, श्रीठाणांगमां कह्युं छे, एगेआया इत्यादि ते माटे यद्यपि अत्यंत मोहनीय अशोधमां पड्यो, तो पण जीवत्वपणुं संग्रह नये तेवोज छे जे शुद्ध निर्मल गुणपर्यायमयी वस्तुनी सत्ता छे, केमके सर्व पदार्थ गुणपर्याय संयुक्त छे, उक्तंच तत्त्वार्थे " गुणपर्यायवद् द्रव्यं ॥ इति ॥ " दव्वं पज्जवविउअं, दव्वविउत्ता य पज्जवा नत्थि ॥ उप्पाय ठिइभंगाइं, दवीय दवलक्खणं एयं ॥ १ ॥ इति संमतिम. गाथा ॥ उप्पज्जंति चयंति, परिणमंति गुणाण दव्वाए ॥ दव्वप्पभवाय गुणा, न गुणप्पभवाए दव्वाए ॥ १ ॥ अपज्जवे आणणा नत्थी, तथा आगमपरिगुंको ॥ गुणाणामासओदव्व ॥ एगदव्वस्सिया गुणा ॥ लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ निस्सिया भवे ॥ १ ॥ इति उत्तराध्ययने ॥ ते माटे [illegible] वस्तुनी सत्ता, [illegible] छे, यद्यपि जीव [illegible] छे, अने आत्मीक गुणसर्व अप्रगट छे, तो पण सत्तायें शुद्ध छे, निर्मल छे. माटे आपणो आत्मसत्ता, ते श्रीधर्मनाथस्वामीनी [illegible] प्रगट तत्त्वरमणता [illegible] छे ॥ ४ ॥ इति पंचदश० ॥

नित्य निरवयव वली एक अक्रियपणे,
सर्वगत तेह सामान्यभावे भणे ॥
तेहथी इतर सावयवविशेषता,
व्यक्तिभेदे पडे जेहनी भेदता ॥ २ ॥

अर्थः—हवे सामान्य विना वस्तुनी छती आधारता नहीं, अने विशेषविना कार्य नहीं, पर्यायप्रवृत्ति नहीं, ते माटे पंचास्तिकाय ते सामान्यस्वभाव अने विशेषस्वभावमयी छे, तिहां सामान्य स्वभावनुं लक्षण कहे छे. जे नित्य अविनाशी तथा नित्य होय, पण आकाशनी परें निरवयव होय, ते माटे कह्यो जे निरवयव जेहने विभाग अंश नथी, ते पण एकज पण जेमां बेपणो नहीं स्वजातिमां द्विधाभाव नहीं ते एक, पण जाणवारूप अथवा परस्पररूप क्रिया करे नहीं, तेथी अक्रिय, ते पण कोइपर्यायमां व्यापे, कोई पर्यायमां न व्यापे, तेहवा नहीं पण सर्व पर्यायमां व्यापेज ए लक्षण जेहमां छे, तेहने सर्वज्ञ देवें सामान्यस्वभाव कह्यो छे. ए सामान्यलक्षण श्रीविशेषावश्यकें कह्युं छे. एगं निच्चं निरवयवं, अक्कियं सव्वगं च सामन्नं ॥ ए गाथाना व्याख्यानथी जाणवो. तिहां भावना जे नित्यपणुं सामान्य धर्म छे ते पदार्थमां नित्यपणुं सदा छे, ते नित्यपणाने पर्यायप्रदेशरूप अवयव नथी, ते नित्यपणुं सर्व एकज छे, अने जाणवादिक कोई क्रिया करतो नथी, तेथी अक्रिय छे, ते नित्यपणुं प्रदेशमां, गुणमां, पर्यायमां, सर्वमां व्यापक छे, तेथी सर्वगत छे. एटला लक्षणने पहोंचे, ते माटे नित्यपणुं ते सामान्य छे. एम अनित्यत्वादिक पण सर्व सा-

मान्य स्वभावमां जाणवुं. हवे विशेष स्वभावनुं लक्षण कहे छे. ते सामान्यथी इतर केतां बीजा जे सावयव केतां सप्रदेशी अविभागपर्याय संयुक्त अनेक अनित्य सावयव, सक्रिय, ते विशेष स्वभाव जाणवो, पण व्यक्ति जे पदार्थ तथा गुणांतर तेहना भेदे जेहनी भेदता केतां जुदापणुं पडे, एटले सर्वव्यक्तिने विषे विशेषपणुं जुदुं जुदुं छे. माटे विशेषनी सर्वत्र जुदायी छे, ते विशेष स्वभावमां ज्ञानादिकगुणना भेद जाणवा. ए सामान्यविशेषनुं लक्षण कर्युं. ए सामान्यविशेषसत्तामयी द्रव्य छे. ॥

एकता पिंडने नित्य अविनाशता,
अस्ति निज रुद्धिथी कार्यगत भेदता,
भावश्रुत गम्य अभिलाप्य अनंतता,
भव्यपर्यायनी जे परावर्तिता ॥ ३ ॥

अर्थः—ए सर्व धर्मनाथ प्रभुनो धर्म छे. हवे सामान्यस्वभावनां लक्षण कहे छे. १ प्रथम एकता केतां एक स्वभाव जे पिंड केतां पिंडपणुं ते द्रव्यना सर्वप्रदेश, गुण, पर्याय, हनो समुदाय ते एक पिंडरूप छे, पण, भिन्नरूप वर्त्तनो थी, तेने एकस्वभाव कहिये.

२ बीजो नित्य अविनाशता केतां अभंगुरतारूप द्रव्यनु द्रव्यत्वपणु नित्य इतिनित्यार्थवचनात्, ते द्रव्यमां बीजो नित्यस्वभाव कहिये.

३ त्रीजो सर्वद्रव्योनाने स्वभावरूपता छे पण कोई काले

[illegible] कहिये.

४ [illegible] है. [illegible] करे है. [illegible] करे है. [illegible] करे है. [illegible] है.

५ [illegible] है. [illegible] है. [illegible] है.

६ [illegible] कहिये. [illegible] कहिये ॥ ३ ॥

। इति तृतीय गाथार्थः ।

[illegible]
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible] ॥ ४ ॥

[illegible]

छे, तथा गुणाविभाग जे एकएकगुणना अनंता अविभाग छे जेम चारित्रना अविभाग संयमश्रेणीमां कह्या, वीर्यना अविभाग योगस्थान अधिकारें कम्मपयडीमां कह्या छे, तेमाटे गुणाविभागपणे पण अनेक स्वभाव छे. एक एक द्रव्यमां अनंतागुण छे, ते वली एकेका गुणमां अनंता गुणाविभाग छे, ते अनेकस्वभावता छे, तथा भावविभागें जे पर्याय धर्म ते ज्ञानादिक गुणना अनंता पर्यायनी सूक्ष्मता गहन छे, ते पण अनेक स्वभाव छे, एटले क्षेत्रे तथा गुणें अने पर्यायें सर्व रीतें द्रव्यमां अनेकता छे.

२ बीजो नाश केतां व्यय तथा उत्पाद केतां उत्पाद पु परिणति ते सर्व द्रव्यमां अनित्य केतां अनित्यस्वभाव छे.

३ त्रीजो पर केतां आपणथी बीजा जे द्रव्य तेहना धर्म ते अन्यद्रव्यमां नथी एटले एक द्रव्यना जे धर्म ते बीजा द्रव्यमां न पामीयें, ते द्रव्यमां नास्तिता केतां नास्तिस्वभाव छे.

४ चोथो आत्माना सर्व गुणपर्याय ते भिन्नभिन्नकार्य करे छे, परंतु क्षेत्र केतां भाजन ते सर्वनो आत्मा छे, माटे गुणपर्यायनी अनंतता छे, पण कोई मूलद्रव्यने तजी शकतो नथी, एकक्षेत्रे एकाधारपणे व्याप्यत्व केतां अवगाही रह्या छे ते द्रव्यमां अभेदता केतां अभेदस्वभाव छे.

५ पांचमो वली वस्तुने स्वरूपें केवल ज्ञानगम्यपणे वचने ... अनंतधर्मात्मक पणे द्रव्यनुं अनभिलाप्यपणुं ते अव... ...भाव छे. उक्तं च ॥ श्रीविशेषावश्यके ॥ अभिलाप्य अनभिलाप्या अनंतगुणा इति ॥

६ छट्ठो अनेक पर्यायनोपरावर्त्त छे, पण वस्तुना मूलरूपथी पलटे नहीं, ते रूपेंज रहे छे, ए नियतपणा माटे वस्तुमां अभव्यस्वभाव छे.

ए सर्व स्वभाव सम्मतितर्क तथा धर्मसंग्रहणीना व्याख्यानथी जोवा, ए सामान्यस्वभाव छे ते पदार्थनो द्रव्यास्तिकमूलधर्म छे, एहवा परिणमनपणाथकी सर्व पदार्थ स्याद्वादि कहेवाय छे, जे समयें एक ते समयें अनेक, जे समये नित्य ते समयें अनित्य, जे समयें अस्ति, ते समयें नास्ति, जे समयें भिन्न ते समयें अभिन्न, जे समयें वक्तव्य, ते समयें अवक्तव्य, जे समयें भव्य ते समयें अभव्य इत्यादिक एम वली एक अनेक नित्यानित्यादिक एक एक स्वभावनी सप्तभंगी थायें. तेवा अनंता स्वभावें अनंतीसप्तभंगीयो द्रव्यनेविषे थाय, ते स्याद्वादरत्नाकरावतारिकामां कह्युं छे. जे " नित्यानित्याद्यनंतस्वभावभेदतः प्रतिधर्मे भिन्नाभिन्ना सप्तभंगी एवमनंताः सप्तभंग्यो भवंति इति॥" तथा च श्रीजिनवल्लभसूरिवाक्यं ॥ बहुविह नयभंगं, वत्थुनिच्चं अनिच्चं ॥ सदसदभिलाप्पा, लप्पमेगं अणेगं ॥१॥ इति ॥ ए स्वभाव महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी स्वकृतद्रव्यगुणपर्यायना रासमध्यें समर्थ्या छे, तिहांथी जोई लेवा ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

धर्म प्रागभावता सकल गुण शुद्धता,
भोग्यता कर्तृता रमण परिणामता ॥
शुद्ध स्वप्रदेशता तत्त्वचैतन्यता,
व्याप्य व्यापक तथा ग्राह्य ग्राहकता ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे विशेष स्वभाव कहे छे. द्रव्यनो धर्म जे ज्ञानादिक तेहनी प्राग्भावता केतां प्रगटपणुं ते आविर्भाव-धर्म, बीजो ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि, सर्व गुणनी शुद्धतायें सर्व स्वगुणनुं भोगीपणुं ते भोग्यता धर्म तथा कर्तृता केतां कर्ता-पणुं सर्व प्रदेशकार्यानुगत समुदायप्रवृत्ति कार्योत्पादकं कर्तृत्वं तें धर्मास्तिकायादि द्रव्यने प्रदेशे प्रदेशे चलनादिसहायरूप कार्यनो थावो, ते भिन्नभिन्न प्रदेशने आश्रयें छे. अने जीव-द्रव्यनुं जाणवा देखवारूप कार्य, ते सर्व, असंख्यप्रदेशना मलवायी छे, ते माटे जीव द्रव्यने विषे कर्त्तापणुं विशेष स्वभाव छे. वली रमण जे कोईकने विषे रमवुं तथा परिणामिकता जे परिणामिकपणुं ते शुद्ध स्वप्रदेशीपणुं ते पण विशेष स्वभाव छें; तथा तत्त्व केतां वस्तुमां मुलधर्म जे चैतन्यता तें पण विशेष स्वभाव छे, व्याप्य व्यापकपणुं तथा ग्राह्य ग्राहकपणुं तथा आधाराधेयपणुं संरक्षणपणुं स्वस्वामिभावादिक ए सर्व वि-शेष स्वभाव जाणवा. ए रीतें सामान्य स्वभाव तथा विशेष स्वभाव, ते सर्व श्रीधर्मनाथ परमेश्वरना निर्दोष थया, तेहमां पण सामान्यस्वभाव तो निर्दोष सदा हता, परंतु पर संयोगें विशेष स्वभावनो द्विधाभाव थयो हतो, ते हेश्री धर्मनाथ प्रभुजी तुमे स्वरूपालंबनी थई करणगुणें जे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अने वीर्य, तेहने स्वरूपथी एकत्व करी, स्वरूप प्राग्भाव करी, स्वरूपें कर्या छे, माटे निरामय थया छो ॥५॥
॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

संग परिहारथी स्वामि निजपद लह्युं,
शुद्धआत्मिक आनंदपद संग्रह्युं ॥

जहवि पर भावथी हुं भवोदधि वस्यो,
परतणो संग संसारताये ग्रस्यो ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे एहवी अनंत गुण निर्मलता प्रभुजीने जे रीतें नीपनी, ते रीत कहे छे, हे देव, हे परमेश्वर ! तुमे पुद्गलादिकनो संग सर्वथा परिहार केतां त्याग कर्यो, तेहथी निज केतां पोतानुं परमपद अव्याबाधानंदरूप चिद्रूपावस्थान-रूप लह्युं. केतां पाम्यो माटे तमे शुद्ध केतां निर्मल आत्मिक केतां जे आत्म द्रव्यनो आनंद अव्याबाधादिकते संग्रह्युं केतां लाधो अने हे प्रभुजी ! जहवि केतां जो पण हुं परभावथी केतां परभाव निमित्त पामीने परभावरूप परणमीने, वर्त्तमान परानुयायी भवो-दधि केतां भवसमुद्रने विषे वस्यो छुं, भवनिवासी थयो छुं, तेथी पुद्गलादिकने संगे संसारता भावथी नवुं नवुं अव्यवसायीपणुं पामीने द्रव्यथी चारगतिरूप संसारमां संसरवापणे करीने ए माहारो आत्मा ग्रस्यो छे. एटले ए संसारे मुझने ग्रास करी लीधो छे, माटे हे देव ! तुमे असंगी, हुं संगी, तुमे मुक्त, हुं बद्ध, तुमे अकर्मा, हुं कर्माश्रित तुमे स्वरूपभोगी, हुं पुद्गल-भोगी, तुमे स्वगुणपरिणामि, हुं पुद्गलाश्रित रागद्वेष परिणामि, तेथी हे प्रभु ! माहारे तो माहरी भूलथी कोइक नवुं जे सत्तामां कर्त्तापणामां, परिणामिकतामां न हतो ते नीपनो, ए अशुद्धकर्त्तापणुं में कर्युं, तेहथी स्वगुण आवरी ने पुद्गलनो ग्राहक थयो. ने पुद्गलने लेवाथी माहरो आत्मा पुद्गलभोगी थयो, एटले नाहरे माहरे अंतर पडी गयो, तेथी हुं संसारी छुं अने तमे सिद्ध थयेल छो, इति षष्ट गाथार्थः ॥ ६ ॥

तहवी सत्तागुणे जीव ए निर्मलो,
अन्यसंश्लेष जिम फटिक नवि सामलो ॥
जे परोपाधिथी दुष्टपरिणति ग्रही,
भाव तादात्म्यमां माहरूं ते नही ॥ ७ ॥

अर्थः—तोपण सत्तागुणे द्रव्यास्तिक संग्रह नयें ए माहरो जीव निर्मल छे, निष्कलंक छे, असंगी छे, अरूपी छे, कोण दृष्टांते ? जेम श्यामादिक पुटसंयोगे फटिक रत्नो रंग श्याम दीठामां आवे छे परंतु फटिक कांइ श्याम थयो नथी, पण अपरीक्षक लोक तेने श्याम जाणे छे, पण जाने जेहवो हतो तेहवोज छे, तेम कर्मसंगे आत्मा अशुद्धरूप देखाय छे, परंतु तत्त्वज्ञानी एने ज्ञाने निर्मलज जाणे छे, तेम श्रद्धावंत [illegible] निर्मल जाणे छे अने जे परउपाधिथी दुष्टपरिणति कर्मकर्ता पणाकर ग्रहीने तादात्म्यभावमां तादात्म्यसंबंधे करी छे, ते माहरो स्वाभाविकभाव माहरो नथी, संयोगे संबंध मल्यो छे, परंतु समवायसंबंधे नथी जे विभाव ते तद्रूपनिमित्त छे परंतु तादात्म्यसंबंधे नथी, एम भावार्थ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥ ७ ॥

तिणे परमात्मप्रभु भक्ति रंगी थइ,
शुद्धकारण रसे तत्त्व परिणति मयी ॥
आत्मग्राहकपणे तजे पर ग्रहणता,
सत्त्वभोगी थये टले परभोग्यता ॥ ८ ॥

अर्थः— [illegible]

तेथी एने निवारीयें, तो जावे तेवारे ए माहरो आत्मा स्वरूपावस्थित थाय. एम विचारी तेहनो उपाय चिंतवे छे. जे ए संसारी आत्मा परानुगत थइ रह्यो छे, तेहने जो हमणां स्वरूपथी जोडीएं, तो जोडी शके नहीं, अने परविजातिथी जोड्यो थको ईंधने वधारे छे, माटे परस्वजाति जीव जे अमोहीं, शुद्धज्ञानी तेथी जोडीयें, तो स्वजाति स्वरूप रंगी थाय. पछी अरिहंतनुं स्वरूप तथा आपणा आत्मानुं स्वरूप तुल्य छे, तेथी तेहना स्वरूपें रसिक थाय, तो पछी कर्म आवर्यो पण, आत्मस्वरूपनी रुचि उपजे, ते रुचियी पोताना स्वरूपने सर्दहे, जाणे, रमे, उद्यम करे, परभाव तजे ए अनुक्रमथी संपूर्ण स्वरूप पामे, तेमाटे परमात्मा प्रभु श्रीधर्मनाथजीना भक्तिनो रंगी थइने शुद्ध कारणने रसें आत्मा तत्त्वपरिणतिमां मग्न थाय, पोतानुं आत्मस्वरूप जोवे, ध्यावे, संभारे तथा तेहनेज प्रगट करवाना यत्न करे, एवी रीतें जेवारें आत्मानो ग्राहक थाय, तेवारें अनादिनी परग्राहकता तजे, केम जे आत्मस्वरूपनो ग्राहक थयो, ते परभावने ग्रहे नहीं, जेटली आत्मपरिणति आत्मधर्मे ग्राहक थइ ते कर्मादिक न ले तेने संवरपरिणति कहियें, वर्तीतत्त्वभोगी थये, परभोगीपणुं टले, तेवारें आत्माने भोगवे ॥ ८ ॥

शुद्ध निःप्रयास निजभाव भोगी यदा,
आत्मक्षेत्रे नही अन्य रक्षण तदा ।
एक असहाय निस्संग निर्द्वन्द्वता.
शक्ति उत्सर्गनी होय सहु व्यक्तता ॥ ९ ॥

अर्थः—जेवारें शुद्ध पुद्गल संगरहित निःप्रयास निजभाव केतां आत्मभावनो भोगी थयो, तेवारें आत्मप्रदेशें अन्य केतां पुद्गलकर्म तथा रागादिकनुं रक्षण केतां राखवो नथी, एटले स्वरूप ग्राहक चेतनानुं वीर्य थाये, तेवारे पुद्गल कर्म आत्मप्रदेशें संबंधीपणे रहे नहीं, सर्व पुद्गलखरीने आत्मा निःकर्मा थाय, तेवारे एक सर्वसंग रहित, असहायी, निर्द्वंद्व उत्सर्गनी शक्ति सहित व्यक्तता केतां प्रगटता निरावरणपणुं पामे ॥ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥ ९ ॥

तेणें मुझ आतमा तुझथकी नीपजे,
माहरी संपदा सकल मुझ संपजे ॥
तेणें मन मंदिरे धर्म प्रभु ध्याइयें,
परमदेवचंद्र निज सिद्धि सुख पाइयें ॥ १० ॥

अर्थः—तेथी हे देव हे श्रीवीतराग ! तुमारें निमित्ते माहारो तत्त्व नीपजे, बीजो कोइ उपाय देखातो नथी, माहरा आत्मानुं सिद्धपणुं ते ताहारा स्वरूपने अवलंबे नीपजे, माहरो अनंतगुणपर्यायरूप स्वकर्त्तापणुं स्वभोक्तापणुं स्वरूप ऐश्वर्य सर्व जे मोहाधीन कर्मावृत्त छे, ते मुने संपजे, एटले हुं माहारी अरूपी सत्तागत तत्त्वसंपदानो धणी तथा भोगी, अविनाशीपणे थाऊं, ए प्रभुजीनो परम उपकार जाणुं, ते कारणे मनमंदिरने विषे श्रीधर्मनाथ प्रभुने ध्याइएं, क्षण एक बीजी उपाधिचिंतविएं नहीं. ए प्रभुना गुण तथा उपगारनुं बहुमाने ध्यान करियें, तथा मायकने एहिज आधार छे, तेवारे परम उत्कृष्ट देव ते स्व. उपमार्ग मुनि तेहमा चंद्रमा समान जे

परमात्मस्वरूप निज केतां पोतानुं सिद्धि केतां निष्पन्नसुख, अव्याबाधादिक तेने पाइयें केतां पामियें, एहीज मोक्षनो उपाय छे, तेमाटे श्रीअरिहंतनुं सेवन निरुद्दानपने करवुं ॥१०॥
॥ इति श्री धर्मजिन स्तवनं संपूर्णम् ॥

॥ अथ षोडश श्री शांतिजिन स्तवनं ॥

॥ आंखडीयें में आज सेत्रुंजो दीठो रे ॥ ए देशी ॥

जगतदिवाकर जगतकृपानिधि,
वाहाला मारा समवसरणमां बेठारे ॥
चउमुख चउविह धर्म प्रकाशे,
ते में नयणें दीठा रे ॥
भविक जन हरखो रे ॥
निरखी शांति जिणंद ॥ भ० ॥
उपशम रसनो कंद ॥
नहीं इण सरखो रे ॥ ए आंकणी ॥१॥

अर्थः—हवे सोलमा जिन श्रीशांतिनाथ प्रभुनी स्तवना करे छे. ते प्रभु केहवा छे ? जगतने विषे [illegible] केतां [illegible]
[illegible]

नयणें केतां आगम श्रवण रूप चक्षुए दीठां, माटे हे भविक जीवो ! तुमें जिणंद केतां सामान्यकेवलीमां इंद्रसमान एहवा श्रीशांतिप्रभुने निरखीने हरखवंत थाओ. उपशम जे परमक्षमा तद्रूप जे रस तेनु ए कंद छे, एना तुल्य बीजो कोइ नथी, ए प्रभु परम शांतरसमयी छे. ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥१॥

प्रातिहार्य अतिशय शोभा ॥ वा० ॥
ते तो कहिय न जावे रे ॥
घूकबालकथी रविकरभरनुं,
वर्णन केणी परे थावे रे ॥ भ० ॥ २ ॥

अर्थः—वली प्रभुनी जे आठ प्रातिहार्यनी तथा चोत्रीश अतिशयनी शोभा ते मुज सरिखा व्यामोहि जीवथी कही जाय नहीं. दृष्टांत-जेम घूकबालकथी केतां घूवडना बालकथी रविकर केतां सूर्यना किरणोनो भर केतां समूह तेहनुं वर्णन केवी रीतें थाय ? अर्थात् नहींज थाय, तेम मुज सरखाथी पण प्रातिहार्यादिकनी शोभा कही जाये नही. इति ॥२॥

वाणी गुण पांत्रीश अनोपम ॥ वा० ॥
अविसंवाद सरूपे रे ॥
भवदुःखवारण शिवसुखकारण,
सुधो धर्म प्ररूपे रे ॥ भ० ॥ ३ ॥

अर्थ —वली प्रभुनी जे वाणी तेहने विषे उपमा रहित पांत्रीश गुण रह्या छे. ते वाणी विसवादपणाथी रहित अविसंवाद

[illegible] करे छे ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥३॥

दक्षिण पश्चिम उत्तर दिशिमुख ॥ वा० ॥
ठवणा जिन उवगारी रे ॥
तसु आलंबन लहिय अनेके,
तिहां थया समकित धारी रे ॥ भ० ॥४॥

अर्थ— [illegible]

[illegible] ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥४॥

पडू नयकारण लेवे ठवणा ॥ वा० ॥
सग नयकारण ठाणी रे ॥
निमित्त समान थापना जिनजी,
ए आगमनी वाणी रे ॥ भ० ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे थकीविशेष थापनानुं उपगारीपणुं तथा सत्यपणुं कहे छे, ते सर्वे श्रीअरिहंत तथा सिद्धजी पण आपणा आत्मना निमित्त कारण छे, अने श्रीजिनप्रतिमा ते पण आपणा गत्त्यसाधननुं निमित्त कारण छे, तेहमां थापना जिनने विषे अरिहंतसिद्धपणुं ॥ नथी छे, इहां कोइ पूछे जे अरिहंत थया अथवा सिद्ध थया तेहनी थापना छे, तो स्थापना मूकीने, छ नय केम कहो छो ? तेहने उत्तर कहे छे जे मूल तो थापनानिक्षेपामध्ये थापना ते त्रण नयें छे " नामस्थापनाद्रव्यनिक्षेपनयनैगमादिनयत्रीति इति ॥ " अत एटलो ज हवे इहां नामादि एकेक निक्षेपाना चार चार भेद थाय छे ॥ उक्तं च भाष्ये ॥ नामादि प्रत्येकंचतुष्कं इति ॥१॥ त्यां प्रथम ए स्थान एटले नाम स्थापनामांहे ते स्थापनानो नाम निक्षेपो छे, बीजो ए स्थापना ग्रहण हेतु थाय छे, ते स्थापनानो स्थापना निक्षेपो जाणवो. त्रीजो मनुष्यना अनुपयोगना ते स्थापनानो द्रव्य निक्षेपो जाणवो. चोथो उपयोगनिक्षेपाओ ए धर्मने मानिक थाये, ते स्थापनानो भाव निक्षेपो छे. एम थापना चार निक्षेपे छे, अथवा [illegible] एवं, मुनीअथोपरिजगमत् [illegible] ॥ [illegible], [illegible] एवा ॥१॥ इति तेथी श्रीअरिहंत तथा सिद्धनी स्थापना छे, ते माटे तेहना नय कहे छे.

१ जे स्थापना विषे अरिहंत सिद्धनो [illegible] स्थापना थाय छे, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ए [illegible] छे ते [illegible] [illegible]

थापना करी छे, तेमाटे ए संग्रहनय अरिहंत सिद्धरूप स्थापना छे.

३ अरिहंतना आकारने वंदन नमनादि सर्व व्यवहार श्री अरिहंतनो थाय छे, तेहवुं स्थापवुं ए थापनानुं छे, ते व्यवहारनय थापना कहिये.

४ ए प्रतिमारूप थापना देखी, सर्व भव्यने बुद्धिनो विकल्प एहवो उपजे छे. के ए श्रीअरिहंतजी छे ते विकल्पेंज स्थापना करी छे. ते ऋजुसूत्रनय स्थापना छे.

५ अरिहंतसिद्ध एहवो शब्द "इंद्रकृतनिक्षेपसिद्धं" इहां कहने छे, ते शब्दनय स्थापना जाणवी.

६ अरिहंतना पर्याय वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर तारक जिन पारंगत जिन पारंगत इत्यादिक सर्व पर्यायनी प्रवृत्ति पण स्थापना करे छे. ते समभिरूढनय स्थापना थइ परंतु केवलज्ञान केवल[illegible] उपयोगरूप ते धर्म. स्थापनानां नथी माटे एवंभूतनय [illegible]. ते ए स्थापनानां नथी. तेथी ए [illegible] ते सर्व तेनां [illegible]. अरिहंत. सिद्धरूप ते पण तेनां [illegible] छे, पण एवंभूतने नथी. केमके एवंभूतनय ते श्रीअरिहंत सिद्धने विषे छे. तेमाटे [illegible] अरिहंत [illegible] छे. इहां स्थापना निक्षेपमां [illegible] अरिहंत [illegible] छे. अने इहां [illegible] समभिरूढ [illegible] छे. [illegible]

[illegible]

विरति, सर्वविरतिने मोक्षसाधनतुं निमित्त कारण छे, ते निमित्त कारण सात नये छे, ते कारणनो धर्म कर्त्ताने वश छे. ते निमित्तकारणपणुं सात नयें छे, ते कहे छे.

१ पहेलो संसारानुयायी जीवने ए जिनप्रतिमा दीठे अरिहंततुं स्मरण थाय छे, अथवा जिनवंदने जीवनी सन्मुखता थाय छे. तेवारें सन्मुखतानो जे निमित्त ते नैगमनय निमित्त कारणपणुं छे.

२ जिन प्रतिमा दीठे सर्व गुणनो संग्रह थाय छे, साधकतानि चेतनादि सर्वनो संग्रह ते तत्त्वनी अद्भुततानें सन्मुख थाय छे, ते संग्रहनय निमित्त.

३ वंदन नमनादिक साधकव्यवहारतुं निमित्त ते व्यवहारनय निमित्त.

४ तत्त्वईहारूप उपयोग समरवानो निमित्त ते ऋजुसूत्रनय निमित्त.

५ संपूर्ण अरिहंतपणाना उपयोगें जे उपादान ए निमित्तें तत्त्वसाधनें परिणम्यो, ते शब्दनय, थापनानो निमित्त छे, समकिती प्रमुखनें एहवो छे.

६ अनेक रीतें चेतनाना वीर्यनी परिणति, सर्वसाधनतानें सन्मुख थई ते समभिरूढनय स्थापनानुं निमित्त कारणपणुं जाणवुं.

७ ए स्थापनानें कारण पामी तत्त्वरुचि तत्त्वरमणी थईने जे शुद्ध शुक्लध्यानमां परिणमें ए संपूर्ण निमित्त कारणता पामीने उपादान पूर्ण कारणता नीपजी ते एवंभूतनय निमित्त

कारणपणुं छे, एटले निमित्त कारणनो ए धर्म छे, जे उपादानने कारणपणे पमाडे, अने उपादान कारण ते कार्यपणे नीपजे. ए रीत छे.

तेथी जिनप्रतिमा ते मोक्षनुं निमित्त कारण छे, ते निमित्त सात नये छे. तेहमां शय्यंभवादिकने शब्दनय सीम, कारण थयुं, अने पुण्यरुचिनं व्यवहारनय सीम, निमित्त कारणपणुं थाय. तथा मार्गानुसारी समकेतिनी आठ दृष्टि जे योगदृष्टि समुच्चयमां कही छे, तेमांनी आदिनी चार दृष्टि वालाने ऋजुसूत्रनय सीम, निमित्त कारणपणुं थाय छे अने पुण्याढ्यादिकने ए जिनप्रतिमा संपूर्ण एवंभूतनयें कारणरूप थइ देखाय छे. तेवारे इहां भावनायें ए थयुं जे थापनाने विषे संपूर्ण सात नयरूप निमित्त कारणता छे. पछी कार्यनो कर्त्ता जिहां सुधी एहने नीपजावे, तेटलो नीपजे, तेथी ए स्थापना ते सगनय केतां साते नयें करी कारणठाणी केतां निमित्त कारणपणानुं स्थानक छे, ते थापना श्रीअरिहंत पदना मूल तो द्रव्य अने भाव ए बे निक्षेपावंत छे, परंतु निमित्त कारणना चार निक्षेपा सातनय संयुक्त छे. उक्तं च ॥ निमित्तस्यापि सप्तप्रकारत्वनय प्रकारेण निमित्तस्य द्विविध्यं द्रव्यभावात् ॥ तथोपादानस्यापि सप्तप्रकारत्वं नयोपदेशात्. " नो अभिहाणमणयं " इति वचनात् ॥ नत्थिनएहिं विहूणं, सुत्तं अत्थोय जिणमए किंचि ॥ आसज्जउ सोयारं, नये नयविसारओ बूआ ॥ १ ॥ इति ॥ माटे निमित्तपणे स्थापना केतां जिनप्रतिमा अने जिनजी केतां श्रीअरिहंत बेहु समान केतां तुल्यत्व छे. एटले विचरता अरिहंत तथा तेमनी स्थापना जे मूर्त्ति, ते बेहु समान केता बराबर छे, तेथी विचरता अरिहंत

तथा तेहनी स्थापना ए बे साधक जीवने निमित्त कारण छे, पण उपादान नथी सर्वेमां निमित्तता छे, ए आगम केतां सिद्धांतनी वाणी छे, जे अरिहंतने वांदवानुं तथा अरिहंतनी प्रतिमाने वांदवानुं फल सिद्धांतमां सरखुं कह्युं छे, माटे समान छे ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥ ५ ॥

साधक तीन निक्षेपा मुख्य ॥ वा० ॥
जेविणु भाव न लहियें रे ॥
उपगारी दुग भाष्ये भांख्या,
भाववंदकनो ग्रहियें रे ॥ भ० ॥ ६ ॥

अर्थः—अने, १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य ए त्रण निक्षेपा ते भावना कारण छे. उक्तं च भाष्ये ॥ अहवा नामटवणा, दव्वाइं भावमंगलं गाए ॥ पाएण भावमंगल, परिणामनिमित्त भावाओ ॥ १ ॥ माटे ए त्रण निक्षेपा साधक केतां कारण छे, ए त्रण निक्षेपा विना भावनिक्षेपो पामज नही, अने नाम तथा स्थापना ए बे निक्षेपा भाष्यने विषे उपगारी कह्या छे, ते कहे छे, जे द्रव्यनिक्षेपो छे, ते पिंडरूप छे, माटे ग्रहवाय नही, अने भावनिक्षेपो तो अरूपी छे, ते आवना नाम तथा स्थापना ए बे निक्षेपा विना ग्रहवाये नेवाये, नही. तेमाटे आदिना बे निक्षेपा ते उपकारी छे, उक्तं च ॥ द्रव्यमसन्त नाम. नागमय हेउओ मयम्मव ॥ ...नाणा विहाणा, होज्जा भावोविवज्जासो ॥ ? ॥ द्रव्युम्म हेनगाम, वयट्टणो विगिट्टमहाओ ॥ अभिहाणाहिणाओ. संट्ठियो अभिहाण ... ॥ इति आगमात् नाम्न प्रधानत्व

[illegible]

[illegible] ॥ ७ ॥

[illegible]

णनी थापना करी, तिहां जिनमुद्रा देखीने, जिनराजना गुणावलंबी चेतना करी पछी ते सेवना करतां प्रभुजी सिद्धावस्थारूप परम अनंतगुणीना स्वरूपथी जे माहरी चेतनानी अभेदता एकत्वपरिणामता ते चाथि केतां थवी, तेवारें ए आत्माने एहवो अनुमान सव्यो, जे तत्वादिकथी अभेदपणुं बहुमानपणे भल्युं तो एम जाणु छुं जे ए माहारो आत्म स्वस्वभाव अनंत ज्ञानादिपूर्णानंद गुणनी व्यक्त केतां प्रगटतावं थवुं तेहनी योग्यता साधि, एम अनुमाने निरधारी, एटले ए जीव सदा सर्वदा विषयरंगी हतो, ते तत्वी प्रभु निर्विषयीने रंगें रम्यो, तो कोइक अवसरें स्वरूपरमणी थाशे एहवुं अनुमान थयुं जो कारणथी अभेद थयो, तो कारज नीपजावशे ए पलटवापणुं अनंते काले न थयुं हतुं ते थयुं, तो ए द्रव्यमां पलटवानी योग्यता छे, अनादिनी चालथी पल्ट्युं ए भव्यतापणाना लिंगनुं अनुमान तो थाय छे, एटले भव्यपणुं जणाय छे, ए भक्तिनी बहुलतायें हर्षनुं वचन छे ॥७॥

भलुं थयु में प्रभुगुण गाया ॥ वा० ॥
रसनानो फल लीधो रे ॥
देवचंद्र कहे माहारा मननो,
सकल मनोरथ सीधो रे ॥ भ० ॥ ८ ॥

अर्थः—माटे हे प्रभु !!! आज मुजने भलुं केतां अत्यंत रूडुं थयुं, जे में प्रभु श्रीसोलमा शांतिनाथ परमात्मा परम शांतरसमयी तेना गुणनी स्तवना करी, तेथी में माहरी रसना केतां रसेंद्रि जे जिव्हा तेनुं रुडुफल लीधुं एटले रसनानुं

[illegible] ॥ ८ ॥ इति षोडश श्री शांतिजिन स्तवनं संपूर्ण ॥

॥ अथ सप्तदश श्री कुंथुजिन स्तवनं ॥

॥ [illegible] जिनेसर ॥ ए देशी ॥

समवसरण बेठा थका रे.
बारह परषद मांहे ॥
वस्तुस्वरूप प्रकाशता रे.
करुणा कर जगनाहो रे. कुंथु जिनेसर देव ॥१॥
निर्मल तुज मुख वाणी रे.
जे श्रवणें सुणे. तेहिज गुणमणिखाणी रे.
॥ कुं० ॥ २ ॥ ए आंकणी ॥

[illegible]

करवो. तेहनी रुचिएं रेहेवुं एहज सावन छे, एहवो उपदेश करता तथा करुणाकर केतां कृपाना करणहार जगजनना नाथ, एहवा श्रीकुंथुनाथ स्वामी, तेहना मुखनी निर्मल वाणी, उपदेशध्वनि, ते जे प्राणी श्रवणे सुणे, तेहिज प्राणी, गुणरूपमणि रत्ननी खाण छे, एहवा कुंथुनाथस्वामीने नमो॥इति॥२॥

गुणपर्याय अनंतता रे,
वलिय स्वभाव अगाह ॥
नयगम भंग निक्षेपना रे,
हेयादेय प्रवाहा रे ॥ कुं० ॥ ३ ॥

अर्थः—गुण ते जे वस्तुना सहभावि धर्म "द्रव्याश्रयानिर्गुणागुणा इतितत्त्वार्थे उक्तत्वात्" ते तथा क्रमभावि उत्पाद्विन्न ते पर्याय, अने द्रव्य, गुण, पर्याय, ए सर्वमां वर्ते, तेने स्वभाव कहीयें एटले गुणनी अनंतता, तथा पर्यायनी अनंतता, अने स्वभावनी अनंतता, ए सर्व अगाह केतां अगाध छे, जे अवगाहवाने दोहेली छे. वली नय केतां अनेक धर्मात्मक वस्तुने विषे एकधर्मावलंबन ते नय कहियें ॥ उक्तं च तत्त्वार्थे ॥ अनेकधर्मकवस्तुनोऽन्यस्य वस्तुन एकेन धर्मेण उन्नयन अवधारणात्मक निरपेक्ष अभिप्राय एवंविधनयस्यादेशनात् इति ॥ एहवा मूल नय सात, अने उत्तर नयना सय पांच सिवाय बहुत छे, तथा भंग सप्तभंगी इत्यादि भंग अनेकेन अनंत ...
[illegible]

अनेक भातिना वस्तुधर्मे, उपचारधर्मे कारणधर्मे स्वरूपें उपदेशे, ते वली हेय धर्मना, नय निक्षेपा भांगा ते हेयरूप कहेता अने उपादेय धर्मना नय निक्षेपा, ते उपादेयरूप प्ररूपता, एहवी श्रीकुंथुनाथजीनी देशना छे, वली एक द्रव्यमां गुण अनंता, पर्याय अनंता, स्वभाव अनंता, उपदेशे, इहां भावना जे गुणपर्यायने आवरण छे, स्वभावने आवरण नथी, अस्तित्व नित्यत्वादिक जे छे ते भव्ये विशेषस्वभाव विगडे पण सामान्यस्वभाव विगडे नहीं, तथा सर्वधर्म नय तथा भंगा अने निक्षेप सहित उपदेशे छे, एहवी श्रीकुंथुजिननी देशना छे ॥ ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

कुंथुनाथ प्रभुदेशना रे,
साधन साधक सिद्ध ॥
गौण मुख्यता वचनमां रे,
ज्ञान ते सकल समृद्धो रे ॥ कुं० ॥ ४ ॥

अर्थः—वली श्रीकुंथुनाथ प्रभुनी देशना केहेवी छे. जे भव्ये साधन केतां रत्नत्रयी पूर्ण अभेदतारूप निपजाववाना उपाय ते जिनमुद्रासेवन मुनिवंदन अनुकंपादिकथी लही शुक्लध्यान पर्यंत कह्या छे, तथा मार्गानुसारीथी लही क्षीणमोही पर्यंत अपवादें अने उत्सर्गे अयोगी लगें साधक जीव जाणवा, तेहनुं तारतम्य योग कहे छे, पहेलो मार्गानुसारी ते समकेतने साधे, अने समकेति ते विरतिने साधे. विरति ते शुक्लध्यानने साधे, तथा शुक्लध्यानी क्षायिकगुणने साधे, क्षायकगुणी सिद्धने साधे, ए साधकनो क्रम छे. ते सर्व प्रभु देशनामां कहे, तथा

सिद्धपणुं संपूर्ण निष्पन्ननिरावरणतापणुं कहे. वली कुंथुनाथजीनी देशनामां वचन जे बोलाय ते, अनंता गौणधर्म राखीने जे वचनमां ग्राह्य ते धर्मने मुख्य करी कहे, एटले एक वस्तुमां अनंता धर्म एकसमयमां परिणमे छे, ते सर्व एकसमयमां जाणे, परंतु वचनेकरी जे धर्म मुख्य करी कहेवाय तेने मुख्य करी कहे, बीजा सर्व ज्ञानमां गौणपणे जाणे, एम वचनमां गौणपणुं तथा मुख्यपणुं छे, पण श्रीकुंथुनाथ स्वामीनुं केवल ज्ञान ते सकल ज्ञेयने जाणवे करी समृद्धिमान् छे, एटले ज्ञानमां एक क्रमणा जाणे बीजा पछी जाणणे एम नथी, सर्व भावने ते समयेज जाणे छे, तेथी ज्ञानमां गौणता मुख्यता नथी, अने वचननुं धर्मक्रम प्रवर्त्तन छे, ते एक कह्या पछी बीजो कहेवाय, माटे वचनमां गौणता अने मुख्यता छे॥इति चतुर्थ गाथार्थः ४॥

वस्तु अनंत स्वभाव छे रे,
अनंत कथक तसु नाम ॥
ग्राहक अवसर बोधथी रे,
कहेवे अर्पित कामो रे ॥ कुं० ॥ ५ ॥

अर्थः—वस्तु जे जीवादिद्रव्य ते अनंतस्वभावमयी छे, सर्व वस्तु अनंतना युक्त छे, तथा वस्तुनो जीव अथवा पुद्गल एहवुं जे नाम छे, ते पण अनंतताने कहेतो छे, एटले जीव एवो शब्द उच्चार करतां जीवना अनंता धर्म छे, ते सर्व बोलाणा एम सर्व स्यात्पदे समजवो माटे जे वस्तुनुं नाम ते ते वस्तुना सर्व धर्मनो ग्राहक छे, तेथीज नामनिक्षेपामां संग्रह तथा व्यवहार ए बेहु नय मुख्य छे अने नैगम कारण छे. ए त्रीन छे, परन्तु ग्राहक

जे श्रोता तेहनो जेहवो अवसर होवे, तथा श्रोतानो जेहवो बोध केतां जाणपणुं होवे. तेहनो वचनमां अर्पित करीने उपदेशे, एटले ज्ञान तो सर्वने एक समयमां जाणे छे, परंतु उपदेशकालें केवली भगवान् जेहवा श्रोता होय, तेटलो कहे, तेथी केहेवामां अर्पित नय आगल करवानो काम पडे छे, ते अर्पित तथा अनर्पितनुं स्वरूप तत्त्वार्थमां कर्युं छे, "अनेकधर्मात्व धर्मांतप्रयोजनवशात्कदाचित् कश्चिद्धर्मोवचनेनार्पिते विवक्षिते तन्अर्पिते सत्यपि वचनविवक्षिते प्रयोजनाभावात् तत् अनर्पितं इति " जे धर्मीपदार्थ, तेहना अनेक धर्म छे, तेहने विषे अवसरे जे धर्म, कहेवानुं प्रयोजन उपजे, ते अवसरें ते धर्मने वचनने विषे अर्पित करीए. विवक्षा करीने ग्रहिये, ते अर्पित जाणवो, अने जे धर्म सत् छेतां छतो छे तो पण प्रयोजन विना तेने गवेषे नही, श्रद्धामां अपेक्षामां छे ते अनर्पित कहिये, छद्मस्थनुं ज्ञान, तथा बोलवो. ते अर्पित अनर्पित ते मध्यात् शुद्ध थाये, अने केवलीनुं ज्ञान तो सर्व एक समये छे, परंतु वचन ते अर्पित अनर्पित मध्या शुद्ध छे ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥ ५ ॥

शेष अनर्पित धर्मने रे.
सापेक्ष श्रद्धा बोध ॥
उभय रहित भासन होवे रे,
प्रगटे केवल बोधो रे ॥ कुं० ॥ ६ ॥

अर्थः—जे वचन बोलवामां [illegible] ते अनर्पित धर्म [illegible]. तेहने [illegible] [illegible]. [illegible]. [illegible]. केवलज्ञान [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible]. [illegible]

एम जाणवुं अने उभय केतां ए अर्पित अनर्पित वेहुथी रहित जे भासन होवे ते चोथ केतां केवलीनुं ज्ञान ते सर्वनो ज्ञायक समकाले छे, तेथी तेहमां अर्पित अनर्पितपणुं नथी, वचनमां अर्पितानर्पित छे, पंरतु जाणवामां नथी ॥इति॥६॥

छति परिणति गुणवर्त्तना रे,
भासन भोग आणंद ॥
समकाले प्रभु ताहरे रे.
रम्यरमण गुणवृंदो रे ॥ कुं० ॥ ७ ॥

अर्थः—वली हे प्रभुजी तमारामां ज्ञाननी, दर्शननी, चारित्रनी, वीर्यनी, सुखनी अरूपतानी, इत्यादिक अनंता तमारा गुणरूप धर्म, तेहनी छती छे, तेमज अनंत पर्यायनी पण छती छे, ते स्वद्रव्यादिकपणे सदा सर्वदा छती छे, तेम स्वभाव गुणपर्यायनी परिणति परिणामिकता द्रव्यने [illegible] परिणमवुं, ते उत्पाद, व्यय, ध्रुवता तथा षड्गुण हानि वृद्धिपणे परिणमे छे, तथा तेहिज ज्ञानादि गुणपर्यायनी वर्त्तना, ते जे स्वस्वकार्यनो कर्त्तापणुं ते ज्ञान जाणे, दर्शन देखे, चारित्र रमे, कर्त्तापणाथी कर [illegible] भोक्तापणाथी भोगवे, एम सर्वगुण पोतपोतानां वर्त्तनाए वर्त्तता पोतपोतानां कार्यने करे छे ते व-र्त्तना जाणवी, ए [illegible] हे प्रभुजी तमारामां छे अने ते सर्वगुण-पर्यायनुं भासन केता [illegible] ते तमारामां छे ते सर्वगुणने भोगवो छो ते [illegible] प्रभुजी तमारामां छे, एवं [illegible] वर्त्तना तथा [illegible] मां [illegible] महा

सुखी छो. वली हे प्रभु हे सर्वज्ञ ! हे सर्वानंदमयी ! हे नाथ ! हे सुयोपगारी ! तुमे केहेवा छो ? जे रम्य केतां रमवा योग्य जे अनंतात्मस्वरूप तेहमां रमण केतां रमवुं ते गुणना तुमे वृंद केतां समूह छो ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

निजभावें सीय अस्तिता रे,
पर नास्तित्व स्वभाव ॥
अस्तिपणे ते नास्तिता रे,
सीय ते उभय स्वभावो रे ॥ कुं० ॥ ८ ॥

अर्थः--हवे सप्तभंगीरूपें प्रभुना कहे छे. तिहां कोइक तो सप्तभंगी एकला पर्यायास्तिक नयनीज कहे छे; तेतो घटे नहीं, द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिक नय द्रव्यमात्र वस्तु छे, तिहां स्यात् अस्ति, स्यात्नास्ति, स्यात्अवक्तव्यं, ए त्रण भांगा सकलादेशी छे, ते द्रव्यास्तिकनयी छे, " एवं एते त्रयः सकलादेशा भाष्यानुसारिणः एवं संग्रहव्यवहारानुसारिणः आत्मद्रव्ये विकलादेशा श्चत्वारः पर्यायनयाश्रया इति तत्त्वार्थे " शेष चार ते विकलादेशी छे, तेहनो परमार्थ एम छे जे स्यात्अस्ति ए भांगामां अस्तिपणुं वस्तु अर्पित छे, बीजो नास्तिधर्म, अवक्तव्यधर्म, ते स्यात्पणामां आव्यो, एटले स्यात्अस्ति कह्यायी वस्तु द्रव्य ग्रहवाय छे, तेमज स्यात्नास्ति तथा स्यात्अवक्तव्यं ए भांगामां पण वस्तु द्रव्य ग्रहवाय छे, अने १ स्यात्अस्ति नास्ति, २ स्यात्अस्ति अवक्तव्यं, ३ स्यात्नास्ति अवक्तव्यं, ४ स्यात्अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्यं, ए चार भंगा ते वस्तुना अंशने एटले पर्यायने ग्रहण करे छे. तेहनो

भावार्थ ए छे जे प्रथम स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति ए चोथो भंग छे, तेमां अवक्तव्यं ए धर्म नाव्यो, तो कोइ कहेशे जे स्यात्पदे अवक्तव्यं धर्म लहीशुं तेने उत्तर जे स्यात्पद ते अस्ति तथा नास्ति ए धर्मनी अनेकांततानो ग्राहक छे, परंतु अवक्तव्यनो ग्राहक नथी अने स्यात् अस्ति अवक्तव्यं ए पांचमो भंगो छे, तेहमां वस्तुनो अस्तिधर्म एक-समयी छे, ते वचनमां कह्या थका उपयोगमां लावतां असंख्याता समय लागे छे, तेमाटे ए अस्तिपणुं अनेकांतरूपे छे, परंतु वचने गोचर नथी. एमज स्यात् नास्ति अवक्तव्यं, ए छट्टो भंगो पण भाववो, तथा स्यात् अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्यं, ए भंगामां स्यात् केनां अनेकांते अस्ति केहेतां असंख्याता समय लागे, नास्ति केहेतां पण असंख्याता समय लागे, तेमाटे अवक्तव्यं छे, भेला छे, पण जे रीतें वस्तुमां परिणमे छे, ते रीतें केहवाता नथी, तेथी ए चार भंगामां सर्व धर्मनुं ग्रहण न थयुं तेमाटे ए चार भंगा विकलादेशी छे, पण सकलादेशी नथी. हवे ए साते भंगानुं स्वरुप कहे छे.

१ ए आत्मा वर्तमान समयें ज्ञान दर्शनादि स्वपर्यायनी परिणतिपणे अस्ति छे, एटले अतीतपर्याय तो विनष्ट छे, अनागतपर्याय अनुत्पन्न छे, माटे वर्तमानपर्याय ग्रहण कर्या, इहां स्यात् ते नास्ति अवक्तव्यं धर्मनो अनर्पिततानो द्योतक छे, ए रीतें स्यात् अस्ति ए पहेलो भंगो थयो.

२ तथा स्यात् ते कथंचित्पणे गतिस्थितिअवगाहोपकारी वर्णादि अचेतनादि परद्रव्यधर्म तथा पोताना अतीत अनागत पर्याय ते, साम्प्रतिक वर्तनापणे नथी, ए नास्ति भंगो द्रव्यने

द्रव्यपणे शाश्वतास्प छे, नही तो कोइ कालें जीव ते अजीवताने पामे, ए स्यात् नास्ति बीजो भंगो थयो.

३ तथा अस्तिधर्म पण वचनें अगोचर छे, अने नास्तिधर्म पण वचने अगोचर छे, ते वचनगोचर धर्मथी वचन अगोचरधर्म अनंतगुणा छे, ते माटे स्यात्कथंचित्पणे द्रव्यमां अवक्तव्यपणुं छे, एटले उभय नय युगपत् अर्पण करतां सर्वपदार्थ अवक्तव्यपणे छे, माटे ए त्रण भंगा सकलादेशी ते द्रव्यास्तिक नयपणे जाणवा, ए त्रणे भंगामां संग्रह तथा व्यवहारनयनी प्रवृत्ति छे, ए स्यात् अवक्तव्यनामा त्रीजो भांगो थयो.

४ तथा चोथो भंग स्यात् अस्तिनास्ति छे. ते समुच्चयाश्रयी स्वद्रव्यार्थ पर्यायादिना अस्तितापणे तथा तेहिज भिन्नोपयोगपणे ते अतीत अनागत परिणामिकपणे नास्तिता छे, ए बे धर्म पोतानाज गवेष्या छे.

५ तथा जे विवक्षित वचनगोचर द्रव्यार्थ मुख्य आत्मधर्मनें अपेक्षायें अस्ति छे, तेहिज आत्मद्रव्यनो सामान्यविशेषद्वयनी निजप्रवृत्ति धर्म समकाले अंगीकार करतां स्यात्अस्ति अव्यक्तव्यं ए पांचमो भंगो थयो.

६ छट्ठो स्यात्नास्तिअव्यक्तव्यं ए एमज पांचमांनी पेरें भाववो, ए पर्यायनी सूक्ष्मता अनंतताइहांने कयों ए छट्ठो भंग थयो.

७ सातमो स्यात्अस्ति स्यात्नास्ति युगपत् अवक्तव्य नामे भंगो छे. ते कोइकद्रव्यार्थविशेष आश्री अस्तिपर्याय विशेषआश्री जे नास्ति तेहज स्वरूप निरवचन अवक्तव्यं ए सर्वपर्याय ते वचन अगोचर छे ए सातमो भंग.

ए सप्तभंगी ते नित्य अनित्य भेद अभेदादिक धर्मनी तथा ज्ञान दर्शनादिक गुणनी सप्तभंगी थाय ते भावे छे. ज्ञान जे छे ते ज्ञायक परिच्छेदकादि स्वपर्यायें अस्ति छे, दर्शनपारिणामिकादि स्वद्रव्यपर्यायें तथा जडतादि परपर्यायें नास्ति छे, एम अनंती सप्तभंगी संभवे, ते बुद्धिवंते भाववी, तथा तत्त्वार्थवृत्तिनें विषे वली सम्मतिवृत्तिने विषे विस्तारथी कही छे, अने स्याद्वादरत्नाकरे एहनुं स्वरूप तथा उत्पत्ति, प्रवृत्ति, परिणति, नय सर्व वखाण्या छे. तिहांथी जोइ लेजो. हवे गाथानो अर्थ लखे छे.

निज केतां पोतानें भावें, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावपणे सर्व केतां स्यात् कथंचित्पणे अस्ति छे, अने तेहीज द्रव्य, परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावपणे नास्ति छे, ते नास्तिपणु द्रव्यमां अस्ति केता [illegible] छे, वली सर्व केतां स्यात् कथंचित् उभय केता अवक्तव्य स्वभाव प्रमुख आदि भांगो तथा अनंतो भांगो प्रमाण्या माने भणा केहेवाणा, एहवी स्याद्वादपरिणति ते हे परमेश्वर तुमे प्रत्यक्ष ज्ञानें सर्वद्रव्यनी जाणीने उपदेश कर्यो, एहवी ताहरी वाणी छे, ए तिनें शुद्ध अनन्त, अनेकता, [illegible], [illegible] श्री अरिहंतनो उपदेश छे ॥ ८ ॥

अस्तिस्वभाव जे आपणो रे,
रुचि वैराग्यसमेत ॥
प्रभु सन्मु[illegible] करी रे,
[illegible] ॥ सु० ॥ ९ ॥

अर्थः—हवे पोतानो मनोरथ कहे छे. एहवो जे अस्ति-स्वभाव अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अव्याबाध, पूर्णानंदतारूप, जे माहरो सत्तागत स्याद्वाद उपयोगें ग्रह्यो तेहनी रुचि पीपासा करीने, वैराग्य जे संसार्थी उदासीपणुं ए संसारीभाव विभावो-पाधि माहरे अवर्त्ती छे, तेहने केवारें सर्वथी तजुं, एम विष-भक्षण तथा तप्तलोह पदधृति समान जाणीने उदासीन थयो, मोक्षाभिलाषी केवलज्ञानानंदने अभिलाषें हे प्रभुजी !!! ताहरा सन्मुख उभो रहीने वंदना करीने मागुं छुं, जे हे तारक ! मुजने तार ! तार ! भवभ्रमणाथी उगार, ए संसारजनित दुःख मुझथी हवे खमातो नथी, जे माहरो अनंतो स्वाधीन आनंद ते पराधीन थयो, अने हुं पुद्गलग्राही थयो तेथी तत्त्वभोगी छुं, पण तत्त्वने जाणी शकतो नथी, औदयिकभावरूप अशुद्ध-पर्यायनी श्रेणिमां पडी रह्यो छुं, अने हवे हे नाथ !!! ताहरे शरणे आव्यो छुं. माटे मुजने माहरो अस्तिस्वभाव प्रगटे एहवो आत्मानो हित समकेत दर्शनयुक्त, चारित्रनो प्रसाद करो, एहवो हुं जेवारें मागीश तेहीज दिन धन्य मानीश एहवो मनोरथ करवो ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

अस्ति स्वभावरुचि थयी रे,
ध्यातो अस्तिस्वभाव ॥
देवचंद्र पद ते लहे रे,
परमानंद जमावो रे ॥ कुं० ॥ १० ॥

अर्थः—माटे अहो भव्यजीवो तुमे जो सर्व जीव सु-

खना अर्थी छो तो जे सत्तागत अस्तिधर्म, तेहना रुचि अभिलाषी थयीने जे अस्तिस्वभावनी अनंतता तेहनेज ध्याता ध्यान करतां थकां सर्व देवमां चंद्रमासमान जे सिद्धपरमात्मपद ते लहे केतां पामे, अशरीरता, निर्मलानंदता, निःसंगतारूप परमानंद स्वाधीन आत्यंतिक अव्याबाध सुख तेहनोज जेहमां जमाव छे, सघन केतां एकीपणुं छे, एहवुं पद श्री प्रभुनी सेवाथी पामे, तेमाटे तत्त्वस्वरूपी, अरूपी, ज्ञानस्वरूपी, एहवा श्रीकुंथुनाथना चरणनुं सेवन करो, हे भव्यजीवो ! एहीज परम सुखनो हेतु छे. ॥ १० ॥ इति कुंथुनाथ० ॥

॥अथ अष्टादश श्रीअरनाथजिनस्तवनं॥

॥ रामचंदके बाग चांपो मोरी रह्यो री ॥ ए देशी ॥

प्रणमो श्रीअरनाथ, शिवपुर साथ खरोरी ॥
त्रिभुवन जन आधार, भवनिस्तार करोरी ॥१॥

अर्थः—हवे अढारमा श्रीअरनाथ जिननी स्तवना कारणतापणे करे छे. प्रणमो केतां वारंवार नमस्कार करो, श्रीअरनाथ स्वामीने, एहीज अमोही परमेश्वर वांदवा योग्य छे, शिव केतां निरुपद्रव जे सिद्धता, तेहीज उपमायें पुर केतां नगर तिहां पोहोचाडवाने खरो साथ छे, तेथी सार्थवाहनी उपमा श्रीअरिहंतनेज छे, जे निःस्वार्थे भवअटवीमांथी पार करीने मोक्षनगरने विषे परमानंदपदे पहोचाडे एहवा कारणपणे श्रीअरिहंतजी छे, वली त्रण भवनना जनने आधार छे, मिथ्यात्व, असंयम प्रमुखें पीडितने आधार ओटभाग्य छे. वली चारगतिरूप भव

केतां संसार तेहमांथी द्रव्यें तथा भावें निस्तारना करणहार छे ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

कर्त्ता कारण योग, कारज सिद्धिलहे री ॥
कारण चार अनूप, कार्यार्थी तेह ग्रहे री ॥२॥

अर्थ—हवे मोक्षकार्य निपजाववा माटे कारण कार्यनी नीति कहे छे. सर्व कार्य छे, ते कर्त्ताना कीधा थाय छे, तेमां भिन्नकार्यनो कर्त्ता पण भिन्न, जेम घटनो कर्त्ता कुंभकार भिन्न छे, अने अभिन्नकार्यनो कर्त्ता पण अभिन्न छे, जेम ज्ञाननो कर्त्ता आत्मा छे, तेम संपूर्ण सिद्धत्वनो कर्त्ता पण आत्माज छे, ते कर्त्ता जेवारें कारणनी योगवायी पामे, तेवारें कार्यनी सिद्धि नीपजाववापणुं लहे, एटले एकलो कर्त्ता ते कारण सामग्री विना कार्य करी शके नहीं, कारण सामग्री मलेज, कार्य नीपजावे ते कारणना चार भेद छे, जे कार्य नीपजाववानो अर्थी थाय, ते चार कारणने ग्रहे. इहां घणा शास्त्रोमां तो कारणना बे भेद कह्या छे, एक उपादान कारण, बीजो निमित्त कारण, अने विशेषावश्यकने विषे समवायिकारण, असमवायिकारण ए नाम कह्यां छे, तथा आप्तमीमांसामां कारण त्रण कह्यां छे, "समवाय्यसमवायि निमित्तभेदात्" तेमां समवायि कारण ते उपादान कारण अने असमवायि कारण ते नामांतर असाधारण कारण कहेवाय छे. तथा निमित्त कारणना बे भेद करीयें तेमां एक तो निमित्त कारण बीजु अपेक्षा कारण ते तत्त्वार्थ टीकामां वखाण्युं छे. तथा अपेक्षाकारण पूर्वाभिप्रायेन उच्यते यथा घटस्योत्पत्तावपेक्षाकारणं व्योमादि उपजने इति अपेक्षा " तेमां

यद्यपि कारण, बेमां चारे अंतर्भूत छे, तोपण विस्ताररुचिने मिश्रोपयोगी करवाने चार कारण कह्यां छे. एक उपादान बीजुं असाधारण, त्रीजुं निमित्त, चोथो अपेक्षा ए चारे कारण जेवारें कार्यरुचि कर्त्ता मळे, अने जेवारें ए चार कारणने कार्यरुचि कर्त्ता प्रवर्त्तावे, तेवारें ते कारण समजवां, पण कर्त्तांना प्रयोजन विना कारणता नही. एम भावना करवी ॥ इति ॥२॥

जे कारण ते कार्य, थाये पूर्ण पदे री ॥
उपादान ते हेतु, माटी घट ते वदे री ॥३॥

अर्थः—हवे प्रथम उपादान कारणनुं स्वरूप कहे छे. जे कर्त्तांना कार्यने सन्मुख थाय तथा जे कारण तेहीज पूर्णपदे थतां पूर्णना अवसरें कार्यरूप थाय तेने उपादान हेतुकेतां कारण कहीयें. ॥ उक्तंच महाभाष्ये ॥ तस्सकारणं तं, तसोवइम्मेहजेण तम्मइया ॥ विवरीय मसकारणं, मिन्छंयोमाइओ तस्स ॥ १ ॥ ए गाथाने व्याख्याने यदात्मकं कार्यं इत्यर्थो तदिह तद्द्रव्यकारणं उपादानकारणं यथा तंतवः पटस्य इति एटले जेम तंतु हता ते कर्त्ताने प्रयोगें पट थया, ते उपादान कारण जेम घटरूप कार्य तेहने माटी ते उपादान कारण छे, पछी माटी तेहज घटपणुं पामी, एटले कारण तेहीज कार्यरूप पाम्यो, इहां कारण कार्यनुं एक समयपणुं जे व्याख्यान छे, ते पण उपादान कारणनुं छे. एम महाभाष्ये मतिज्ञानादिकरें अनादि निन्हवना अधिकारें कह्युं छे इहां कोइ पूछे जे कारण ते कार्य थाये एम कहो छो तो कारण [illegible] एकरूप [illegible] तेहज हता ते [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] जेम प्रथम

माटी एहवुं नाम हतुं पछी घटनाम थयुं, माटी ते मृदुता, द्रव्यतावर्णवंत हती, घट ते जलाहरण धर्मवंत छे, माटे भिन्नता छे, ए प्रथम उपादान कारण बताव्युं. इति तृतीयगाथार्थः॥३॥

उपादानथी भिन्न, जे विणु कार्य न थाये ॥
न हुवे कारजरूप, कर्त्ताने व्यवसायें ॥४॥
कारण तेह निमित्त, चक्रादिक घटभावें ॥
कार्य तथा समवाय, कारण नियतने दावें ॥५॥

अर्थः—हवे निमित्त कारणनुं लक्षण कहे छे. जे कारण उपादान कारणथी भिन्न थकां हुइं छे, अने तेना मल्या विना कार्य थाय नहीं, वळी तेहने विषे जे कारणपणुं ते कर्त्ताने व्यवसायें थेतां कर्त्ताने उद्यमे छे. ते निमित्त कारण कहियें, जेम घटभावें घटकार्य छे तेहने चक्र, चीवर, दंडादिक ते निमित्त कारण छे. अने माटी उपादान कारण छे. ते उपादान कारणथी निमित्तकारण जे चक्र चीवरदंडादिक छे ते सर्व भिन्न छे, अने ए निमित्त मल्या विना माटीनो घट थाय नहीं, तेमज ते चक्रादिक कदापि कोइकाळे कार्यपणुं पामे नहीं, अने ए चक्रादिकने जेवारें कर्त्ता जे कुंभकार ते घट कार्यरूप थावाने प्रवर्त्ते. तेवारें एने कारण कहियें, नहीं तो कारणतापणुं कहेवाय नहीं. [illegible]

स्वरूप एहवुंज छे. जे कार्यने करे, ते कार्यानंतर अथवा प्रथम अप्रयुक्तकालें जे दंडादिकने कारण कहे छे, ते आरोपमात्र नैगमनयमतें जाणवो, परंतु स्वरूपें नथी., तेमाटे कार्यनो जे कर्त्ता, ते उपादान कारणने कार्यरूप करतां तेहमां जे जे उपगरण प्रवर्त्तावे, ते ते निमित्तकारण जाणवुं एटले जे जे कार्यनी नियत छे नियामिकी छे ते ते कार्यनां निमित्त जाणवां, जेम घटकार्यने चक्रादिक अने पटकार्यने तुरीव्योमादिक एम सर्वत्र जाणवुं ए निमित्तकारण कह्युं॥इति चतुर्थपंचम॥४॥५॥

वस्तु अभेद स्वरूप, कार्यपणुं न ग्रहेरी ॥
ते असाधारण हेतु, कुंभे थास लहेरी ॥६॥

अर्थः—हवे असाधारण कारणनुं स्वरूप कहे छे. ते वस्तु जे उपादान कारण तेहथी अभेदस्वरूपें छे, अने कार्यपणुं पामतो नथी, एटले कार्य नीपने ते रहेतो नथी, जेम घटकार्य नीपज्युं तोपण तेमाटे माटीपणुं रह्युं छे, तेनी परे ते रहेतो नथी, ते असाधारण हेतु केनां कारण कहीयें, जेम घटरूप कार्य करतां स्थास कोश कुसलाकार थाये छे, ते मृत्पिंडरूप कारणथी अभेद छे, परन्तु घटरूपकार्य नीपने ते रहेतां नथी, तेमाटे ए सर्व असाधारण कारण जाणवा, उक्तं च "प्रमाणनिश्चयेन उपादानस्य कार्यत्वाप्राप्तस्य अवान्तरावस्था असाधारणं इति " ॥ इति षष्ठगाथार्थ. ॥ ६ ॥

जेहनो नवि व्यापार, भिन्न नियत बहुभावी ॥
भूमी काल आकाश, घट कारण सद्भावी ॥७॥

[illegible] न कारणनो व्यापार

प्रवर्त्तन नथी, तथा कर्त्ताने पण ते मेलववानो प्रयास करवो पडतो नथी, अने कार्यनी सिद्ध थतां हुतो छे, तथा नियत थतां नियमा निश्चें ते जोइयें, अने बहुमानी थतां अनेक जीवा सर्व कार्यनां भावी छे, एरीतें कारणिक छे, ते अपेक्षा-कारण कहीयें, जेम भूमी तथा काल तथा आकाश ए विना कोईई घटादि कार्य थतुं नथी, अने भूमी प्रमुख जेम घटनुं कारण छे, तेम अन्य जीवा कार्योनुं पण कारण छे, पण घटनुं कारणपणुं पण छतुं छे, वळी कर्त्ता जेम उपादान तथा नि-मित्त कारणनो व्यापार करे छे, तेम एनुं प्रवर्त्तन करतो नथी ॥ ७ ॥

एह अपेक्षा हेतु, आगम मांहे कह्यो री ॥
कारणपद उत्पन्न, कार्य थये न लह्यो री ॥८॥

अर्थः—तेथी ए अपेक्षा हेतु थतां कारण आगममां तथा तत्त्वार्थादिक ग्रंथोमां कह्युं छे. " यथा घटस्योत्पत्तौ अपेक्षा-कारणं व्योमादि अपेक्ष्यते तेन विना तदभावात् ॥ निर्व्या-पारापेक्षाकारणं निमित्तत्त्वार्थवृत्तौ " ॥ तथा विशेषावश्यकेऽपाद-इयकेऽनवविंशति विवरे " इहां कारणभूत निमित्तमादि कृन्याहु-त्पादनावस्थानविः सहकारिकारणानि भवंति अत्र सहकारिकारणं हेतुं इति " ए चार कारणनुं स्वरूप कह्युं. हवे कारणपद थतां जेहमांहे कारणपणुं ते छतो पुरुष्यो थयो नथी. पण उत्पन्न छे, अने ते जेवारे कर्त्ता ते कार्यनो अर्थी थइने जे उपकरण तथा भूमिकादि ते कर्ये कार्यना कारणनुं तेवारे ते तेहनुं कारण कहीए एटले जेम कुंभार इत्यादिक अनेक पर्यायना उत्पा-दनां योजन छे. ... उत्पन्न करे,

कोइ पुतलीनुं कारण उत्पन्न करे, तेमज दंडादिकने कोइ घटध्वंसपणे प्रवर्त्तावे, तो घटध्वंस करे तथा कर्त्ता जो दंडादिकने घट करवापणे प्रवर्त्तावे तो तेहनुं कारण थाय, माटे जे कारणपणुं छे ते कर्त्तानुं कर्युं थाय छे. श्रीविशेषावश्यकें कह्युं छे, " ये कारकाः कर्त्तुराधीना इति कारणं कार्योत्पादकं तेन कार्योत्पत्तौ कारणत्वं नचकार्याकरणे " ते माटे कारणपणुं ते उत्पन्न छे. हवे कोई पूछेशे जे वस्तुमां कोई कार्यना कारण तो छता छे, तो उत्पन्न छे, एम शावास्ते कहो छो ? तेहने उत्तर जे विवक्षित कार्यनी कारणता उत्पन्न छे, अथवा जे कार्यना जे कालें ते कार्यना कर्त्ताना प्रयोगनी छे, तेमाटे उत्पन्न छे, पण कार्य निपज्या पछी तेमव्ये कारणपणुं न पामीयें, जेम अनादि मिथ्यात्वी जीव यद्यपि सत्तावंत छे, तेमज अभव्य जीव पण सत्तावन्त छे परंतु तेहनुं उपादान सिद्धताना कार्यनुं करणहार नथी, तेथी कार्य नीपजतुं नथी. ज्यारे कोइक जीवनुं उपादान अरिहंतादिक निमित्त पामीने, कारणतापणे परिणमे, ते कार्य करे, माटे ते उत्पन्न छे, अने ते कार्य सिद्ध थया पछी ते कारण रहे नहीं, जो सिद्धतामां साधकतानी छती मानीयें तो, सिद्धावस्थायें पण साधकपणुं रह्युं मानवुं पडे ते सिद्धावस्थामां साधकपणुं तो नथी माटे कार्य नीपजे, कारणता रहे नहीं, तथा निमित्त जे दंडादिक ते पण कर्त्ता भिन्न कार्यना व्यवसायें कारणता करे, तो ते भिन्न कार्य थावे, परन्तु तेज कार्यनी ते कारणता रहे नहीं, एम धारवुं ॥ ८ ॥

कर्त्ता आतमद्रव्य, कार्यसिद्धिपणो रो ॥
निजसत्तागत धर्म [illegible] उपादान गणो रो ॥२॥

गुणठाणथी मांडीने सिद्धपर्यंत जे गुणनी वृद्धि करवी, एटले अभिनव गुणनुं कारणपणुं ते सर्वे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, श्रेणिगत ध्यान परिणाम, क्षयोपशमीभाव, विधिसहित आचरणा, तथा भक्ति, अने गुणीनुं बहुमान, जेथी पोताना कार्यनी सिद्धि निपजे. ते ज्ञानक्रियारूप साधक अवस्थानी तरतमता ए सर्व असाधारण कारण कहेवुं. ए असाधारण कारण ते आत्मगुणरूप उपादाननी भिन्न भिन्न ऊणतायकानी अवस्था छे, सदा पूर्व पर्याय उत्तरपर्यायनुं कारण छे, ते समयेज क्रियाकाल निष्टाकालनो अभेद छे. ए असाधारण कारण कह्यो. ॥१०॥ इति॥

नरगति पढम संघयण, तेह अपेक्षा जाणो ॥
निमित्ताश्रित उपादान, तेहने लेखे आणो ॥११॥

अर्थः—हवे सिद्धतारूप कार्यनुं अपेक्षा तथा निमित्त ए बे कारण कहे छे. नर केतां मनुष्यनी गति, पढम केतां पहेलुं संघयण वज्ररुषभनाराच, पंचेंद्रिपणुं इत्यादि सिद्धतारूप कार्यनुं अपेक्षा कारण जाणो. इहां कर्त्तानो व्यापार नथी, पण ए निश्चे जोइयें. ए पाम्या विना मोक्षरूप कार्यनी साधना थाय नहीं, तेमाटे अपेक्षा कारण कहीयें, पण ए मनुष्य गत्यादिक सर्व जे जीवनुं उपादान परिणमन, धर्मार्थी थइने निमित्त जे देव गुरु सिद्धांत तेहने जेणे आश्रयो, तो तेहनी मनुष्य गत्यादिक लेखे केतां कारणपणे आणजो, अने जेणे निमित्तने आश्रयो नथी. तेहनी मनुष्यगत्यादिक कारणपणामां गणशो नहीं, ने हजी अनादिनी चालमा छे, पलटण करतो नथी, तेमाटे ए अपेक्षा तथा निमित्त ए बे कारण कह्यां ॥११॥ इति॥

निमित्त हेतु जिनराज, समता अमृत खाणी ॥
प्रभुअवलंबन सिद्धि, नियमा एह वखाणी ॥१२॥

अर्थः—हवे आत्माने सिद्धतारूप कार्य करतां निमित्त कारण श्रीजिनराज वीतराग छे, ते वीतराग सर्वज्ञ केहवा छे, समतारूप अमृतनी खाण छे, इष्ट अनिष्टता रहित समताना धणी छे, शुद्ध चरित्र परिणाम तेहीज अमृत छे, तेहनी खाण छे, एहवा प्रभु परमेश्वर परम दयाल, परमात्मा, शुद्धतत्वरूप भोगी, पूर्णानंदी, चिदानंद जे श्रीअरनाथ प्रभु तेहने अवलंबवे पोतानो भासन प्रभुना ते गुण जाणवाने जोडी एम अनंता गुण ते सर्वगुणना भासननी रीझ तथा ते उपर बहुमान एहवे आलंबने रहेवुं, तेथी नियमा सिद्ध निवारण थाय एम आगममां वखाण्यो छे, एहीज मोक्षनो उपाय छे. ए निमित्तकारण कह्युं ॥ १२ ॥ इति ॥

पुष्ट हेतु अरनाथ, तेहने गुणथी हलीयें ॥
रीझ भक्ति बहुमान, भोगध्यानथी मलीयें ॥१३॥

अर्थः—माटे पुष्टकेनां नियामक हेतुकेनां कारण ते जिनराज श्री अरनाथ प्रभु तेहना गुण जे केवल ज्ञान, अनंतानंदरूप तेहथी हलीयें केनां आपणो आत्मा तेदिसें जोडीयें, प्रगटगुणीना गुणथी आपणी चेतना जोडवी, रीझ केनां गुणनीमग्नता. भक्तिकेना सेवना. बहुमान, आदर, मोटाइ. भोगकेना आस्वादन. ध्यानकेना चित्तनी एकाग्रता, ए श्री अरनाथ प्रभुना [illegible] [illegible] श्रीप्रभुथी एकत्वपणे

मछियें, साधकने गुरुदेव तत्त्वने आलंबनुं ते मधान छे ॥
इति त्रयोदशगाथार्थः ॥ १३ ॥

मोटाने उत्संग, बेठाने सी चिंता ॥
तिम प्रभु चरण पसाय, सेवक थया निचिंता॥१४॥

अर्थः—तथा लौकिक दृष्टांत कहे छे. जे मोहोटाने उत्संगे बेतां खोळामां बेठो तेहने कोइ चिंता नहीं, ते निचिंत थयो, तेम सेवक पण प्रभुजी निरामय देव तेहना चरणने सेवने, चिंतारहित थयो, जे परमोत्तम, सर्वगुणभोगी, निराश्रयी, चिन्मयी, अनंत दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्यमयी, श्रीजिनेश्वर निःकर्म देवतत्त्व, परभावना अकर्ता, परभाव अभोगी, परानुयायीना रहित, एहवो देव जो आश्रयों छे, तो मोहनुं शुं जोर छे ? संसार कोने छे ? कर्मनी बीक कोने छे ? जो परमोत्तम धणी में माहरे माथे कर्यो छे जेहना ध्यानथी माहारो मोक्ष नीपजे, ते देवनो योग मिल्यो छे. ते माटे चिंता नथी ॥ उक्तं च श्रीजिनवल्लभपूज्यैः ॥ पसरेइ तीयलोए, तावमोहधयारंभमइ जइ ॥ सिंतमताव मिच्छत्तं सितं फुरइ फुडफुरंनाणं ॥ १ ॥ तंनाणंस पूरो, पयडपजीयसंसीज्झाणसूरो ॥ १४ ॥ इति चतुर्दश गाथार्थः ॥

अर प्रभु प्रभुता रंग, अंतर शक्ति विकासी ॥
देवचंद्रने आणंद, अक्षय भोग विलासी॥१५॥इति॥

अर्थ.—माटे श्री अरनाथ प्रभु अढारमा परमेश्वर जेणें तत्त्वरुचि थइने तत्त्वाभिलाषि तत्त्वसाधक तत्त्वध्यानी थइने

तत्त्वप्रगट कर्युं, ते प्रभुनी प्रभुता, शुद्धज्ञायकता, शुद्धरमणता, शुद्धानुभवता, अपौद्गलिकता, असंगता, अयोगिता, सकल प्रदेश निरावरणता, प्राग्भावी शुद्धसत्ताभोग्यता. तेहने रंगें जे रंगाणा छे, ते साधक सम्यग्दृष्टि, देशविरति, सर्वविरतिनी अंतरंग शक्ति तत्त्वप्राग्भाव करवानी साधक कारकता, साधक कर्त्तापणुं, परमसंवर पूर्वक परम सकामनिर्जरा रूप शक्ति, विकस्वर थवे, प्रगट थवे, ते शक्तियी सर्वकर्म विगम थवे, सर्व आत्मिक धर्मने प्रगटत्वे करी, परमात्मा देवमांहे चंद्रमा समान श्रीनिष्पन्न परमेश्वर तेहनो जे आनंद, अव्याबाध, शिव, अचल, अरुज, अविनाशी, तेहनुं जे अक्षय स्वरुप, तेहनो भोग करतां अनुभव तेनो विलासी आत्मा थाय, एटले स्वसंपदा तत्त्वता आत्मशुद्धपरिणति, तेहने सादि अनंतो काल भोगवे, अथवा देवचंद्र जे स्तुति कर्त्ता ते अक्षय आनंदना भोगनो विलासी थाय, माटे स्वरूपसिद्ध, अरूपी, चिद्रूप, श्रीपरमेश्वर, तेहने सेवो, ध्यावो, नमो, गावो, तेहना गुण संभारो, एहीज मोक्ष साधननुं पुष्ट निमित्त छे, ए निमित्तें उपादानकारणरूप थइने असाधारण कारणताएं चडनो मनुष्यगत्यादि अपेक्षा कारणपणें करी तत्त्वानंद रूप कार्यने करशे, ते माटे उपादानादिक सर्वे कारणनी कारणता निमित्तने अवलंबें प्रगटे, तेथी निर्दोषपणे आशंसादि दोष वर्जिने शुद्धनिमित्त ने सेवे, ते सेवनथी कर्त्तापणुं समरे अने कर्त्तापणुं समरेथी स्वकार्य करे, माटे श्रीअरनाथजीनी भक्ति ते परमाधार छे ॥ १९ ॥ इति श्री अरजिनस्तवनं ॥ १६ ॥

॥ अथ एकोनविंशति श्रीमल्लिनाथ जिन स्तवनं ॥

देशी कामिनी दोइ के, कामें व्यापियो रे केका० ॥ए देशी॥

मल्लिनाथ जगनाथ, चरणयुग ध्याईयें रे ॥च०॥
शुद्धातम प्रागूभाव, परम पद पाईयें रे ॥प०॥
साधक कारक पट्क, करे गुण साधना रे ॥क०॥
तेहीज शुद्धसरूप, थाय निराबाधना रे ॥था०॥१॥

अर्थः—हवे ओगणीशमा श्री मल्लिनाथ परमेश्वरनी स्तवना करे छे. तिहां कारकशक्ति पलटवायी सिद्धता निपजे छे, ते पलटवानो उपाय श्री अरिहंतनी सेवना छे, ते रूप स्तुति करे छे. श्री मल्लिनाथ, परमेश्वर, परमज्ञानी, ते जग केतां लोकना नाथ मोहनो भय एटले अंतरंग भावरिपुथी छोडाववाना परम कारण छे, तेहनां चरणयुग केतां पदकमलजुं जोडुं तेहने ध्यामीयें, वारंवार संभारियें, एहवा प्रभुने ध्यायवायी ध्याताने शुं नीपजे ? ते कहे छे. शुद्ध जे आत्मानो परमात्मभाव अनंतगुण निर्मलतारूप तेहनो जे प्रागूभाव केतां प्रगटपणुं निर्मल शुद्धतारूप परमपद निर्मल पद ते पामीयें, एटले पोतानो आत्मना निर्मलपणुं भजे, ते आत्मसिद्धिरूप कार्य करवाने छ कारक छे. तिहां सर्व कार्यमां कारक प्रवृत्तिनी कारणता छे, कारकचक्र विना कार्यनी निष्पत्ति नथी. जेम १ कुंभकार ते कर्ता, २ घट ते कार्य, ३ मृत्पिंड चक्रा-

दिक कारण, ४ माटीना पिंडने, नवा पर्यायनी प्राप्ति ते संप्रदान, ५ पिंड स्थासादि पर्यायनो व्यय ते अपादान, ६ घटादि पर्यायनुं आधारपणुं ते आधार, एम घटरूप कार्यमां षट् कारक छे, तेमज आत्माने अनादि कालनां ए छ कारक बाधक रूपें परिणम्यां छे, ते देखाडे छे.

१ आत्मा परविभाव रागादि ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मनो कर्त्ता थयो छे.

२ भावकर्म द्रव्यकर्मने जे आत्मा करे, ते कार्य नामा बीजुं कारक.

३ अशुद्धविभाव परिणतिरूप भावाश्रव अने प्राणातिपातादि द्रव्याश्रव, ए बे कारणथी कर्म बंधाये, माटे ए करण नामा त्रीजुं कारक.

४ अशुद्धतानो तथा द्रव्यकर्मनो लाभ ते संप्रदान नामा चोथुं कारक.

५ स्वरूपरोध, क्षयोपशमनी हानि, तथा परानुयायिता ते अपादान.

६ अनंती अशुद्ध विभावता, तथा ज्ञानावर्णादि कर्मने राखवा रूप जे शक्ति ते आधार नामाछट्ठुं कारक जाणवुं ते.

ए रीतें ए छ कारकनुं चक्र अनादिनुं अशुद्धपने बाधकतापने आत्माने परिणमी रह्युं छे, ते जेवारें साधक आत्मा, पोतानो स्वधर्म नीपजाववा पणे परिणमावे, तेवारें ए छए कारक साधक पणे प्रवृत्त्या गुणनी आत्म धर्मनी साधना करे. ए रीते ए छ कारक साधक पणे परिणम्या कार्य नीपजे शुद्ध स्वरूप थाय. ए स्वरूपपरिणामिकता रूप स्वकार्य कारण

पणुं कोने परिणमे ? ते कहे छे. जे निराबाध, श्रीसिद्धभगवंत तेहनां छ कारक, ते शुद्धपणे प्रवर्त्ते छे, अने साधक जीवोना साधकपणे परिणमे छे, तथा समकेत गुणठाणाथी मांडीने अयोगी गुणठाणा पर्यंत, साधकपणे परिणमे छे, तथा सिद्ध भगवंतना शुद्धस्वरूपरूपें परिणमे छे, कारक ते आत्मानामा जे कर्त्तारूप, द्रव्य तेहनी ए परिणति छे, उक्तं च श्री विशेषावश्यके.

कारण व्याख्यानावसरे ॥ गाथा ॥ छविह कत्ता इ, कारण कम्मं च तत्तो य ॥ संपयाणा वायाण, तह नासंमिहाणाय इति ॥ १ ॥ गाथार्थः ॥ तथा च कारणं घोश ॥ यथा ॥ कारण महवा छद्धा, तत्थ संतंतोत्ति कारणं कत्ता ॥ वक्ष पसाहगतमं कारणम्मिओ पिंडदंडाइ ॥ १ ॥ कम्मं किरिया कारण, इत्यादि गाथाथी जाणवुं ॥ होइ पसत्थं मोरकस्स कारणं. इह यन्मोक्षस्य कारणहेतु तत् प्रशस्तभावकारणं उच्यते॥ इति वचनात्.

माटे साधकपणे कारक परिणम्या तो सिद्धता कार्यने करे, ते माटे निराबाध जे सिद्ध निरावरण अव्याबाध सुख तेमां तेहनो कर्त्तादिक शुद्ध पारिणामिक भाव शुद्ध पणे थाय, स्वस्वरूप कर्तृत्वपणे परिणमे ॥१॥ इति ॥

कर्त्ता आतम द्रव्य, कार्य निज सिद्धता रे॥का०॥
उपादान परिणाम, प्रयुक्त ते करणता रे॥प्र०॥
आतम संपद दान, तेह संप्रदानता रे ॥ तें० ॥
दाता पात्रने देय, त्रिभाव अभेदता रे ॥ त्रि०॥२॥

तेहथीं जे जे आत्मधर्म निपजता जाय, ते संप्रदान कहियें॥ उक्तं च ॥ गाथा ॥ देओ स. जस्स [illegible]ं सं पयाणमिह तंपि कारणं तस्स ॥ हो इतदत्थित्ताओ, न कीरइ तं विणा जंसो॥ इति माटे जे आत्माना अस्तिधर्मनुं थवुं ते संप्रदानकारक जाणवुं. इहां दाता आत्मा तथा पात्र पण आत्मा अने आत्माने देय केतां देवा योग्य ते पण आत्मधर्म, ए त्रणे भावनी अभेदता छे, एटले गुणनुं प्रगट करवुं ते देय अने आत्मा दाता तथा आत्मगुणने प्रगट करे ते दातापणुं अने गुणनुं पात्र पण आत्मा एटले दान, दाता अने ग्राहक, अने त्रणें अभेद छे ॥ २ ॥

स्वपर विवेचन करण, तेह अपादानथी रे ॥ते०॥
सकल पर्याय आधार, संबंध आस्थानथी रे ॥सं०॥
बाधक कारक भाव, अनादि निवारवो रे ॥ अ० ॥
साधकता अवलंबी, तेह समारवो रे ॥ ते ॥ ३ ॥

अर्थः—५ जे आत्माथी समवायें रह्या तेहने स्वधर्म आत्मधर्म कहियें. अने तेहथी विपरीत जे मोहादिक कर्म अशुद्ध प्रवृत्ति ते परभाव कहियें, तेहनुं विवेचन करवुं, भिन्न करवुं, अशुद्धतानो उच्छेद करवो, दोषनो त्याग करवो, एटले जे दोषविश्लेष करवो, अर्थात् अनादिसंसार कर्त्तापणुं तथा भोक्तापणुं तजीने जे आत्मस्वरूप कर्त्तापणुं भोक्तापणुं तेहीज प्रगट करवुं, ते पांचमुं अपादानकारक कहियें.

६ सकल केतां समस्त सर्वपर्याय तेहनो आधार ते आत्मा छे, आत्माने आत्मपर्यायथी स्वस्वामित्वसंबंध छे, व्याप्य व्यापक

संबंध छे. ग्राह्यग्राहक संबंध छे, आधाराधेय संबंध छे, ए सर्वनुं आस्थान केतां ते कारणरूप क्षेत्र ते आत्मा छे, ते आस्थनता माटे आत्मा आधार छे; ए आधारनामा छठ्ठं कारक जाणवुं. ए छ कारक साधकपणाना कह्यां. हवे ए साधकपणुं केम पामे? ते कहे छे. बाधक जे परभाव तेहने अनुयायी अशुद्ध कर्त्तादि कारकपणुं मिथ्यात्व, असंयम, कषाय रूप भाव अशुद्धतारूप सामान्य चक्र अशुद्धसाध्यानुगत अशुद्ध-कर्त्तापणुं तेहने निवारवुं. ते चक्र रोकीने स्वरूपानुगत करवुं, तेमाटे ए अनादिनी भूल टालवी. जिहां सुधी कर्त्ता परभाव-कारक छे, तिहां सुधी कांइ साधकता नथी, जिहां सुधी कर्त्ता अशुद्धकार्यानुयायी सामान्य चक्र छे, तिहां सुधी शुद्धसाधकतानो अंश पण उपन्यो नथी, श्रीपूज्ये कह्युं छे. जे आत्मा तत्त्वकर्त्ता पणे थया विना सर्वशुभ प्रवर्त्तन ते बालचापल्य छे, तेमाटे कारकचक्र बाधकतायी वारीने, साधकताने अवलंबीने ते कारक-चक्रने समारवुं स्वरूपानुयायी करवुं अने पोताना आत्माने एम कहेवुं जे हे चेतन! तुं परभावनो कर्त्ता तथा भोक्ता अने ग्राहक नहीं, तुंतो संपूर्णानंदनो शुद्धविलासी छो, अने तुं जे परभावमां रमी रह्यो छो, तथा परभावनो भोगी थइ रह्यो छो? ए तुजने घटे नहीं, ताहरुं कार्य, तो अनंत गुण पारिणामिकरूप स्वरूपकर्त्ता स्वरूपभोक्तापणुं छे, तेमाटे हे चैतन्यहंस! हवे तुं यथार्थ जिनवाणीरूप अमृत पान करीने, अनादिविभाव विष वारीने पोतानुं तत्त्व संभारी स्वपर विवेचनकारी थइने पोतानो जे सहजानंद तेहने कर. एहीज ताहरुं कार्य छे, तुं तेहनुं उपादान कारण शक्तिमंत छो, तेहनो लेवावालो छो, तुं ताहरी गुणसंपदा ताहरे प्रदेशे प्रगट करवा-

रूप दाननो संप्रदानी छे, माटे हे चेतन ! ए अनादि अशुद्ध परिणामने तुंहीज त्याग करीश, अने ताहरी सत्तानो आधार पण तुंहीज छो, माटे तुंहीज ताहरा तत्त्वने कर, ताहरुं तत्त्व तुं नीपजाविश. एम पोतें पोताना आत्माने कहिने, साधकरूपे आदरवुं ते आदरनां कारक समरे, कारकने समरवेथी अनुक्रमें आत्मानुं स्वकार्य नीपजे, पछी एहीज आत्मा सिद्ध थाय, माटे एहीज साधननो मार्ग छे, साधन कीधे कार्यनी सिद्धि थाय, ए क्रम छे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

शुद्धपणे पर्याय, प्रवर्त्तन कार्यमें रे ॥ प्र० ॥
कर्त्तादिक परिणाम, ते आतम धर्ममें रे ॥ ते० ॥
चेतन चेतन भाव, करे समवेतमें रे ॥ क० ॥
सादि अनंतो काल, रहे निजखेतमें रे ॥ र० ॥४॥

अर्थः—पहेलो शुद्धपणे निष्पन्न आत्माना ज्ञानादिक पर्यायनुं जाणवा देखवा रूप कार्यनुं प्रवर्त्तन, उत्पाद व्ययरूप परिणमन, ते कार्यनो कर्ता आत्मा छे, बीजुं आत्मगुणनुं परिणमन ते कार्य, त्रीजुं आत्मगुणज्ञानादिक ते करण, चोथुं आत्मगुणनो लाभ ते संप्रदान, पांचमुं परभाव त्यागपरिणति ते अपादान, छठ्ठुं अनंतगुणनुं राखवुं, ते आधार, ए छ कारकनु चक्र ते सिद्धावस्थाने विषे सदा स्वाधीनपणे परिणम्युं छे, तेहनी शुद्धनिष्पन्नपणे जे स्वपर्यायनुं प्रवर्त्तन, तेहने कर्त्तादिक छ कारक तेहनुं जे परिणमन ते आत्मधर्ममांहेज छे, एटले सिद्धपणे ते कर्त्तादिक छ कारक ते स्वरूपमयीज छे. चेतन केता आत्मा ते पोताना चेतनभाव केता आत्मभावकर, सम-

चेतनमें चेतनां समवाय संबंधमां छे, एटले आत्मा आत्मभावनो कर्त्ता छे, ए समवायसंबंधें मूलपणे सादि अनंता कालपर्यंत निजक्षेत्रमें चेतनां पोताना असंख्याता प्रदेशरूप क्षेत्रमध्ये आत्मधर्मनां निष्पन्न सिद्धतापणे रहे, सिद्धिनी आदि छे, परंतु अंत नथी, माटे सादि अनंतो काल स्वक्षेत्र स्वस्वरूपमां आत्मा रहे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः

परकर्तृत्व स्वभाव, करे तां लगे करे रे ॥ क० ॥
शुद्ध कार्य रुचि भास, थये नवि आदरे रे ॥थ०॥
शुद्धात्म निज कार्य, रुचे कारक फिरे रे ॥रु०॥
तेहिज मूल स्वभाव, ग्रहे निजपद वरे रे ॥ग्र० ॥५॥

अर्थः—पर चेतनां जे भावकर्म, द्रव्यकर्म अने नोकर्म, तेहने कर्त्तापणाने स्वभावें करे, तिहां लगी तेहनेज करे, एटले ए परकर्त्तापणुं अनादिकालथी करे छे, जिहां सुधी परनो रागी, परनो भोगी, तिहां सुधि परकर्त्तापणुं ए आत्मा करे, पण जेवारें शुद्ध, निर्मल, निरावरण, स्वगुण प्रगट करवा रूप, कार्यनी रुचि थाय, तेवारें परकर्त्तापणुं आदरे नहीं, शुद्ध आत्मस्वरूप, स्याद्वाद रीते परमानंदपणे भासन तथा रुचि तेहीज कारक पलटाववानो बीज छे, ते माटे जे सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, ते मोक्षनुं मूल छे, शुद्धात्म अनंतज्ञान, दर्शन, अव्याबाध सुखमयी, अरूप, सहजानंदरूप आत्मधर्म [illegible], सकल परभावव्यतिरिक्त, [illegible], अखंड, असंगी, अयोग, अखेद, [illegible], [illegible], [illegible] स्वरूप, तेहज रुचि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], तिहां

जीव परपौद्गलिक सुखनी रुचि छे, तिहां जीव परनो कर्त्ता छे, तेहथी संसारनुं चक्र ते रुपेज परिणमे छे, अने जे आत्मा भेदज्ञान धाराथी, आत्मा परविभंजन करीने पोतानो आत्मस्वरूप एक उत्संग धर्मे आण्युं, तेहनेज हित मान्युं, तेवारें ते आत्मिक धर्मनीज रुचि उपजे, पछी जेहनी जेहने रुचि उपजे, ते तेहीज कार्य करे, तेवारें कर्त्ताधर्म स्वकार्य करे, त्यां कारकचक्र स्वकार्याधीन थाय, तेवारें तेहीज पोतानो अव्यय, आनंद, अविनाशी, निःप्रयासी स्वस्वरूपपरिणमन का जे मुख्यभाव स्वधर्म तेहने ग्रहण करे, केम जे ए कारक चक्रस्वधर्मने ग्रहे छे, तेहथी निज धर्मनां पोतानां परमात्म, पूर्ण ब्रह्म, पूर्णानंद परमेश्वर, पामे, शुद्धरूप, अक्रिय, अदेह, अनंत, निरंजन, अरूपी, अव्याबाधगुणी, एहीज आत्मा थाय ॥ इति ॥ ५ ॥

कारण कारजरूप, अछे कारक दशा रे ॥ अ० ॥
वस्तु प्रगट पर्याय, एह मनमें वस्या रे ॥ ए० ॥
पण शुद्धस्वरूप ध्यान, चेतनता ग्रहे रे ॥ चे० ॥
तव निजसाधक भाव, सकल कारक लहे रे ॥ स०॥६॥

अर्थः ए छ कारक ते कारण तथा कार्यरूप छे, कार्यने निपजाववा माटे छे, अने कारकमां भेद छे, कारकमां कर्त्ताने [illegible] छे, कर्त्ता ते कार्य करे, ते [illegible] विना थाय नहीं, अने वस्तु जेवा प्रगट पर्याय, तेहनुं ए छ कारक ते [illegible] निपजावे [illegible] छे, एम मनमां वस्युं ते कर्त्ता [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे, अने [illegible]

आगारीपणुं ते आचार. एम पट्कारक साधकपणुं पामीने सिद्धता परमोत्तमतानो उत्कृष्ट समाधि सकल निर्मलता निपजावे. ॥इहां स्वधर्म अवलंबनानी भावना लखे छे ॥गाथा॥ अहमिक्को खलु सुद्धो, निम्ममओ नाण दंसण समग्गो ॥ तम्मिठिओ तच्चित्तो, सव्वे एए खयंनेमि ॥१॥ अहं आत्मा ज्ञानादि अनंत गुणपर्याय रूप, अनंतस्वधर्ममयी तथा द्रव्यपणे, अखंडपणे, समुदायपणे एक छुं. वली निश्चयनयथी शुद्ध छुं, यद्यपि अनादि परभावमां लुब्ध, स्वभाव भ्रष्ट थको अशुद्ध थयो, तो पण जातिथी मूलथी स्वधर्मे अनंतज्ञानादि गुणमय, शुद्ध, निष्कलंक, निरामय, नि:संग, निर्दोषी छुं. सर्व ममकार परभाव ग्राहकपणाथी रहित छुं, ज्ञान गुणे विभागन, परिच्छेदनरूप, दर्शन सामान्योपयोग वेदिज सही छु, एहवा मामन रमण, परिणमनरूप, रह्यो थको सर्व परोपाधिन क्षय करु छुं, इम स्वशुद्धस्वरूपने ग्रही, सर्व परभाव भेद करी, निर्मलानंद निपजावशो ॥ ६ ॥ इति ॥

माहरुं पूर्णानंद, प्रगट करवा भणी रे ॥प्र०॥
पुष्टालंबन रूप, सेव प्रभुजी तणी रे ॥ से० ॥
देवचंद्र जिनचंद्र, भक्ति मनमें धरो रे ॥भ०॥
अव्याबाध अनंत, अक्षय पद आदरो रे ॥अ०॥७॥

[illegible]

रूप नीपजे, तेवीं भव्य जीवने पोतानी तत्त्व नीपजाववारूप शक्ति, ते श्रीअरिहंतजीनी सेवनाथी थाय, तेमाटेज निर्धार कर्यो छे, जे हे प्रभुजी ! माहारो जे पूर्णानंद, पूर्ण अव्याबाध सुख ते प्रगट करवाने पुष्टालंबन केतां पुष्ट नियामकी आलंबन केतां आधार ते श्रीप्रभुजी भव्य जीवना आधार, मुनिजनना प्राणाधार, आचार्य उपाध्यायजीना परम दयाल, भावचिंतामणि समान, समकिती जीवना ध्येय, ध्याताने प्रतिच्छंदरूप, अनंत गुणाकर निर्मल ज्ञानानंदना पात्र, एहवा श्रीजिनराज, महाराज, सुखसमाज, तेहनी सेवना तेहीज पुष्टालंबन छे, तेमाटे सर्व देवेंद्रादिक नेमध्यें चंद्रमा समान, एहवा जे जिनचंद्र श्रीवीतराग अरिहा, तेहनी भक्ति, सेवना आज्ञा मानवा रूप, तदनुयायीपणुं तेहीज त्राण शरण छे, एहवी भक्ति मनमां धरो, स्थिर राखो, अथ स्तुतिकर्त्तानुं संबोधन, हे देवचंद्र ! श्रीजिनचंद्रनी भक्ति केतां चरणसेवना ते मनमां धरो, तो अव्याबाध, जिहां परभावनी पीडा नहीं, परमानंदरूप, जेहना अनंत गुण ते गण्या जाय नहीं, अक्षय केतां जेहनो छेद नहीं, विनाश नहीं, एहवुं जे परमात्मरूप पद, ते आदरो, एटले पामो, माटे ए आत्मसाधकना तजी साधकतामां रमे, सिद्ध थाये, एहीज प्रभुसेवनानुं फल छे, माटे हे सिद्धरुचि जीवो ! नमे श्रीमल्लिनाथ परमपुरुषोत्तम परमेश्वर, निःकारण, जगद्वत्सल, तेहने गाओ, स्तवो, संभारी ध्यावो, प्रथमथी साधक जीवने एहीज आधार छे, एहीज जीवन छे ॥ ७ ॥ इति मल्लिनाथजिन स्तवन ॥

॥अथ विंशतितम श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तवनं

॥ओलंगडी ओलंगडी सुहेली हो, श्री श्रेयांसनी रे॥ए देशी

ओलंगडी ओलंगडी तो कीजें,
श्री मुनिसुव्रत स्वामीनी रे ॥
जेहथी निज पद सिद्धि ॥
केवल ज्ञानादिक गुण उल्लसे रे,
लहिये सहेज समृद्धि ॥ ओ० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीमुनिसुव्रत परमेश्वर अद्भुत स्वरूप परमात्मा, अहिंसकनी स्तवना करे छे. मुनि जे निर्ग्रंथ तेहना सुव्रत केतां भला व्रत एहवा श्रीमुनिसुव्रत प्रभु तेहनी ओलग केतां सेवा एटले गुणग्राम करिये जेहथी निजपद केतां पोतानुं पद जे परमानंद पद तेहनी सिद्धि केतां निष्पत्ति थाये, वली केवल ज्ञानादिक गुण उल्लसे केतां प्रगटे, ज्ञानादिक रत्नो भोगी थाय, तथा सहज अकृत्रिम स्वरूपसमृद्धि पामे, ए प्रभु सेवानुं फल छे ॥ १ ॥ इति ॥

उपादान उपादान निज परिणति वस्तुनो रे,
पण कारण निमित्त आधीन ॥
पुष्ट अपुष्ट दुविध ते उपदिश्यो रे
ग्राहक विधि आधीन ॥ ओ० ॥ २ ॥

अर्थः—हवे इहां आत्मसाधना करवामध्यें उपादान ते निज केतां पोतानी परिणति ते वस्तुनो मूलधर्म छे, एटले जे आत्मसत्ता छती छे, ते उपादान कारण छे, पण ते निमित्त कारणने आधीन छे, निमित्त सेवन कर्त्ता उपादान कारण समरे, ते निमित्त कारणना बे भेद छे. एक पुष्ट निमित्त बीजुं अपुष्ट निमित्त; तेने ग्राहक जे कार्यनो कर्त्ता, ते जे विधें कार्य थाय, ते विधें कार्य ग्रही प्रवर्त्तावे, तो ते निमित्त कारण कार्यनो हेतु थाय; पण अविधें ग्रहण करे, तो निमित्त कारण कार्य करे नहीं, जेम कुंभकार चक्रने फेरवे, तो माटीना पिंडने घटपणे पमाडे, अने नहीं फेरवे तो न पमाडे. एटले श्रीअरिहंतजी मोक्षना निमित्त कारण तो छे, परंतु जे रीतें आगममध्यें कह्युं छे, तेविधें आशातना टाली, पुद्गलाशंसा रहित केवलज्ञानादि गुणनी ओलखाण सहित जो सेवे, तो मोक्षनो निमित्त कारण थाय, पण अविधें सेवना, ते कामनी नहीं, माटे ग्राहकने विधि सहित कारण ग्रहवुं, तो ते कार्यने करे ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

साध्य साध्य धर्म जेमांहे होवे रे,
ते निमित्त अतिपुष्ट ॥
पुष्पमांहे तिलवासक वासना रे,
ते नवि प्रध्वंसक दुष्ट ॥ ओ० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे पुष्टनिमित्तनुं स्वरूप कहे छे. साध्य केतां करवा योग्य. जे कार्यधर्म. ते ते कारणमां होय. ते तेनुं पुष्ट कारण कहीये. ते पुष्ट कारण विधिये कार्य करवाने अर्थे ग्रह्यो

यही कार्यने करे, पण ते कार्यनो ध्वंसक न थाय, तेहनो दृष्टांत कहे छे. जेम तेलने सुगंधवासना करवानुं कार्य, तेहनुं कारण पुष्प छे, परंतु वासना करवी ते साध्य छे, ते वासना फूलसंबंधे छे, अने ते फूल ते तेल तथा तेलनी वासनानो ध्वंसक नथी, तेमाटे ते पुष्टनिमित्त छे ॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥ कार्यस्य आसन्ननिमित्तं इति तदेव मुख्यं, कुम्भं कारणनिमित्तं नत्वपरं ॥इति॥ तथा च श्रीसिद्धसेनपादैः ॥ पुष्टहेतुर्जिनेन्द्रैव, मोक्षमार्गप्रधानत्वे ॥ इति ॥ तेहथी श्रीअरिहंतदेव ते मोक्षना कार्यना पुष्ट निमित्त छे, जे माटे साध्य जे सिद्धपद, साधकपणे ते श्री अरिहंतने विषे छे, माटे श्री अरिहंत ते पुष्ट निमित्त छे, जो निमित्त सेवन थाय, तो पछी मोक्षकार्य नीपजे॥२॥इति॥

दंड दंड निमित्त अपुष्ट घडातणां रे,
नवि घटता गुण मांह ॥
साधक साधक प्रध्वंसकता अछे रे,
तिणे नहीं नियत प्रवाह ॥ श्री० ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे अपुष्टनिमित्त देखाडे छे, जेम दंड ते घडाने [illegible]

नथी, अने श्री अरिहंत परमात्मानुं सेवन ते निश्चे सिद्धतानुं कारण छे, एहने सिद्धिकार्यनी रुचें जे सेवे, तेहने नियमा सिद्धि निपजे ॥ ४ ॥ इति ॥

षट् कारक षट् कारक ते कारण कार्यनुं रे,
जे कारण स्वाधीन ॥
ते कर्त्ता ते कर्त्ता सहुकारक ते वसु रे,
कर्म ते कारण पीन ॥ ओ० ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे कारणनी शुद्धता करेवा निमित्तें कारक कहे छे. १ कर्त्ता, २ कर्म, (कार्य) ३ करण, ४ संप्रदान, ५ अपादान, ६ अधिकरण. ए छ कारक छे; ते हरेक कार्य, निपजाववानां कारण छे. जिहां कर्त्ता क्रिया करे, तिहां अनुसंगपणे (सहजपणे) ए छ कारक जाणवां, इहां आत्मा पोतानुं सिद्धतारूप कार्य तेने करवा रूप क्रिया करे, तेवारें ए छ कारक सर्व होय. तिहां कर्त्ता जे आत्मा तेहनुं सिद्धिरूप कार्य अभेद छे, ते माटे तेनां कारक पण अभेद छे, अने भिन्नकार्यनो कर्त्ता भिन्न होय, तेवारें कारक पण भिन्न होय, ए रीति छे, परंतु निमित्त कारण तो सर्वकार्यमां भिन्न होय. माटे सिद्धरूप कार्यनुं निमित्त कारण श्रीअरिहंत छे, तेहने कारक उपादानपणे सर्व पहोंचे छे, ए रीति छे.

हवे छ कारकमां मुख्य कर्त्ता नामे कारक छे. तेहनुं लक्षण करे छे. जे कार्य निपजाववानुं [illegible] कारण [illegible]
[illegible]

कत्ता ॥ श्रीभाष्यसुधांबुधिवाक्यं ॥ सर्वकारक ते कर्त्ताने वशे छे, आधीन छे. हवे बीजुं कर्मनामा कारक, ते जे कार्ये पुष्ट थाये अने कर्युं थाय, ते कर्मकारक कहीयें ॥ उक्तं च ॥ कम्मं किरियाकरणं इति ॥

कार्य कार्य संकल्पे कारकदशा रे,
छती सत्ता सद्भाव ॥
अथवा तुल्य धर्मने जोयवे रे,
साध्यारोपण दाव ॥ ओ० ॥ ६ ॥

अर्थः—इहां कोई पूछशे जे कर्म तो कार्य छे, पण कारण नथी, तेहने उत्तर कहे छे. जे कर्त्ताने पहेलां तो कार्यनो संकल्प थाय छे, ते वखतें ते कर्त्ता पहेलां संकल्प कार्यने विचारे, ते वार पछी कार्य करे, ते माटे कारण कहियें ॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥ सर्वोऽपि बुद्धौ संकल्प कार्यं करोति इति ॥ व्यवहारनयतो बुद्ध्यावस्थमिनस्य कुंभस्य विकल्पितो मृण्मयः कुंभ स्तदुद्देश्यालंबनतया कारणं भवति ॥ अथवा स्थासादि काल ते घट कार्यनुं कारण छे, अने कर्त्ताने तो स्थासादि कार्य छे, अथवा जे कार्य निपजाववानुं मृत्तिकादिक मूल उपादान, तेहमां जे कार्यनी शक्ति सत्तायें योग्यतारूपे रही छे, ते कार्यरूप सत्तागत ते भावभावी कार्यनुं कारण छे ॥ उक्तं च ॥ अथवा मध्ये योग्य [illegible] [illegible] गुणकार्य [illegible] [illegible] ॥ इति ॥ [illegible] भिन्न [illegible] भाव

छतांपणुं ते कार्य बुद्धियें मेलवे, ते माटे कार्यनें कारण कहे अथवा तुल्य धर्मनुं जोडुं, जे मुजने एहवुं कार्य निपजाववुं छे, जेम कोइ आत्मा मोक्ष पूर्णानंद करवाने उद्यमी थयो, ते सिद्धरूपनिष्पन्न तत्त्वने जोवे, अने विचारे जे मने माहरुं एहवुं तत्त्व निपजाववुं छे, एम संकल्प करवो, ते तुल्य धर्म जोइ कार्यनो उद्यम घणो थाय, ते माटे कार्यने पण कारण कहेवुं ॥ उक्तं च श्री पूज्यैः किं बहुना ॥ यथा यथायुक्तितो घटते तथा सुधायाः कर्मणः कारणत्वं वाच्यमन्यथा कर्मणो कारणत्वे करोति इति कारणमिति षण्णां कारकत्वाद्युपपत्तिरेव स्यादिति ॥ ए रीतें कर्मने विषे कारणपणुं मानवुं, एमज कारकता छे, साव्यवं आरोपण करवुं एहज कर्मने कारकपणुं जाणवुं ॥ ६ ॥ इति षष्ट गाथार्थः ॥

अतिशय अतिशय कारण कारक करणते रे,
निमित्त अने उपादान ॥
संप्रदान संप्रदान कारण पद भव नथी रे,
कारण व्यय अपादान ॥ ओ० ॥ ७ ॥

अर्थः—अतिशय उत्कृष्टपने जे कारण ते कारणनामा चौथुं कारक कहियें, तेहना बे भेद छे. एक निमित्त कारण बीजुं उपादान कारण, तिहां उपादान ते आत्मानो सत्ता धर्म निमित्त कारण श्रीअरिहंतादिक अने कारण पदनुं भवन थयुं एटले उपादान अधिक अधिक कारणता पामे. ते कारणपर्यायनो लाभ. ते संप्रदानता जाणवी. जे उपादान कारणनो नवो नवो कारण पदनो लाभ. ते संप्रदानकारक कहियें, अथवा

कार्यना नवा नवा पर्यायनुं प्रगट थवुं, ते संप्रदान कहियें एटले कार्यपदनुं भवन ते संप्रदान कहियें, अने पाछला पाछला पर्यायनो व्यय केतां विनाश ते अपादान पांचमुं कारक कहियें, जीर्ण कारणपर्यायनो नाश नव्य कारणतानुं निपजवुं, ते रीतें कार्यनी निष्पत्ति छे ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

भवन भवन व्यय विणु कारज नवि होवे रे,
जिम दृषदें न घटत्व ॥
शुद्धाधारशुद्धाधार स्वगुणनो द्रव्य छे रे,
सत्ताधार सुतत्त्व ॥ ओ० ॥ ८ ॥

अर्थः—कोइ कहेशे जे संप्रदान तथा अपादान तेहमां शी कारणता छे ? तेहने उत्तर कहे छे. जे भवन केतां नवा पर्यायनुं थवुं, व्यय केतां पूर्वपर्यायनो नाश, ए पण विना कार्य निपजे नहीं, जेम माटीनो पिंड, ते पिंडपर्यायनो व्यय स्थासपर्यायनुं भवन तथा स्थासपर्यायनो व्यय, कोशपर्यायनुं भवन, कोशपर्यायनो व्यय, कुशूल पर्यायनुं भवन, कुशूल पर्यायनो व्यय, कपाल पर्यायनुं भवन, कपाल पर्यायनो व्यय, घटपर्यायनुं भवन, ए रीतें कार्यनी उत्पत्ति छे, तेम सिद्धताने [illegible] रीतें पण [illegible]पर्यायनो व्यय, [illegible] पर्यायनुं भवन. तेहना [illegible]पर्यायनो [illegible] व्यय, नाशनो उत्पाद, ए रीतें कार्यनी निष्पत्ति छे, पण भवन तथा व्यय विना कार्य थाय नहीं, जेम दृषदें [illegible] न थाय, [illegible] ([illegible]-[illegible]) [illegible] ([illegible])

विषे स्याद्वादि वस्तुधर्मपणुं भजन स्वधर्मपणुं नथी, ते माटे निपजे नहीं.

हवे शुद्ध आधारता कहे छे. स्वगुण जे ज्ञानादिक तेहनो शुद्ध आधार द्रव्यस्वार्थ छे. एटले जीव, द्रव्य, ज्ञान, चारित्र, वीर्य, दान, लाभ, भोग, उपभोग, अव्याबाध, अमूर्तता, अगुरुलघुता, अखंडता, निर्मलता, कर्तृता, पारिणामिकतादि मूलगुण, सर्वनो आधार जीवद्रव्य छे. एम धर्मास्तिकायादि सर्व द्रव्य पोतपोताना गुणना आधार छे, तेहथी धर्मास्तिकायने आधार नामे कारक कहो ? एम कोई पूछे, तेहने उत्तर- जे धर्मास्तिकायने गुणाधारपणुं छे, परंतु कर्तृत्वपणुं नथी, ते माटे कारकपणुं न गवेष्युं. शुद्धतत्त्वने सत्तानो आधार छे, सत्ता ते आत्मानो मूलधर्म ते निरावरण, तेहनो आधार शुद्धतत्त्व छे ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

आतम आतम कर्त्ता कार्य सिद्धता रे,
तसु साधन जिनराज ॥
प्रभु दीठे प्रभु दीठे कारज रुचि उपजे रे,
प्रगटे आत्मसमाज ॥ ओ० ॥ ९ ॥

अर्थः—हवे उपनय कहे छे. आत्मा स्वरूपरुचि, भवोद्विग्न, मोक्षाभिलाषी, सम्यग्दर्शन गुण प्रगटे, जे स्वरूपनुं कर्तापणुं विशिष्टरूं तत्त्व ध्यान, तत्त्वरमणतादिकने करवे कर्त्ता छे, एटले तत्त्वार्थी आत्मा, कर्त्ता, कार्यसिद्धता, सकलगुणप्रगटतानुं, निष्कर्मावस्था, तेहनुं साधन निमित्त कारण श्रीजिनराज सर्वज्ञ छे. जे कारणे प्रभु श्रीअरिहंतने दीठे यथार्थ भासन

थाय, कार्यनी स्वसत्ता माग्भावभोगीपणानी रुचि उपजे, ते रुचि संपूर्णसिद्धतानुं मुख्य कारण छे, ते रुचि वधती साधनभाव, ध्यानावस्थावलंबीने पूर्णानंदता निपजावे, आत्मानो समाज केतां साम्राज्य प्रगटे, तेहथी मोक्षनो कर्ता आत्मा खरो पण मोक्षनी रुचि विनानुं कर्तापणुं प्रगटे नहीं, अने ते रुचि श्रीअरिहंतदेवने दीठे निपजे, माटे श्रीअरिहंतनुं दर्शन, ते रुचिनुं कारण छे, अने रुचि ते मोक्षनुं कारण छे. एवी रीतें मोक्षरूप कार्यनुं मूलकारण श्रीअरिहंतज छे, ते माटे माहारे मोक्ष निपजे, ए उपकार तत्त्वहितना करनार, श्रीअरिहंतनो जाणुं ॥ ९ ॥ इति ॥

वंदन वंदन नमन सेवन वली पूजना रे,
स्मरण स्तवन वली ध्यान ॥
देवचंद्र देवचंद्र कीजें जगदीशनुं रे,
प्रगटे पूर्ण निधान ॥ ओ० ॥ १० ॥

अर्थः—तेमाटे वंदन केतां कर जोडन, नमन केतां शीश नमाववारूप, सेवना ते आज्ञा मानवारूप, वली पूजना ते पुष्पादिकनी, तथा स्मरण ते वारंवार गुणनुं संभारवुं, स्तवन वचनें करी गुणनुं कथन, हर्षथी करवुं, तथा ध्यान ते प्रभुगुणे चित्तनी एकाग्रतानुं करवुं, एटला सर्व उपाय छे, ते सर्व देवचंद्र स्तुति कर्ता ते पोताने कहे छे, जे वंदनादिक कर्तव्य कीजें. श्री जगदीशनी [illegible] ते करतां सेवकने प्रगट केता प्र[illegible] [illegible]नंतगुण, आत्मशक्ति, परमानंदरूप [illegible] छे. एहवे श्रीजिनराज परमात्मानी

सेवा करतां पोतानी पूर्णपरमात्मता निपजे, अविनाशी धन प्रकाश पामे, ए श्री मुनिसुव्रत देवाधि देवनो परम उपकार छे. ॥ १० ॥ इतिश्री मुनिसुव्रजिनस्तवनं संपूर्ण ॥ २० ॥

॥अथ एकविंशति श्रीनमिनाथ जिनस्तवनं॥

॥ पीछोलारी पाल, ऊभा दोय राजवी रे ॥ ऊ० ॥ ए देशी ॥

श्रीनमि जिनवर सेव. घनाघन उनम्यो रे ॥घ०॥
दिठां मिथ्या रोरव. भविकचित्तथी गम्यो रे॥भ०॥
शुचि आचरणारीति ने. अभ्र वधे वडां रे ॥अ०॥
आतमपरिणति शुद्ध, ने वीज झबूकडा रे ॥ते० १॥

अर्थः—हवे एकवीशमा जिनराज परमोपकारी तेहना गुण स्तवे छे. उपगारसंपदाए करीने श्री एकवीसमा नमिजिनवर ते नमिनाम स्थापना ते आमाटे जे नमणाईनो उत्कृष्टो भाव छे, तेमाटे ते श्रीनमिनाथ जिन जे अकषायी, तेमांहे वर केतां प्रधान वीतराग. परमज्ञानी. परमात्मा, शुद्धस्वरूपभोगी, चिदानंदघन, निर्विकारी देवने ओलखवुं तथा तेनो योग मलवो, एजेज दुर्लभ छे ॥ उक्तं च ॥ इंदत्तं चक्कित्तं, सुरत्तणि कप्पदुमस्स कोडीओ ॥ लाभो सुलहो दुलहो, जिणस्स तित्थनाहस्स ॥ १ ॥ तेमाटे श्रीजिन [illegible] दर्शन दुःप्राप्य छे, ते संसारचक्रमां [illegible] [illegible] जिनसेवन [illegible] उत्कृष्ट, [illegible] छे. ते श्री नमि जिनराज [illegible]

जेम मेह चारे दिसाथी चडी आवे, तेम मनें, वचनें, कायायें, अध्यात्मपरिणतियें श्रीनमिप्रभुनो बहुमान नमन गुणनी अद्भुतता एटले प्रभुयोग मल्यानी आश्चर्यता प्रगटी, ते मेह रूप जाणवी.

वली मेह जेवारें चारे तरफथी घटा करी उंचो आवे, तेवारें लोकना मनमां दुःकालनो भय होय ते जाय, तेम इहां श्री अरिहंत सेवनारूप मेघ जेवारें प्रगटे, तेवारें अनादि कालनो मिथ्यात्व रूप जे रौरव केतां दुःकाल हतो, ते भविक जीवोना चित्तथी गम्यो केतां टली गयो, ए लाभ थयो.

मेघने विषे जेम मोटां वादलां वधे, तेम ए प्रभुभक्तिरूप मेघने विषे शुचि केतां पवित्र, अविधिरहित, आशातनारहित, पुद्गल आशंसारहित, एवी भली आचरणा जीवने थाय, तेहीज अभ्रपटल केतां वादलांना समूह वधे, केतां महोटा थाय, एटले रूपी वस्तुनें रूपी उपमा घटे.

मेहमां विजलीना झबकारा घणा होय, तेम इहां प्रभुसेवना करतां आपणा आत्मानी परिणति शुद्ध थाय, गुणी शुद्धतत्त्वीना सेवनने अनुयायी थाय, तेहीज विजलीना झबुका जाणवा॥१॥
॥ इति प्रथम गाथार्थ ॥

वाजे वायु सुवायु, ते पावन भावना रे ॥नेo॥
इंद्रधनुष्य त्रिकयोग, ते भक्ति एकमना रे ॥नेo॥
निर्मल प्रभु स्तवघोष, ध्वनि(ध्व?)नि घन गर्जना रे॥ध्वनि॥
तृष्णा ग्रीष्मकाल, तापनी तर्जना रे ॥नाo २॥

अर्थः—मेहमां जेम वायु अनुकूल होय, तेम ए जिनभक्तिरूप मेहने विषे जिनगुणनो बहुमान सहित जे भावना भाववी तेहीज शुवायु थाय छे.

वर्षादिमां त्रण रेखा युक्त इंद्रधनुष्य शोभाकारी होय, तेम इहां मन, वचन, कायरूप त्रण योग ते भक्तिने विषे एकताना थया, ते इंद्रधनुष्य छे.

जेम मेहमां गर्जना होय, तेम इहां निर्मल उज्ज्वल प्रभुना गुण तेमनी जे स्तवना ध्वनि शब्द तेहीज घन केतां मेहनी गर्जना जाणवी.

मेहथी ग्रीष्म उष्णकालना ताप टले, तेम इहां प्रभुसेवनथी तृष्णा पुद्गल सुखनी पीपासानो जे अंतरंग ताप होय, ते टले एटले आत्माने आत्मसुखनी इंहायें पर जे तृष्णारूप ग्रीष्म कालनो महाताप. ते मटे ॥ २ ॥

शुभ लेश्यानि आलि, ते बग पंक्ति बनी रे ॥ते०॥
श्रेणीसरोवर हंस, बसे शुचि गुण मुनि रे ॥ब०॥
चौगति मारगबंध, भविक निज घर रह्या रे ॥भ०॥
चेतन समता संग, रंगमें उमह्या रे ॥रं० ३॥

अर्थः—जेम मेहमां बगपंक्ति होय तेम इहां प्रशस्त शुभलेश्या जे पद्मशुक्ललेश्याना परिणाम एहवी लेश्याशुभनी उज्ज्वलता ते बगपंक्ति छे.

[illegible] जेम जिनभक्तिना योगे [illegible]

जेम वर्षादथी चार दिशिना मार्ग बंध थाय, तेम इहां जिनभक्तिना योगें चार गतिनो मार्ग बंध थाय एटले साचा मनथी जे प्रभुसेवन करे, ते चार गतिना भ्रमणने टाळे.

वर्षाकालें सर्वलोक पोतानें घरें रहे. तेम इहां पण अनादिनो उद्धत परभावाभिलाषी आत्मा ते अनेक विषय विकाररूप भावमां रहेलो हतो, तेने श्रीजिनेश्वरदेवने निमित्तें रत्नत्रयनी प्राप्ति थइ, पेतनतामनाने संगे रंगे केनां रीझ करीने उमह्यो थको समतामां रमी रहे, स्वात्म स्वभावमां अनुभव रंगे रमी रहे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

सम्यग्दृष्टि मोर, तिहां हरखे घणुं रे ॥ति०॥
देखी अद्भुत रूप, परम जिनवर तणुं रे ॥प०॥
प्रभुगुणनो उपदेश, ते जलधारा वही रे ॥ते०॥
धर्मरुचि चित्त भूमि, मांहे निश्चल रही रे ॥मां० ४॥

अर्थः—जिनभक्तिरूप मेह देखीने सम्यग्दृष्टि तत्त्वरुचिरूप मोर तेहने अत्यंत हर्ष आनंद उपजे, श्रीतीर्थंकर देवनुं रूप केहवुं छे ? जो अत्यन्त धर्मांकुररूप सर्व देवता मळीने विकुर्वे, तोपण श्रीअरिहंतना पगना अंगुठा समान रूप करी शके नहीं, एहवुं परम शांत निर्विकारी परमेश्वरनुं रूप देखीने सम्यग्दृष्टि जीव वर्षाकालना मोरनी पेरे हर्ष आनंद पामे.

हवे श्रीतीर्थंकर [illegible] समवसरण [illegible] तत्त्वार्थे [illegible] प्रभुनो गुण- [illegible] जलधारा, वहीने ते

जलधारा धर्मरुचि जीवना चित्तरूप भूमिकामांहे निश्चल रहे,
एटले तत्त्वरुचिवंत जीवना चित्तमां प्रभुना गुण समाइ रहे॥४॥

चातक श्रमण समूह, करे तव पारणो रे ॥क०॥
अनुभव रस आस्वाद, सकल दुःख वारणो रे ॥स०
अशुभाचार निवारण, तृण अंकूरता रे ॥तृ०॥
विरति तणा परिणाम, ते बीजनी पूरता रे ॥ते०५॥

अर्थः—प्रभुवचनरूप जलधारा वरसतां श्रमण निर्ग्रं
तत्त्वरमणी महामुनि तद्रूप जे चातक ते पारणुं करे छे, एटले
सम्यग्दर्शन काळे तत्त्वस्वरूपें पोताना अनुभवनी पीपासा थ
हती, ते पीपासा श्रीजिनभक्तिरूप कारण पामीने आत्मस्व
रूपनुं यथार्थ ज्ञान ते रूप अनुभव तेहना रसनुं आस्वाद
करतां भोगववापणुं ते रूप पारणुं करे, पण ए पारणुं कहे
छे ? जे सकल सांसारिक विभाव जे कर्मभार उग्रता गुणा
वरणतादिक तेनो वारणो करतां वारणहार छे, एटले तद्रूपदु
खनुं निवारण करे छे.

हवे वर्षाकाळे लीलां तृण ऊगे. तेम जिनभक्तिरूप मेह
मांहे पण अशुभआचारनुं निवारण थयुं, ए तृणना लीला अंकु
प्रगट्या.

[illegible] [illegible] [illegible] धर्मना [illegible] आवे. तेम इह
[illegible] जिनभक्ति [illegible] [illegible] [illegible]. तेहना बीजन
पूर्णता थई ॥ ५ ॥

पंच महाव्रत धान्य, तणां कर्षण वध्यां रे ॥त०॥
साध्यभाव निज थापी, साधनतायें सध्यां रे ॥सा०॥
क्षायिक दरिसण ज्ञान, चरणगुण उपना रे ॥च०॥
आदिक बहुगुण सस्य, आतम घर नीपना रे ॥आ०॥६॥

अर्थः—वर्षाकालमां जे बीज वाव्यां होय, ते उगीने वधे, इहां द्रव्य तथा भावथी पांच महाव्रत "सव्वाओ पाणाइवायाओ रमणं " इत्यादिक धान्य ऊगीने उत्सर्गावलंबी महाव्रत ते निरतिचार थया, तेहीज ध्याननां कर्षण वृद्धि पाम्यां, पण ाध्यभाव केतां साध्यपणुं निज केतां पोतानो आत्मभाव ते ाध्यपणे थापीने साधन कार्य निपजाववानी शक्ति, तेपणे थयां, एटले साधनरूप थया, भावार्थ जे आत्मानी सत्ता पूर्ण प्राग्भाव करवी एहवो साध्य धारीने, महाव्रत परिण- ारूप साधनायें परिणम्या, क्षायिकनिरावरण, संपूर्ण केवल ज्ञान, वलं दर्शन, यथाख्यात चारित्र प्रमुख गुण ऊपना प्रगट या. इत्यादिक स्वगुणनी अनंतता तेहीज सस्य केतां धान्य जे आत्मा जिनसेवनमयी थयो हतो, तेहना घरे नीपना, ात्मप्रदेशसर्वे ज्ञान, दर्शन, चारित्रनी पूर्णता पाम्या ॥ ६ ॥

ुदरिसण महा मेह, तणे प्रवेशमें रे ॥त०॥
रमानंद सुभक्ष थयो, मुझ देशमें रे ॥थ०॥
यचंद्र जिनचंद्र, तणो अनुभव करो रे ॥त०॥
ादि अनंतो काल आतमसुख अनुसरो रे॥आ०॥७॥

अर्थः—हवे आत्तिकना श्रीजिनेश्वरनी स्तुति करे छे. ज्ञानादिकमां तिलक समान, महाप्रभावि, एवा श्रीजिनेश्वर तेओने जिन जेवा बीजाने मारी करुं, त्यांही पण अन्यने एवा बीजो नहीं, ज्यारे जेवां नथी तो जेवां मन जन जिनेश्वर तिनाम ते अनंत तथा वान माननि सौ निवार करो, आपणी शक्ति अनेकान्त सांभळे तिनो ते अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत सुख, अनंत आनन्द, अनंत दान, अनंत लाभ, अनंत भोग, अनंत उपभोग, अनंत वीर्य, [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २ ॥

लव्या एटले भर्त्तारपणानो अशुद्ध राग टाली देवतत्त्वने रागें आदर्या, एम विचार्युं जे उत्तमने संगें उत्तमता वधे, एटले चारित्रवंत सर्वज्ञ श्रीनेमीश्वर भगवान् ते सर्वोत्तम छे तो एना संगथी महारी पण उत्तमता एटले सिद्धता पूर्णात्मता वधे, वली सर्वे केतां नीपजे. आनंद केतां आत्यंतिक, ऐकांतिक, निर्द्वंद्व, निरामय सुख थाय, तेमाटे तेहीज करवुं घटे, एम सर्व भव्य जीवोयें विचारवुं ॥ २ ॥ इति द्वितीयगाथार्थः ॥

धर्म अधर्म आकाश अचेतना,
ते विजाति अग्राह्यो जी ॥
पुद्गल ग्रहवे रे कर्मकलंकता,
वाधे वाधक वाह्यो जी ॥ ने० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे राजीमतीयें जे विचार्युं, ते कहे छे. सर्वलोकमां पंचास्तिकाय छे, अने काल ते छती रूपें द्रव्य नथी, श्रीभाष्यकार तथा अनुयोगद्वारसूत्र जोतां उपचारद्रव्य छे वली पंचास्तिकायमां धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय अने आकाशास्तिकाय, ए त्रण द्रव्य अचेतन छे, तथा विजाति छे. वली जीवद्रव्यनी ए जाति नही, अग्राह्य छे, ते अपरिणामीपणा तथा अचलपणा माटे जीवनी ग्रहवाय नहीं. तेमाटे एहथी पण माहरे काम [illegible] पुद्गल [illegible] साथे चिरकालनो परिचय छे. [illegible] जडद्रव्यने ग्रहवे आत्मने नवा [illegible] कगहिन थाय, अने [illegible] ननादि गुणनी विपर्यासता [illegible] पुद्गलने लेनां

अनंतो काल गयो, पण आत्महित थयुं नहीं, तेमाटे पुद्गलना संगथी चालमीठ थयो, माटे उत्तम जीव, एहने दो नहीं, एम रागुने निवार्युं, जे एने पण ग्रह्युं नहीं, केमके एना ग्राहक तो अनंता जीव निगोदमांहें पड्या छे ॥३॥ इति मुनिगमावार्थः ॥

रागीसंगें रे रागदशा वधे,
थाए तिणे संसारो जी ॥
नीरागीथी रे रागनुं जोडवुं,
लहिए भवनो पारो जी ॥ ने० ॥ ४ ॥

अर्थः—हे [illegible] श्रीनेमि[illegible] ते अनेक आत्मा छे, पुद्गलादि पण छे, माटे तेहने वली राग करीये, परंतु एक अनागुण [illegible] पण दीठो, ते कहे छे, जे रागी जीव तो राग द्वेष संयुक्त छे, माटे तेहनो राग [illegible] आत्मानी पण राग दशा वधे, अने रागदशा तो अभिनव [illegible] हेतु छे, अरिहंतदेवना आगम जोतां अने आत्मधर्म [illegible] राग तो [illegible] योग्य छे, [illegible] [illegible] [illegible] थाय थे, [illegible] [illegible] अन्नहित नहीं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अप्रशस्तता रे टाली प्रशस्तता,
करतां आश्रव नासे जी ॥
संवर वाधे रे साधे निर्जरा,
आतमभाव प्रकासे जी ॥ ने० ॥ ५ ॥

अर्थः—ते माटे कामरूप जे अप्रशस्त राग हतो, ते टाळी अरिहंतस्वरूप प्रशस्त राग करवो, गुणी उपर राग ते प्रशस्त छे; ते साधनकाळें कारणनो छे, ते प्रशस्त राग करतां अशुभकर्मे आश्रव नाश पामे, नवा कर्म लेवारूप अशुद्ध परिणति टळे; वळी प्रशस्तरागी जीव, ते गुणीने अवलंब्यो रहे, तेहथी स्वगुणनी एकत्वता वधे, ते स्वगुण एकत्वता परिणामथी संवरपरिणति वधे, अने पूर्वकृत कर्मनी निर्जरा परीतादकरूप ते पण तवे थेतां नीपजे, ते संवरनिर्जराने प्रगटवे आत्मानो भावधर्म, अरूपीशक्ति प्रकाश पामे, निरावरण थाय ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

नेमिप्रभुध्यानें रे एकत्वता,
निजतत्त्वें एक तानो जी ॥
शुक्लध्यानें रे साधि सुसिद्धता,
लहियें मुक्ति निदानो जी ॥ ने० ॥ ६ ॥

अर्थ—राजीमतीजी एम विचारीने श्रीनेमिपरमेश्वरनेज अवलंब्या केमके नेमिप्रभुने ध्याने एकत्वता तन्मय करवे करीने निज केता पोताना तत्त्वे आत्मस्वरूपे एकतान केतां

एकत्वपणुं नीपजे, ते जेवारें स्वरूपें एकत्वपणुं पामे, तेवारें शुक्लध्यान प्रगटे जे स्वरूप एकत्वपणुं तेहीज शुक्लध्यान छे, ते शुक्लध्यानें करी पोतानी साध्यता साधी केतां नीपजावीनें तेहथी मुक्ति जे सकलकर्मरहीतपणुं तेहनुं निदान केतां मूलकारण लहीयें, केतां पामीयें ॥ ६ ॥

> **अगम अरूपी रे अलख अगोचरु,**
> **परमातम परमीशो जी ॥**
> **देवचंद्र जिनचरनी सेवना,**
> **करतां वाधे जगीशो जी ॥ ने० ॥ ७ ॥**

अर्थः—तेमाटे सर्व भव्य आत्मार्थी अध्यात्म सुखरुचि एहवुं तत्त्व सेवे, ते कहे छे. अगम केतां जेहनुं गम्य नही, अथवा जेमांहे अजाण जीवथी प्रवेश थाय नहीं, वळी जेहनुं रूप, गंध, वर्ण, रस, संस्थान नहीं, तेमाटे अरूपी, तथा अलख केतां पुद्गलाभिलाषी, एकांतवादी, एवा नैय्यायिक, वेदांतिक, सांख्य मैमांसिक, वैशेषिक, बौद्ध, नास्तिक, तथा जे एकांत द्रव्यपदपादिक पक्षग्राही एवा जैनालिंगी इत्यादिकथी लखाय नही, एटले ओळखाय नहीं, वळी अगोचर केतां इंद्रियगोचर नहीं, अतींद्रिय पदार्थ ते अतींद्रियस्याद्वादज्ञानें शानेशु उपयोगें ध्याननी धारणायेंज गोचर छे, वळी परमोत्कृष्ट सर्व विभाव रहित अनंत गुणप्रागभावरूप आत्मा छे, वळी परमीश केतां उत्कृष्ट अविनाशी सहज अनंतगुण पर्याय धर्मना ईश्वर छे, वळी नादेव ने चक्रवर्त. भावदेव ने भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषि, वैमानिक, ए च्यार निकायना इंद्रन. तथा धर्मदेव ते

मुनिराज, जिनकल्पी स्थविरकल्पी, परिहारविशुद्धि, पडिमापडिवन्न, सूक्ष्मसंपरायी, उपशांतमोही, क्षीणमोही उपाध्याय, श्रुतधर, पूर्वधर, आचार्य, गणधर प्रमुख ते धर्मदेव, ते सर्व मध्ये चंद्रमा समान नायक, शासनना पति, मार्गदेशक, एहवा जे जिनवर तेहनी सेवना आज्ञा मानवारूप करतां थकां साधे केतां शुद्धि पामे, साधकसंवरा, तथा सिद्धतारूप संवरा, तेहथी श्रीतीर्थंकर तीर्थपतिनी सेवना ते परम प्रधान छे. द्रव्यथी वंदन नमनादिक अने भावथी गुणनुं बहुमान. आज्ञाप्रमाणता रूप सेवा करतां अनंता सिद्ध थया. वली अनंता सिद्ध थशे, एहीज मोक्षसुखनो उपाय छे ॥७॥ इतिनेमिनाथजिनस्तवनं संपूर्ण ॥२२॥

॥अथ त्रयोविंश श्रीपार्श्वनाथजिनस्तवनं॥

॥ कडखानी देशी ॥

सहजगुण आगरो स्वामी सुखसागरो,
ज्ञानवयरागर प्रभु सवायो ॥
शुद्धता एकता तीक्ष्णताभावथी,
मोहरिपु जिति जय पडह वायो ॥ १ ॥

अर्थः—हवे त्रेवीसमा श्रीपार्श्वनाथ प्रभुजीनी परमेश्वरनी
स्तुति करे छे. श्रीपार्श्वनाथ प्रभुजी केहवा छे? सहज
[illegible]

स्वाधीन, निरामय, निःप्रयास, अविनाशी सुख तेना समुद्र छे, निःसंग सुखना पात्र छे, केवलज्ञानरूप वयर केतां वज्र ते हीरो तेहना आगर छे, सदा सर्वदा प्रभु तमें सवाया छो, ए श्रीपार्श्वनाथ स्वामीनी शुद्धता, ज्ञाननी यथार्थता, निर्मलता, एकता, ते चारित्रनी स्वरूप तन्मयता. तीक्ष्णता, ते वीर्यनी तीव्रता, वीर्यनी तीक्ष्णता ते धारा छे, अने चारित्रनी एकता ते पुंठलथी प्रेरणा छे, तथा ज्ञान ते प्रकाश देखाडण हार छे, ते माटे ए मळेज मोक्ष छे. कोइ कहेशे जे सम्यक्दर्शन कां न कयुं ? तेहने उत्तर. जे ज्ञान ते दर्शनयुक्तनेज कहे छे. एटले ज्ञानमध्ये दर्शननुं एकपणुं छे, तथा तप ते वीर्यनी तीक्ष्णता कही छे, उक्तं च आवश्यकनिर्युक्तौ ॥ नाणं पयासगं सोहगो उ तवो संयमो उ गुत्तिकरो ॥ तिण्हंपि समाओगो, मोक्खो जिणसासणे भणिओ ॥ १ ॥ एटले शुद्धता, एकता, तीक्ष्णतायी मोहरिपुने जीतीने अर्थात् ज्ञान, चारित्र, तथा तपना बळें मोहादिक कर्मने हणीने, जयनो पडहो वजाव्यो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

वस्तु निजभाव अविभास निकलंकता,
परिणति वृत्तिता करी अभेदें ॥
भाव तादात्म्यता शक्तिउल्लासथी,
संतति योगनें तुं उच्छेदे ॥ स० ॥ २ ॥

अथ —हवे शुद्धतादिकनुं स्वरूप कहे छे. वस्तु जे जीवादिक द्रव्य, तहना जे निज केतां पोतानो भाव ते गुणपर्यायरूप अर्थ, त्यय परिणतिनो अविभास केतां जा-

थइं. ते पन निष्कलंक एटले एकांतता अयथार्थता अज्ञता
अधिकता रहित सम्यग्ज्ञान तेने शुद्धता कहीयें, तथा परि-
णति जे जीवनो शुद्ध मूल परिणाम ते स्वरूपने विषे एक-
त्वपणुं परभावमां पेसे नहीं, ए आत्मानी परिणति छे, अने
संसारी जीवने विभाव संगीने ते मूल परिणति तो चारित्र
मोहनीयें आवृत्त छे, तेणें करीने वृत्ति जे प्रवृत्ति ते रागी
द्वेषी पुद्गलभोगीपणे प्रवृत्ति रही छे, ते प्रवृत्ति तजीने शुद्ध
स्वरूपपर भणी करी, ते प्रवृत्ति तथा परिणति बेहुनुं एकज
प्रवर्त्तन थयुं जे परिणति तेहीज प्रवृत्ति रही, पण औपा-
धिक प्रवृत्तिनो अंश पण रह्यो नथी. ते माटे परिणति तथा
प्रवृत्ति बेहु एकपणे अभेदें करी तेने एकता कहीयें. वली
भावतादात्म्यता शक्ति केतां जे विभाव ते तादात्म्यता केतां
तदुत्पत्तिसंबंधे छे, ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म ते संयोग संबंधे
छे, अने शुद्धज्ञानादिक वीर्यादिक स्वगुण ते तादात्म्यसंबंधे छे,
ते तादात्म्य संबंधथी जे आत्मिक शक्ति क्षायिकवीर्यना
उल्लासथी ते आत्मावडे संतानियोगनां संतति केतां परंपरानो
ले संयोगकर्म संबंध, तेहने उच्छेदे, एटले ज्ञानावरणादि क-
र्मनी प्रकृति, स्थिति, रस, प्रदेशनो बंध, तेहनुं स्थिति प्रमाणे
रहेवुं छे, एटले ते कर्मने आत्मप्रदेश साथे संबंध ते असं-
ख्यातो काल उत्कृष्ठो सित्तेर कोडाकोडी सागरोपमनो छे,
परंतु एकबंध भोगववानो अंश स्थितिबंध प्रतिसमयबंधाद छे,
वली ते भोगववानो अंश प्रतिसमय अनेक [illegible] छे. एटले
कर्मपुद्गल ते एक समय बंध तेहनो [illegible] मांडे
छे. परंतु अभिनवबंधनो [illegible] निरावी
पुष्ट, पुष्टथी [illegible] पुष्ट, एटले तेनो ते समय नो पोताना

आयुष्य प्रमाणे वरते, परंतु संताननी परंपरा अनंती च
तेम तेनां तेहीज कर्म तो स्थिति प्रमाणे रहे, परंतु पूर्व
बंने भोगवते, नवानो बंध थाय, तेहने भोगवे, वळी वी
नवानो बंध, एम संताननी परंपरायें ए अनादिनो छे.
संततियोग आत्मवीर्यरूप तीक्ष्णता वडे हे परमेश्वर!
उच्छेदे फेनां सर्वथा उच्छेद करे, एटले ज्ञान, दर्शन, चारि
वीर्यना, वळी अनादि कर्मसंबंधने तुमें विनाश कर्यो ए शक्ति
प्रभुजी तुमारामांज छे, बीजामां नहीं, ए कार्य तमें
निरावरण थया ॥ १ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

दोष गुण वस्तुनी लखीय यथार्थता,
लही उदासीनता अपरभावें ॥
ध्वंसि तज्जन्यता भावकर्त्तापणुं,
परम प्रभु तुं रम्यो निज स्वभावें ॥सं०॥३॥

अर्थः—हवे वळी एज शुद्धता, प्रभुता, तीक्ष्णता ए
त्रणेनो अर्थान्तर करे छे. वस्तु जे धर्म, धन, वनिता, शरीर,
आत्म, विषयादि, तेना दोष ते अशुभ वर्णादिक तथा गुण
ते शुभवर्णादिक, तेहने करी केवां जाणे. [illegible]
अशुभदोष सहित वस्तुने अशुभवर्णादि सहित जाणे अने शुभ-
गुणयुक्त वस्तुने शुभ जाणे, जड वस्तु जडपणे जाणे, चेतन
वस्तुने चेतनपणे जाण, ते यथार्थ स्वरूपपणे जाणे. ए
शुद्धता कहीये [illegible]
[illegible]
[illegible]

पोतानो आत्मा असंख्यातप्रदेशी तेहने विषे व्याप्यव्यापक-भावें रह्या जे गुणपर्याय, तेहथी अपर भाव केतां अन्यभावने एटले बीजा अन्य केतां ग्रन्थ जे अनंता जीव तथा अनंता पुद्गलादिक अजीव पदार्थ, ते सर्वथी उदासपणे सर्वना अग्राहक, अभोगी, असंगी थया, ए सर्व चारित्र परिणतिने एकता कहियें अने स्वंसी केतां उच्छेदीने तज्जन्यताभावें जे विभावकर्त्तापणुं तेहने छेदीने छेदकता शक्ति ते तीक्ष्णता जाणवी. ए कार्य करवे हे प्रभुजी ! तुं निज केतां पोताने स्वभावें रम्यो, आत्मस्वभावरमणी थयो ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

शुभ अशुभ भाव अविभास तहकीकता,
शुभ अशुभ भाव तिहां प्रभु न कीधुं ॥
शुद्धपरिणामता वीर्यकर्त्ता थइ,
परम अक्रियता अमृत पीधुं ॥स०॥ ४ ॥

अर्थः—वली एहीज त्रिभंगीनो अर्थांतर कहे छे. शुभ केतां प्रशस्त अशुभ केतां अप्रशस्त जे भाव, तेहनी जे अविभास केतां ओलखाण, तहकिकता केतां तेहने निर्धारे ते शुद्धतापणे ए सर्व तमे जाण्युं परंतु हे परमेश्वर ! तुमें तिहां रागीद्वेषीपणे शुभअशुभ भाव पण कर्यो नहीं, एहीज एकता. चारित्र धर्मनी अरागी. अद्वेषी. परिणति ते एकता शुद्ध निरावरण परिणामता ते पारिणामिकभावें जे वीर्यगुण. तेहना कर्त्ता थइने पूर्वे रागद्वेषने अनुयायीपणे वीर्यना विकार छे. ते रागद्वेष रहितपणे थये, वीर्य शुद्ध

[illegible] ॥ ५ ॥ इति पंचमी गाथार्थः ॥

शुद्धता प्रभु तणी आत्मामां रमे,
परम परमात्मता तास थाए ॥
मिश्रभावे अछे त्रिगुणनी भिन्नता,
त्रिगुण एकत्व तुज चरण आए ॥ शां० ५॥

अर्थ — [illegible]

तननो, पोताना आत्माने तत्त्वपरिणतिमन्ये तन्मयता पमाडतो पछी ज्ञानहेज रमन, ज्ञाननोज निर्धार, एटले पर्यायभेदें ते मूलगुणें एकत्व पणे, ए अनेकत्वपणाइं स्वरूप, स्यानिगम्य छे. परंतु मूलपदें आत्मा ज्ञान, दर्शन, ए बे गुणें सहित छे, एहवो आम्नाय छे, जेम निर्धारथिरताएं सर्व चेतना गुणनी प्रवृत्ति छे, तेमाटे ए ज्ञानमांहेज स्थिरत्वपरिणति ते अभेदता कहेवी. प्रथम क्षयोपशमनी चपलवीर्यताएं चेतनापर्यायनी प्रवृत्ति असंख्यमननी हती, ते भावनप्रवृत्ति पछी करणें कारण कार्यनां भिन्नपरिणतिइं हती, ते क्षीणमोहकाले रोधकने करे समकाल असंख्यसमयनी प्रवृत्ति थइ, ते केवलज्ञान थये निरावरणतायें एकसमयनी थइ, ए रीतें अनेक स्वरूपी थाय छे. ए श्री भाष्यनी सम्मती ॥ ५ ॥

उपशम रस भरी सर्व जन शंकरी,
मूर्त्ति जिनराजनी आज भेटी ॥
कारणें कार्यनिष्पत्ति श्रद्धान छे,
तेणें भवभ्रमणनी भीड भेटी ॥स० ६॥

अर्थः—उपशम रस ते कषायनो अभाव. तेहवी भरी अने सर्वलोकने शंकरी केतां कल्याणनी करनारी एहवी प्रभुनी [illegible] केतां मूर्त्ति तेहनी [illegible] अरहट्टघट्ट, ते आज भेटी केतां नजरे जोई. हवे कारणें कार्य निपजे, एहवी श्रद्धा थई छे. जे [illegible] निमित्त कारण श्री जिनराजनो [illegible] [illegible] [illegible] आत्मानो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]; एहवा

कारणने मल्यो, जाणुं छुं, जे कारणना ते कार्यनो हेतु छे, माटे कारण मले कार्यनी निष्पत्ति थशे, एहवो आत्मिक भयनासोत उपयोग थयो. तेहथी जाणुं जे ए परमपुरुषोत्तम देव श्री वीतरागनी मुद्रा जो उपनी, तो कोइ दिवसें ए आत्मा गुणी थनार छे, ए अनुमानें जाणवो जे कारण मल्युं तो कार्य निपजशे अने भवभ्रमण पण टलशे, ए हर्षनुं वचन छे, भवभ्रमणनी भीड मटी, ए कारणें कार्योपचारी वचन छे, एम भावना करवी. जे प्रभुनी प्रभुता इष्ट लागी छे, ते आत्मा सिद्धता वरशे ॥ ६ ॥ इति षष्ठगाथार्थः ॥

नयर खंभायतें पार्श्वप्रभु दर्शनें,
विकसते हर्ष उत्साह वाध्यो ॥
हेतु एकत्वता रमण परिणामथी,
सिद्धि साधकपणो आज साध्यो ॥ न० ७ ॥

अर्थ — एहवा अध्यातम [illegible]

जे आज केतां जे दिवसें प्रभुने भेट्यो, ते दिवसें माहरुं सिद्धिसाधकपणुं सर्व्युं ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

आज कृतपुण्य धन्य दीह माहरो थयो,
आज नर जन्म में सफल भाव्यो ॥
देवचंद्र स्वामी त्रेवीशमो वंदीयो,
भक्तिभर चित्त तुझ गुण रमाव्यो॥स०॥८॥

अर्थः—आज जे वेलायें अनुष्ठानादिक दोष रहित आत्मा प्रभुभक्तें परिणम्यो, ते दिवस कृतपुण्य केतां पुण्योदय थयो, ए दिन धन्य थयो, ए दिनें जिनभक्ति रत्त अध्यवसाय थवे ए नर जन्म सफलपणे विचार्यो जे माहरो ए जन्म सफल छे, जे में नीरागी, निस्पृही, परमगुणी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी देव, श्रीपार्श्वनाथस्वामी त्रेवीशमा तीर्थंकर तेने भेट्यो, वांद्यो, स्तव्यो, अने तेहनी भक्तिभरने विषे चित्त केतां मन रमाव्युं एटले पुद्गलरमणता तजी, श्रीअरिहंतगुणनी रमणताएं मन रमाव्युं तेहीज दिन कृतार्थ कृतपुण्य सफल मानवो, ए दिन लेखानो जाणवो, सर्व देवमांहे चंद्रमा समान अथवा स्तुतिकर्त्ता जे देवचंद्र ते एहवो लाभ पाम्यो ॥ ८ ॥ इति श्रीपार्श्वनाथजिन स्तवनं ॥

॥ अथ चतुर्विंश श्रीमहावीरजिन स्तवनं ॥

॥ ढाल कडखानी देशीमां चाले छे ॥

तार हो तार प्रभु मुज सेवक भणी,
जगतमां एटलुं सुजश लीजे ॥
दास अवगुण भर्यो जाणी पोतातणो,
दयानिधि दीनपर दया कीजे ॥ ता० ॥ १ ॥

अर्थ - कौतुक आगमें श्री जिनागमना आगमें करीने प्रगट थया ज्ञानादिकगुणादिक आगमें आतम पोतानी अनंत आत्मशक्ति, सर्व ने अनादि परभावानुसंगना दोषने कु.मे उंडा आत्मा ते पोतानी साधकता शक्ति आवरेलनी परमविशेषता [illegible] पोताडामां श्रीजिनागमना [illegible] [illegible] [illegible], श्री वीरप्रभुनी आगळ प्रार्थना सहित, विनति करे छे. जे हे नाथ! हे दीनदयाल! हे प्रभुजी! मुज सरीखो जे [illegible] [illegible] अशुभ [illegible] आपणे, तेने नाथ आपनी सेवक [illegible] [illegible] ... [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]!!! मुज [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करीने कहुं ? [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

दरिद्री, मार्गनो विराधक, असंयमसंचारी, महाविकारी, तमारी आज्ञाथी विमुख, अनादिनो उद्धत, एहवा मुज ऊपर दया करीजें ताहरी कृपा वेहीज त्राण (शरण) थशे. यद्यपि अरिहंत तो कृपावंतज छे, तो कृपा शी करवी छे ? तो पण अर्थी विचारे नहीं माटे अर्थीनुं ए वचन छे, जे दयावंतनेज एम कहेवाय छे, जे हे देव ! तमें दयाना भंडार छो, तमनेंज अवलंबे तरीश, एज सत्य छे ॥ १ ॥ इति प्रथम० ॥

रागद्वेषें भर्यो मोह वैरी नड्यो,
लोकनी रीतमां घणुंए रातो ॥
क्रोधवश धमधम्यो शुद्धगुण नवि रम्यो,
भम्यो भवमांहे हुं विषय मातो ॥ ता० ॥२॥

अर्थः—दास कहेवो छे, रागद्वेषें भर्यो, जगनूमां पड्यो, गुणीथी ईर्ष्या करे छे, मोह जे मुंजितपणुं वे तत्त्वनी अजाणता विपर्यासना, हेतुयें मोहवेरी नड्यो तेथी दबाणो छे, तथा लोकनी जे रीत केतां चाल तेमांहे घणोज मातो छे. लोकनी चाल मांहे मग्न छे, लोकरंजननो अर्थी छो, क्रोध जे तातो चंडपरिणाम तेहने विषे धमधमी रह्यो छे, जेम धमण धमतां अग्नि तपे, तेम तपी रह्यो छे, शुद्ध गुण जे सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, शुद्धचारित्र. क्षमा. मार्दव. आर्जवादि आत्मगुण, तेने विषे रम्यो नहीं. तन्मयी न थयो. ते रूप न थयो. वली भम्यो चतुर्गतिरूप भवचक्रमांहे द्रव्य. क्षेत्र. काल, भावरूप ससार तेने विषे हुं विषय जे पचेंद्रियना स्वाद. तेमांहे मातो केता मग्न थयो. विषयग्रस्त थयो थको एम ससारचक्र अनु-

भणी ते हो मुजने तार तार हे नाथ! वीतराग! निःकारण दयाल। मुजने तार आपदःथकी उगार ॥ २ ॥

आदर्युं आचरण लोक उपचारथी,
शास्त्रअभ्यास पण काइं कीधो ॥
शुद्ध श्रद्धान वली आत्मअवलंबविनु,
तेहवो कार्य तेणें को न सीधो ॥ ता० ॥३॥

अर्थ.—कदाचित् कोइ वेळे जे आचरण आचरवुं अंगीकार कर्युं, परंतु ते सर्व लोकोपचारथी [illegible] तथा [illegible] तथा अध्योग्यानुष्ठाननी माफक [illegible] अंगीकार कर्युं तथा कोइ वेळे [illegible] [illegible] [illegible] ते [illegible]

[illegible]

स्वामिदर्शन समो निमित्त लही निर्मलो,
जो उपादान ए शुचि न थाशे ॥
दोष को वस्तुनो अहवा उद्यम तणो,
स्वामिसेवासही निकट लाशे ॥ता० ॥४॥

अर्थः—स्वामी श्रीवीतराग जे परकार्यना अकर्ता, परभावादिना अभोक्ता इच्छा, लीला, चपलता रहित एटले जे इच्छा तेतो ऊणतावंतने छे, अने जे परमेश्वर तेतो पूर्णसुखी छे, तेमाटे इच्छारहित, वळी लीला पण सुखनी लालचवालाने होय, अने लालचीपणुं नथी, एहवा स्वामीना दर्शन समान निर्मल निमित्त लही केतां पामीने जो ए आत्मानुं उपादान मूलपरिणति ते शुचि केतां पवित्र नहीं थाशे तो जाणीयें छइयें जे वस्तु जे जीव, तेहनोज दोष केतां अवगुण छे, एटले रखे ए जीवनो दल अयोग्य होय ! ए जीवनी सत्ता केवी रीतनी छे ? अथवा पोताना उद्यमनी खामी छे ? केमके आवरे भवके उद्यम करी आत्मानें समारवो जोइयें, ते ए जीव पोतानी उत्साहें आत्माने समारतो नथी, तेमाटे हवे शुं करवुं ? जे बीजो उपाय कोइ नथी, तो श्रीअरिहंतनी सेवा तेहीज निश्चें निकट केतां नजीकना लाभे केतां पमाडशे एटले ए आत्मा दृढ छे, परंतु श्रीजिनराजनी सेवनाथी तृष्णा नासे ॥४॥

स्वामिगुण ओलखी स्वामीने जे भजे,
दर्शन शुद्धता तेह पामे ॥

ज्ञान चारित्र तप वीर्य उल्लासथी,
कर्म झीपी वसे मुक्तिधामें ॥ ता० ॥ ५ ॥

अर्थः—स्वामी जे श्रीअरिहंत, तेहना गुणने ओलखीने जे प्राणी श्रीअरिहंतने भजे, केतां सेवे, ते दर्शन केतां समकितरूप गुण पामे, ज्ञान दर्शननी निर्मलता पामे, ज्ञान ते यथार्थभासन, चारित्र ते स्वरूप रमण, तप ते तत्त्वएकाग्रता, वीर्य ते आत्मसामर्थ्य, तेहना उल्लासथी केतां उल्लसीने ज्ञानावरणादिकर्मने झीपीने वसे केतां रहे, मुक्ति केतां मोक्ष निरावरण संपूर्ण सिद्धतारूप धामें केतां थानकें वसे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

जगत वत्सल महावीर जिनवर सुणी,
चित्त प्रभु चरणने शरण वास्यो ॥
तारजो बापजी बिरुद निज राखवा,
दासनी सेवना रखे जोशो ॥ता०॥ ६ ॥

अर्थः—जगत्रयवत्सल केतां जगत्रयना धर्महितकारी, एहवा महावीर श्रीचोवीशमा जिनवर, तेहने सुणी केतां सांभलीने चित्त केतां मन ते प्रभुने चरणने शरणे वास्यो केतां वसाव्यो, ते माटे हे प्रभु परमेश्वर! माहरो आत्मा तो पराधीने संसारमां [illegible], एहवी शक्ति देखाती नथी माटे महा भक्तिपूर्वक कहुं छु जे हे नाथ! हे दीनबंधो! मुज दासने तुमें तारजो, तमारुं तारकनाम बिरुद एहवा माटे दास जे सेवक [illegible] [illegible] ॥

विनति मानजो शक्ति ए आपजो,
भावस्याद्वादता शुद्ध भासे ॥
साधी साधक दशा सिद्धता अनुभवो,
देवचंद्र विमल प्रभुता प्रकाशे ॥ता०॥ ७ ॥

अर्थः—माहरी एटली विनति मानजो, ए पण भद्रकपणायी भक्तिनुं वचन छे, जे शक्ति सामर्थ्य एवी आपजो, ते कहे छे, जे भाव केनां वस्तुधर्म ते स्याद्वादरीतें नित्य, अनित्य, अनेक, अस्ति, नास्ति, भेद, अभेदपणें छ द्रव्यना अनंता धर्म शुद्ध, शंकादिक दूषण रहित भासे, केतां जाणपणामध्ये आवे. साधि केतां नीपजावीने साधकदशा ते भेदरत्नत्रयी, सिद्धता, निष्पन्नता, अनुभवे, केतां भोगवे, सर्वदेवमांहे चंद्रमा समान सिद्ध भगवान् तेहनी विमल केता निर्मल जे प्रभुता, ते प्रकासे केतां प्रगट करे, एटले स्याद्वाद ज्ञाने साधकता प्रगटे. साधकताथी सिद्धता प्रगटे, एहीज सारपद्धति छे ॥ ७ ॥

एटले ए चोवीश स्तवन थया. पोताना जाणपणाप्रमाणे परमेश्वरना गुण ग्राम स्तवना करी. तेमांहे जे यथार्थ ते प्रमाण. अने अयथार्थ ते मिथ्यादुष्कृत [illegible]. गुणार्थे गुण लेवो, दोष तजवो. [illegible] स्तवन [illegible] छे. महोटा पुरुषे क्षमा राखवी गुण लेवा ॥७॥ इति महावीरजिन स्तवनम् ॥२४॥

॥ अथ सामान्यकालरूप पंचविंशतितम स्तवनं ॥

॥ काल बोलयानी देशीमां ॥

चोवीशे जिनगुण गाईयें,
ध्याईयें तत्त्वस्वरूपो जी ॥
परमानंद पद पाईयें,
अक्षय ज्ञान अनूपो जी ॥ चो० ॥ १ ॥

अर्थः—श्रीऋषभदेवथी मांडीने महावीर पर्यंत अवसर्पिणी कालें शासनना नायक, गुणरत्नाकर, महामाहण, महागोप, महावैद्य, एहवा चोवीश तीर्थंकर थया, तेहने गाईयें केतां गुणग्राम करीयें, अने पोताना तत्त्वस्वरूपने ध्यायीयें तेहने ध्यावे, तत्त्वनी एकाग्रता पामीयें, तेहथी परमानंद अविनाशिक पामीजें. वली अक्षय, अविनाशी, एहवुं क्षायिक ज्ञान [illegible] अनूप अद्भुत पामीजें ॥१॥ इति प्रथम गाथार्थ.॥

चौदसें बावन भला,
गणधर गुणभंडारो जी ॥
समतामयी साधु साधुणी,
सावय श्राविका सारो जी ॥ चो० ॥ २ ॥

अर्थ—चोवीश जिनवरना गणधर (१४५२) भला [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

साध्वी, अने श्रावक, श्राविका सार केतां प्रधान धर्मना धोरी, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रनां पात्र, ए प्रकारनो संघ ते सहित गायवो ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

वर्द्धमान जिनवरतणो,
शासन अति सुखकारो जी ॥
चौविह संघ विराजतो,
दुःषमकाल आधारो जी ॥ चो० ॥ ३ ॥

अर्थः—तथा हमणां श्रीवर्द्धमान महावीर स्वामीनुं शासन अत्यंत सुखनुं कारक छे. ए शासनमांहे जे पेठा, ते जीव संसारनो पार पामे, तथा दुःषम काल पांचमा आरामध्ये भव्यजीवने आधारभूत चतुर्विध संघ विराजे छे, वर्त्तमानकाले नवतत्त्व षड्द्रव्यनी ओळखाण थाय, मिथ्यात्व असंयमनो जेथी नाश थाय, ते उपगार श्रीवीरप्रभुना शासननो छे, ते श्रीवीरनांज आगम छे ॥ ३ ॥

जिनसेवनथी ज्ञानता,
लहे हिताहित बोधो जी ॥
अहित त्याग हित आदरे,
संयम तपनी शोधो जी ॥ चो० ॥ ४ ॥

अर्थः—ए जिनेश्वरनानुं [illegible] श्रीवीतरागवचनने अनुसरे [illegible] [illegible] श्रीजिनवचनना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अहितनो [illegible] [illegible]

अहितनो त्याग करे, तथा हितने आदरे तेहथी संयमं तपनी शोध केतां शुद्धता थाय ॥ ४ ॥

अभिनव कर्म अग्रहणता,
जीर्णकर्म अभावो जी ॥
निःकर्मीने अवाधता,
अवेदन अनाकुल भावो जी ॥चो०॥ ५ ॥

अर्थः—संयम तपनी शुद्धता थवाथी नवां कर्मनी अग्रहणता थाय. एटले नवां कर्म न बांधे, अने जीर्ण केतां जूनां कर्मनो अभाव थाय, एटले पूर्वबंध सत्तागत कर्म निर्जरे अने नवानो बंध नहीं थाय, तथा मूलगां सत्तागत क्षय जाय तेवारें आत्मा निःकर्मी केतां सर्वकर्मरहित थाय, अबाधता केतां बाधा रहित थाय, जे बाधा ते आत्मप्रदेशें पुद्गलना संगनी छे, पुद्गलसंग टले, बाधा मटी गइ, तेवारें आत्मा अवेदन अनाकुलपणुं पाम्यो ने आकुलता परोपाधिनी हती ते गइ ते सर्वप्रभुभक्तिनो उपगार जाणवो ते माटे चोवीशे जिनने रतवीएं एहीज सार छे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

भावरोगना विगमथी,
अचल अक्षय निराबाधा जी ॥
पूर्णानंददशा लही,
विलसे सिद्ध समाधा जी ॥ चो० ॥ ६ ॥

अर्थ.—[illegible] भावरोग [illegible] [illegible] तेहनो विगम

केतां सर्वथा टलवे करीने अचल केतां चलना रहित अरूप केतां अविनाशीपणुं निराबाध केतां अव्याबाध पद प्रगटे, ते सर्वनुं मूल कारण जिनराज श्री वीतराग देवनी सेवना भावरूपे, द्रव्य तथा भावथी प्रगटे, माटे सेवना करवी एहीज हित छे, पूर्णानंद परमानंद अनंत गुणना भोगरूप स्वसिद्धता दशा तेही केतां पामीने विलसे केतां अनुभवे, सिद्धनिष्पन्न परिनिष्ठितार्थ आत्मिक समाधि, ज्ञानदर्शन समाधि, अव्याबाधानंदसमाधि भोगवे, पामे, ए श्री जिनेश्वरना सेवननुं फल एहीज परम निर्वाणपदनी प्राप्ति छे, तेथी सर्व विकल्प कल्पना निवारीने, सर्वज्ञ सर्वदर्शी शुद्धतत्त्वी परमेश्वर निर्विकारी देवनुं सेवन करो, एहीज परमसुखनुं मुख्य कारण छे ॥६॥

श्रीजिनचंद्रनी सेवना,
प्रगटे पुण्य प्रधानो जी ॥
सुमति सागर अति उल्लसे,
साधु रंग प्रभु ध्यानो जी ॥ चो० ॥ ७ ॥

अर्थः—श्री जिनचंद्र अरिहंत देव तेहनी सेवना करतां पुण्य प्रधान प्रगटे अने श्रेष्ठ सुमति जे परमानंद सागरमति ते उल्लसे केतां उल्लास पामे अने प्रभुने ध्याने साधु केतां भलो रंग थाय. बीजो अर्थ श्रीजिनचंद्रसूरि भट्टारक श्री खरतर गच्छाधीश्वर तेहना शिष्य श्रीपुण्यप्रधानोपाध्याय, तेहना शिष्य श्रीसुमति सागरोपाध्याय. तेहना शिष्य श्रीसाधुरंगवाचक. ए मुनि कर्त्ताने परंपराना वडेरा थया, तेहनां नाम कह्या ॥ ७ ॥ इति स्तवन समाप्तं .

सुविहित खरतर गच्छवरू,
राजसार उवझायो जी ॥
ज्ञानधर्म पाठक तणो,
शिष्य सुजस सुखदायो जी ॥ चो० ॥ ८ ॥

अर्थ—सुविहित कहेतां पंचांगी प्रमाण रत्नत्रयीनी हेतु केतां कारण एहवी जेहनी समाचारी, एहवो जे खरतरगच्छ ते मध्ये वर केतां प्रधान सर्व शास्त्र निपुण मरुस्थल विषे अनेक जिनचैत्यप्रतिष्ठा कारक आवश्यकोद्धार प्रमुख ग्रंथोना कर्त्ता एवा महोपाध्याय, श्रीराजसारजी थया, तेहना शिष्य श्रीज्ञानधर्म उपाध्याय, न्यायादिक ग्रंथाध्यापक, जेणें साठ वर्ष पर्यंत जिव्हाना रस तजी शाक जाति तजी, ने संवेग-वृत्ति धरी, तेमना शिष्य रुडा यशना धणी, सुखना देवा-वाला एहवा ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

दीपचंद्र पाठक तणो,
शिष्य स्तवे जिनराजो जी ॥
देवचंद्र पद सेवतां,
पूर्णानंद समाजो जी ॥ चो० ॥ ९ ॥

अर्थः—तथा जेणें श्री शत्रुंजय तीर्थ उपर शिवासोमजी कृत चोमुखनी अनेक बिंब प्रतिष्ठा करी तथा पांच पांडवना बिंबनी प्रतिष्ठा करी, तथा समोसरण चैत्य तथा श्रीकुंथुनाथ चैत्य प्रतिष्ठा करी, श्रीराजनगरे सहस्रफणापार्श्व प्रभुनी प्रतिष्ठा

करी, एहवा उपाध्याय श्रीदीपचंद्रजी, तेहना शिष्य पंडित देवचंद्रगणि, तेणें ए चोवीश प्रभुनी स्तवना भक्तिवशें करी, पोतानी भक्ति परिणति महानंद हेतु छे, एहवा गुणना नाथ, देवचंद्र पद पूर्णानंद जे सिद्ध अव्याबाध आनंदनो समाज केतां समुदाय ते पामे, ए जिनभक्ति ते मोक्षनो परमोपाय छे ॥ ९ ॥ इतिश्री चोवीश जिनस्तुतिनो बाला-वबोध संपूर्ण ॥

॥ इति श्री देवचंद्रजी माहाराज कृत बालावबोध सहित चतुर्विंशति जिनस्तवनानि संपूर्णानि ॥



अथ श्रीदेवचंद्रजीकृत विंशति विहरमानजिन स्तवनानि ॥

॥ तत्र प्रथम श्रीसीमंधरजिन स्तवनं ॥

॥ सिद्धचक्रपद वंदो ॥ ए देशी ॥

॥ श्री सीमंधर जिनवर स्वामी, विनतडी अवधारो ॥ शुद्धधर्म प्रगट्यो जे तुमचो, प्रगटो तेह अम्हारो रे स्वामी, विनवीयें मनरंगे ॥ १ ॥ जे परिणामिक धर्म तुमारो, तेहवो अमचो धर्म ॥ श्रद्धाभासन रमण वियोगें, वलग्यो विभाव अधर्म रे, स्वामी ॥ वि० ॥ २ ॥ वस्तु स्वभाव स्वजाति तेहनो, मूल अभाव न थाय ॥ परविभाव अनुगत परिणतियी, कर्मे ते अवराय रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ३ ॥ जे विभाव ते पन नैमित्तिक, संतति भाव अनादि ॥ परनिमित्त ते विषय संगादिक, ते संयोगें सादि रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ४ ॥ अशुद्ध निमित्तें ए संसरता, अत्ता कत्ता परनो ॥ शुद्ध निमित्त रमे जब चिद्घन, कर्त्ता भोक्ता घरनो रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ५ ॥ जेहना धर्म अनंता प्रगट्या, जे निजपरिणति वरीयो ॥ परमातम जिनदेव अमोही, ज्ञानादिक गुणदरीयो रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ६ ॥ अवलंबन उपदेशक रीते, श्री सीमंधर देव ॥ भजीयें शुद्ध निमित्त [illegible] भवभय टेव रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ७ ॥ [illegible] ॥ [illegible] रे स्वामी ॥ वि० ॥ ८ ॥ [illegible]

स्वभावें ॥ पूर्णानंद सिद्धता साधी, देवचंद्र पद पावे रे स्वामी ॥ वि० ॥ ९ ॥ इति सीमंधरजिन स्तवनं ॥

॥ अथ द्वितीय श्रीयुगमंधरजिन स्तवनं ॥

॥ देशी नारायणानी ॥ श्री युगमंधर वीनवुं रे, विनतडी अवधार रे ॥ दयालराय ॥ ए परपरिणति रंगथी रे, मुझने नाथ उगार रे ॥ द० ॥ १ ॥ श्री० ॥ कारक ग्राहक भोग्यता रे, में कीधी महाराय रे ॥ द० ॥ पण तुझ सरिखो प्रभु लहि रे, साची वात कहाय रे ॥ द० ॥ २ ॥ श्री० ॥ पर्यायि मूल स्वभावमें रे, परकर्तृत्व विभाव रे ॥ द० ॥ अस्तिधरम जे माहरो रे, एहनो तथ्य अभाव रे ॥ द० ॥ ३ ॥ श्री० ॥ परपरिणामिकता दशा रे, लहि परकारण योग रे ॥ द० ॥ चेतनता परगत थइ रे, राची पुद्गल भोग रे ॥ द० ॥ ४ ॥ श्री० ॥ अशुद्ध निमित्त तो जड अछे रे, वीर्यशक्ति विहीन रे ॥ द० ॥ तूंतो वीरज ज्ञानथी रे, सुख अनंते लीन रे ॥ द० ॥ ५ ॥ श्री० ॥ तिण कारण निश्चे कर्यो रे, मुझ निज परिणति भोग रे ॥ द० ॥ तुझ सेवाथी नीपजे रे, भाजे भवभय सोग रे ॥ द० ॥ ६ ॥ श्री० ॥ शुद्ध रमण आनंदता रे, ध्रुव निस्संग स्वभाव रे, ॥ द० ॥ सकल प्रदेश अमूर्त्तता रे, ध्यानां सिद्ध उपाय रे ॥ द० ॥ ७ ॥ श्री० ॥ सम्यग् तत्त्व जे उपदिश्यो रे, सुणतां तत्त्व जणाय रे ॥ द० ॥ श्रद्धाज्ञानें जे ग्रह्यो रे, तेहिज कार्य कराय रे ॥ द० ॥ ८ ॥ श्री० ॥ कार्यरुचि कर्त्ता थये रे, कारक सवि पलटाय रे ॥ द० ॥ आतमगतें आतम रमे रे, निज घर मंगल थाय रे ॥ द० ॥ ९ ॥ श्री० ॥ त्राण शरण आधार छो रे, प्रभुजी

मय सहाय रे ॥ यु० ॥ देवचंद्र पद नीपजे रे, जिनवर सुपसाय रे ॥ यु० ॥ १० ॥ श्री० ॥ इति श्री युगंधरजिन स्तवनं ॥

॥ अथ तृतीय श्रीबाहुजिन स्तवनं ॥

॥ नेमजिन अरजी ॥ ए देशी ॥ बाहुजिणंद दयामयी, वर्त्तमान भगवान ॥ प्रभुजी ॥ महाविदेहे विचरता, केवल ज्ञान निधान ॥ प्र० ॥ १ ॥ बा० ॥ द्रव्यथकी छकायने, न हणे जेह लगार ॥ प्र० ॥ भावदया परिणामनो, एहिज छे व्यवहार ॥ प्र० ॥ २ ॥ बा० ॥ रूप अनुत्तर देवथी, अनंत गुणुं अभिराम ॥ प्र० ॥ जोतां पण जगजंतुने, न वधे विषय विराम ॥ प्र० ॥ ३ ॥ बा० ॥ कर्मउदय जिनराजनो, भविजन धर्मसहाय ॥ प्र० ॥ नामादिक संभारतां, मिथ्यादोष विलाय ॥ प्र० ॥ ४ ॥ बा० ॥ आतमगुण अविराधना, भावदया भंडार ॥ प्र० ॥ क्षायिक गुण पर्यायमें, नवि परपरिणति चार ॥ प्र० ॥ ५ ॥ बा० ॥ [illegible] परिणति परिणमे, [illegible] निहंत ॥ प्र० ॥ [illegible] ॥ प्र० ॥ ६ ॥ बा० ॥ [illegible] नही [illegible] ॥ प्र० ॥ [illegible] ॥ प्र० ॥ ७ ॥ बा० ॥ [illegible] नहिं [illegible] ॥ प्र० ॥ [illegible] ॥ प्र० ॥ ८ ॥ बा० ॥ [illegible] ॥ प्र० ॥ [illegible] ॥ प्र० ॥ [illegible] जिनराज [illegible] ॥ प्र०

॥ १० ॥ वा० ॥ परमातम परमेसर, भावदया दातार ॥ प्र० ॥ सेवो ध्यावो एहने, देवचंद्र सुखकार ॥ प्र० ॥ ११ वा० ॥ इति ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थ श्रीसुबाहुजिन स्तवनं ॥

ढाल ॥ म्हारो वालो ब्रह्मचारी ॥ ए देशी ॥ श्रीसुबाहु जिन अंतरजामी, मुझ मननो विशरामी रे ॥ प्रभु अंतरजामी ॥ आतमधर्मतणो आरामी, परपरिणति निःकामी रे ॥ प्र० ॥ १ ॥ केवल ज्ञान अनंत प्रकाशी, भविजन कमल विकासी रे ॥ प्र० ॥ चिदानंद घन तत्त्वविलासी, शुद्धस्वरूप निवासी रे ॥ प्र० ॥ २ ॥ यद्यपि हुं मोहादिकें छलीयो, परपरिणतिशुं भलीयो रे ॥ प्र० ॥ हवे तुज सम मुज साहिब मलीयो, तिणें सवि भवभय टलीयो रे ॥ प्र० ॥ ३ ॥ ध्येय स्वभावें प्रभु अवधारी, दुर्ध्याता परिणति वारी रे ॥ प्र० ॥ आसन वीर्य एकताकारी, ध्यान सहज संभारी रे ॥ प्र० ॥ ४ ॥ ध्याता ध्येय समाधि अभेदें, परपरिणति विच्छेदें रे ॥ प्र० ॥ ध्याता साधक भाव उच्छेदें, ध्येय सिद्धता वेदे रे ॥ प्र० ॥ ५ ॥ द्रव्यक्रिया साधन विधि याची, जे जिन आगम वाची रे ॥ प्र० ॥ परिणति वृत्ति विभावें राची, तिणे नवि थाये साची रे ॥ प्र० ॥ ६ ॥ पण नवि भय जिनराज पसायें, तत्त्वरसायण पाये रे ॥ प्र० ॥ प्रभुभगतें निज चित्त वसाये, भावरोग मिट जाये रे ॥ प्र० ॥ ७ ॥ जिनवर वचन अमृत अनुसरीयें, तत्त्व रमण आदरियें रे ॥ प्र० ॥ द्रव्यभाव आस्रव परिहरीयें, देवचंद्र पद वरियें रे ॥ प्र० ॥ ८ ॥ इति चतुर्थ श्री सुबाहुजिन स्तवन ॥ ४ ॥

॥ अथ पंचम श्रीसुजातजिन स्तवनं ॥

॥ देहुं देहुं नणद हठीली ॥ ए देशी ॥ स्वामी सुजात सुहाया, दीठा आणंद उपाया रे ॥ मनमोहना जिनराया ॥ जिणें पूरण तत्त्व निपाया, द्रव्यास्तिक नय ठहराया रे ॥ म० ॥ १ ॥ पर्यायास्तिक नयराया, ते मूलस्वभाव समाया रे ॥म०॥ ज्ञानादिक स्व परजाया, निजकार्य करण वरताया रे ॥ म० ॥ ॥ २ ॥ अंशनय मार्ग कहाया. ते विकल्पभाव सुणाया रे ॥ म० ॥ नय चार ते द्रव्य थपाया, शब्दादिक भाव कहाया रे ॥ म० ॥ ३ ॥ दुर्नय ते सुनय चलाया, एकत्व अभेदें ध्याया रे ॥ म० ॥ ते सविपरमार्थ समाया, तसु वर्तन भेद गमाया रे ॥ म० ॥ ४ ॥ स्याद्वादीवस्तु कहिजें, तसु धर्म अनंत लहीजें रे ॥ म० ॥ सामान्य विशेषनुं धाम, ते द्रव्यास्तिक परिणाम रे ॥ म० ॥ ५ ॥ जिनरूप अनंत गणीजें, ते दिव्यज्ञान जाणीजे रे ॥ म० ॥ श्रुतज्ञानें नयपथ लीजें अनुभव आस्वादन कीजे रे ॥ म० ॥ ६ ॥ प्रभुशक्ति व्यक्ति एकभावें, गुण सर्व रह्या समभावें रे ॥ म० ॥ माहरे सत्ता प्रभु सरखी, जिनवचन पसायें परखी रे ॥ म० ॥ ७ ॥ तुंतो निज संपत्ति भोगी, हुंतो परपरिणतिनो योगी रे ॥ म० ॥ तिणे तुम्ह प्रभु माहरा स्वामी, हुं सेवक तुझ गुणग्रामी रे ॥ म० ॥ ८ ॥ ए संबंधे चित्त समवाय, मुझ सिद्धिनुं कारण थाय रे ॥ म० ॥ जिनराजनी सेवना करवी, ध्येय ध्यान धारणा धरवी रे ॥ म० ॥ ९ ॥ तुं पूरण ब्रह्म अरूपी, तुं ज्ञानानंद स्वरूपी रे ॥ म० ॥ इम तत्त्वालंबन करीयें, तो देवचंद्र पदवरीयें रे ॥ म० ॥ १० ॥ इति सुजातजिनस्तवनं॥

॥ अथ षष्ठ श्री स्वयंप्रभजिन स्तवनं ॥

॥ मोगनडाहेडाउहो मिसरिडानुतो महदतो ॥ ए देशी ॥

स्वामी स्वयंप्रभने हो जाउं भामणे, हरखे वार हजार ॥ वस्तुधर्म पूरण जसु नीपनो, भाव कृपा किरतार ॥ १ ॥ स्वा० ॥ द्रव्यधर्म ते हो योग समारवा, विषयादिक परिहार ॥ आतमशक्ति स्वभाव सुधर्मनो, साधनहेतु उदार ॥ २ ॥ स्वा० ॥ उपशम भावे हो मिश्र क्षायिकपणें, जे निज गुण प्राग्भाव ॥ पूर्णावस्थानें नीपजावतो, साधन धर्म स्वभाव ॥ ३ ॥ स्वा० ॥ समकित गुणथी हो शैलेशी लगें, आतम अनुगत भाव ॥ संवर निर्जर हो उपादान हेतुता, साध्यालंबन दाव ॥ ४ ॥ स्वा० ॥ सकलप्रदेशें हो कर्म अभावता, पूर्णानंद स्वरूप ॥ आतम गुणनी हो जे संपूर्णता, सिद्ध स्वभाव अनूप ॥ ५ ॥ स्वा० ॥ अचल अबाधित हो जे निःसंगता, परमातम चिद्रूप ॥ आतमभोगी हो रमता निज पदें, सिद्धरमण ए रूप ॥ ६ ॥ स्वा० ॥ एहवो धर्म हो प्रभुने नीपनो, भांख्यो तेहवो धर्म ॥ जे आदरतां हो भविजन शुचि होवे, त्रिविध विभावी कर्म ॥ ७ ॥ स्वा० ॥ नामधर्म हो ठवण धर्म तथा, द्रव्यक्षेत्र तिम भाव ॥ धर्मसकलना हो हेतुगुण भला, भाव विना सहु दाव ॥ ८ ॥ स्वा० ॥ श्रद्धा भासन हो रमण वियोगने, रमता क्षमता भाव ॥ देवचंद्र जिनवर पद सेवतां, प्रगटे वस्तुस्वभाव ॥ ९ ॥ स्वा० ॥ इति षष्ठ श्री स्वयंप्रभजिन स्तवन संपूर्णं ।

॥ अथ अष्टम श्री अनंतवीर्यजिन स्तवनं ॥

॥ चरणाली चामुंडा रण चडे ॥ ए देशी ॥ अनंतवीरज जिनराजनो, शुचि वीरज परम अनंत रे ॥ निज आतम भावें परिणम्यो, गुणवृत्ति वर्त्तनावंत रे ॥ १ ॥ मन मोह्युं अम्हारुं प्रभुगुणें ॥ ए आंकणि ॥ यद्यपि जीव सहु सदा, वीर्यगुण सत्तावंत रे ॥ पण कर्मे आवृतचल तथा, बाल बाधक लहंत रे ॥ २ ॥ म० ॥ अल्पवीर्य क्षयोपशम अछे, अविभाग वर्गणा रूप रे ॥ षड्गुण एम असंख्यथी, थाये योग स्थान स्वरूप रे ॥ ३ ॥ म० ॥ सुक्ष्म निगोदी जीवथी, जावसन्नीवर पज्जत्त रे ॥ योगनां स्थान असंख्य छे , ततम मोहें परापत्त रे ॥ ४ ॥ म० ॥ संयमने योगें वीर्य ते, तुम्हें कीधो पंडित दक्ष रे ॥ साध्य रसी साधक पणे, अभिसंधि रम्यो निज लक्ष रे ॥ ५ ॥ म० ॥ अभिसंधि अबंधक जीवने, अनभिसंधि अबंधय थाय रे ॥ स्थिर एक तत्त्वना वर्तनो, ते क्षायिक शक्ति समाय रे ॥ ६ ॥ म० ॥ चक्रभ्रमणन्याय सयोगता, तजी कीध अयोगी धाम रे ॥ अकरण वीर्य अनंतता, निजसहकार अकाम रे ॥ ७ ॥ म० ॥ शुद्ध अचल निजवीर्यनी, निरुपाधिक शक्ति अनंत रे ॥ ते प्रगटी मे जाणी सही. तिण नमीजे देव महंत रे ॥ ८ ॥ म० तुझ ज्ञान चेतना अनुगमी, मुझ वीर्य स्वरूप समाय र ॥ पंडित क्षायिकता पामशे, ए पूर्णसिद्धि उपाय रे ॥ ९ ॥ म० ॥ नायक तारक [illegible], सेवनथी आतम सिद्धि रे ॥ देवचंद्र पद [illegible] [illegible] समृद्धि र ॥१०॥म०॥

॥ अथ नवम श्रीसूरप्रभजिन स्तवनम् ॥

॥ देशी कडखानी ॥ सूर जगदीशनी तीक्ष्ण अति शूरता, तेणें चिरकालनो मोह जीत्यो ॥ भाव स्याद्वादना शुद्ध परकाश करि, नीपनो परम पद जग वदीतो ॥ १ ॥ सू० ॥ प्रथम-मिथ्यात्व हणि शुद्ध दंसण निरमल, प्रगट करि जेणें अविरति पणासी ॥ शुद्ध चारित्र गत वीर्य एकत्वथी, परिणति कलुषता सवि विणासी ॥ २ ॥ सू० ॥ बारि परभावनी कर्तृता मूलथी, आतमपरिणाम कर्तृत्व धारी ॥ श्रेणि आरोहतां वेद हास्यादिनी, संगमी चेतना प्रभु निवारी ॥ ३ ॥ सू० ॥ भेद-ज्ञानें यथा वस्तुना ओलखी, द्रव्य पर्यायमें थइ अभेदी ॥ भाव सविकल्पता छेदि केवल सकल, ज्ञान अनंतता स्वामि वेदी ॥ ४ ॥ सू० ॥ वीर्यक्षायिक वलें चपलता योगनी, रोधि चेतन कर्यो शुचि अलेशी ॥ भाव शैलेशीमें परम अक्रिय थइ, क्षय करी चार तनु कर्मलेशी ॥ ५ ॥ सू० ॥ वर्ण रस गंध विनु फरस संस्थान विनु, योगतनु संग विनु जिन अरूपी ॥ परम आनंद अत्यंत सुख अनुभवी, तत्त्वतन्मय सदा चिद्स्वरूपी ॥ ६ ॥ सू० ॥ ताहरी शूरता धीरता तीक्ष्णता, देखि सेवकतणो चित्त गव्यो ॥ राग सुप्रशस्तथी गुणी आश्चर्यता, गुणी अद्भुतपणे जीव मात्यो ॥ ७ ॥ सू० ॥ आत्मगुण रुचि थये तत्त्व साधन रसी, तत्त्व निष्पत्ति निर्वाण थावे ॥ देवचंद्र शुद्ध परमात्म सेवनथकी, परम आत्मिक आनंद पावे ॥ ८ ॥ सू० ॥ इति नवम सूरप्रभजिन स्तवनम् ॥ ९ ॥

॥ अथ दशम श्रीविशालजिन स्तवनं ॥

॥ प्राणी वाणी जिनतणी ॥ ए देशी ॥ देव विशाल जिणंदनी, नमें ध्यावो तत्त्व समाधि रे ॥ चिदानंद रस अनुभवी, सहज अकृत निरुपाधि रे ॥ १ ॥ सु० ॥ अरिहंत पद वंदीयें गुणवंत रे ॥ गुणवंत अनंत महंत स्तवो, भवना भय भगवंत रे ॥ ए आंकणी ॥ भव उपाधि गद टालवा, समर्थ छो वैद्य अमोघ रे ॥ रत्नत्रयि औषध करी, तमे ताव्यों भविजन ओघ रे ॥ २ ॥ न० ॥ अ० ॥ भव समुद्र जल तारवा, निर्यामक सम जिनराज रे ॥ चरण जहाजें पामीयें, अक्षय शिवनगरनुं राज रे ॥ ३ ॥ उ० ॥ अ० ॥ भव अटवी अति गहनथी, पारग प्रभुजी सथवाह रे ॥ शुद्धमार्ग दर्शकपणे, योग क्षेमंकर नाह रे ॥ ४ ॥ यो० ॥ अ० ॥ रक्षक जिन छकायना, वली मोहनिवारक स्वामी रे ॥ श्रमण संघ रक्षक सदा, तेणें गोप ईश अभिराम रे ॥ ५ ॥ ते० ॥ अ० ॥ भाव अहिंसक पूर्णता, माहणना उपदेश रे ॥ धर्म अहिंसक नीपनो, माहण जगदीश विशेष रे ॥ ६ ॥ मा० ॥ अ० ॥ पूज्य अरिहनजी, नायक ज्ञायक मनिपति रे ॥ मोहक सा समभावथी, दीपक मोह अग्नि रे ॥ ७ ॥ दी० ॥ अ० ॥ ... सुमति पर ... ... वाय रे ॥ देवचंद्र सुख... ... अमाह ... रे ॥ ८ ॥ सु० ॥ अ० ॥

... श्री विशालजिन स्तवनं ॥

॥ अथ एकादश श्री वज्रंधरजिन स्तवनं ॥

॥ नदी यमनाके तीर ॥ ए देशी ॥ विहरमान भगवान, सुणो मुज विनति ॥ जगतारक जगनाथ, अछो त्रिभुवन पति ॥ भासक लोकालोक, तिणे जाणो छती ॥ तो पण वितक वात, कहूं छुं तुज प्रति ॥ १ ॥ हुं सरूप निज छोडि, रम्यो पर पुद्गलें ॥ झील्यो उलट आण, विषय तृष्णाजलें ॥ आश्रव बंधविभाव, करुं रुचि आपणी ॥ भूल्यो मिथ्यावास, दोष द्युं परभणी ॥ २ ॥ अवगुण ढांकण काज, करुं जिनमत क्रिया ॥ न तजु अवगुण चाल, अनादिनी जे प्रिया ॥ दृष्टिरागनो पोष, तेह समकित गणुं ॥ स्याद्वादनी रीत, न देखुं निजपणुं ॥ ३ ॥ मन तनु चपल स्वभाव, वचन एकांतता ॥ वस्तु अनंत स्वभाव, न भासे जे छता ॥ जे लोकोत्तर देव, नमुं लौकिकथी ॥ दुर्लभ सिद्ध स्वभाव, प्रभो तहकीकथी ॥ ४ ॥ महाविदेह मझार के, तारक जिनवरु ॥ श्रीवज्रधर अरिहंत, अनंत गुणाकरु ॥ ते निर्यामक श्रेष्ठ, सही मुज तारशे ॥ महावैद्य गुणयोग, भव रोग वारशे ॥ ५ ॥ प्रभुमुख भव्य स्वभाव, सुणुं जो माहरो ॥ तो पामे प्रमोद, एह चेतन खरो ॥ थाये शिवपद आश, राशि सुखवृंदनी ॥ सहज स्वतंत्र स्वरूप, खाण आनंदनी ॥ ६ ॥ वळगा जे प्रभु नाम, धाम ते गुण तणा ॥ धारो चेतन राम, एह थिरवासना ॥ देवचंद्र जिनचंद्र, हृदय स्थिर थापजो ॥ जिन आणा युक्त भक्ति, शक्ति मुज आपजो ॥ ७ ॥

॥ अथ द्वादश श्री चंद्राननजिन स्तवनम् ॥

॥ वीरा चंदला ॥ ए देशी ॥ चंद्राननजिन, सांभळीए अरदास रे ॥ मुझ सेवक भणी, छे प्रभुनो विश्वासो रे ॥ ॥ १ ॥ चं० ॥ भरतक्षेत्र मानवपणो रे, लाध्यो दुःषम काल ॥ जिनपूरवधर विरहथी रे, दुलहो साधन चालो रे ॥ २ ॥ चं० ॥ द्रव्य क्रिया रुचि जीवडा रे, भाव धर्मरुचिहीन ॥ उपदेशक पण तेहवा रे, शुं करे जीव नवीन रे ॥ ३ ॥ चं० ॥ तत्त्वागम जाणग तजी रे, बहुजन संमत जेह ॥ मूढ हठी जन आदर्या रे, सुगुरु कहावे तेह रे ॥ ४ ॥ चं० ॥ आणा साध्य विना क्रिया रे, लोके मान्यो रे धर्म ॥ दंसण नाण चरित्तनो रे, मूल न जाण्यो मर्म रे ॥ ५ ॥ चं० ॥ गच्छ कदाग्रह साचवे रे, माने धर्म प्रसिद्ध ॥ आतम गुण अकषायता रे, धर्म न जाणे शुद्ध रे ॥ ६ ॥ चं० ॥ तत्त्वरसिक जन थोडला रे, बहुलो जन संवाद ॥ जाणो छो जिनराजजी रे, सघलो एह विवाद रे ॥ ७ ॥ चं० ॥ नाथ चरण वंदन तणो रे, मनमां घणो उमंग ॥ पुण्य विना किम पामीये रे, प्रभुसेवनना रंग रे ॥ ८ ॥ चं० ॥ जगतारक प्रभु वांदीए रे, महाविदेह मझार ॥ वस्तुधर्म स्याद्वादता रे, सुणि करिये निर्धार रे ॥ ९ ॥ चं० ॥ तुझ करुणा सहु उपरें रे, सरखी छे महाराय ॥ पण अविराधक जीवने रे, कारण सफलुं थाय रे ॥ १० ॥ चं० ॥ एहवा पण भवि जीवने रे, देव भक्ति आधार ॥ प्रभुसमरणथी पामीये रे, देवचंद्र पद सार रे ॥ ११ ॥ चं० ॥ इति ॥

॥ अथ त्रयोदश श्री चंद्रबाहुजिन स्तवनम् ॥

॥ श्री आनाय उमलना ॥ ए देशी ॥ चंद्रबाहुजिन सेवना, भवनाशिनी तेह ॥ परपरिणतिना पालने, निष्काशन रेह ॥ १ ॥ चं० ॥ द्रव्य भाव आशातना, टलवातन हेतु ॥ सम्यग्दर्शन वासना, भासनचरण समेत ॥ २ ॥ चं० ॥ निर्विकार योग प्रशंसना, गुणस्तवना रंग ॥ वंदन पूजन भावना, निजपावना अंग ॥ ३ ॥ चं ॥ परमातम पद कामना, कामनाशन एह ॥ सत्तार्थ प्रकाशना, करता गुणगेह ॥ ४ ॥ चं० ॥ परमेश्वर आलंबना, राच्या जेह जीव ॥ निर्मल साध्यनी साधना, साधे तेह सदीव ॥ ५ ॥ चं० ॥ परमानंद उपायवा, प्रभु पुष्ट उपाय ॥ तुझ सम तारक सेवतां, परसेव न थाय ॥ ६ ॥ चं० ॥ शुद्धातम संपत्ति तणा, तुम्हें कारण सार ॥ देवचंद्र अरिहंतनी, सेवा सुखकार ॥ ७ ॥ चं० ॥ इति चंद्रबाहुजिन स्तवनं ॥

॥ अथ चतुर्दश श्रीभुजंगस्वामि स्तवनम् ॥

॥ देशी नभलनी ॥ पुष्कलावइ विजयें हो, के विचरे तीर्थपति ॥ प्रभुचरणने सेवे हो, के सुर नर असुरपति ॥ जसु गुण प्रगट्या हो, के सर्व प्रदेशमां ॥ आतम गुणनी हो, के विकस [illegible] ॥ १ ॥ [illegible] स्वभावनी हो, के परिणति [illegible] अनवाह ॥ गुण सकल [illegible] प्रभुताय प्रवर्ते हो, के [illegible] ॥ २ ॥ [illegible] चतुर्दें

हो, के कर्त्ताभाव नहीं ॥ सर्व प्रदेशें हो, के वृत्ति विभक्त वही ॥ चेतन द्रव्यने हो, के सकल प्रदेश मिले ॥ गुणा-संना धर्म हो, के वस्तुने सहज भले ॥ ३ ॥ संवर सहचारी हो, के सहजें गुण वरते ॥ द्रव्यादिक परिणति हो, के भव्ये अनुसरने ॥ दानादिक लब्धि हो, के न हुवे सहाय विना ॥ सहकार अकंपे हो, के गुणनी वृत्ति घना ॥४॥ पर्याय अनंता हो, के जे एक कार्यपणें ॥ वरते तेहने हो, के जिनवर गुण पभणे ॥ ज्ञानादिक गुणनी हो, के वर्त्तना जीव मने ॥ धर्मादिक द्रव्यने हो, के सहकार करणे ॥ ५ ॥ ग्राहक व्यापकता हो, के प्रभुतुम धर्म रमी ॥ आतम अनुभावी हो, के परिणति अन्य वमी ॥ शुद्ध शक्ति अनंती हो, के ज्ञानादिक स्वभावा ॥ मुक्त शक्ति विकासन हो, के थाये गुण रमना ॥ ६ ॥ इम निज गुणभोगी हो, के स्वामि भुजंग मुदा ॥ जे नित्य वंदे हो, के ते नर धन्य सदा ॥ देवचंद्र प्रभुनी हो, के पूर्ण भक्ति सधे ॥ आतम अनुभवनी हो, के नित्य नित्य ऋद्धि वधे ॥ ७ ॥ इति ॥ १४ ॥

॥ अथ पंचदश श्री ईश्वरदेवजिन स्तवनम्. ॥

॥ ढाल [illegible] ॥ ए देशी ॥ सेवो ईश्वरदेव, जिणे ईश्वरता हो निज [illegible] ॥ [illegible] [illegible]

तुमचा हो पूर्ण पवित्रता ॥ ३ ॥ पूर्णानंद स्वरूप, भोगी अयोगी हो उपयोगी सदा ॥ शक्ति सकल स्वाधीन, वरते प्रभुनी हो जे न चले कदा ॥ ४ ॥ दास विभाव अनंत नासे प्रभुजी हो तुझ अवलंबनें ॥ ज्ञानानंद महंत, तुझ सेवायी हो सेवकने बने ॥ ५ ॥ धन्य धन्य ते जीव, प्रभु-पद वंदी हो जे देशन सुणे ॥ ज्ञानक्रिया करे शुद्ध, अनु-भव योगें हो निज साधकपणे ॥ ६ ॥ वारंवार जिनराज, तुझ पद सेवा हो होजो निर्मली ॥ तुझ शासन अनुजाइ, वासन भासन हो तत्त्वरमण वली ॥ ७ ॥ शुद्धातमनिज धर्म, रुचि अनुभवथी हो साधन सत्यता ॥ देवचंद्र जिनचंद्र भक्ति पसायें हो होशे व्यक्तता ॥ ८ ॥ इति पंचदश श्री ईश्वरनामाजिन स्तवनं ॥ १५ ॥

॥ अथ षोडश श्री नमिप्रभजिन स्तवनम् ॥

॥ अरज अरज सुणोने रूडा राजीया होजी ॥ ए देशी ॥

नमिप्रभ नमिप्रभप्रभुजी वीनवुं हो जी, पामीवर प्रस्ताव ॥ जाणो छो जाणो छो विण विनवे हो जी, तोपण दासव-भाव ॥ १ ॥ न० ॥ हुं करता हुं करता पर भावनो हो जी, भोक्ता पुद्गलरूप ॥ ग्राहक ग्राहक व्यापक एहनो हो जी, राच्यो जड भव भूप ॥ २ ॥ न० ॥ आतम आतम धर्म विसारियो हो जी, सेव्यो [illegible] ॥ आश्रव आश्रव बंधतां [illegible] ॥ ३ ॥ न० ॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ ४ ॥ न० ॥ [illegible]

बुद्ध ॥ वीरज वीरज अनंत स्वभावनो हो जी, चारित्र क्षायिक शुद्ध ॥ ५ ॥ न० ॥ विश्रामि विश्रामि निजभावना हो जी, स्याद्वादी अप्रमाद ॥ परमातम परमातम प्रभु देखता हो जी, भागि भ्रांति अनाद ॥ ६ ॥ न० ॥ जिनसम जिनसम सत्ता ओलखी हो जी, तसु प्राग्भावनी इह ॥ अंतर अंतर आतमता लही हो जी, परपरिणति निरीह ॥ ७ ॥ न० ॥ प्रतिछंदें प्रतिछंदें जिनराजनें हो जी, करतां साधक भाव ॥ देवचंद्र देवचंद्र पद अनुभवे हो जी, शुद्धातम प्राग्भाव ॥ ८ ॥ न० ॥ इति षोडश नमिप्रभजिन स्तवनं.॥

॥ अथ सप्तदश श्री वीरसेनजिन स्तवनम् ॥

॥ लाछलदे मात मल्हार ॥ ए देशी ॥ वीरसेन जगदीश ताहरी परम जगीश, आज हो दीसे रे वीरजता त्रिभुवनधी घणी जी ॥ १ ॥ अणहारी अशरीर, अक्षय अजय अतिवीर, आज हो अविनाशी अलेशी ध्रुव प्रभुता ग्रणी जी ॥ २ ॥ अतींद्रिय गत कोह, विगतमाय मय लोह, आज हो सोहे रे मोहे जगजनता भणी जी ॥ ३ अमर ॥ अखंड अरूप, पूर्णानंद स्वरूप, आज हो चिद्रूपें दीपे थिर समता धणी जी ॥ ४ ॥ वेदरहित अकषाय, शुद्ध सिद्ध असहाय, आज हो ध्यापक नायकनें ध्येयपदें ग्रह्यो जी ॥ ५ ॥ दानलाभ निज भोग, शुद्धस्वगुण उपभोग, आज हो अजोगी करता भोक्ता प्रभु लह्यो जी ॥ ६ ॥ दरिसण ज्ञान चारित्र, सकल प्रदेश पवित्र, आज हो निर्मल निस्संगी अरिहा वंदीयें जी ॥७॥ देवचंद्र जिनचंद्र [illegible] आज हो जिनवरसेवाथी, चिर आनंद [illegible] ॥ ८ ॥ इति ॥

॥ अथ अष्टादश श्री महाभद्रजिन स्तवनम् ॥

॥ तट यमुनानुं रे, अति रलीयामणुं रे ॥ ए देशी ॥ महाभद्र जिनराज, राज राजविराजे हो आज तुमारडो जी ॥ क्षायिकवीर्य अनंत, धर्म अभंगें हो तुं साहिब वडो जी ॥१॥ हुं बलिहारी रे श्री जिनवरतणी रे ॥ कर्त्ता भोक्ता भाव, कारक कारण हो तुं स्वामी छतो जी ॥ ज्ञानानंद प्रधान सर्व वस्तुनो हो धर्म प्रकाशतो जी ॥ २ ॥ हुं० ॥ सम्यग्दर्शन मित्त, स्थिरनिर्धारे रे अविसंवादता जी ॥ अव्याबाधि समाधि, कोश अनश्वरें रे. निज आनंदता जी ॥३॥ हुं ॥ देश असंख्य प्रदेश, निजनिज रीतें रे गुण संपत्ति भर्या जी ॥ चारित्र दुर्ग अभंग, आतम शक्तें हो परजय संचर्या जी ॥४॥ हुं० ॥ धर्मक्षमादिक सैन्य, परिणति प्रभुता हो तुझ बल आकरो जी ॥ तत्त्व सकल प्राग्भाव, सादि अनंती रे रीतें प्रभु धर्यो जी ॥ ५ ॥ हुं० ॥ द्रव्य भाव अरिलेश, सकल निवारी रे साहिब अवतर्यो जी ॥ सहज स्वभाव विलास, भोगी उपयोगी रे ज्ञान गुणें भर्यो जी ॥ ६ ॥ हुं० ॥ आचारिज उवझाय, साधक मुनिवर हो देश विरत धरु जी ॥ आतम सिद्ध अनंत कारणरूपें रे योगक्षेमंकरु जी ॥ ७ ॥ हुं० ॥ सम्यग्दृष्टि जीव आणारागी हो सहु जिनराजना जी ॥ आतम साधन काज, सेवे पदकज हो श्री महाराजनां जी ॥ ८ ॥ हुं० ॥ देवचंद्र जिनचंद्र, भगते राचो हो भवि आतम रुचि जी ॥ अव्यय अक्षय शुद्ध, संपत्ति प्रगट हो सत्तागत शुचि जी ॥९॥ हुं०॥

॥ अथ एकोनविंश श्री देवजसाजिन स्तवनम् ॥

॥ महाविदेह क्षेत्र सोहामणुं ॥ ए देशी ॥ देवजसा दरिसण करो, विघटे मोह विभाव लाल रे ॥ प्रगटे शुद्ध स्वभावता, आनंद लहरी दाव लाल रे ॥ १ ॥ दे० ॥ स्वामी वसो पुष्कर वरे, जंबूभरते दास लाल रे ॥ क्षेत्र विभेद घणो पड्यो, किम पोहोंचे उल्लास लाल रे ॥ २ ॥ दे० ॥ होवत जो तनु पांखडी, आवत नाथ हजुर लाल रे ॥ जो होती चित्त आंखडी, देखत नित्य प्रभु नूर लाल रे ॥ ३ ॥ दे० ॥ शासनभक्त जे सुरवरा, विनवुं शीष नमाय लाल रे ॥ कृपा करो मुज उपरें, तो जिनवंदन थाय लाल रे ॥ ४ ॥ दे० ॥ पूर्व पवे विराधना, शी कीधी इणे जीव लाल रे ॥ अविरति मोह टले नहीं, दीठे आगमदीव लाल रे ॥ ५ ॥ दे० ॥ आतम शुद्ध स्वभावने, बोधन शोधनकाज लाल रे ॥ रत्नत्रयी प्राप्ति तणो, हेतु कहो महाराज लाल रे ॥ ६ ॥ दे० ॥ तुज सरखो साहिब मिल्यो, भांजे भवभय टेव लाल रे ॥ पुष्टालंबन प्रभु लही, कोण करे परसेव लाल रे ॥ ७ ॥ दे० ॥ दीनदयाल कृपालुओ, नाथ भविक आधार लाल रे ॥ देवचंद्र जिन सेवना, परमामृत सुखकार लाल रे ॥ ८ ॥ दे० ॥ इति श्री देवजसाजिन स्तवनं ॥

॥ अथ विंशति श्री अजितवीर्यजिन स्तवनम् ॥

॥ अजितवीर्यजिन विचरता रे ॥ मनमोहनां रे लाल ॥ पुष्कर अर्द्धविदेह रे ॥ भविमोहनां रे लाल ॥ जंगम सुरतरु सारिखो रे ॥ मन० ॥ सेवे धन्य धन्य तेह रे ॥ भवि० १ ॥ जिनगुण अमृत पानथी रे ॥ म० ॥ अमृतक्रिया सुपसाय रे ॥ भ० ॥ अमृतक्रिया अनुष्ठानथी रे ॥ म० ॥ आतम अमृत थाय रे ॥ भ० ॥ २ ॥ प्रीति भक्ति अनुष्ठानथी ॥ म० ॥ वचनअसंगी सेव रे ॥ भ० ॥ कर्त्तातन्मयता लहे रे ॥ म० ॥ प्रभुभक्ति निष्पनेव रे ॥ भ० ॥ ३ ॥ परमेश्वर अवलंबने रे ॥ म० ॥ ध्याता ध्येय अभेद रे ॥ भ० ॥ ध्येय समापत्ति हुवे रे ॥ म० ॥ साध्यसिद्धि अविच्छेद रे ॥ भ० ॥ ४ ॥ जिन-गुण राग परागथी रे ॥म०॥ वासित मुज परिणाम रे ॥ भ० ॥ तजशे दुष्टविभावता रे ॥म०॥ सरशे आतम काम रे ॥भ०॥ ॥ ५ ॥ जिनभक्तिरत चित्तने रे ॥ म० ॥ वेधकरस गुण प्रेम रे ॥ भ० ॥ सेवक जिनपद पामशे रे ॥ म० ॥ रसवेधित अय जेम रे ॥भ०॥६॥ नाथ भक्तिरस भावथी रे ॥म०॥ तृण जाणुं परदेव रे ॥ भ० ॥ परमानम चिन्तामणि सुरतरु थकी रे ॥ म० ॥ अधिकी अरिहंत सेव रे ॥भ०॥ ७ ॥ गुण स्तुतिथकी रे ॥ म० ॥ फरहयो आतमराम रे ॥ भ० ॥ नियमाकंचनता लहे रे ॥ म० ॥ लोह ज्युं पारस पाम रे ॥ भ० ॥ ८ ॥ निर्मल तत्त्वरुचि थई रे ॥ म० ॥ करजो जिनपति भक्ति ॥ भ० ॥ देवचंद्र पद पामशो रे ॥ म० ॥ परम महोदय युक्ति रे ॥ भ० ॥ ९ ॥ इति ॥ २० ॥

॥ कलश ॥ राग धन्याश्री ॥

॥ वंदो वंदो रे जिनवर विचरंता वंदो ॥ कीर्त्तन स्तवन नमन अनुसरतां, पूर्वपाप निकंदो रे ॥ जिनवर विचरंता वंदो ॥ १ ॥ जंबू द्वीपें चार जिनेश्वर रे, धातकी आठ आणंदो ॥ पुष्कर अर्धे आठ महामुनि, सेवे चोशठ इंदो रे ॥ जि० ॥ २ ॥ केवली गणधर साधु साध्वी, श्रावक श्राविका वंदो ॥ जिनमुख धर्मअमृत अनुभवतां, पामे मन आणंदो रे ॥ जि० ॥ ३ ॥ सिद्धाचल चोमास रहीने, गायो जिनगुण छंदो ॥ जिनपति भक्ति मुगतिनो मारग, अनुपम शिवसुखकंदो रे ॥ जि० ॥ ४ ॥ खरतर गच्छ जिनचंद सूरिवर, पुण्यप्रधान मुणिंदो रे ॥ सुमति सागर साधु रंग सुवाचक, पीधो श्रुतमकरंदो रे ॥ जि० ॥ ५ ॥ राजसार पाठक उपगारी, ज्ञानधर्म दिणंदो ॥ दीपचंद सद्गुरु गुणवंता, पाठक धीर गयंदो रे ॥ जि० ॥ ६ ॥ देवचंद्र गणि आतम हेतें, गाया वीश जिणंदो ॥ ऋद्धि वृद्धि सुखसंपति प्रगटे, सुजस महोदय वृंदो रे ॥ जि० ॥ ७ ॥ इति पंडितश्री देवचंद्रजीकृत विंशति विहरमान जिनस्तवनानि संपूर्णानि ॥

॥ अथ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित जिन चोविशी ॥

॥अथ प्रथम तीर्थंकर श्रीकेवलज्ञानी जिनस्तवन॥

नामे गाजे परम आल्हाद,
प्रगटे अनुभव रस आस्वाद ॥
तेथी थाये मति सुप्रसाद,
सुणतां भाजेरे कांई विषय विषादरे,
जिणंदा ताहरा नामथी मन भीनो ॥१॥

क्षेत्र असंख्य प्रदेश,
अनंत पर्याय निवेश ॥
जाणग शक्ति अशेष,
तेहथी जाणेरे कांई सकल विशेषरे॥जि० २॥

सर्व प्रमेय प्रमाण,
जस केवल नाण पहाण ॥
तिणे केवलनाणी अभिहाण,
जस ध्यावेरे कांई मुनिवर ज्ञाणरे ॥जि० ३॥

ध्रुव परिणति छति जास,
परिणति परिणामे त्रिक तास ॥

करता पद प्रवृत्ति प्रकाश,
अस्ति नास्तिरे कांई सर्वनो भासरे ॥जि० ४॥

सामान्य स्वभावनो बोध,
केवल दर्शन शोध ॥
सहकार अभावे रोध,
समयंतररे कांई बोध प्रबोधरे ॥जि० ५॥

कारक चक्र समग्ग,
ते ज्ञायक भाव विलग्ग ॥
परमभाव संसग्ग,
एक रीतेरे कांई थयो गुण वग्गरे ॥जि० ६॥

इम सालंबन जिन ध्यान,
भवि साधे तत्व विधान ॥
लहे पूर्णानंद अमान,
तेहथी थायेरे कांई शीव इशानरे ॥जि० ७॥

दास विभाव अपाय,
नामे प्रभु सुपसाय ॥
जे तन्मय



८॥
महा

॥ अथ द्वितीय श्रीनिर्वाणी प्रभुनुं स्तवन ॥

॥ वीरजी प्याराहो वीरजी प्यारा ॥ ए राग ॥

प्रणमुं चरण परमगुरु जिनना,
हंस ते मुनि जन मनना ॥
वासी अनुभव नंदन वनना,
भोगी आनंद घनना ॥ १ ॥
मोरा स्वामी हो तोरो ध्यान धरीजे,
ध्यान धरीजे हो सिद्धि वरीजे,
अनुभव अमृत पीजे,
मोरा स्वामी हो तोरो० ॥ ए आंकणी ॥
सकल प्रदेश समा गुण धारी,
निज निज कारज कारी ॥
निराकार अवगाह उदारी.
शक्ति सर्व विस्तारी ॥ मोरा० २ ॥
गुण गुण प्रति पर्याय अनंता,
ते अभिलाप्य स्वतंता ॥
अनंत गुणानभिलापी संता,
कार्य व्यापार करंता ॥ मोरा० ३ ॥
छति अविभागी पर्यय व्यक्ते,
कारज शक्ति प्रवर्ते ॥

ते विशेष सामर्थ्य प्रशक्ते,
गुण परिणाम अभिव्यक्ते ॥ मोरा० ४ ॥

निरवाणी प्रभु शुद्ध स्वभावी,
अभय निरायु अपावी ॥
स्याद्वादी यम नीगत रावी,
पूरण शक्ति प्रभावी ॥मोरा० ५॥

अचल अखंड स्वगुण आरामी,
अनंतानंद विसरामी ॥
सकल जीव खेदज्ञ सुस्वामी,
निरामगंधी अकामी ॥मोरा० ६॥

निःसंगी सेवनथी प्रगटे,
पूर्णानंदी ईहा ॥
साधन शक्ते गुण एकत्वे,
सीधे साध्य समीहा ॥मोरा० ७॥

पुष्ट निमित्तालंबन ध्याने,
सालंबन लय ठाने ॥
देवचंद्र गुणने एक ताने,
पहोंचे पूरण थाने ॥मोरा० ८॥

॥ अथ श्री तृतीय सागर प्रभु जिनस्तवन ॥

॥ घडमानी पारणुं आवे ॥ ए राग ॥

गुण आगर सागर स्वामी,
मुनि भाव जीवन निःकामी ॥
गुण करणे कर्तृ प्रयोगी.
प्राग्भावी सत्ता भोगी ॥ १ ॥

सुहंकर भव्य ए जिन गावो,
जिम पूरण पदवी पावो॥सुहंकर०॥ए आंकणी॥

सामान्य स्वभाव स्वपरना.
द्रव्यादि चतुष्टय धरना ॥
देखे दरशन रचनाये.
निज वीर्य अनंत सहाये ॥सु० २॥

तेहने ते जाणे नाण,
ए धर्म विशेष पहाण ॥
भासय वीकारक गणे..
अविभागी पर्याय वर्णे ॥सु० ३॥

ते कारण [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] .

प्रति समये व्यय उत्पादि,
ज्ञेयादिक अनुगत सादि ॥सु० ४॥
अविभागी पर्यय जेह,
समवायी कार्यना गेह ॥
जे नित्य त्रिकाली अनंत,
तसु ज्ञायक ज्ञान महंत ॥सु० ५॥
जे नित्य अनित्य स्वभाव,
ते देखे दर्शन भाव ॥
सामान्य विशेषनो पिंड,
द्रव्यार्थिक वस्तु प्रचंड ॥सु० ६॥
इंम केवल दरशन नाण,
सामान्य विशेषनो भाण ॥
त्रिगुण आतम श्रद्धाण,
चरणादिक तसु व्यवमाण ॥सु० ७॥
द्रव्य जेह विशेष परिणामी,
ते कहीए पज्जव नामी ॥
एनी सामर्थ्य दुभेद,
पर्याय विशेष निवेद ॥सु० ८॥
तसु [illegible] आगना गुण
[illegible]

प्रगटी जस शक्ति अनंती,
निज कारज वृत्ति स्वतंती ॥ सु० ॥९॥

गुण द्रव्य सामान्य स्वभावी,
तीरथपती त्यक्त विभावी ।
प्रभु आणा भक्ते लीन,
तिणे देवचंद्र पद कीन ॥ सु० ॥१०॥

॥ अथ चतुर्थ श्री महाजस जिन स्तवन ॥

आतम प्रदेश रंगथल अनुपम,
सम्यकदर्शन रंगरे, निज सुखके सधैया ॥
तुं तो निज गुण खेल वसंतरे ॥ निज० ॥
पर परिणति चिंता तजी निजमें,
ज्ञान सखाके संगरे ॥ नि० ॥ १ ॥

वास बरास सुरुचि केशर घन,
छांटो परम प्रमोदरे ॥ नि० ॥
आतम रमण गुलालकी लाली,
साधक शक्ति विनोदरे ॥ निज० ॥ २ ॥

ध्यान सुधारस पान मगनना,
भोजन सहज स्वभोगरे ॥ निज० ॥

रिझ एकत्वता तानमें वाजे,
वाजिंत्र सनमुख योगरे ॥ निज० ॥३॥

शुक्लध्यान होरीकी ज्वाला,
जाले कर्म कठोररे ॥ निज० ॥
शेष प्रकृति दल खिरण निर्झरा,
भस्म खेल अति जोररे ॥ निज० ॥४॥

देव महाजस गुण अवलंबन,
निर्भय परिणति व्यक्तिरे ॥ निज० ॥
ज्ञाने ध्याने अति बहुमाने,
साधे मुनि निज शक्तिरे ॥ निज० ॥ ५ ॥

सकल अजोग अलेश असंगत,
नाहि होवे सिद्ध रे ॥ निज० ॥
देवचंद्र आणामें खेले,
उत्तम युंहि प्रसिद्ध रे ॥ निज० ॥ ६ ॥

॥ अथ पंचम श्री विमलजिन स्तवन ॥

॥ राग-कडखा. ॥

धन्य ' तूं धन्य तूं ' धन्य ' जिनराज तूं,
धन्य ' तुज शक्ति व्यक्ति सनूरी ॥

कार्य कारण दशा सहज उपगारता,
शुद्ध कर्तृत्व परिणाम पूरी ॥ धन्य० ॥१॥
आत्म प्रभाव प्रतिभास कारज दशा,
ज्ञान अविभागि परजय प्रवृत्ते ॥
एम गुण सर्व निज कार्य साधे प्रगट,
ज्ञेय दृश्यादि कारण निमित्ते ॥ धन्य० ॥२॥
दास वहु मान भासन रमण एकता,
प्रभु गुणालंवनी शुद्ध थाये ॥
वंधना हेतु रागादि तुज गुण रसी,
तेह साधक अवस्था उपाये ॥धन्य तुं०॥३॥
कर्म जंजाल युंजनकरण योग जे,
स्वामी भक्ति रम्या थिर समाधि ॥
दान तप शील व्रत नाथ आणा विना,
थईय वाधक करे भव उपाधि ॥ धन्य०॥४॥
सकल परदेश समकाल सवि कार्यता,
करण सहकार कर्तृत्व भावो ॥
द्रव्य परदेश पर्याय आगमपणे.
अचल असहाय अक्रिय दावो ॥धन्य०॥५॥
उत्पति नाश ध्रुव नर्तना सर्वनी.
पट्गुणी हानिवृद्धि अन्यूनो ॥

अस्ति नास्तित्व सत्ता अनादि थकी,
परिणमन भावथी नहीं अजूनो ॥धन्य०॥६॥
ईणी परे विमल जिनराजनी विमलता,
ध्यान मन मंदिरे जेह ध्यावे ॥
ध्यान पृथकुत्व सविकल्पता रंगथी,
ध्यान एकत्व अविकल्प आवे ॥ ७ ॥
वीतरागी असंगी अनंगी प्रभु,
नाण अप्रयास अविनाश धारी ॥
देवचंद्र शुद्ध सत्ता रसी सेवना,
संपदा आतम शोभा वधारी ॥धन्य०॥८॥

॥ अथ षष्टम श्री सर्वानुभूति जिन स्तवन ॥
॥ जगजीवन जगवालहो ॥ ए देशी ॥

जग तारक प्रभु वीनवु,
विनतडी अवधारे ॥
तुज दरसन विण हुं भम्यो,
काल अनंत अपारे ॥ जग० ॥ १ ॥
सुक्ष्म निगोद भवे वस्यो,
पुद्गल परिग्रह अनंत रे ॥
अव्यवहाराशि भम्यो,
क्षुद्रक भव अनंत ॥ जग० ॥ २ ॥

अनल विगल पञ्जतमें,
तस भव आयु प्रमाणरे ॥
शुद्ध तत्त्व प्राप्ति विना,
भटक्यो नव नव ठाणरे ॥ जग० ॥८॥
साधिक सागर सहस दो,
भोगवीयो तस भावेरे ॥
एक सहस साधिक दधी,
पंचेंद्रि पद दावेरे ॥ जग० ॥९॥
पर परिणति रागीपणे,
पर रस रंगे रक्तरे ॥
पर ग्राहक रक्षकपणे,
पर भोगे आशक्तरे ॥ जग० ॥१०॥
शुद्ध स्वजाति तत्त्वने,
बहुमाने तल्लीनरे ॥
ते विजातो रसता तजी,
स्वस्वरूप रस पीनरे ॥ जग० ॥११॥
श्री सर्वानुभूति जिनेश्वरू,
तारक लायक देवरे ॥
तुज चरणे शरणे रह्यो.
टले अनादि कुटेवरे ॥ जग० ॥१२॥

सबला साहिब ओलगे,
आतम सबलो थायरे॥
बाधक परिणति सवि टले,
साधक सिद्धि कहायरे ॥ जग० ॥ १३ ॥
कारणथी कारज हुवे.
ए परतित अनादिरे ॥
माहरा आतम सिद्धिना,
निमित हेतु प्रभु-सादिरे ॥ जग० ॥ १४ ॥
अविसंवादन हेतुनी,
द्रढ सेवा अभ्यासरे॥
देवचंद्र पद निपजे,.
पूर्णानंद विलासरे ॥ जग० ॥ १५ ॥

॥ अथ श्री सप्तम श्रीधरजिन स्तवन ॥

॥ रसीयानी देशी ॥

से मुख मुख प्रभुने न मली शक्यो,
तो सी वात कहाय. जिणंदजी ॥
निज पर बोनक बान लहो सहु.
पण मने किम पतिन आय ॥ जिणंदजी ॥
से मुख० ॥१॥

भव्य अभव्य परित्त अनंत तो,
कृष्ण शुकलपक्ष धार ॥ जि० ॥
आराधक विराधक रीतनो,
पूछि करत निरधार ॥ जि० ॥ से मुख० ॥२॥
किण काले कारण केहवे मले,
थाशे मुजने हो सिद्धि ॥ जि० ॥
आतम तत्त्व रुचि निज रिद्धिनी,
लहिशुं सर्व समृद्धि ॥ जि० ॥ से मुख० ॥३॥
एक वचन जिन आगमनो लही,
निपाव्यां निज काम ॥ जि० ॥
एटले आगम कारण संपजे,
ढील थई किम आम ॥ जि० ॥ से० ॥४॥
श्रीधर जिन नामे बहु निस्तर्या,
अल्प प्रयासे हो जेह ॥ जि० ॥
मुज सरिखो एटले कारण लहे,
न तरे कहो किम तेह ॥ जि० ॥५॥
कारण जोगे साधे तत्त्वने,
नवि समरथो उपादान ॥ जि० ॥
श्री जिनराज प्रकाशो मुज प्रते,
तेहनो कोण निदान ॥ जि० ॥ से० ॥६॥

गुण वहुमान गुलालसो हो,
लाल भए भवि जीव ॥ ल० ॥
राग प्रशस्तकी भूममें हो,
विभाव विडारे अतीव ॥ ल० ॥ जिन० ॥४॥
जिन गुण खेलमें खेलते हो,
प्रगट्यो जिन गुण खेल ॥ ल० ॥
आतम घर आतम रमे हो,
समता सुमति के मेल ॥ ल० ॥ जि० ॥५॥
तत्त्व प्रतित प्याले भरे हो,
जिन वाणी रसपान ॥ ल० ॥
निर्मल भक्ति लाली जगी हो,
रिझे एकत्वता तान ॥ ल० ॥ जिन० ॥६॥
भव वैराग अविरझुं हो,
चरण रमण सुमहंत ॥ ल० ॥
समिति गुपति वनिता रमे हो,
खेले हो शुद्ध वसंत ॥ ल० ॥ जि० ॥७॥
चाचर गुण रसीया लिये हो,
निज साधक परिणाम ॥ ल० ॥
कर्म प्रकृति अरति गई हो,
उलसीत अमित उद्दाम ॥ल०॥ जि० ॥८॥

थिर उपयोग साधन मुखे हो,
पिचकारीकी धार ॥ ल० ॥
उपशम रस भरी छांटतां हो,
गई तताई अपार ॥ ल० ॥ जि० ॥९॥
गुण पर्याय विचारतां हो,
शक्ति व्यक्ति अनुभूति ॥ ल० ॥
द्रव्यास्तिक अवलंबतां हो,
ध्यान एकत्व प्रसूति ॥ ललना० ॥जि०॥१०॥
राग प्रशस्त प्रभावनाहो,
निमित्त करण उपभेद ॥ ल० ॥
निरविकल्प सुसमाधिमें हो,
भये हे त्रिगुण अभेद ॥ ल० ॥ जि० ॥ ११ ॥
ईम श्रीदत्त प्रभु गुणे हो,
फाग रमे मतिमंत ॥ ल० ॥
पर परिणति रज धोयके हो,
निरमल सिद्धि वरंत ॥ ल० ॥ जि० ॥१२॥
कारणथें कारज नथे हो,
एह अनादिको चाल ॥ ल० ॥
देवचंद्र पद पाईये हो,
करत निज भाव संभाल ॥ल०॥ जि० ॥१३॥

॥ अथ नवम श्री दामोदर जिन स्तवन ॥

॥ मोरा साहेब हो श्री शी[illegible]नाथजे ॥ ए देशी ॥

सुप्रतीते हो करि थिर उपयोग के,
दामोदर जिन वंदीये ।
अनादिनी हो जे मिथ्या भ्रांतिके,
तेह सर्वथा छंडीये ॥
अविरति हो जे परिणति दुष्ट के,
टालौ थिरता साधीए ।
कपायनी हो कसमलता कापी के,
वर समता आराधीए ॥ १ ॥
जंबूने हो भरते जिनराज के,
नवमा अतित चोवीशीये ॥
जस नामे हो प्रगटे गुण राशि के,
ध्याने शिव सुख विलसीये ॥
अपराधी हो जे तुजथी दूर के,
भूरि भ्रमण दुःखना धणी ॥
ते माटे हो तुज सेवा रंग के,
होजो ए इच्छा घणी ॥ २ ॥
मरुधरमें हो जिम सुरतरु लुंबके,
सागरमें प्रवहण समो ॥

भवभ्रमतां हो भविजन आधार के,
प्रभु दरशन सुख अनुपमो ॥
आतमनी हो जे शक्ति अनंतके,
तेह स्वरुप पदे धर्या ॥
पारिणामिक हो ज्ञानादिक धर्म के,
स्व स्वकार्यपणे वर्या ॥ ३ ॥
अविनाशी हो जे आत्मानंद के,
पूर्ण अखंड स्वभावनो ॥
निज गुणनो हो जे वर्त्तन धर्म के,
सहज विलासी दावनो ॥
तस भोगी हो तुं जिनवर देव के,
त्यागी सर्व विभावनो ॥
श्रुतज्ञानी हो न कही शके सर्व के,
महिमा तूज प्रभावनो ॥ ४ ॥
निःकामी हो निकपाई नाथ के,
साथ होजो नित तुम तणो ॥
तुम आणा हो आराधना शुद्धके,
साधुं हुं साधकपणो ॥
वीतरागथी हो जे राग विशुद्धके,
तेहीज भवभय वारणो ॥

जिनचंद्रनी हो जे भक्ति एकत्वके,
देवचंद्र पद कारणो ॥ ५ ॥

॥ अथ दशम श्री सुतेज जिन स्तवन ॥

अति रुडीरे अति रुडी जिनराजीनी थिरत
अति रुडी ॥ ए आंकणी ॥
सकल प्रदेश अनंती,
गुण पर्याय शक्ति महंती लाल ॥ अ० ॥
तसु रमणे अनुभववंती,
पर रमणे जे न रमंती लाल ॥ अति० ॥१
उत्पाद व्यये पलटंती,
ध्रुव शक्ति त्रिपदी संती लाल ॥अ०॥
उतपादे उतपतमंती,
पूरव परिणति व्ययपंती लाल ॥अ०॥२॥
नव नव उपयोगे नवली,
गुण छतिथी ते नित अचली लाल ॥अ०॥
परद्रव्ये जे नवि गमणी,
क्षेत्रांतरमांहि न रमणी लाल ॥अ०॥३॥
अतिशय योगे नवि दीपे,
परभाव भणी नवि छीपे लाल ॥ अ० ॥

निज तत्त्व रसे जे लीनी,
बीजे किणही नवि कीनी लाल ॥अ०॥४॥
संग्रह नयथी जे अनादि,
पण एवंभूते सादि लाल ॥ अ० ॥
जेहने बहुमाने प्राणी,
पामे निज गुण सहनाणी लाल ॥अ०॥ ५॥
थिरताथी थीरता वाधे.
साधक निज प्रभुता साधे ॥लाल ॥ अ० ॥
प्रभु गुणने रंगे रमता,
ते पामे अविचल समता ॥ लाल ॥अ० ॥६॥
निज तेजे जेह सुतेजा.
जे सेवे धरि बहु हेजा लाल ॥ अ० ॥
शुद्धालंबन जे प्रभु ध्यावे.
ते देवचंद्र पद पावे लाल ॥ अ० ॥ ७ ॥

॥ अथ एकादशम श्री स्वामीप्रभजिन स्तवन ॥

[illegible]

नमि नमि नमि नमि वीनवुं,
सुगुण स्वामी जिनने [illegible] ॥

ज्ञेय सकल जाणग तुमे,
प्रभुजी ज्ञान दिणंद नाथरे ॥ नमि० ॥ १ ॥
वर्त्तमान ए जीवनी,
परिणति केम नाथरे ॥
जाणुं हेय विभावने,
पिण नवि छूटे प्रेम नाथरे ॥ नमि० ॥ २ ॥
पर परिणति रस रंगता,
पर ग्राहकता भाव नाथरे ॥
पर करता परभोगता,
श्यो थयो एह स्वभाव नाथरे ॥नमि०॥३॥
विषय कषाय अशुद्धता,
न घटे ए निरधार नाथरे ॥
तो पण वंछुं तेहने,
किम, तरिये संसार नाथरे ॥नमि०॥ ४ ॥
मिथ्या अविरति प्रमुखने,
नियमा जाणुं दोष नाथरे ॥
नंदू गरहुं वली वली,
पण ते पामे संतोष नाथरे ॥नमि०॥५॥
अंतरंग पर रमणता,
टलश्ये किश्ये उपाय नाथरे ॥

आणा आराधन विना,
किम गुण सिद्धि थाय नाथरे ॥नमि०॥६॥
हवे जिन वचन प्रसंगथी,
जाणी साधक नीति नाथरे ॥
शुद्ध साध्य रुचिपणे,
करिए साधन रीति नाथरे ॥ न० ॥ ७ ॥
भावन रमण प्रभु गुणे,
योग गुणी आधीन नाथरे ॥
राग ते जिम गुण रंगमें,
प्रभु दीठां रति पीन नाथरे ॥नमि०॥८॥
हेतु पलटावी सवे,
जोड्या गुणि गुण भक्ति नाथरे ॥
तेह प्रशस्तपणे रम्या,
साधे आतम शक्ति नाथरे ॥नमि०॥९॥
धन तनु मन वचना सवे,
जोड्या स्वामी पाय नाथरे ॥
बाधक कारण वारतां,
साधन कारण थाय नाथरे ॥ न० ॥ १० ॥
आतमता पलटावतां,
प्रगटे संवर रूप नाथरे ॥

स्वस्वरूप रसी करे,
पुरणानंद अनूप नाथरे ॥नमि०॥११॥

विषय कषाय जहर टले,
अमृत थाये एम नाथरे ॥
जे परसिद्ध रुचि हुवे,
तो प्रभु सेवा धरी प्रेम नाथरे ॥नमि०॥१२॥

कारण रंगी कार्यने,
साधे अवसर पामि नाथरे ॥
देवचंद्र जिनराजनी,
सेवा शिवसुख धाम नाथरे ॥नमि०॥१३॥

॥ अथ द्वादशम श्री मुनिसुव्रत जिन स्तवन ॥

॥ रमणी रमणी ने मन गमणी ॥ ए देशी ॥

दिठो दरिशण श्री प्रभुजीनो,
साचे रागे मनसुं भीनो ॥
जसु रागे निरागी थाये,
तेहनो भक्ति कोने न सुहाये ॥ १ ॥

पुद्गल आशा रागो अनेरा,
तसु पामे कृण रागे फेरा ॥

जसु भगते निर्भय पद लहिए,
तेहनी सेवामां थिर रहियो ॥ २ ॥
रागी सेवकथी जे राचे,
बाह्य भक्ति देखीने माचे ॥
जसु गुण दाझे तृष्णा आंचे,
तेहनो सुजस चतुर किम वाचे ॥ ३ ॥
पूरण ब्रह्मने पूर्णानंदी,
दर्शन ज्ञान चरण रस कंदी ॥
सकल विभाव प्रसंग अफंदी,
तेह देव समरस मकरंदी ॥ ४ ॥
तेहनी भक्ति भवभय भाजे,
निगुण पिण गुण शक्ति गाजे
दास भाव प्रभुताने आपे,
अंतरंग कलिमल सवि कापे ॥ ५ ॥
अध्यातम सुख कारण पूरो,
स्वस्वभाव अनुभूति सनूरो ।
तसु गुण वलगी चेतना कीजे,
परम महोदय शुद्ध लहीजे ॥ ६ ॥
मुनिसुव्रत प्रभु प्रभुता लीना,
आतम संपत्ति भासन पीना ॥

आणा रंगे चित्त धरीजे,
देवचंद्र पद शीघ्र वरीजे ॥ ७ ॥

॥ अथ त्रयोदशम श्री सुमतिजिन स्तवन ॥

॥ कान्हैयालाल ए देशी ॥

प्रभुस्यूं इस्यूं विनवुंरे लाल,
मुज विभाव दुःख रीतरे साहविया लाल।
तिन कालना ज्ञेयनीरे लाल,
जाणो छो सहु नीतिरे साहविया लाल ॥प्रभु०॥
ज्ञेय ज्ञानस्युं नवि मिलेरे लाल,
ज्ञान न जाये तथ्थरे ॥ सा० ॥
प्राप्त अप्राप्तमेयनेरे लाल,
जाणो जे जिम जथ्थरे ॥ सा० ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
छति परजाय जे ज्ञाननारे लाल,
ते तो नवि पलटायरे ॥ सा० ॥
ज्ञेयनी नवनवि वर्त्तनारे लाल,
सवि जाणे असहायरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ३ ॥
धर्मादिक सहु द्रव्यनेरे लाल,
प्राप्त भणी सहकाररे ॥ साहि० ॥
रसनादिक गुण वर्त्तनारे लाल,
निज क्षेत्रे ते धाररे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ४ ॥

॥ अथ चउदशाम श्री शिवगति जिन स्तवनम् ॥

धांरा मेहेला उपर मेह झबुके वीझली हो लाल ॥ए देशी॥

शिवगति जिनवर देव सेव आ
दोहिली हो लाल ॥ से० ॥
पर परिणति परित्याग करे तसु
सोहिली हो लाल ॥ करे० ॥
आश्रव सर्व निवारि जेह
संवर धरे हो लाल ॥ जेह० ॥
जे जिन आणा लीन पीन
सेवन करे हो लाल ॥ पीन० ॥१॥

वीतराग गुण राग भक्ति रुचि
नैगमे हो लाल ॥ भ० ॥
यथाप्रवृत्ति भव्य जीव
नय संग्रह रमे हो लाल० ॥ नय० ॥
अमृत क्रिया विधि युक्त वचन
आचारथी हो लाल ॥ वचन० ॥
मोक्षार्थी जिन भक्ति करे
व्यवहारथी हो लाल० ॥ करे० ॥२॥

सहज अनंत अत्यंत महंत
सुखे भर्या हो लाल ॥ म० ॥
अविनाशी अविकार अपार गुणे
वर्या हो लाल ॥ अ० ॥ ५ ॥
जे प्रवृत्ति मूल छेद
उपाय जे हो लाल ॥ छे० ॥
प्रभु गुण रागे रक्त थाय
शिवदाय ते हो लाल ॥ था० ॥
अंश थकि सरवंश विशुद्धपणुं
ठवे हो लाल ॥ वि० ॥
शुक्ल बीज शशि रेह तेह
पूरण हुवे हो लाल ॥ तेह० ॥ ६ ॥
तिम प्रभुथी शुचि राग करे
वीतरागता हो लाल ॥ करे० ॥
गुण एकत्वे थाय स्वगुण
प्राग्भावना हो लाल ॥ स्वगुण० ॥
देवचंद्र जिनचंद्र सेवामांहि
रहो हो लाल ॥ सेवा० ॥
अव्याबाध अगाध आतम सुख
मयग्रहो हो लाल ॥ आ० ॥ ७ ॥

॥ अथ पंचदशम श्री आस्तागजिन स्तवन ॥

॥ मन मोह्युं अमारूं प्रभु गुणे ॥ ए देशी ॥

करो साचो रंग जिनेश्वरू,
संसार विरंग सहू अन्यरे ॥
सुरपति नरपति संपदा,
ते तो दुरगंधी कदन्नरे ॥ करो० ॥ १ ॥

जिन आस्ताग गुण रस रसी,
त्वल विषय विकार विरूप रे ॥
विण समकित मन अभिलखे,
जिणे चाख्यो शुद्ध स्वरूपरे ॥ क० ॥ २ ॥

निज गुण चिंतन जल रम्या,
तसु क्रोध अनलनो ताप रे ॥
नवि व्यापे कापे भवस्थिति,
जिम शीतने अर्क प्रतापरे ॥ क० ॥ ३ ॥

जिन गुण रंगी चेतना,
नवि बांधे अभिनव कर्मरे ॥
गुण रमणे निज गुण उल्लसे,
ते आस्वादे निज धर्मरे ॥ क० ॥ ४ ॥

पर त्यागी गुण एकतत्त्वता,
रमता ज्ञानादिक भावरे ॥
स्वस्वरूप ध्याता थई,
पामे शुचि क्षायिक भावरे ॥ करो० ॥ ५ ॥

गुण करणे नव गुण प्रगटता,
सत्तागत रस थीती छेद रे ॥
संक्रमण उदय प्रदेशथी,
करे निर्झरा टाले खेद रे ॥ करो० ॥ ६ ॥

सहज स्वरूप प्रकाशथी,
थाए पूर्णानंद विलासरे ॥
देवचंद्र जिनराजनी,
करज्यो सेवा सुख वासरे ॥ करो० ॥ ७ ॥

॥ अथ षोडषम श्री नमिश्वर स्वामी जिन स्तवन ॥

॥ हो पोउ पंखीडा ॥ ए देशी ॥

जगत दिवाकर श्री नमिश्वर स्वामजो,
तुज मुख दीठे नाठी भूल अनादिनीरे लो ॥
जाग्यो सम्यग् ज्ञान सुधारस धामजो,
छांडी दुर्जय मिथ्यानींद प्रमादनीरे लो ॥ ज०॥१॥

सहज प्रगट्यो निज पर भाव विवेक जो,
अंतर आतिम लह्यो साधन साधवेरे लोल ॥
साध्यालंबी थइ क्षायकता छेक जो,
निज परिणति थिर निज धर्म रसे ठवेरे लो ॥ज०॥२॥
त्यागीने सवि पर परिणति रस रीझ जो,
जागी छे निजआतम अनुभव इष्टतारे लोल ॥
सहजे छुटी आश्रव भावनी चालजो,
जालम ए प्रगटी संवर शिष्टतारे लोल ॥ज०॥३॥
बंधुना हेतु जे छे पाप स्थानजो,
ते तुज भगते पाम्या पुष्ट प्रशस्ततारे लोल ॥
ध्येय गुणे वलग्यो पूरण उपयोग जो,
तेहथी पामे ध्याता ध्येय समस्ततारे लोल॥ज०॥४॥
जे अति दुस्तर जलधि समो संसारजो,
ते गोपद सम कीधो प्रभु अवलंबनेरे लोल ॥
जाण्यो पूर्णानंद ते आतम पास जो,
अवलंब्यो निर्विकल्प परमातम तत्वनेरे लोल॥ज०५
स्याद्वादी निज प्रभुताने एकत्वजो,
क्षायिक भावे थाए निज रत्नत्रयीरे लोल ॥
प्रत्याहार करीने धार धारण शुद्ध जो,
तत्त्वानंदो पूर्ण समाधि लय मइरे लोल॥ज०॥६॥

अव्याबाध स्वगुणनी पूरण रीत जो,
कर्त्ता भोक्ता भावे रमणपणे धरेरे लोल॥
सहज अकृत्रिम निर्मल ज्ञानानंदजो,
देवचंद्र एकत्वे सेवनथी वरेरे लोल ॥ अ० ॥७॥

॥ अथ सप्तदशमा श्री अनीलजिन स्तवन ॥

॥ देखो गति दैवनी रे ॥ ए देशी ॥

स्वारथ विणु उपगारता रे,
अद्भुत अतिशय रिद्धि ॥
आत्म स्वरूप प्रकाशता रे,
पूरण सहज समृद्धि ॥
अनील जिन सेवीएरे ॥
नाथ तुमारी जोडि न को त्रिहुं लोकमेंरे,
प्रभुजी परम आधार अछो भवि थोकनेरे॥१॥
परकारज करता नहिरे,
सेव्या पार न हंत ॥
जे सेवे तनमय थईरे.
ते लहे शिव संकेत ॥ अ० ॥ २ ॥
करता निज गुण वृत्तिनारे,
गुण परिणति उपभोग ॥

मोही जीव लोहको कंचन,
करवे पारस भारि हो ॥
समकित सुरतरु उपवन सिंचन,
वर पुष्कर जलधारि हो ॥ अहो॰ ॥ व॰ ॥ २ ॥
सर्व प्रदेश प्रगट सम गुणथी,
प्रवृत्ति अनंत अपहारी हो ॥
परम गुणी सेवनथें सेवक,
अप्रशस्तता वारी हो ॥ अहो॰ ॥ व॰ ॥ ३ ॥
पर परिणति रुचि रमण ग्रहणता,
दोष अनादि निवारी हो ॥
देवचंद्र प्रभु सेवन ध्याने,
आतम शक्ति समारी हो ॥ अहो॰ ॥ व॰ ॥४॥

॥ अथ एकोनविंशतितम कृतार्थ जिन स्तवन ॥

॥ अखिना [illegible] तू अराधि [illegible] जी ॥

सेवा मारज्या जिनजी मन माने,
पण मन मागो भाई ॥
[illegible] मागो [illegible],
[illegible] ॥ से॰ ॥ १ ॥

भक्ति नहि ते तो भाडायत,
जे सेवा फल जाचे ॥
दास तिके जे घन भरि निरखी,
केकीनी परे माचे ॥ सेवा० ॥ २ ॥
सारी विधि सेवा सारंतां,
आण न कांइ भाजे ॥
हुकम हाजर खिजमति करतां,
सहजे नाथ निवाजे ॥ सेवा० ॥ ३ ॥
साहिब जाणो छो सहु वाते,
शुं कहीए तुम आगे ॥
साहिब सनमुख अमे मागणनि,
वात कारमी लागे ॥ से० ॥ ४ ॥
स्वामि कृतारथ तो पण तुमथी,
आश सहुको राखे ॥
नाथ विना सेवकनी चिंता,
कोण करे विण दाखे ॥ सेवा० ॥ ५ ॥
तुज सेवा फल माग्यो देतां,
देवपन [illegible] काचा ॥
विण माग्य वंछित फल आपे.
तिणें देवचन्द्र पद साचो ॥ से० ॥ ६ ॥

॥ अथ विंशतितम श्री धर्मीश्वर जिन स्तवन ॥

अखीयां हरखन लागी हमारी अखीयां ॥ ए देशी ॥
॥ राग प्रभाती ॥

हुं तो प्रभु वारि छुं तुम मुखनी,
हुं तो जिन वलिहारी तुम मुखनी ॥
समता अमृतमय सुप्रसननी,
द्वेष नही राग रूखनी ॥ हुं० ॥ १ ॥
भ्रमर अधर सिल धनु हर कमल दल,
कीर हीर पुन्यम शशीनी ॥
शोभा तुछ प्रभु देखत याकी,
कायर हाथे जिम असिनी ॥ हुं० ॥ २ ॥
मन मोहन तुम सनमुख निरखत,
आंख न तृपति अम्हची ॥
मोह तिमिर रवि हरख चंद्र छवी,
मुरत ए उपशमची ॥ हुं० ॥ ३ ॥
मननी चिंता मटी प्रभु ध्यावत,
मुख देखतां तुम जिनजी ॥
इंद्रि तृषा गई जिनेश्वर सवनां,
गुण गानां वचननी ॥ हुं० ॥ ४ ॥

परमानंदि हो तुं परमातमा,
अविनाशी तुज रीत ॥
ए गुण जाणी हो तुम वाणी थकी,
ठहराणी मुज प्रीत ॥ श्री० ॥ ३ ॥
शुद्ध स्वरूपी हो ज्ञानानंदनी,
अव्याबाध स्वरूप ॥
भवजल निधि हो तारक जिनेश्वर,
परम महोदय भूप ॥ श्री० ॥ ४ ॥
निरमम निसंगी हो निरभय अविकारता,
निरमल सहज समृद्धि ॥
अष्ट करम हो वन दाहथी,
प्रगटी अन्वय सिद्धि ॥ श्री० ॥ ५ ॥
आज अनादिनो हो अनंत अक्षता,
अक्षर अनक्षर रूप ॥
अचल अकल हो अमल अगमनुं,
चिदानंद चिद्रूप ॥ श्री० ॥ ६ ॥
अनंत ज्ञानी हो अनंत दर्शनी,
अनाहारी अविरुद्ध ॥
लोकालोक हो ज्ञायक [illegible],
अनंतवीर [illegible] ॥ श्री० ॥ ७ ॥

जे निज पासे हो ते शुं मागीए,
देवचंद्र जिनराय ॥
तो पण मुजने हो शिवपुर साधतां,
होजो सदा सुसहाय ॥ श्री० ॥ ८ ॥

॥ अथ श्रीदेवचंद्रजीकृत स्नात्रपूजाविधि प्रारंभः ॥

॥ प्रथम निरसंगीपूर्वक श्रीदेवालयमध्ये आवी अंग शुद्ध करी, नवीन वस्त्र पहेरी, कपालतिलक करी, बाजोटनी स्थापना करी. ते उपर बाजोट मांडवा. त्रण पीठ उपर थालनी स्थापना करवी. ते उपर नवुलनी [illegible] करवी ॥ तेनी उपर [illegible]पनाइं तथा नालियेर धरीने पछी स्नात्रीयाएँ पोताने हाथे [illegible]माली हस्त बांधवू. तथा चार कलश [illegible] स्थानके मांडी [illegible]दन करी, कलशाने धूप दई, दुध, दधि, घृत, जल तथा [illegible], ए पंचामृतना कलश भरी राखवा. पछी कुसुमांजलि [illegible]वी मूल नायकजी आगल आवी नमस्कार करी, अने धूप[illegible] हाथमां लई धूप उखेवो ॥ ते समये [illegible] धूपा[illegible]नी गाथा कहेवी. ते आ प्रमाणे —

॥ [illegible] [illegible] ॥ १ ॥ [illegible] ॥ २ ॥ [illegible]

॥ ए गाथाओ कह्या पछी प्रथम अक्षतने धोइ तेओने केशर तथा चंदन लगाडवुं, तथा पुष्पोने पण जलथी शुद्ध करी राखवां, तदनंतर ते अक्षत तथा फुलनी कुसुमांजलि हाथमां लइ, उभा थइने " नमो अरिहंताणं, नमोऽर्हत्सिद्धा० " ॥ एम पाठ कहेवो. अने पछी वे श्लोक पठन करवा, ते आ प्रमाणेः—

॥ श्रीमत्पुण्यं पवित्रं कृतविपुलफलं मंगलं लक्ष्म लक्ष्म्याः, क्षुण्णारिष्टोपसर्गग्रहगतिविकृतिस्वप्नमुत्पातघाति ॥ संकेतं कौतुकानां सकलसुखमुखं पर्व सर्वोत्सवानां, स्नात्रं पात्रं गुणानां गुरुगरिमगुरो र्वचिता यै र्न दृष्टम् ॥ १ ॥ अशेषभवनांतराश्रितसमाजखेदक्षमो, नचापि रमणीयतामतिशयीत तस्यापरः ॥ प्रदेश इह मानतो निखिललोकसाधारणः, सुमेरुरिति तापिनः स्नपनपीठभावं गतः ॥ २ ॥

॥ एम कह्या पछी स्नात्र पीठ सन्मुख कुसुमांजलि अर्पण करवी, तदनंतर स्नापनपीठ पखाली लछीने कुंकुमनो स्वस्तिक करवो, धूप उखेववो, अने सर्व स्नात्रीयाओना हाथने धूपावली आपवी, पछी कर्पूर लगाडवो, अने एक नवकार कहीने स्नात्रपीठ उपर प्रतिमाजीनी स्थापना करवी, ते प्रतिमा प्रायः पंचतीर्थिक, अर्थपरकरसंयुक्त स्थापवी, तेना मुख आगल अक्षतोनी ढगली करवी, अने तेनी उपर पंचामृतनो एक कलश मुकवो, पछी हाथमां कुसुमांजलि लइने "मुक्तालंकार विकार०" ए आर्या भणी कुसुमांजलि अर्पण करीने, प्रतिमाजीनां निर्माल्य उतारी प्रक्षालन करवुं, अंगलूहणाथी प्रमार्जिने धूप उखेववो, अने केशर, चदन, कर्पूर तथा कस्तूरी

घसी ते पवित्रभाजनमां भरीने ते भाजन प्रतिमाजी आगल धरवुं वली कुसुमांजलि हाथमां लइ उभा थइ " इच्छं णमो अरिहंताणं० ॥ नमोऽर्हत्सिद्ध० ॥ " कहीने स्नात्र पूजानी पहेली पांखडी कहेवी, एम अनुक्रमें पांच पांखडी कही कुसुमांजलि पूर्ण करीने हाथमां चामर लइने तेने भगवंतनी उपर ढोलतो ॥ वस्तु ॥ " सयल जिनवरयां मांडीने यावत् वधाई वधाई थइ अतीव " सुधीनो पाठ कहे, ते पूर्ण थया पछी चैत्यवंदन करवुं. पछी शक्रस्तव कही जयवीयराय सुधी भणवुं. पछी हाथ धोई धूप कर्पूरादिक हाथने लगाडवां, त्यार केडे जे पूर्वे कलशोने धोइ धूप आपी कंठे मौलीसूत्र बांधी उपर स्वस्तिक करी तेओमां पंचामृत भरी, अक्षतोना ढगलाओ उपर धारण करी तेनी उपर अंगलूहणां ढांकी धूप उखेवी, तेओमांना मात्र बेज कलशोने आसपास जलधारा देइने राख्या होय पछी स्नात्रीयाना हाथमां स्वस्तिको करी सर्वे जणोयें श्रेणीबद्ध उभा रहेवुं, अने प्रत्येक स्नात्रीआयें खमासमण देइ, पंचांग नमस्कार करवो, पछी प्रत्येक स्नात्रीयायें पोताना बे हाथमां कलशो लेवा, ते कलशधारक स्नात्रीयायें पोताना बन्ने हाथने विषे रहेला कलशने उत्तरासंग वस्त्रवडे ढांकी राखवा. अने पोतें उभा छतां सुरत्यां " श्री तीर्थपतिनो कलश मज्जन० " इहांथी मांडीने संपूर्ण पूजा भणवी. त्यार पछी प्रतिमाजी उपर कलशो ढोलवो. पखाल करी अंगलूहणावो मज्जन करे. केशर चंदनथी अर्चन करीने फूल चडाववां [illegible] स्वस्तिक करे [illegible] बिंबना स्थापना करवी ॥ अने [illegible] करवो [illegible] आ [illegible] पाठ भणवो:—

॥ अथ कलश ढालवा समयनुं स्तवन ॥

॥ इंद्र कलशभर ढाले श्रीजिन पर ॥ इंद्र कलश० ॥ हाथो हाथ अमरगण आनत, खीर विमल जलधारे ॥ श्री जिनपर० ॥ १ ॥ सुरवनिता मलि मंगल गावे, भावन भाव महारे ॥ श्री जिनपर० ॥ २ ॥ किन्नर अरु गंधर्व महोरग निरत नीर नित्य सारे ॥ श्री जिनपर० ॥ ३ ॥ देव दुंदु० मिथुनि गर्जत अति, शिर पर सुजश विचारे ॥ श्रीजिनपर० ॥ ४ ॥ परमानंद जिनराज जगतपद, जगजीवन हितकारे ॥ श्रीजिनपर० ॥ ५ ॥ इति कलश ढालवा समयनुं स्तवन ॥

॥ पछी रकेबीमां लूणपाणी लइने आरतिनी पेरें करवुं अने ते वखतें मुखथकी गाथाओ कहेवी, ते आवी रीतें:-

॥ अथ लूण उतारण गाथा ॥

॥ उवहि पडिभग्ग पसरं, पयाहिणं मुणिवइ करेऊणं ॥ पडइ सलूण त्तणलज्जियं व लूणं हू अगहंमी ॥ १ ॥ दोहा ॥ सिक्के विणु मुह जिणचंद, दीहर नयण सलूण ॥ न्हाइ गुरु सायर सरिस, जलमी पइसइ लूण ॥ २ ॥ लूणउतारिह जिण- चंद, तिन्नि पयाहिण देउ ॥ तडतड शब्द करंति यह, विला विला जलेण ॥ ३ ॥ गाथा ॥ ज जेणजिण विसटं, जंजेण न नह निहल्यह सम्मम ॥ जिणरूव कयपोत्तर, पडइ लूण नइसत्तम ॥ ४ ॥ ॥ ए गाथाओ कहीने लूणने अग्निमां [illegible]

॥ दोहा ॥ सवं मुणिवइ जलविजइ, तं तह भमलइ पास ॥ अहव कपंनसुनिम्मलु, निग्गुण बुद्धि पयास ॥ १ ॥ जल आणेविणु जलनिहि पानह, भर विकपंजलि भाविहिं पासह ॥ तिन्नि पयाहिण दिंतिय पासह, जिम जिउ छुट्टइं भव दुह पासह ॥ २ ॥ जल निम्मल कर कमलहि लेविणु, सुरवइ भावहि मुणिवइ सेविणु ॥ पभणइ जिणवर तुह पइ सरण, भय तुट्टइ लब्भइ सिद्धि गमणं ॥ ३ ॥ ए गाथाओ कही लण पाणी उतारीने जल शरण करवुं, त्यार पछी माला लइ उभा रहीने आ प्रमाणे गाथाओ कहेवीः—

अथ पुष्पमाला पूजा गाथा ॥

॥ उवय पज्जव भत्तम्म. निपडंते संठियं [illegible] ॥ जिणपासे भविय जिणस्स. [illegible] संठियं तस्स (पाठांतरे) [illegible] पडम ॥ १ ॥ महो जिनप्रभावो. [illegible] ॥ २ ॥ [illegible] ॥ ३ ॥ ए पाठ [illegible]. पछी हाथमां छूटां फूलो लेइ. हे [illegible] —

॥ अथ छूटां फूलपूजा गाथा ॥

[illegible]

वुट्टी ॥ २ ॥ ए पाठ कहीने प्रभुनी आगल फूलो उछा- लवां, हवे आमरण तथा वस्त्रो लइने उभा छतां गाथाओ कहेवी, ते आ प्रमाणेः—

॥ अथ वस्त्राभरण पूजा ॥

॥ श्लोकः ॥ शक्रोयथा जिनपतेः सुरशैलचूला, सिंहा- सनोपरि मितस्नपनाऽवसाने ॥ दध्यक्षतैः कुसुम चंदनगंध- धूपैः, कृत्वार्चनं तु विदधाति सुवस्त्रपूजां, ॥ १ ॥ तद्वत् श्रावकवर्गएष विधिनालंकारवस्त्रादिकां, पूजां तीर्थकृतां करोति सततं शक्त्यातिभक्त्याहतः ॥ नीरागस्य निरंजनस्य विजिता- रातेस्त्रिलोकीपतेः, स्वस्यान्यस्य जनस्य निर्वृतिकृते क्लेशक्षया- कांक्षया ॥२॥ एम कही आभरण तथा वस्त्र पूजा करवी ॥

॥ पछी ज्ञान पूजा करे, तेनी गाथाओ ॥

॥ नमंति साभिति महीवनाहं, देवाय एयं सुजदेव पुव्वं ॥ भत्तीय चित्तं मण दामएहिं, मंदार पुप्फेह सवेह नाहं ॥ १ ॥ तहेव सड्ढा मण मुत्त एही, सुगंध पुप्फेह वंसएहिं ॥ एवं वंदंत नमंत नाणं, नाणस्स लाभाय भवस्कयाय ॥ २ ॥ ए गाथाओ कहीने पुष्पोनी माला चढाववी, तथा रौप्यमुद्रा, सुवर्णमुद्रा, मणि रत्न, अने वस्त्र एओयें करी स्वशक्ति अनु- सार ज्ञाननी पजा करवी.

॥ पछी धूप करती वखतें आ गाथा कहेवी ॥

॥ मीनकुरंगमदागममार, सारसुगंधनिशाकरतारं ॥ नार- मिलन्मलयोत्थविकार, लोकगुरोर्दह धूपमुदार ॥ २ ॥ एम

पूठी ॥ २ ॥ ए पाठ कहीने प्रभुनी आगल फूलो उछालतां, हवे आभरण तथा वस्त्रो लइने उभा रहतां गाथाओ कहेवी, ते आ प्रमाणेः—

॥ अथ वस्त्राभरण पूजा ॥

॥ श्लोकः ॥ शक्रोयथा जिनपतेः सुरशैलचूला, सिंहासनोपरि मितस्नपनाऽवसाने ॥ दव्यक्षतैः कुसुम चंदनगंध धूपैः, कृत्वार्चनं तु विदधाति सुवस्त्रपूजां, ॥ १ ॥ तद्वत् श्रावकवर्गएष विधिनालंकारवस्त्रादिकां, पूजां तीर्थकृतां करोति सततं शक्त्यातिभक्त्यान्वितः ॥ नीरागस्य निरंजनस्य विजिनारातेस्त्रिलोकीपतेः, स्वस्यान्यस्य जनस्य निर्वृतिकृते क्लेशक्षयाकांक्षया ॥२॥ एम कही आभरण तथा वस्त्र पूजा करवी ॥

॥ पछी ज्ञान पूजा करे, तेनी गाथाओ ॥

॥ नमंति सामिनि महीयनाहं, देवाय एयं सुजदेव पुत्तं ॥ भत्तीय चित्तं मण दामएहिं, मंदार पुप्फेह सोह नादं ॥ १ ॥ तहेव सद्धा मण मुत्त एही, सुगंध पुप्फेह वरंमएहिं ॥ वंदंत नमंत नाणं, नाणस्स लाभाय भवक्खयाय ॥ २ ॥ ए गाथाओ कहीने पुष्पोनी माला चडावी, तथा रौप्यमुद्रा, सुवर्णमुद्रा, मणि रत्न, अने वस्त्र एओवें करी स्वशक्ति अनुसार ज्ञाननी पूजा करवी.

॥ पछी धूप करतीं वखतें आ गाथा कहेवी ॥

॥ [illegible] ॥ ना- [illegible] ॥ २ ॥ एम

त्रुटी ॥ २ ॥ ए पाठ कहीने प्रभुनी आगल फूलो उछालवां, हवे आभरण तथा वस्त्रो लइने उभा छतां गाथाओ कहेवी, ते आ प्रमाणेः—

॥ अथ वस्त्राभरण पूजा ॥

॥ श्लोकः ॥ शक्रोयथा जिनपतेः सुरशैलचूला, सिंहासनोपरि मितस्नपनाऽवसाने ॥ दध्यक्षतैः कुसुम चंदनगंधधूपैः, कृत्वार्चनं तु विदधाति सुवस्त्रपूजां, ॥ १ ॥ तद्वत् श्रावकवर्गएष विधिनालंकारवस्त्रादिकां, पूजां तीर्थकृतां करोति सततं शक्त्यातिमत्त्यादृतः ॥ नीरागस्य निरंजनस्य विजितारातेस्त्रिलोकीपतेः, स्वस्यान्यस्य जनस्य निर्वृतिकृते क्लेशक्षयाकांक्षया ॥२॥ एम कही आभरण तथा वस्त्र पूजा करवी ॥

॥ पछी ज्ञान पूजा करे, तेनी गाथाओ ॥

॥ नमंमि सामिति महीवनाहं, देवाय पुयं सुजहेव पुवं ॥ मतीय चित्तं मण दामएहिं, मंदार पुप्फेह सवेह नाहं ॥ १ ॥ तहेव सट्टा मण मुत्त एही, सुगंध पुप्फेह वरंसएहिं ॥ दूसंवदंत नमंत नाणं, नाणस्स लाभाय भवरकयाय ॥ २ ॥ ए गाथाओ कहीने पुष्पोनी माला चढाववी, तथा रौप्यमुद्रा, सुवर्णमुद्रा, मणि रत्न, अने वस्त्र एओयें करी स्वशक्ति अनुसार ज्ञाननी पूजा करवी.

॥ पछी धूप करतो वखतें आ गाथा कहेवी ॥

॥ मीनकुरंगमदागमसारं, सारसुगंधनिशाकरनारं ॥ नामिनरेन्द्रसुतोपरिविकारं, लोकयमेऽहं भ्रमसारं ॥ २ ॥ ए

पुंही ॥ २ ॥ ए पाठ कहीने प्रभुनी आगल फलो उतारवां, हवे आभरण तथा वस्त्रो लइने उभा रहीने गाथाओ कहेवी, ते आ प्रमाणेः—

॥ अथ वस्त्राभरण पूजा ॥

॥ श्लोकः ॥ शक्रोयथा जिनपतेः सुरशैलचूला, सिंहासनोपरि मितस्नपनावसाने ॥ दध्यक्षतैः कुसुम चंदनगंधधूपैः, कृत्वार्चनं तु विदधाति सुवस्त्रपूजां ॥ १ ॥ तद्वत् श्रावकगणेषु विभिनात्रैकारवस्त्रादिकां, पूजां तीर्थकृतां करोति सततं शक्त्यातिभक्त्यान्वितः ॥ नीरागस्य निरंजनस्य विजितारातेस्त्रिलोकीपतेः, स्वस्यान्यस्य जनस्य निर्वृतिकृते क्लेशक्षयाकांक्षया ॥२॥ एम कही आभरण तथा वस्त्र पूजा करवी ॥

॥ पछी ज्ञान पूजा करे, तेनी गाथाओ ॥

॥ नमंति सामिनि महीवनाहं, देवाय एवं सुजदेव एवं ॥ भत्तीय चित्तं मण दामएहिं, मंदार पुप्फेहु सवेह नाहं ॥ १ ॥ तदेव सट्टा मण मुत्त एही, सुगंध पुप्फेहु वंसएहिं ॥ एवंन वंदंत नमंत नाणं, नाणस्स लाभाय भवक्खयाय ॥ २ ॥ ए गाथाओ कहीने पुष्पोनी माला चढाववी, तथा रौप्यमुद्रा, सुवर्णमुद्रा, मणि रत्न, अने वस्त्र एओयें करी स्वशक्ति अनुसार ज्ञाननी पूजा करवी.

॥ पछी धूप करतीं वखतें आ गाथा कहेवी ॥

॥ मीनकुरंगमदागमसार, सागमगतनिशाकरनार ॥ नारमिलन्मलयोत्थविकार, लोकगरोर्कुरु धूपमसार ॥ २ ॥ एम

[illegible] —

॥ अथ मंगलदीपक पूजा ॥

[illegible] ॥ १ ॥ [illegible] ॥ २ ॥ [illegible] ॥ ३ ॥ [illegible] —

॥ अथ आरति गाथा ॥

[illegible] ॥ १ ॥ [illegible] ॥ २ ॥ [illegible] ॥ ३ ॥ [illegible]

[illegible]

वुट्ठी ॥ २ ॥ ए पाठ कहीने प्रभुनी आगल फूलो उछालवां, हवे आभरण तथा वस्त्रो लइने उभा छतां गाथाओ कहेवी, ते आ प्रमाणेः—

॥ अथ वस्त्राभरण पूजा ॥

॥ श्लोकः ॥ शक्रोयथा जिनपतेः सुरशैलचूला, सिंहासनोपरि मितस्नपनाऽवसाने ॥ दध्यक्षतैः कुसुम चंदनगंधधूपैः, कृत्वार्चनं तु विदधाति सुवस्त्रपूजां, ॥ १ ॥ तद्वत् श्रावकवर्गएष विधिनालंकारवस्त्रादिकां, पूजां तीर्थकृतां करोति सततं शक्त्यातिभक्त्याद्दतः ॥ नीरागस्य निरंजनस्य विजिनारावेस्त्रिलोकीपतेः, स्वस्यान्यस्य जनस्य निर्वृतिकृते क्लेशक्षयाकांक्षया ॥२॥ एम कही आभरण तथा वस्त्र पूजा करवी ॥

॥ पछी ज्ञान पूजा करे, तेनी गाथाओ ॥

॥ नमंनि सामिति महीवनाहं, देवाए पयं सुजहेव पुवं ॥ भत्तीय चित्तं मण दामएहिं, मंदार पुप्फेह सवेह नाहं ॥ १ ॥ तदेव सड्ढा मण मुत्त एही, सुगंध पुप्फेह वरंसएहिं ॥ एवं वंदंत नमंत नाणं, नाणस्स लाभाए भवक्खयाए ॥ २ ॥ ए गाथाओ कहीने पुष्पोनी माला चढाववी, तथा रौप्यमुद्रा, सुवर्णमुद्रा, मणि रत्न, अने वस्त्र एओयें करी स्वशक्ति अनुसार ज्ञाननी पूजा करवी.

॥ पछी धूप करती वखतें आ गाथा कहेवी ॥

॥ मीनकुरंगमुदारमसारं, सारसुगंधनिशाकरतारं ॥ नानिलम्लयोन्यविकारं, लोकगुरोर्दह धूपमुदारं ॥ २ ॥ एम

कहीने धूप उखेववो. पछी मंगल दीपक करीने आ गाथाओ कहेवी—

॥ अथ मंगलदीपक पूजा ॥

॥ कोसंबी संठ्यस्सवि, पयाहिणं कुणइ मउलियप-ईवो ॥ जिणसोम दंसणोदिण, परुव तुह नाह मंगल पईवो ॥ १ ॥ भामीजंतो सुर सुंदरीहिं, तुहनाह मंगल पईवो ॥ कणयायलस्स निझिय, भाणुव पयाहिणं दिंतो ॥ २ ॥ मर-गय सामल थालवरे विण, कोमल सरलिहि करिहिं करेविण, जे उत्तारइ मंगल पईवो, सो नर होइ तिलोय पईवो ॥३॥ ए गाथा कहीने मंगलप्रदीप करवो, पछी रकेबीमां कपूर धरी, आरतिमां बत्ती सलगावीने मुखथकी आ गाथाओ कहेवी:—

॥ अथ आरति गाथा ॥

॥ जे मरगय मणि गडिय, विसाल थाल माणिक्क मंडिय पईवो ॥ ण्हवण यरकुरु खित्तं, भमउ जिण आरत्तियं तुम्हं ॥ १ ॥ आरत्तिअं निपत्थह, जिणस्स धूव किसणागरुच्छायं ॥ पासेलु भमउ निझिय, संगमय विमित्तदिठिव ॥ २ ॥ पस-पेयसो भवंतर, समज्जियंकम्मरेणु संवायं ॥ आरत्तिय मंग-लग्गा, उच्छलंति सलिलधारा ॥ ३ ॥ एवी रीते आरति करवी ॥ इति संक्षेप आरतिविधिः ॥

॥ पछी उत्तरासंग करी, चैत्यवंदन करवुं, अने अष्ट प्रकारें पूजा करवी. कदाचित् अष्टप्रकारें पूजा न कराय तो शेष फल फूलने नैवेद्य जे होय, ते एमज चडावी देइ. पछी

गुणगीत करवां, जय जय शब्द उच्चारवा, साहामीवात्सल्य करवुं तथा यथाशक्ति दान देवुं ॥ इति श्री स्नात्रपूजाविधिः समाप्तः ॥

॥ आरति ॥ दीपक ॥ लूणजलविधिः प्रारभ्यते ॥

प्रभुथी अंतरपट करी, प्रभु सन्मुख बेशी आरति करनारने नव अंगे कुंकुमनां तिलक करवां. पछी एक थालमां स्वस्तिक करी, तेमां आरति, मंगल दीपक, जमणी बाजु राखी, त्यां आरतिमां घृत थोडुं भरवुं. अने मंगलदीपकमां घृत पूर्ण भरवुं. पछी केशर, फूल, तंदुल करी, तेनी पूजा करवी. उपर कुंकुमना छांटा नांखी मंगल दीपक प्रगटाववो अने कर्पूर सलगाववो तेनो मंत्र कहे छे. ॐ अर्हते पंचज्ञानमहाज्योतिर्मयाय, ध्वांतघातिने द्योतनाय, प्रतिमाये दीपो भूयात्सर्वदार्हते ॥ १ ॥ एम भणी ॥ मंगलदीपक प्रगटावीने पछी ते मंगलदीपकथी आरति प्रगटावी, पछी दीवो नीचे मूकीने आरति उतारवी, तेवार पछी दीपक उतारे, पछी लूणनी कांकरी लेइ " लूण उतारो जिनवर अंगे " इत्यादिक पाठ कही लूणनी गाथा भणवी, पछी बृहच्छांति कहेवी, ते न आवडे तो त्रण नवकार गणी, आ प्रमाणे श्लोक कहेवो छे ॥ श्लोक ॥ आज्ञाहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं च यत्कृतं ॥ तत्सर्वं क्षमया देव, क्षम त्वं परमेश्वर ! ॥ १ ॥ एम कही चैत्यवंदन करवुं ॥ इति आरति दीपक लूण जल विधिः ॥

॥ स्नात्रपूजा प्रारंभः ॥

(पांचडी गाथा) ॥ ढाल पहेली ॥

॥ चउतीसे अतिशय जुओ, वचनातिशय जुत्त, सो परमेसर देखि भवि, सिंहासन संपत्त ॥ १ ॥

॥ ढाल ॥

॥ सिंहासन बेठा जग भाण, देखि भविक जन गुण-मणि खाण ॥ जे दीठे तुज निर्मल नाण, लहीयें परम महोदय ठाण ॥ कुसुमांजलि मेहेलो आदि जिणंदा, तोरां चरणकमल सेवे चोसठ इंदा ॥ कु० ॥ १ ॥ चोवीश वेरागी, चोवीश सोभागी, चोवीस जिणंदा ॥ कु० ॥ एम कही प्र-भुना चरणे पूजा करीयें ॥

॥ गाथा ॥

॥ जो निय गुन पज्जव रम्यो, तसु अनुभव एगंत ॥ सुह पुग्गल आरोपतां, सो तसु रंग नियत ॥ २ ॥

॥ ढाल ॥

॥ जो निज आतमगुण आणंदी, पुग्गल संगे जेह अफंदी ॥ जे परमेसर निज पद लीन, पूजो प्रणमो भाव अ-दीन ॥ कुसुमांजलि मेहेलो शांति जिणंदा ॥ तो० ॥ कु० ॥ २ ॥ एम कही प्रभुना जानुये पूजा करीयें ॥

॥ गाथा ॥

॥ निम्मल नाण पयासकर, निम्मल गुण संपन्न ॥ नि-

[illegible] ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥

॥ लोकालोक प्रकाशक नाणी, भविजन तारण जेहनी वाणी ॥ परमानंदतणी नीशानी, तसु भगतें मुज मतिय ठहराणी ॥ कुसुमांजलि मेहेलो नेम जिणंदा, तो० ॥ कु० ॥ ३ ॥ एम कही प्रभुना बे हाथें पूजा करीयें ॥

॥ गाथा ॥

॥ जे सिज्झा सिज्झंति जे, सिज्झंसंति अणंत ॥ जसु आलंबन ठविय मण, सो सेवो अरिहंत ॥ ४ ॥

॥ ढाल ॥

॥ शिव सुख कारण जेह त्रिकालें, समपरिणामें जगत निहाले ॥ उत्तम साधन मार्ग देखाडे, इंद्रादिक जसु चरण पखाले ॥ कुसुमांजलि मेहेलो पास जिणंदा ॥ तो० ॥ कु० ॥ ४ ॥ एम कही प्रभुना खंभापें पूजा करीयें ॥

॥ गाथा ॥

॥ समदिठी देस जय, साहु साहुणी सार ॥ आचारिज उवझाय मुणि, जो निम्मल आचार ॥ ५ ॥

॥ ढाल ॥

॥ चउविह संघें जे मन धार्यु, मोक्षतणुं कारण निरधार्यु ॥ विविह कुसुम वर जाति गहेवी, तसु चरणे पणमंत ठवेवी ॥ कुसुमांजलि मेहेलो वीर जिणंदा ॥ तो० ॥ कु० ॥ ६ ॥ एम कही प्रभुने मस्तकें पूजा करीयें ॥ इति पांखडी गाथा ॥

॥ वस्तुछंद ॥

॥ मयन जिनवर मयन जिनवर, नमिय मनरंग कला-

णकविहि संववियं, करिस धम्म सुपवित ॥ सुंदरसय इगसत्तरि तित्थंकर, एक समय विहरंति महीयल, चवण समय इगत्रीस जिण, जम्म समय इगत्रीस ॥ भत्तिय भावें पूजीया, करो संघ सुजगीस ॥ १ ॥

॥ ढाल बीजी ॥

॥ एक दिन अचिरा हुलरावती ॥ ए देशी ॥

॥ भव त्रीजे समकित गुण रम्या, जिन भक्ति प्रमुखगुण परिणम्या, तजि इंद्रिय सुख आशंसना, करी स्थानक वीशनी सेवना ॥ १ ॥ अति राग प्रशस्त प्रभावता, मन भावना एहवी भावता, सवि जीव करुं शासन रसी, इसी भाव दया मन उल्लसी ॥ २ ॥ लही परिणाम एहवुं भलुं, निपजावी जिनपद निर्मलुं ॥ आयुबंध वचें एक भव करी, श्रद्धा संवेग ते थिर धरी ॥ ३ ॥ त्यांथी चविय लहे नरभव उदार, भरतें तेम ऐरवतेज सार, महाविदेहे विजयें वर प्रधान, मध्य खंडे अवतरे जिन निधान ॥ ४ ॥

॥ अथ सुपनानी ॥ ढाल त्रीजी ॥

॥ पुण्यें सुपनह देखे, मनमांहे हर्ष विशेषे, गजवर उज्ज्वल सुंदर, निर्मल वृषभ मनोहर ॥ १ ॥ निर्भय केशरी सिंह, लक्ष्मी अतिही अबीह ॥ अनुपम फूलनी माल, निर्मल शशी सुकुमार ॥ २ ॥ तेजेंतरणी अति दीपे
दीपे, पूरण कलश पडूर, पद्म सरोवर पूर ॥
रयणायर, देखे माताजी गुण सायर ॥ चारे
तेरने अनुपम रत्न निधान ॥ ४ ॥ अग्निशिखा
माताजी अनुपम ॥ हर्षी रायने भाखे, राजा

॥ ५ ॥ जगपति जिनवर सुखकर, होशे पुत्र मनोहर ॥ इंद्रादिक जसु नमशे, सकल मनोरथ फलशे ॥ ६ ॥

॥ वस्तुछंद ॥

॥ पुण्यउदय पुण्यउदय उपना जिननाह, माता तव रयणी समे, देखी सुपन हरखंती जागीय ॥ सुपन कही निज कंतने, सुपन अरथ सांभले सोभागीय ॥ त्रिभुवन तिलक महागुणी, होशे पुत्र निधान ॥ इंद्रादिक जसु पाय नमी, करशे सिद्धि विधान ॥ १ ॥

॥ ढाल ॥ चोथी ॥ चंद्रायणानी देशीमां ॥

॥ सोहमपति आसन कंपियो ए, देइ अवधि मन आणंदियो ए ॥ निज आतम निर्मल करण काज, भव जलतारण प्रगट्यो जहाज ॥ १ ॥ भवअटवी पारग सत्थवाह, केवल नाणाइय गुण अगाह ॥ शिव साधन गुण अंकुरो जेह, कारण उलट्यो आसाढ मेह ॥ २ ॥ हरखें विकसी तव रोमराय, वलयादिकमां निज तनु न माय ॥ सिंहासनथी उठ्यो सुरिंद, प्रणमंतो जिन आनंदकंद ॥ ३ ॥ सग अडपय साहमो आवि तत्थ, करि अंजलि प्रणमीय मत्थ ॥ मुखें भाखे ए गुण आज नाथ, तिय लोय पहु दीठो उदार ॥ ४ ॥ रे रे निसुणो सुर लोय देव, विषयानल तापित तुम सदेव ॥ तसु शांति करण जलधर समान, मिथ्या विष चूरण गरुडवान ॥ ५ ॥ ते देव सकल तारण समत्थ, प्रगट्यो तसु प्रणमी हुओ सनाथ ॥ एम [illegible] करेवि, तव देव देवी हरखे सुणेवि ॥ ६ ॥ [illegible], सुघोष [illegible], त्रिभुवन

वधे सुर हर्ष धाम ॥ ७ ॥ पिता माता घेरें उत्सव अशेष, जिन शासन मंगल अति विशेष ॥ सुरपति देवादिक हर्ष संग, संयम अर्थिजनने उमंग ॥ ८ ॥ शुभवेला लगनें तीर्थ नाथ, जनम्या इंद्रादिक हर्ष साथ ॥ सुख पाम्या त्रिभुवन सर्व जीव, वधाई वधाई थइ अतीव ॥ ९ ॥

॥ ढाल ॥ पांचमी ॥

॥ श्रीशांति जिननो कलश कहिशुं प्रेम सागर पूर ॥ ए देशी ॥

॥ श्रीतीर्थपतिनुं कलशमज्जन, गाइयें सुखकार ॥ नरखित्त मंडण दुह विहंडण, भविक मन आधार ॥ तिहां राव राणा हर्ष उत्सव, थयो जग जयकार ॥ दिशकुमरी अवधि विशेष जाणी, लह्यो हर्ष अपार ॥ १ ॥ नियअमर अमरी संग कुमरी, गावती गुणछंद ॥ जिन जननी पासें आवि पोहोती, गह गहती आणंद ॥ हे माय ! तें जिनराज जायो, शुचि वधायो रम्न ॥ अम जम्म निम्मल करण कारण, करीश सूईकम्म ॥ २ ॥ तिहां भूमि शोधन दीप दर्पण, वाय वींजण धार ॥ तिहां करीय कदली गेह जिनवर, जननि मज्जनकार ॥ वराखडी जिनपाणी बांधि, दीये एम आशीष ॥ जुग कोडा कोडि चिरंजीवो, धर्मदायक ईश ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥ छठी ॥ एकवीशानी ॥

॥ जग नायकजी, त्रिभुवन जन हितकार ए ॥
॥ परमातमजी, चिदानंद घनसार ए ॥ ए देशी ॥

॥ जिन रयणीजी, दशदिशि उज्ज्वलता धरे ॥ शुभलगनेजी, ज्योतिष चक्रते संचरे ॥ जिन जनम्याजी, जेणें अवसर माता घेरें ॥ तेणे अवसरजी, इंद्रासन पण थरहरे ॥

॥ त्रुटक ॥

॥ थरहरे आसन इंद्र चिंते, कोण अवसर ए बन्यो ॥
जिन जन्म उत्सव काल जाणी, अतिही आनंद उपन्यो ॥
निज सिद्धि संपत्ति हेतु जिनवर, जाणी भक्तें ऊमह्यो ॥
विकसित वदन प्रमोद वधते, देव नायक गहगह्यो ॥ १ ॥

॥ ढाल ॥

॥ तव सुरपतिजी, घंटानाद कराव ए ॥ सुरलोकेंजी, घोषणा एह देवराव ए ॥ नरक्षेत्रें जी, जिनवर जन्म हुओ अछे ॥ तसु भगतें जी, सुरपति मंदर गिरि गछे ॥

॥ त्रुटक ॥

॥ गच्छेति मंदर शिखर उपर, भवन जीवन जिन तणो ॥
जिन जन्म उत्सव करण कारण, आवजो सवि सुरगणो ॥
तुम शुद्ध समकित थाशे निर्मल, देवाधिदेव निहालतां ॥
आपणां पातक सर्व जाशे, नाथ चरण पखालतां ॥ २ ॥

॥ ढाल ॥

॥ एम सांभली जी, सुरवर कोडी बहु मली ॥ जिनवंदनजी, मंदरगिरि सामा चली ॥ सोहमपतिजी, जिन जननी घर आविया ॥ जिन माताजी, वंदी स्वामी वधाविया ॥

॥ त्रुटक ॥

॥ वधाविया जिन हर्ष बहुले, धन्य हुं कृतपुण्य ए ॥
त्रैलोक्य नायक देव जाण्यो, मुज समो कोण अन्य ए ॥
हे जगत जननी [illegible] मज्जन इम करी ॥
उच्छंग [illegible] पुण्य भरी ॥ ३ ॥

करि सहस अट्ठोतरा, छत्र चामर सिंहासण शुभतरा ॥ उपगरण पुष्फ चंगेरी पमुहा सवे, आगमें भासिया तेम आणी ठवे ॥ २ ॥ तीर्थजल भरिय करकलश करि देवता, गावता भावता धर्म उन्नतिरता ॥ तिरिय नर अमरने हर्ष उपजावता, धन्य अम्ह शक्ति शुचि भक्ति एम भावता ॥ ३ ॥ समकित बीज निज आत्म आरोपता, कलश पाणीमशें भक्ति जल सींचता ॥ मेरु सिहरोवरें सर्व आव्या वही, शक्र उत्संग जिन देखी मन गह गही ॥ ४ ॥

॥ वस्तुच्छंद ॥

॥ हंहो देवा हंहो देवा अणाइ कालो, अदिट्ठ पुवो तिलोयत्तारणो तिलोय बंधु, मिच्छत्त मोहविद्धंसणो अणाइ तिण्हा विणासणो, देवाहिदेवो दिट्ठ बोहिय कामेहिं ॥ ५ ॥

॥ ढाल तेहीज ॥

॥ एम पभणंत वण भवणं जोईसरा, देव वेमाणिया भत्ति धम्मापरा ॥ केवि कप्पट्ठिया केवि मित्ताणु गा, केवि वर रमणि वयणेण अइ उत्सुगा ॥ ६ ॥

॥ वस्तुच्छंद ॥

॥ तत्थ अच्चुय तत्थ, अच्चुय इंद आदेस ॥ कर जोडि सवि देवगण, लेय कलस आदेस पामिय ॥ अद्भुतरूप सरूप जुअ, कवण एह उत्संगें सामिय ॥ इंद्र कहे जग तारणो, पारग अम परमेस ॥ नायक दायक धम्म निहि, करियें तसु अभिषेस ॥ ७ ॥

मझार ॥ ६ ॥ खरतरगच्छ जिन आणारंगी, राजसागर उव-ज्झाय ॥ ज्ञान धर्म दीपचंद सुपाठक, सुगुरुतणे सुपसाय ॥ देवचंद्र जिनभक्तें गायो, जन्म महोत्सव छंद ॥ बोध बीज अंकूरो उल्लस्यो, संघ सकल आनंद ॥ ७ ॥

॥ कलश ॥ राग वेलाउल ॥

॥ एम पूजा भक्तें करो, आतमहितकाज ॥ तजीय विभाव निज भावमें, रमता शिवराज ॥ एम० ॥ १ ॥ काल अनंतें जे हुआ, होशे जेह जिणंद ॥ संपय सीमंधर प्रभु, केवलनाण दिणंद ॥ एम० ॥ २ ॥ जन्ममहोत्सव एणी परें, श्रावक रुचिवंत ॥ विरचे जिन प्रतिमातणो, अनुमोदन खंत ॥ एम० ॥ ३ ॥ देवचंद्र जिन पूजना, करतां भवपार ॥ जिनपडिमा जिनसारखी, कही सूत्र मझार ॥ एम० ॥ ४ ॥

॥ अथ श्रीनवपदपूजा ॥

अरिहंतपदपूजा ॥

॥ ढाल ॥ उलालानी देशी ॥

॥ तीर्थपति अरिहा नमुं, धर्म धुरंधर धीरो जी ॥ देशना अमृत वरसता, निजवीरज वड वीरो जी ॥१॥ उलाला॥ वरअखय निर्मल ज्ञानभासन, सर्व भाव प्रकाशता ॥ निज शुद्ध श्रद्धा आत्मभावें, चरणथिरता वासता ॥ जिननाम कर्म

शासन, वहन धोरी मुनिराया ॥ सिद्धांत वायण दान समरथ, नमो पाठक पदराया ॥ ८ ॥

मुनिपदपूजा ॥

॥ सकल विषय विष वारीने, निःकामी निःसंगीजी ॥ भवदवताप शमावता, आतमसाधन रंगीजी ॥ ९ ॥ उल्लालो ॥ जे रम्या शुद्ध स्वरूप रमणे, देह निर्मम निर्मदा ॥ काउस्सग्ग मुद्रा धीर आसन, ध्यान अभ्यासी सदा ॥ तप तेज दीपे कर्म झीपे, नैव छीपे परभणी ॥ मुनिराज करुणासिंधु त्रिभुवन, बंधु प्रणमुं हित भणी ॥ १० ॥

दर्शनपदपूजा ॥

॥ सम्यग्दर्शन गुण नमो, तत्त्व प्रतीत स्वरूपोजी ॥ जसु निरधार स्वभाव छे, चेतनगुण जे अरूपोजी ॥ ११ ॥ उल्लालो ॥ जे अनुप श्रद्धा धर्म प्रगटे, सकल परईहा टळे ॥ निज शुद्ध सत्ता प्रगट अनुभव, करणरुचिता उच्छळे ॥ बहुमान परिणति वस्तुतायें, अहव तसु कारणपणे ॥ निज साध्य दृष्टें [illegible] ॥ १२ ॥

ज्ञानपूजा ॥

॥ [illegible] ॥ १३ ॥ उल्लालो ॥ [illegible]

पेखन, सकल सिद्धि अनुसरे ॥ अक्षय अनंत महंत चिद्घन परम आनंदता वरे ॥ २० ॥

॥ कलश ॥

॥ इम सयल सुखकर गुणपुरंदर, सिद्धचक्र पदावली ॥ सवि लब्धिविद्यासिद्धिमंदिर, भविक पूजो मन रली ॥ उवज्झाय श्रीराजसागर, ज्ञानधर्म सुराजता ॥ गुरुदीपचंद सुचरण सेवक, देवचंद सुशोभता ॥ २१ ॥

॥ अथ काव्यम् ॥ द्रुतविलंबितवृत्तम् ॥

॥ विमलकेवलभासनभास्करं, जगति जंतुमहोदयकारणम् ॥ जिनवरं बहुमानजलौघतः, शुचिमनाः स्नपयामि विशुद्धये ॥ १ ॥ इति काव्यम् ॥ आ काव्य भणीने पूजादिक करवुं ॥

॥ ज्ञान कला जागरूक थई, मनडुं निज घर ठरीने ॥ आतमा कर्ममल दूर कीना, तेथी ते सिद्ध प्रसिद्धा ॥ २ ॥ हुं पण अनादि अज्ञानी आ, ध्यान बळे पूर्ण ... ॥ सिद्ध थई गुणोथी तुं दीठो, अम ... दरिसण ... ॥ ३ ॥

गिरि जेरुगीरो, आम नमा नाथ जीवो तुं जीवो ॥ १॥
इति प्रथम स्नात्रपूजा ॥ १ ॥

२ विलेपनपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ बावना चंदन कुंकुमे, मृगमदने घन सार ॥ जिन तनु लेपे नग हुंदे, मोह संताप निवार ॥ ८ ॥ ढाल ॥ सहज संताप निवारण, टारण सहि भवि नित ॥ परम अतीहा अतिहा, तन नाख्यो भवि नित्य ॥ निज मां उपयोगी, भवी जिनगुण गेह ॥ भाव चंदन शुद्धभावी, छाजे सुविन अरोह ॥ ९ ॥ काव्यम ॥ जिनतनु चरचतां सकल सारी, को दुख तुमरा आज वारी ॥ सकल अनिमेषना आज सारी, चरचा नम तारी आज वारी ॥१०॥ अथ द्वितीयविलेपन पूजा ॥२॥

३ भूषणपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ निरख मुकुट कुंडल हार, आगम कीधी [illegible] ॥ [illegible] जिनराज, भवि तमा मनाय ॥ ११ ॥ ढाल ॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible]

सुगंध घनसार घण, करो जिनने धूप धाण ॥ २० ॥ ढाल ॥ धूप घटी जेम महमहे, तेम दहे पातकवृंद ॥ आति अनादिनी जाये, पावे मन आणंद ॥ जे जिन पूजे धूपे, माशुंपे करी सेह ॥ नावे पावे सुर घर, आवे सुरव अच्छेद ॥ २१ ॥ काव्यम् ॥ जिन घर वासनां धूप धूपें, मिथ्यात दुर्गंधता जाय दूरें ॥ धूप जिम सहज ऊर्ध्वंग स्वभावें, करता ऊर्ध्वगति भाव पावे ॥ २२ ॥ इति षष्ठधूपपूजा ॥ ६ ॥

७ दीपपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ मणिमय रजत ताम्रप्रमुख, पात्र भरी घृत पूर ॥ वर्ति गृह रंगंभनी, करो प्रदीप सनूर ॥ २३ ॥ ढाल ॥ मंगलदीप वधावो, गावो जिनगुण गीत ॥ दीप तणी जेम आलिका, मालिका मंगल नीत ॥ दीपतणी शुभ ज्योति, द्योतित जिनमुख चंद ॥ निरखी हरखी भविजना, जेम लहो परमानंद ॥ २४ ॥ काव्यं ॥ जिनगृहे दीपमाला प्रकाशे, तेहथी तिमिर अज्ञान नासे ॥ निज घटे ज्ञान ज्योति विकासे, तेहथी उज्ज्वल भाव भासे ॥२५॥ इति सप्तमदीपपूजा ॥७॥

८ फलपूजा ॥

॥ दोहा ॥

[illegible] ॥ [illegible] ॥ २६ ॥ ढाल ॥ [illegible]

नवि लहे दुःख संसारमीमें ॥ ४६ ॥ इति चतुर्दश वस्त्र-पूजा ॥ १४ ॥

१५ चामरपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ अति उज्ज्वल अंगुल तणं, एकशत आठ प्रमाण ॥ चामरसें पूजतां, नासे दुरितविहाण ॥ ४७ ॥ ढाल ॥ कनक रयणनें दंडें, मंडित चामरजोडि ॥ हरखतां जिनमुख निरखतां, वींजे छोडा छोडि ॥ विकसित कंज जेम जिनमुख, सन्मुख आवी हंस ॥ सेवे एम उपमति करे, भवि जन धरी आशंक ॥ ४८ ॥ काव्यम् ॥ ज्ञान मय किरिय उज्ज्वल स्वभावें, नति उन्नति गौण मुख्यादि भावें ॥ मानगुणमंगल जिनराज आणे, भाववी बुद्ध चामर वखाणे ॥ ४९ ॥ इति पंचदशचामरपूजा ॥ १५ ॥

१६ छत्रत्रयपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ उज्ज्वल शारद चंद जिम, छत्रत्रय बहु मूल ॥ धारीयें जिन उपरें, नाम दुरगसिरि अनुकूल ॥ ५० ॥ ढाल ॥ छत्रत्रय जेम झलके, मणके मानसरूप ॥ मोहादिक अरि शाठा, नाश करे आनंद ॥ जे नित्य पूजा करें, शुभमोंमें लहे जन्म ॥ ननसरां [illegible] ॥ ५१ ॥ काव्यम् ॥ [illegible] अंतपक दोग [illegible] जिनगजानें

[illegible]

१९ नृत्यपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ मूकी शंक संसारनी, जिनपति आगें जति ॥ करी नृत्य सूर्याभ परें, तस नहीं भवभय नृत्य ॥ ५९ ॥ ढाल ॥ भूचर खेचर अमरवर, किन्नरी नरी शुभचित्त ॥ नाचे माचे जिनगुणें, सांचे सुकृतवित्त ॥ योग अवंचक एहवी, देहवी जिनपद हेतु ॥ चउगइ गमणनिवारण, तारण भवजलसेतु ॥ ६० ॥ काव्यम् ॥ जेह निजपोगगति सहजरंगें, फोरे अमृतानुष्ठान संगें ॥ अतुल्यगुणतान न चूके अंगें, भावस्तवपूजना एह रंगें ॥ ६१ ॥ इति एकोनविंशतिनृत्यपूजा ॥

२० स्तुतिपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ व्याकरण काव्य अलंकृति, तर्क छंद अपभ्रंश ॥ दोष न दोषें स्तुति करे, स्तुतिपूजा गुणवश्य ॥ ६२ ॥ ॥ ढाल ॥ स्वपरसमयविगजति, भाजति [illegible] अनूप ॥ अतिशय धर्म उपगारी, अह नम [illegible] स्वरूप ॥ [illegible] निज एम स्तव्यो, टस्यो जिनगुण चित्त ॥ [illegible] करे नग, पूर्ण [illegible] करे नित ॥ ६३ ॥ काव्यम् ॥ जेह [illegible] जिन आत [illegible] ॥ [illegible] एकाक्षरा [illegible] ॥ ६४ ॥ इति विंशतिस्तुति [illegible]

॥ अथ पंडितश्रीदेवचंद्रजीकृत अष्टप्रकारी पूजा लिख्यते ॥

॥ प्रथम जलपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ गंगामागध क्षीरनिधि, ओषधमंथितसार ॥ कुसुमे वासित शुचिजलें ॥ करो जिन स्नान उदार ॥ १ ॥ ढाल ॥ मणिकनकादिक अडविध करी, भरी कलश सफार ॥ शुभ दृष्टि जे जिनवर नमे, तसु नही दुरित प्रचार ॥ मेरुशिखर जिम सुरवर जिनवर न्हवण अमान, करता धरता निज गुण, सम्यक्त्व शुद्धि निधान ॥ २ ॥ छंद ॥ हर्षभरी अपसरावृंद आवे, स्नात्र करी एम आशीष भावे ॥ जिहांलगे सुरगिरि जंबुदीवो, अमतणा नाथ जीवो ॥ जीवो ॥ ३ ॥

॥ विमलकेवलभासनभास्करं, जगति जंतुमहोदयकारणम् ॥ जिनवरं बहुमानजलौघतः, शुचिमनाः स्नपयामि विशुद्धये ॥ १ ॥ ॐ ह्रीं परम परमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्यु निवारणाय श्रीमज्जिनेंद्राय जलं यजामहे स्वाहा ॥ १ ॥ इ[illegible] ॥

॥ अथ द्वितीय चंदन पूजा प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥ [illegible] नरभव ने फलसार ॥ [illegible] निस्तार ॥ १ ॥ ढाल ॥

सकलसंताप निवारण, टारण सहु भविचित्त ॥ परम अनीहा अरिहा, तनु चरचो भविनित्त ॥ निजरूपे उपयोगी, धारी जिनगुण गेह ॥ भावचंदन सुह भावयी, टाळे दुरित अछेह ॥ २ ॥ चाल ॥ जिन तनु चरचतां सकल नाकी, कहे कुग्रह उष्णता आज थाकी ॥ सकल अनिमेषता आज म्हांकी, भव्यता अह्म तणी आज पाकी ॥ ३ ॥

॥ सकलमोहतमिस्रविनाशनं, परमशीतलभावयुतंजिनम् ॥ विनयकुंकुमदर्शनचंदनैः, सहजतत्त्वविकाश कृतेऽर्चये ॥ २ ॥ ॐ ह्रीं परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवारणाय श्रीमज्जिनेंद्राय चंदनं यजामहे स्वाहा ॥ २ ॥ इति चंदनपूजा ॥

॥ अथ तृतीय पुष्पपूजा प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥ शतपत्री वरमोगरा, चंपक जाइ गुलाब ॥ केतकि दमणो बोलसिरी, पूजो जिन भरिछाब ॥ १ ॥ ढाल ॥ अमल अखंडित विकसित, शुभसुमनी घणी जाति ॥ लाखीणो टोडर टवो, अंगी रची बहु भांति ॥ गुणकुसुमे निज आतमा, मंडित करवा भव्य ॥ गुणरागी जडत्यागी, पुष्प चढावो नव्य ॥ २ ॥ चाल ॥ जगधणी पूजना विविधफूलें, सुरवरा ते गणे क्षण अमूलें ॥ खांति धरि मानवा जिनप पूजे, तसु तणां पाप संताप धूजे ॥ ३ ॥

॥ विकचनिर्मलशुद्धमनोरम. विशदचेतनभावसमुद्भवैः ॥ सुपरिणामप्रसूनघनैर्नवैः परमतत्त्वमयं हियजाम्यहम् ॥ ३ ॥ ॐ ह्रीं परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनि-

वारणाय श्रीमज्जिनेंद्राय* पुष्पं यजामहे स्वाहा ॥ ३ ॥ इति पुष्पपूजा ॥

॥ अथ चतुर्थ धूपपूजा प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥ कृष्णागरमृगमद तगर, अंबर तुरुक लोबान ॥ मेलि सुगंध घनसार घण, करो जिननें धुपदाण ॥ १ ॥ ॥ ढाल ॥ धूपघटी जिम महमहे, तिम दहे पातग[illegible] ॥ अरति अनादिनी जावे, पावे मन आणंद ॥ जे जिन पूजे धूपें भव कूप फिरि तेह ॥ नावे पावे धुपवर, आवे सुगत अछेह ॥ २ ॥ चाल ॥ जिन घर वासनां धुपथी, मिच्छत्तदुर्गंधता जाइ दूरे ॥ धूप जिम सहज ऊर्द्धग स्वभावे, कारता उपगति भाव पावे ॥ ३ ॥

॥ सकलकर्ममहेंधनदाहनं, विमलसंवरभावसुधूपनम ॥ अशुभपुद्गलसंगविवर्जितं, जिनपतेः पुरतोऽस्तु सुहर्षितः ॥ ४ ॥ ॐ ह्रीं परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवारणाय श्रीमज्जिनेंद्राय धूपं यजामहे स्वाहा ॥ ४ ॥ इति धूपपूजा ॥

॥ अथ पंचम दीपपूजा प्रारभ्यते ॥

॥ दोहा ॥ मणिमय [illegible], पात्र [illegible] ॥ [illegible] ॥ १ ॥ ॥ ढाल ॥ [illegible], जिन [illegible] ॥ [illegible] जिन [illegible] ॥ [illegible]

अज्ञान नासे ॥ निजघटे ज्ञानज्योति विकासे, तेहथी जगत्ना भाव भासे ॥ ३ ॥

॥ भविकनिर्मलबोधविकाशकं, जिनगृहे शुभदीपक दीपनम्॥ सुगुणरागविशुद्धिसमन्वितं, दधतु भावविकाशकृते जनाः ॥५॥ ॐ ह्रीं परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवारणाय श्रीमज्जिनेंद्राय दीपं यजामहे स्वाहा ॥ ५ ॥ इति दीपपूजा ॥

॥ अथ षष्ठाक्षत पूजा प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥ अक्षत अक्षत पूरशुं, जे जिन आगे सार ॥ स्वस्तिक रचतां विस्तरे, निजगुण भर विस्तार ॥१॥ ढाल॥ उज्वल अमल अखंडित, मंडित अक्षतचंग ॥ पुंजत्रय करो स्वस्तिक, आस्तिक भावे रंग ॥ निज सत्ताने सन्मुख, उन्मुख भावें जेह ॥ ज्ञानादिक गुण दावे, भावे स्वस्तिक एह ॥२॥ चाल ॥ स्वस्तिक पूरतां जिनप आगे, स्वस्ति श्रीभद्र कल्याण जागे ॥ जन्मजरामरणादि अशुभ भागे, नियत शिवशर्म रहे तासु आगें ॥ ३ ॥

॥ सकलमंगलकेलिनिकेतनं, परममंगलभावमयं जिनम् ॥ श्रयत भव्यजना इति दर्शयत्, दधतु नाथ पुरोऽक्षतस्वस्तिकम् ॥ ६ ॥ ॐ ह्रीं परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवारणाय श्रीमज्जिनेंद्राय अक्षतान् यजामहे स्वाहा ॥ ६ ॥ इति अक्षतपूजा ॥

॥ अथ सप्तम नैवेद्यपूजा प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥ सरस शुचि पक्वान्न भर, शालदार

धरे नैवेद्य जिन आगळे, क्षुधादोष तसु दूर ॥ १ ॥ ढाळ ॥ लपनश्री घरवेबर, मृदुतर मोतीचूर ॥ सिंहकेसरिया सेवैया, दळिया मोदकपूर ॥ साकर द्राख सिंगोडा, भक्ष्यव्यंजन शुं सद्य ॥ करो नैवेद्य जिन आगळें, जिम मिले सुख अनराग ॥ २ ॥ थाळे ॥ छोडनां भोज्यपर भाव त्यागे, भविजना निज गुण भोज्य मागे ॥ अम्ह भणी अम्हनणो सकप भोज्य आपजो तातजी जगनपूज्य ॥ ३ ॥

॥ सकलपुद्गलसंगविवर्जनं, सहजचेतनभावविलासकम् ॥ सरसभोजननव्यनिवेदनात्, परमनिर्वृतिभावमहं स्पृहे ॥ ७ ॥ ॐ ह्रीं परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवारणाय श्रीमज्जिनेंद्राय नैवेद्यं यजामहे ॥ ७ ॥ इति नैवेद्यपूजा ॥

॥ अथाष्टम फलपूजा प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥ फल त्रिजोरुं जिन करे, टाळतां शिवरस देइ ॥ सरस मधुर शुभ फल घणां, इह जिन भेट धरेइ ॥ १ ॥ ढाळ ॥ श्रीफल कदली सुंगा, नारंगी आंबा सार ॥ जंबीर अंजीर दाडिम, करणा पस्तांत मतार ॥ मधुर सुरसादिक उत्तम, ढोके आनंदित जेह ॥ जग गंगादिके स्मणीरु, मधुकर ठौ तेह ॥ २ ॥ थाळ ॥ फलभर पूजतां जगतस्वामी, मनुजगति बेलि होय सफल धामी ॥ सफल मुनि देवचंद्र भेट देई, ध्यावतां फलप्रधानि ग्रहेई ॥ ३ ॥

॥ [illegible] ॥ [illegible] [illegible]

रणाय श्रीमज्जिनेंद्राय फलं यजामहे स्वाहा ॥ ८ ॥ इति फलपूजा ॥

॥ दोहा ॥ इम अष्टविध जिनपूजना, विरचे जे थिरचित्त ॥ मानवभव सफलो करे, वाघे समकित वित्त ॥ १ ॥ ढाल ॥ अगणित गुणमणि आगर, नागर वंदित पाय ॥ श्रुतधारी उपगारी, ज्ञानसागर उवज्झाय ॥ तासु चरणकज सेवक मधुकर परें लयलीन ॥ श्रीजिनपूजा गाइ, जिनवाणी रसपीन ॥२॥ चाल ॥ संवत् गुण युग अचल इंदु, हर्षभरि गाइयो श्रीजिनेंदु॥ तासु फल सुकृतयी सकल प्राणी, लहे ज्ञान उद्योत घन शिवनिशानी ॥ ३ ॥

॥ इति जिनवरवृंदं भक्तितः पूजयंति, परमसुखनिधानं देवचंद्रं स्तुवंति ॥ प्रतिदिवसमनंतं तत्त्वमुद्भासयंति, परमसहजरूपं मोक्षसौख्यं श्रयंति ॥ ९ ॥ ॐ ह्रीँ परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवारणाय श्रीमज्जिनेंद्राय अर्घ्यं यजामहे स्वाहा ॥ ८ ॥

॥ अथ वस्त्र पूजा ॥

॥ शक्रो यथा जिनपतेः सुरशैलचूला, सिंहासनोपरिगतः स्नपनावसाने ॥ दध्यक्षतैः कुसुमचंदनगंधधूपैः, कृत्वार्चनं तु विदधाति सुवस्त्रपूजाम् ॥ १ ॥ इति ॥

॥ तद्वत् श्रावकवर्ग एष विधिनालंकारवस्त्रादिकां, पूजां तीर्थकृतां करोति सततं शक्त्यातिभक्त्यादृतः ॥ नीरागस्य निरंजनस्य विजितारातेस्त्रिलोकीपतेः, स्वस्यान्यस्य जनस्य निर्वृ-

तिकृते क्लेशक्षयाकांक्षया ॥ १ ॥ ॐ ह्रीं परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवारणाय श्रीमज्जिनेंद्राय वस्त्रं यजामहे स्वाहा ॥ इति वस्त्रपूजा ॥

॥ अथ लूण उतारण ॥

॥ लूण उतारो जिनवर अंगें, निर्मल जलधारा मनरंगें ॥ लू० ॥ १ ॥ जिम जिन तडतड लूणज फूटे, तिम तिम अशुभ कर्म बंध त्रूटे ॥ लू० ॥ २ ॥ नयन सलूणां श्री जिनजीनां, अनुपम रूप दयारसभीनां ॥ लू० ॥ ३ ॥ कालवणुं जिनजिनुं दीसे, लाज्युं लूण ते जलमां पेसे ॥ लू० ॥ ४ ॥ त्रण प्रदक्षिण देइ जलधारा, जलण खेपवीये लूण उदारा ॥ लू० ॥ ५ ॥ जे जिन उपर दुमणो प्राणी, ते इम थाजो लूण ज्युं पाणी ॥ लू० ॥ ६ ॥ अगर कृष्णागुरु कुंदरु सुगंधें, धूप करीजें विविध प्रबंधे ॥ लू० ॥ ७ ॥ इति उतारणं ॥

॥ अथ आरति ॥

॥ विविध रत्न मणि जडित रचावो, थाल विशाल अनोपम लावो ॥ आरति उतारो प्रभुजीने आगे, भावना भावि शिवसुख मागे ॥ आ० ॥ १ ॥ सात चौद ने एकवीश वेरा, त्रण त्रण वार प्रदक्षिण फेरा ॥ आ० ॥ २ ॥ जिम जिम जलधारा देइ जल, तिम तिम [illegible] ॥ आ० ॥ ३ ॥ [illegible] मंगल [illegible], [illegible]

[illegible] ॥

दुंग पर मेरन अेगिरमाइं, सुलसा रेवइगाइं,
प्रभुसम पदवी सुन्न निपाइं साधि भगति सहाइं
हो प्रभुजी ॥ ५ ॥ हुं ॥

॥ ढाल ॥ श्री सुपास जिनराज ॥ ए देशी ॥

गणगणधार हुआर, चउदसहस अणगार;
अणगारि हो सहगुण अतिशय सुहामणीजी,
श्रमणीसहसरगार हुआदश अधिक हजार;
गुणवती हो मोभना देवलीन भणीजी ॥ १ ॥
जिनरच अधिक थाक उपरि सहस भवार,
सम्यग् दृष्टि हो दर्शनगुन श्रीसमारगमिनी;
श्रीवर्द्धि नव माम्ना मगन,
अर्जिता जिण मकाणा हो निगमय उल्लगीजी ॥ २ ॥
वादीश्वरसय चार सामन भजक धीर,
एवमवसान्नरम मग्नमतिमगजी,
जिन दिक्षित मुनिराज समता ध्यान समान,
मनुभवा केवलश्री सिद्धिगजी ॥ ३ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] जिनराज,
[illegible] हो [illegible] [illegible] [illegible] जिनगयजी,
[illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ४ ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

ढाल राग गोडि ॥ धन धन सुरतर पानिनती ॥ ए देशी ॥

वीर विहारे विहारे विचरता [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] सोवन पंकज धरता [illegible] [illegible].

॥ त्रुटक ॥

[illegible] अनादि विनय [illegible] [illegible] पवित्रुए,
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible];
धन्य [illegible] धन्य [illegible] धन्य [illegible].
श्रीवीरनायक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १ ॥
इंद्रादिक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] सिंहासन [illegible] [illegible] इंद्र [illegible] [illegible] [illegible];

॥ त्रुटक ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible];
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥२॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible];

॥ त्रुटक ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible];
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible];

॥ त्रुटक ॥

तारता जनकुं भवोदधियी परम पूरण गुणनिहि,
गजराज गति जिनराज पाया परिसरे आव्या वही;
थई वधाई नगर सकले सज्जन वहु साहमे वहे,
वर पुष्प मुक्ताफल वधावी सकल मंगल सुख लहे ॥४॥

॥ ढाल ॥

आयाजी मुनिपति नरपति हरिपाल घर आया,
पायाजी सुमणि सुरतरु अधिक महोदय पाया;
वंछ्याजी अति प्रमुदित भूपती त्रिभुवन तारकज राया,
ठायाजि तसु दर्शन वंछित दाण सभा सुखदाया ॥

॥ त्रुटक ॥

धन धन ते थानक जसु मिनर वीर परम गुरु ठाया,
छत्रत्रय चामर जिनजि सोभित सिंहासन शुभ पाया ॥
मंदार कुसुमे प्रभु वधाया मनरमाया सचिगणे,
चिरकाल जीवो जगत दीवो तरणतारण इंम थूणे ॥ १ ॥
चौमासीजी वर्द्धमान जिन तिहां रह्या
विधिसेतिजी नव नव अभिग्रह मुनिग्रह्या,
परदेशीजी श्रोताजन आव्या वहि;
प्रभुवचनेजी भव्यग्रहे ते गह गहि ॥

॥ त्रुटक ॥

गह गहि आतम अमन विना अन्य ममता भावना,
परभाव परणति दूर रमता सुमति [illegible] [illegible];
वीतराग [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आनन्द पावना,
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इहा लावना ॥ २ ॥

जय जय हे जय जय जगजीवन जगबंधू,
सिद्धारथ हे सिद्धारथ नृप कुलतिलो, ॥ उ० ॥
गुटा हे गुटा आज सर्व कल्यां पुन्य,
भेट्यो हे भेट्यो जिनवर गुणनीलो ॥ उ० ॥ ४ ॥

बलिहारि हे बलिहारि वार हजार,
तुं ज्ञानि हे तुं ज्ञानि गुण सेहरो ॥ उ० ॥
जंगम हे जंगम तीरथ शिवसुखकंद,
निश्चय हे निश्चय शिवसुख देहरो ॥ उ० ॥ ५ ॥

इंद्रादिक हे इंद्रादिकना प्राण आधार,
जीवो हे जीवो कोडि जुगो लगे ॥ उ० ॥
जसु दिठे हे जसु दिठे नाठे दुःख अंधार,
भामंडल हे भामंडल दिनकर झगमगे ॥ उ० ॥ ६ ॥

त्रिभुवन पति हे त्रिभुवन पति तुज वचन रसाल,
मोह्या हे मोह्या सुरपति नरपतिजी ॥ उ० ॥
स्तुति हे स्तुति भवभयनाश दयाल,
करियें हे करियें इणविधि जिनजीनी ॥ उ० ॥ ७ ॥

नमिये हे नमिये भगवान कृपानिधि,
हणिये हे हणिये कर्म महा अरि ॥ उ० ॥
धरियें हे धरियें [illegible],
करियें हे करियें [illegible] ॥ उ० ॥ ८ ॥

॥ [illegible] ॥

[illegible]
[illegible] ॥१॥

प्रभु देशना अतिसुखकार भाख्या निश्चय विवहार,
कारण कारज विधि भाखी शिव साधन शिक्षा दाखी ॥२॥
सर्व जीव अछे सम एप, संग्रह सत्ताने लेश;
जे पर परणति त्यागी, तसु कर्मनी भावठ भागी ॥३॥
जसु तत्वरुचि थयो ज्ञान ते साध्ये साध्य अमान,
निज व्यक्ति शक्ति निज रंगी साधें गुण शक्ति अनंगी ॥४॥
शुचि श्रद्धाभासन रमणे कारक निज कार्यने गमणे,
भागे परपरणति रित एकत्वे तत्त्व प्रतित ॥ ५ ॥
परभाव अरोचक दृष्टि निज ज्ञानसुधानि वृष्टि,
परभोगी भाव अभावे करतादि थया निज भावे ॥६॥
जाणि निज परणति स्वामी, कुंण थाइं परपरणामी;
ए भावे निज गुण पोपे, ते शुद्ध समाधि संतोपे ॥७॥
दुःख पोषक पर परसंग, न भजेहेत धरि रंग;
निज तत्त्व रमो भविप्राणी, देवचंद वदे इम वाणि ॥८॥

॥ ढाल ॥ घहिनी रही न सकि तिसेंजी ॥ ए देशी ॥

सुरनरतिरिय समूहर्मेजी बेठा श्रीवर्द्धमान;
जगत दया उपदिसेजी, शुद्ध धर्म सुख ध्यान ॥१॥
जिणेशर तुम मुज प्राणाधार ॥ टेक ॥
भवभय पीडित जीवनेंजी, त्राणशरण सुखकार;
सोल पहोरनी देशनाजी, वीर कही तिणवार
क्षीराश्रववचने कह्याजी, प्रश्न उत्रीस उदार जिने० ॥२॥
पंचावन अध्ययनमांजी, सुखविपाक स्वरूप;
वली तेता अध्ययनमांजी, दुःखविपाक विरूप जिने० ॥३॥

तजनारे निशी पाछलीजी करिया जुजी वीर्य,
योगरोध बादर करीजी; रोध्यो सूक्ष्म वीर्य. जिने० ॥४॥
सकल प्रदेश घन करीजी आतमविभावालगाढ,
प्रकृति पचोत्तर खेरोजी, बृन तेर प्रकृतिनो दाह जिने० ५॥
पर्यंकासन शिर व्यंजी स्वाति नक्षत्रे स्वाम,
नागकरण दर्श कहजी पूर्णानंदि धाम. जिने० ॥ ६ ॥
अकृतमाणगनियी तजोजी गुहणमे लोगंत,
पूर्वे प्रयोग अबंधनेजी ऊर्ध्वगतिने नेन. जिने० ॥ ७ ॥
अवगाहना कर ध्यानीजी मालद अंगुलमान
सर्वे प्रदेश गुणपजाजाजी तुल्य प्रमाण समाण. जिने० ॥८॥
सर्वे शक्ति निज कार्यनेजी कर्ता स्व निःप्रयाण,
सादि अनन्तान करुजी, आतमशक्ति निधाण. जिने०॥९॥
जिन शासन छद्मस्थजी, वर धर्म सुविचार,
ते पद्म अशिक नाथजी, मग शिवगामन दाव. जिने० १०॥
विचरता परमश्रण पदजी, निज धाम तिरूण,
अन्य पामल उपदिष्टवाजी, नयनिश्चये पूर्ण. जिने० ॥११॥
[illegible]
[illegible] जिने० १२॥
[illegible]
[illegible] जिने० १३॥

॥ [illegible] ॥

[illegible]

अवन्ने अगंधे अफासे अरूपी, प्रभु तुं थयो अतत संठाण हीनो,
अमोहि अकर्ता अभोगी अयोगी, अवेदी अखेदी गुणानंद पीनो.
॥ २ ॥ प्रभु० ॥
प्रभु जाणतो ज्ञानथी तुं सर्व [illegible], वस्तुने देखतो सर्व सामान्य भावो;
आतमा गुणरमण, अनुभव रसे पूरतो तें लह्यो पूर्ण शुद्धात्म भावो.
॥ ३ ॥ प्रभु० ॥
आत्मगुण दान लाभे अनंते रम्यो, भोग उपभोग निज धर्म लीनो;
सकल गुणकार्य सहकार विरय वरदा, प्रबल वीर्य गदे थिर अदीनो.
॥ ४ ॥ प्रभु० ॥
तुं क्षमी तुं दमी तुंहि मार्दवमयी, आर्जव विमुक्ति समता अनंति;
तुं असंगी अभंगी अनंगी प्रभु, सर्व प्रदेश गुणशक्तिवंति ॥५॥
प्रभु० ॥
प्रमाणी प्रमेइ अभेइ अछेदि, असंख्यात्म देशी अदेशी अवेशो;
स्वपं ध्यानलुब्धो सदा ध्येयरूपी मुनिमानसे जेहनो वास देशो.
॥ ६ ॥ प्रभु० ॥

॥ दोहा ॥

[illegible]
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible]
[illegible] ॥ २ ॥
[illegible]
[illegible] ॥ ३ ॥
[illegible]
[illegible] ॥ ४ ॥

॥ ढाल ॥ मेरे नंदना ॥ ए देशी ॥

एतला दिन लगे जाणतारेहां, प्रभु सनमुख बहुवार; मेरे साहिबा॥
वंदन विधि नाटक करिरेहां, लहेस्युं लाभ अपार. मेरा०॥१॥
बोलो नाथ दयाल क्रिपानिधि करुणाल तुंज वयणां गुणमाल,
थई सर्वे निहाल तत्त्वरमण संभाल थाय ज्ञान विशाल. मे० ॥२॥
एक वचन श्रीवीरनोरे कापे भवनी कोडी;
अविनाशी सुख आपवारे कोण करे तुंज होडि. मे० ॥३॥
तुंज सरीखे साहेब छतेरे करता मोटी हुंस;
मोह महारिपु जीपिनेरेहां करस्यां कर्मनो ध्वंश. मे० ॥४॥
मोहाधीन जे जीवडारेहां तृष्णा तापें तत;
पुद्गल आशाभ्रंमि विषपारस संलिप्त. मे० ॥ ५ ॥
तनु विभावरंगी दुखीरेहां आवृत आतमशक्ति;
तेहवाने कुंण तारसेरेहां देखाडि गुणव्यक्ति. मे० ॥ ६ ॥
बहु परिचित परभावनारेहां चपल एकत्व अपाय; मे०
करतां कहे कुंण वारसेरेहां ते देखाडो ताय. मे० ॥ ७ ॥
विषयादिक आसेवतांरेहां थातो भ्रम संकोच; मे०
तुज उपगारे तेहवेरेहां थास्ये किमते सोच. मे० ॥ ८ ॥
वीर चरण जायोअछेरेहां सुणवा अमृत वाणि; मे०
ते माटे सुर भोगनारेहां करता नवि मंडाण. मे० ॥ ९ ॥
कृपा करो एक वचननीरेहां अब पिछो वीतराग; मे०
महा मोहना कष्टथीरेहां छोडावो महाभाग. मेरा० ॥१०॥
भरतक्षेत्रना जीवनेरेहां तुंजविण कुण रखवाल;
दुसम काल कुज्ञानमारेहा पडत्रो कवण हवाल. मेरा० ॥११॥
मेवमुनिने गर्भीयारेहा राख्या मोमल्लट. मेरा०
ख्यक चित्रपभरा नयारेहां नायों चमर सुरिंद. मेरा० ॥१२॥

हुं सोहन पति विनडुरेहां दया करो मुज देव; मेरा०
सदा हजूरि दासनीरेहां मानो विनति सेव. मेरा० ॥१३॥
नित्य मनोरथ नव नवारेहां करता प्रभु अवलंब मेरा०
ते दिशी दाख्यो सर्वनेरेहां प्रभुजी ज्ञान कदंब मेरा० ॥१४॥
एह श्रमण श्रमणी भणीरेहां निज आराधक भाव मेरा०
केहने पूछी आलोयस्येरेहां अंतर गत परभाव मेरा० ॥१५॥
भव्य अभव्य निरधारतारेहां पूछीशुं कुण पास मेरा०
आश्रव पीडित जीवनीरेहां कुण सुणसे अरदास मेरा० ॥१६॥
ते सवि मनमां रहिरेहां चाल्यो तारक सिद्धि मेरा०
आणा आलंबन करिरेहां करवी कार्य समृद्धि मेरा० ॥१७॥
तोपण एहना नामथीरेहां राखो मोटी आश मेरा०
देवचंद्रनी सेवनारेहां शिव सुख कारण खास मेरा० ॥१८॥

॥ दोहा ॥

इंम दुःख भरि इंद्रादिके विमन चित्त सुखदिन
कलश विवे नवर विधा चित्त भक्ति लयलीन ॥ १ ॥
करि विलेपन अति सुरभि बहुविध फूलनी माल
आभरणादिक अलंकर्या श्री जिन जगत दयाल ॥ २ ॥
सहस्र थंभ शिबिका रचि छत्रत्रय अभिराम
सिंहासनपद पीठ विधि चामर ध्वज अभिराम ॥ ३ ॥
प्रभु वेसार्या पालखी उपाडे सुरइंद
वैमानिक भुवनाधिपति व्यंतर सुरवृंद ॥ ४ ॥
चामर विंजे भक्तिसुं शक्र ईशान
दीवे आगलने धर्मनो रूप दें शिक्षा दान ॥ ५ ॥

॥ गाथा ॥

दुल्हो जिणंदजोगो दुल्हंत धम्म सवण निसार;
दुलहा मुख पवित्ति, सामग्गी संगमो दुल्हो ॥ १ ॥
हाहाइय किं जायं, अरहो सिद्धो महोदयं पत्तो;
अम्हाण पुट्ठ साहण, हेउ विजोग भवं दुक्कं ॥ २ ॥
वीर विहम्मि धम्मा, धारेण असरण कठ्ठिया;
वेसिंदुसमकाले, कोदायी पुरिसंवम्मं ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥ मेघमुनिसर काइं डमडोळइं रे ॥ ए देशी ॥

गीत गान नाटिक करीजी, करुणा रसमय सर्वे;
हा नायक हा तारकंजी, कहता वदन सुपर्वे
नायजी मोटो तुंज आधार ? ॥
तुं त्रिभुवन निसतार; तुं प्रभु ज्ञान आधार,
तुंज सरिखो दातार दुलहो एणिवार नाय० २ ॥
चंदनकाष्टे जिननतुंजी दाहे अग्निकुमार,
दुखभरि सजल नयणे करीजी वायु ते पवन कुमार नाय० ३॥
उदधि कुमार जले करीजी शीतल कीधि टाय,
जिनदाढा ले भक्तियांजी सुरपति दक्षिण वाम नाय० ४ ॥
अस्थि भस्म माटि ग्रहेजी सुरनर अवर अनेक,
वंदे पूजे भक्तियांजी धम्मा विन विवेक नाय० ५ ॥
देवसम्मा प्रतिबोधिजोजी वळिया गौतम स्वामि,
सांजे वनमां मुनि वदयाजी पा ा थ ो विरहान नाय० ६॥
पावा परिसर गणधरजी गी मय िदि टाय,
वीर विरह गौतम मुण्या ी ेन त द ग न माद नाय० ७॥
हे प्रभु मुज बालक भणिजा वे न जणावु आम,
मूका ए मुने वग रोजा ए निरान्धो स्वाम नाय० ८ ॥

हवे कुण संशय भेदसेजी केसे सूक्ष्म भाव,
कोने वांदिश भगतिसुंजी करसुं विनय स्वभाव नाथ० ९॥
वीर विना केम थायसेजी मुने आतमसिद्धि,
वीर आधारे एतलाजी पाम्या पूरण समृद्धि, नाथ० १०॥
इम चिंतवतां उपन्योजी वस्तु धर्म उपयोग,
करता सहु निज कार्यनाजी प्रभु नैमित्तिक योग, नाथ० ११॥
ध्यानालंबन साधनोजी, ते तो सदा अभंग,
तिण प्रभु गुणने जोइवेजी, जोइतुं आतम अंग, नाथ० १२॥
आतम भासन रमणथीजी भेदे ज्ञान पृथक्त्व,
तेह अभेदे प्रणम्योजी पाम्यो तत्त्व एकत्व नाथ० १३॥
ध्यान लीन गौतम प्रभुजी, क्षपक श्रेणि आरोहि,
घन घाति सविचूरियांजी, कीधो आत्म अमोह नाथ० १४॥
लोकालोकनी अस्तिताजि, सर्वस्व पर परजाय,
तिन कालना जाणियाजी, केवल ज्ञान पसाय नाथ० १५॥
प्रभु प्रभु करतां प्रभु थयाजी श्री गौतम गणराय
ततक्षिण इंद्रादिक मल्याजी, एह वधाई थाय नाथ० १६॥
संघ सकल हरखित थयोजी, जाणि गौतम ज्ञान,
कारण टूट पडि नहींजी, एह पुण्य अमान नाथ० १७॥
सुरपति नरपति जन सहूजी चौविह संघ महंत,
आव्या गौतम पासनेजी जय जय शब्द कहंत नाथ० १८॥
करि उत्सव पद थापियाजी जगगुरु पाटेस्वार,
इंद्रादिक वंदन करीजी, बेठा सभा मझार नाथ० १९॥
तिन भुवन हरखीत थयाजी, वीर पटोधर देखी,
हरखे गुण गावे घणाजी, चौविह संघ विशेष नाथ० २०॥

वीर प्रभु पाटे थयाजी, गौतम ज्ञान निधान,
देवचंद्र वंदे सदाजी, समता अमृत खान नाथ० २१

॥ दोहा ॥

श्री गौतम गुरु देशना, सांभळी उठ्या सर्व,
सुरवर सहु नंदीश्वरे पोहत्या भगति अखर्व ॥ १ ॥
बार वरस केवलिपणे, विचर्या गौतम स्वामी,
आठ वरस केवलिनिधि, श्री सुधर्म अभिरामी ॥ २ ॥
वरस चौमालीस केवली, श्री जंबुसुखकार,
त्यार पछी श्रुत ज्ञान बल, चाले सासन सार ॥ ३ ॥
एकवीस सहस वरस लगे, रहस्ये वीरवचन;
तसु आलंबन जे रमे, तेहीज जीव सुधन्न ॥ ४ ॥

॥ ढाल ॥

धन्य धन्य सासन श्री जिनवरनो, जिहां वर वाचक वंश रे,
दूसम काले जास प्रसादे लहिइं धर्म परसंस रे धन्य० ॥ १ ॥
आर्य प्रभ सीजंभवसूरि, सूरि यशोभद्र स्वामी रे,-
श्री संभूति विजय गुनसागर, भद्रबाहु वर नाम रे धन्य० ॥ २ ॥
दश निर्युक्ति छेद वर आगम, उधर्या वस्तु स्वरूप रे,
संपूरण द्वादस आगम धर, ज्ञानक्रिया विधि रूप रे धन्य० ॥ ३ ॥
थूलभद्र कोस्या प्रतिबोधी, महागीरि सुरिसुहस्ति रे,
वयरस्वामी जे पुन्न दशधर युग प्रधान सु प्रशस्त रे धन्य० ॥ ४ ॥
भाष्योद्धार कारक उपगारी श्री जिनभद्र मुणिंद रे,
चूर्णी करता श्रुत उद्धरता श्री देवर्द्धि मुणिंद रे धन० ॥ ५ ॥
पुस्तकारूढ कर्या जिन आगम, राख्यो सासन शुद्ध रे,
टीकाकार श्री शिलांग सूरिवर श्री अभयदेव प्रबुद्ध रे धन० ॥ ६ ॥

श्री हरिभद्र मलयगिरि पंडित हेमसूरी मल्हार रे,
चंद्रमहत्तरसूरि जिनेश्वर जिन वल्लभ सुखकार रे धन० ॥ ७ ॥
श्री देवेंद्र हेम आचारिज कुमारपालज सुभक्ति रे,
श्री खेमेंद्र प्रमुख श्रुतरसिया दूसम काले व्यक्त रे धन० ॥ ८ ॥
दुपसहसूरि छेल्ला गणधर आराधक जिन आण रे,
चोविस संघ शुधश्रद्धाधर, पंचांगी परमाण रे धन० ॥ ९ ॥
द्रव्यछक नव तत्त्वनी श्रद्धा, ज्ञानक्रिया शिवसार रे,
उत्सर्गने अपवाद साधना, निश्चयनयव्यवहार रे. धन० ॥१०॥
निमित्त वली उपादान ने कारण, योग साधन तीन प्रकार रे,
प्रवृत्ति विकल्प तथा परणति, शुचिकरता भव निस्तार रे. धन० ११॥
पुष्ट निमित्त सेवनथी आतम, परणति थाइं शुद्ध रे,
तत्त्वालंबि तत्त्व प्रगटता, साचे पूर्ण समृद्ध रे. धन० ॥१२॥
देवचंद्र श्रीवीर चरणयुग, सेवो भक्ति अखंड रे,
सासन संगी आणा रंगी, ते थाइ गतदंड रे. धन० ॥१३॥

॥ ढाल ॥ कुमत इंम सकल दूरे करि ॥ ए देशी ॥

भगति इंम चित्त साची धरी धरइ सासन रीत रे,
वारीइं दुष्ट दुरवासना ध्वंसीइं भवतणी भिती रे. भग० १॥
वीर जिनराज सम प्रभु लहि गहगहि बुद्धि गुणग्राम रे,
कोण पर देवने आदरे, कल्पतरू सम प्रभु पामि रे. भग० २॥
एक आधार छे ताहरो माहरे दिनदयालरे,
सार कीजे हवे दासनि नाथ जगजीव प्रतिपालरे. भग० ॥३॥
विनती दासनी धारीइं तारिइं कर उपगार रे,
दोष अनादि निवारिइं आपि इम अनुभव सार रे. भग०॥४॥

मोह जंजाल वशे जीवडा रडवडे पुद्गल राग रे,
वेहने शुद्ध रतनत्रयि दाखवि वे महाभाग रे. भग० ॥५॥
एक आलंबन स्वामीनो दासना चित्तने नाह रे,
असरण सरण भवअडविनो तूंहि परम सत्थवाह रे. भग० ॥६॥
तुंज गुण रागभर हृदयमें किम वसे दुष्ट कषाय रे,
निरमल तत्त्वना ध्यानथी ध्याय निरमल थाय रे. भग० ॥७॥
ध्येयनी शुद्धता रसथकि विद्धअय कंचन थाय रे,
तिम अमोहिरसि चेतनना पूर्ण आनंद उपाय रे. भग० ॥८॥
माहरी परणति दोषनी तीव्रता वारणहार रे,
ताहरा सासन श्रुततणो राग छे एक आधार रे. भग० ॥९॥
खिण खिण नाम तुमचो, जपुं तुंज गुण स्तवन उल्लास रे,
चींतवि रूप प्रभूजी तणो, किजीये आत्म प्रकाश रे. भग० ॥१०॥
वलि वलि विनवुं सामीजि नित्यप्रत्ये तुंहिज देव रे,
शुद्ध आशयपणे मुज होज्यो भवभव ताहारी सेव रे. भग० ॥११॥
वीर आणा अविहडपणे आदरु साधन एह रे,
ताहारि साखथी सत्य छे, सीझस्ये माहरे वेह रे. भग० ॥१२॥
भद्रकभावरागीपणे, विननी एम कराय रे,
देवचंद्र पद निपजे नाथजी भगति सुपसाय रे. भग० ॥१३॥

॥ ढाल ॥ राग धन्याश्री ॥

गावो गावो रे जिनराजतणा गुण गावो,
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरणनी निर्मल विग्ना पावो रे; जि० टेक॥
पंचकल्याणक स्तवना स्तवना आतम तत्त्व नीपावो,
मोह महारिपु दोष अनादि रागिमें नेह गमावो रे; जि० ॥१॥

आवती चोवीशीना प्रथम जिनेश्वर पद्मनाभ स्वामीनुं स्तवन ॥

॥ पंथडो नीहाळुं रे ॥ ए देशी ॥

वाटडी वीलोकुरे भावी जिन तणी रे, पद्मनाभ जसु नाम;
दुसम दोषीरे भरत कृपाकररे, उपशम अमृत धाम ॥ वाटडी० १॥
वीर निमित्ते श्रेणीकने भवेरे, तुमे बांध्युं जिन नाम;
कल्याणक अतिशय उपगारनारे, वीर समान समाव॥ वाटडी० २॥
सुदि असाढे छठीने दिनेरे, उपजशो जगनाथ;
चैत्र धवल तेरस प्रभु जनमशोरे, थाशे मेरु सनाथ ॥वाटडी० ३॥
मागसीर वदी दसमी दीक्षा ग्रहीरे, वरशो चरण उदार;
सुदी वैशाखे दसमे केवळी रे, चौविह संघ आधार ॥वाटडी० ४॥
समवसरण सींहासन बेसिनेरे, प्रभु करशो व्याख्यान;
आतम धर्म सुणी ते अवसरेरे, धरतो प्रभु गुण ध्यान
वाटडी० ॥ ५ ॥
संमुख त्रिपदी पामी गणधरारे रचशे द्वादश अंग;
ते वेला हुं प्रभु चरणे रहुंर, जिनधरमे दृढरंग ॥ वाटडी० ६ ॥
दीवाळी दिन शिवपद पामशोरे, शुद्धातम मकरंद;
देवचंद्र साहेबनी सेवनारे, करता परमानंद ॥ वाटडी० ७ ॥

॥ श्री सीमंधरस्वामी विनतिरूप स्तवन ॥



प्रभुनाथ तुं तिपलोकनो, प्रत्यक्ष त्रिभुवन भाण;
सर्वज्ञ सर्वदर्शी तुंमे शुद्ध गुणनी खाण ॥ १ ॥
जिणजी वीनती छे एह (ए टेक)
प्रभु जीव जीवन भव्यना, प्रभु मुज जीवन प्राण;
ताहरे दर्शनें सुख लहुं, तुंहीज गति स्थिति जांण जि० ॥ २ ॥
तुज विना हुं चिहुं गति भम्यो, धर्या भेख अनेक;
निजभावने परभावनो, जाण्यो नहीं सुविवेक जि० ॥ ३ ॥
धन्य तेह जे नितु प्रहसमें देखे श्रीजिनमुख चंद;
तुज वाणी अमृतरस लही, पामे ते परमानंद जि० ॥ ४ ॥
एक वचन श्री जिनराजनो, नय गम भंग प्रमाण;
जे तुंने दखिणी ते टळे, जिन तत्त्व सिद्धि अमान. जि० ॥५॥
जे क्षेत्र विचरो नाथजी, ते [illegible] अति सुलक्षण;
तुज विरह जे क्षण जाय छे, ते मानीये अकयथ्य. जि० ॥६॥
श्री वीतराग दर्शन विना, वीत्यो जे काल अतीत;
ते अफल [illegible]. [illegible]. जि० ॥ ७ ॥
प्रभु पास तुज [illegible];
दिलभर जो तुजसो रहे तो [illegible]. जि० ॥ ८ ॥
प्रभु [illegible];
[illegible]. जि० ॥ ९ ॥
[illegible];
[illegible]. जि० ॥ १० ॥

जो क्षेत्र भेद टळे प्रभु तो सरे सवळां काज;
सन्मुखें भावि अभेदता करी वरुं आतमराज. जि० ॥ ११ ॥
परपुंठे इहा जेहनी, एवडी जो छे खाम;
हाजर हजुरी जो मिळे, तो मिळे आतम राम. जि० ॥ १२ ॥
हुं इन्द्र चन्द्र नरेन्द्रनो, पद न मागुं तिलमान;
मागुं प्रभु मुज मन थकी, न वीसरो क्षणमात्र. जि० ॥ १३ ॥
जहां पूर्ण शुद्ध स्वभावनी, नवि करी शकुं निज ऋद्धि;
तहां चरण शरण तुमारडां, एहिज मुज नव निधि. जि० ॥१४॥
माहरी पूर्व विराधना, जोगे पड्यो ए भेद;
पण वस्तुधर्म विचारतां, तुज मुज नही छे भेद. जि० ॥१५॥
प्रभु ध्यानरंग अभेदथी, करी आतमभाव अभेद;
छेदी विभाव अनादिनो, अनुभवुं स्वसंवेद्य. जि० ॥ १६ ॥
वीनतुं अनुभव मिलने, तुं न करीश परतर चाह;
शुद्धात्मरस रंगी थइ, करे पूर्ण शक्ति अबाह. जि० ॥ १७ ॥
जिनराज सीमंधर प्रभु ते, मिल्यो कारण शुद्ध;
हवे आतम सिद्धि निपायवी, शी ढील करीये शुद्ध. जि० ॥१८॥
कारणे कारज सिद्धिनो, करो थटे न विलंब;
साधवी पूर्णानंदता, निज कर्तृता अवलंब. जि० ॥ १९ ॥
निज शक्ति प्रभु गुणमें रमे, ते करे पूर्णानन्द;
गुण गुणी भेद अभेदथी, पीजीये शम मकरन्द. जि० ॥ २० ॥
प्रभु सिद्धबुद्ध महोदयी, ध्याने थई लयलीन;
निज देवचंद पद ते लहे, निरमल ज्ञान गुण पीन. जि० ॥२१॥

॥ इति वीनती समाप्त ॥

॥ श्रीसिद्धाचल चैत्य परिवाडी स्तवन ॥



भरत नृप भावशुं ॥ ए देशी ॥

शेत्रुंज गिरि भेटीये ए भेटीये कर्म कलेश ॥ सेत्रुंज० ॥
मिथ्या दोष निवारवा ए धारवो समकित देश ॥ से० ॥१॥
कालअनादि भवोदधिए भमतां भव समुदाय ॥ से० ॥
यान पात्र सम जाणजो ए एहिज तीरथराय ॥ से० ॥ २॥
मानव भव पामी करीए ए तीरथ गुणगेह ॥ से० ॥
जेणे नवि भेटयो जुगतसुं ए ते दुःखीयामें रेह ॥से०॥३॥
इहां सिद्धा पण कोडीसुं ए गणधर श्री पुंडरीक ॥ से० ॥
चैत्र शुकल पुनिम दिनेए निज सत्ता गुण ठीक ॥से०॥४॥
फागुण सुदि सातम लहूयें नेमि विनमी शिवनाथ ॥ से० ॥
चोसठि नमी पुत्री वलुए आठमें केवलज्ञान ॥ से० ॥ ५॥
सागरमुनि तिन कोडीदीए कोडीपी मुनि श्रीसार ॥ से० ॥
वेर कोडिथी सिवलहुए सोमश्री अणगार ॥ से० ॥ ६ ॥
ऋषभ वंश आदितयशा ए, तसु सुत आदित्य शांति ॥से०॥
एकलाख परिवारसुं ए, पाम्या परम प्रशांति ॥ से० ॥ ७ ॥
ऋषभ वंश मुनिवर बहुए, गणधर कोडि अनंत ॥ से० ॥
सिव पहोता सिद्धाचलेए निरमले निर्ग्रंथ ॥ से० ॥ ८ ॥
दश कोडस्युं सिव लहुए, द्राविड ने वारिखिल्ल ॥ से० ॥
[illegible] सिद्धिवरीए [illegible] [illegible] ॥ से० ॥ ९ ॥
आदिनाथ [illegible] कोडि [illegible] [illegible] ॥ से० ॥
श्री जितसेन [illegible] ए, [illegible] [illegible] [illegible] ॥ से० ॥१०॥

आणंद रक्षित भावनाए भावनां सिवपुर पत्त ॥ से० ॥
कारासी इगसहसयीए, मुनी सुभद्र संघ सत्त ॥ से० ॥११॥
रामचंद्र पण कोडयीए, नारदमुनि पिसताल ॥ से० ॥
पांडव कोडि वीसर्यीए, सिव पोंन्या समकाल ॥ से० ॥१२॥
संब प्रद्युम्न मुनिश्वरुए, मुनि साढीनिण कोड ॥ से० ॥
विमलाचले निर्मल थया ए, ते प्रणमुं बे करजोड ॥ से० ॥१३॥
थावच्चा सुत सुकमुनिए, सेलंग पंथक सिद्ध ॥ से० ॥
वसुदेव घरणी सिव लघु रे, सहस पैत्रीस प्रबुद्ध ॥ से० ॥१४॥
येदरतिनिकरमताए सामी सल चोफाल ॥ से० ॥
श्री वससार आनंतताए, पामी गुण संभाल ॥ से० ॥१५॥
सिध्या बहु मुनि इण गिरिवरेंए, यादव वंश अनेक॥ से० ॥
श्रेणिक कुल साधु साधवीए, सिद्ध लह्या थिर टेक॥ से० ॥१६॥
विद्याधर भूचर घणाए, इहां पाम्या गुण कोडि ॥ से० ॥
आतम हेते एहनीए, को न करी शकें होडि ॥ से० ॥१७॥
तिवारें तीरथपतीए, ए तीरथ बहुवार ॥ से० ॥
आव्या भविजन तारवाए, निरमम निरहंकार ॥ से० ॥१८॥
पुंडरगिरिनी सेवनाए, जेह करे भवी जीव ॥ से० ॥
ते आतम निरमल करीए, पामे सुख सदीव ॥ से० ॥१९॥
ए गिरिराजने सेवतांए, पामे देवचंद्र पदसार ॥ से० ॥
भव भव ए तीर्थ सेवनाए, होज्यो परम आधार. ॥ से० ॥२०॥

॥ कलस ॥

ईम सकल तीरथ नाथ सेत्रुंज शिखर मंडण जिनवरो
श्री नाभिनंदन जग आनंदन विमल शिव सुख आगरो

सुचिपूर्ण चिद्घन ज्ञानदर्शन, सिद्ध उद्योत सुभ मनें
निज आत्मसत्ता शुद्ध करवा वीरजिन केवल दिनें
श्री सुविहित खरतर गच्छ जिनचंद्र सुरि साखा गुणनीलो
उवझायवर श्री राजसारु, सीस पाटक सिर तीलो

श्री ज्ञानधर्म्मसूम पाठक देवचंद्रें वीनव्यो जगहितकरो
इति चैत्रपरवाडी सिद्धखेत्रनी संपूर्ण ॥

॥ श्री सिद्धाचल स्तवन ॥

धन धन मुनिवर जे संजमवर्याजी परिहर्या पाप अढाररे
समता आदरी मुनि ममता तजीजी सम्यक् क्षमा दया भंडाररे.
धन धन० ॥ १ ॥
रुषभ वंश द्रवड नृप पुत्र वेजी द्रविड अने वीजो वारिखिल्लरे
भूमि निमित्ते रणरसीया थकाजी तापस संयोगे काढ्यो सल्ल रे.
॥ धन० ॥ २ ॥
संजम लीयो भट दशकोडियीजी पुहुता सिद्धाचल गिरिशृंग रे
अणसण करि निज तत्वे परिणम्याजी त्रिविध त्रिविध
वोसिरावी संगरे ॥ धन० ॥ ३ ॥
रत्नत्रयी रमी आतम संवरीजी ओलखी छंड्यो सर्व विभावरे
प्रत्याहार करि धरी धारणाजी वलगा निर्मल ध्यान स्वभावरे
॥ धन ॥ ४ ॥
मैत्रिभाव भजी सवि जीवथीजी, करुणाभाव दुःखवी तेमरे
पंच गुणीनी नित्य प्रमोदताजी, शुभ अशुभ विपाके मध्या प्रेमरे
॥ धन० ॥ ५ ॥

पिंडस्थे अरिहंतादिक तणीजी, मुद्रा आसन शुभगाकार रे
ध्याता अतिशय उपगारीपणेजी ध्यानपदस्थ थपो सुविचार रे
॥ धन० ॥ ६ ॥

निर्मल सिद्ध स्वभावे तन्मयीजी, ज्ञानादिक गुणथी थिर भावरे।
सिद्ध शुद्ध गुणीगुण गावताजी, अविलंब्यो रुपस्थ स्वभावरे
॥ धन० ॥ ७ ॥

सत्तागत आतमगुण ऐकताजी, ध्याता निज गुण पर्यायरे।
भेद स्वभावे थइ अभेदताजी, तन्मय तत्त्वे मोहविलायरे ॥
धन० ॥ ८ ॥

मोह क्षय थये घातिदलक्षय गयाजी, पाम्या निर्मल केवल ज्ञानरे।
सिद्ध थया दसकोडि मुनिसरुजी, कार्तिक शुदि पुनम दिन
मानरे ॥ धन० ॥ ९ ॥

कार्तिक शुदि पुनिम जे सिद्धाचलेजी, वंदे पुजे धन नर तेहरे।
उत्तम गति पामी शिव सुख लहेजी, थाये ते अनुपम सुख
गेहरे ॥ धन० ॥ १० ॥

सिद्धाचल सिध्या मुनिरायनेजी, गावो ध्यावो धरि आणंदरे।
सद्गुरु पाठक श्री दीपचंदनोजी, शिष्य गणि भांखे देवचंदरे ॥
धन० ॥ ११ ॥

श्री सिद्धाचल स्तवन.

चालो सखि जिन वंदन जइए, श्री सिद्धाचल अंगेरे।
अनंत सिद्धि स्थान सिद्धाचल, फरसी जे मन रंगेरे ॥चालो॥१॥
गुरुआणारी संघे मुनिदिन, पोते पापविहारीरे।
एकल आहारी भूमि संथारी, सकल सचित परिहारीरे ॥चालो॥२॥
श्रावक श्राविका प्रभु गुण गाती, प्रभु भक्ति अतिसारीरे।
तीर्थपणे नमन उलटे गजगति चतुर सुहागनरे ॥चालो॥३॥

जिहां मुनि कोडि शिवगेह पहोता, निज अनुभव उल्लसवीरे;
विषय दोष उपशम तरसि, रत्नत्रयीमें रमवीरे ॥चालो॥४॥
ऋषभादिक जिन फरसित अंगे, फरस्या पाप पुलाइरे;
शुद्ध गुण स्मरण गुण प्रगटे, ध्यान लहर लीलाइरे ॥चालो॥५॥
अतीत अनागतने वर्तमाने, ए तीर्थ शिर टिकोरे;
श्री शेत्रुंजा भक्ते पाने, देवचंद्र पदनिकोरे ॥ चालो ॥ ६ ॥

श्री सिद्धाचल स्तवन.

चालो चालोने राज श्री सिद्धाचल जइए;
श्री विमलाचल तीरथ फरसि, आतम पावन करीए ॥चालो॥१॥
इण गिरिवर मुनिवर कोडि, आतम तत्त्व निपायो;
पूर्णानंद सहज अनुभव रस, महानंद पद पायो ॥चालो॥२॥
पुंडरिकप्रमुख मुनिवर कोडि, सकल विभाव गमायो;
भेदाभेद तत्त्व परिणतिथी, ध्यान अभेद उपायो ॥चालो॥३॥
जिनवर गणधर मुनिवर कोडि, ए तीरथ रंगराता;
शुद्ध शक्ति व्यक्ते गुणसिद्धि, त्रिभुवन जिनना त्राता ॥चालो॥४॥
ए तीरथ फरसे भव्य परीक्षा, दुरगति उच्छेद;
सम्यग् दर्शन निर्मल करण, निज आनंद अभेद ॥चालो॥५॥
संवत अढार चोडोत्तर वरसे, सित मृगसर तेरसीये;
श्री सुरतथी भक्ति हरखथी, संघ सहित उल्लसीये ॥चालो॥६॥
कचरा कीका जिनवर भक्ति, रूपचंद (कुशलचंद) [illegible];
श्री संघने प्रभुजी भेटाव्या, ज्ञानादि नमन जिणंद ॥चालो॥७॥
ज्ञानानंदीत त्रिभुवन वंदीत, परमेश्वर गुण लीना;
देवचंद्र पद पामे अदभुत, परम मंगल लयलीना ॥चालो॥८॥

॥ श्री वीरप्रभुनुं दीवालीनुं स्तवन ॥

मारग देशक मोक्षनोरे, केवलज्ञान निधान ॥
भावदया सागर प्रभुरे, पर उपगारी प्रधानोरे ॥ १ ॥
वीर प्रभु सिद्ध थया, संघ सकल आधारो रे ॥
हवे इण भरतमां, कोण करशे उपगारो रे ॥ वीर० ॥२॥
नाथ विहूणुं सैन्यज्यूं रे, वीर विहूणोरे संघ ॥
साधे कोण आधारथीरे, परमानंद अभंगो रे ॥ वी० ॥३॥
मात विहूणो बाल ज्युंरे, अरहो परहो अथडाय ॥
वीर विहूणा जीवडारे, आकुल व्याकुल थाय रे ॥ वी० ॥४॥
संशय छेदक वीरनोरे, विरह ते केम खमाय ॥
जे दीठे सुख उपजेरे, ते विण केम रहेवाय रे ॥ वी० ॥५॥
निर्यामक भव समुद्रनोरे, भव अडवी सत्थवाह ॥
ते परमेश्वर विण मलेरे, केम वाधे उत्साह रे ॥ वी० ॥६॥
वीर थकां पण श्रुततणोरे, हतो परम आधार ॥
हवे इहां श्रुत आधार छेरे, अहो जिन मुद्रा साररे ॥ वी० ॥७॥
त्रण काले सवि जीवनेरे, आगमथी आणंद ॥
सेवो ध्यावो भवि जनारे, जिन पडिमा सुख कंदरे ॥ वी० ॥८॥
गणधर आचारज मुनिरे, सहुने एनि परे सिद्धि ॥
भव भव आगम संगथीरे, देवचंद्र पद लीधरे ॥ वी० ॥९॥

॥ श्री नवानगर आदिजीन स्तवन ॥



नवानगरमे भेटीए जिनवर उपकारी,
परमानंद महारसी मूर्ति मनोहारी. नवा० ॥ १ ॥
घणा दीवसनी हुंसडी हुती मनमांहे,
ते सवि आज सफल थइ प्रभुने जगनाहे. नवा० ॥२॥
दरिसण दीठे देवनां दुःख जाए दूरे,
चिदानंद रस उपजे समता रस पूरे, नवा० ॥ ३ ॥
जिन मुद्रा जिनवर सर्मी शिव साधन भांखी,
श्री अरिहंत अवलंबने पूर्णता दाखी. नवा० ॥ ४ ॥
पण संवर जिन भक्तिनो फल मस्तो तोल्यो,
हितसुख निश्चयपणो आगममें बोल्यो. नवा० ॥ ५ ॥
तुंगीया नगरीना श्रावके जिन पूजा [illegible],
भगवईमें [illegible] पूजन विध [illegible]. ॥ ६ ॥
[illegible].
विहरती जिन [illegible] पूजना अधिकार [illegible]. नवा० ॥७॥
भगवइ अंगे [illegible] जिन प्रतिमा [illegible],
आवश्यकमां पूजना [illegible]. नवा० ॥ ८ ॥
[illegible] जिन, [illegible],
[illegible]. नवा० ॥९॥
[illegible],
ते छे [illegible]. नवा० ॥१०॥
[illegible],
[illegible] नवा० ॥ ११ ॥

आवश्यक पंचांगतुं पुस्तक थयुं पहेलुं,
जे अधिकार तिहां लख्युं विधिपूर्वक वहेलुं. नवा०॥१२
अन्य सूत्र लखतां थकां न लखुं ते विगते;
ते माटे शंका करशी जिन पूजा भगते. नवा० ॥१३॥
पुस्तकारुढ जीणे कर्युं तसु वचन कल्लोल;
चूर्णिमे पूजा कही शी शंका भाली. नवा० ॥ १४ ॥
आगम अरथ लह्या विना आगम उत्थापे;
ते तप खप करता थको नवी भव भय कापे. नवा०॥१५॥
विनय वेयावच्च दानमें हिंसा नवि लेखे,
अछति हिंसा दाखवी कां पूजा उवेखे. नवा० ॥१६॥
नाम निक्षेपो उचरी नमतां आणंदे,
नाम थापना तुल्य भणी शे माटे न वंदे. नवा० ॥१७॥
एम आलोची चित्तमां जिन प्रतिमा वंदो,
जिन शासन उद्दिपणां करतां आणंदो. नवा० ॥ १८ ॥
शेठ विहार सुहामणो आदिसर स्वामी,
वंदो पूजा भविजनां पूरण सुख कामी. नवा० ॥१९॥

कलस.

एम मोक्ष कारण विघन वारण तरण तारण गुणकरी
जिनराज पडिमा नमण पूजा सूत्र साखे आदरी
सुचि ध्यान वाचे सिद्ध साधे कर्म कलेस सहु हरी
श्री दीपचंद्र पसाय आंखो देवचद्र दिले धरी

आतमभावे रमो हो चेतन आतमभावे रमो ए आंकणी.
परभावे रमतां ते चेतन, काल अनंत गमो. हो चे०॥१॥
रागादिकशुं मलीने चेतन, पुद्गल संग भम्यो,
चोगति मांहे गमन करतां, निज आतम न दम्यो. हो०॥२॥
ज्ञानादिक गुण रंग धरीने, कर्मनो संग वमो,
आतम अनुभव ध्यान धरंतां, शीव रमणीशुं रमो. हो०॥३॥
परमातमनुं ध्यान करतां, भवथितिमां न भमो,
देवचंद्र परमातम साहिब, स्वामी करीने नमो. हो० ॥४॥

इति ध्रुपद संपूर्ण.

॥ समवसरणनुं स्तवन ॥



आज गइती हुं समवसरणमां जिन वचनामृत पीवारे,
श्री परमेश्वर वदनकमल छबी निरख निरख हरखेवारे. आ० १॥
तिनभुवन नायक शुद्धातम तत्वामृत झडरे,
सकल भविक वसुधानी लानी, मारुं मन पिण तुहरे. आ० २॥
मनमोहन जिनवरजी मुजने, अनुभव पियालो दीधोरे,
पूरणानंद अक्षय अविचलरस, भक्ति पवित्र थइ पीधोरे. आ० ३॥
ज्ञानसुधा लालीनी लहेरे, अनादि विभाव विसार्योरे,
सम्यग्ज्ञान सहज अनुभवरस, शुचि निज बोध समार्योरे. आ० ४॥
भोली सखीयो एम शुं जोवो, मोह मगन मत राचोरे,
देवचंद्र प्रभुशुं एकताने, मिलवो ते सुख साचोरे. आ० ५॥

॥ कुंभ स्थापना स्तवन ॥



धरम उतसमसमे जैनपद कारणे उतम मंगल आचरे ए,
भावमंगल तिहां देव अरिहंत प्रभु एहथी परम मंगल मंगल यरे ए,
तेहना नामने जाउं हुं भामणे, सिगसिग हरख समरण धरे ए,
पांच कल्याणके जीम सुरपति करे, तिम जिन भक्ति भवि आदरे ए.१
भावमंगलतणि पुष्टना कारणें, द्रव्यमंगल भला कीजीए ए,
तिहां सुणे पूर्णना इच्छना भविकजन, कुंभ थिरपूरण कीजीए ए,
पदमआसन टव्यो परम छये टव्यो, मंत्र पनिनयी जपीए ए,
जिनवर जिनमणि दीशि हरखभरी, दिपद्धे पूरण कलशजयी पीये ए.२।
माहरा नायने परम मंगल होजो, मंगल संघ चउविह भणे ए,
मंगल तीर्थने मंगल चैत्यने, मंगलनेह करता भणीए।
जैनशासनतणो हरख मंगल करे, तेन आनंद अति उपजे ए,
चवन अवसर समे मातना गर्भमें, पूरे हरखजे संपजे ए. ३॥
तिम प्रासादनी थापना अवसरे कुंभ थापन सर्वे हरखीये ए,
जेम संघाग्ना मगल कर ए
तिम जिन धर्मनी वृद्धिने कारणे, श्रावक सुविधि मंगल धरे ए,
परम आनंदकर थापना मानना गीत मंगल थकी उचरे ए,
देवना देवने मंगल कीजना देवगढ पद अनुसरे ए.

अथ श्री सहस्रकूट (१०२४) जिनप्रतिमा स्तवन.

देशी रसीयानी.

सहस्रकूट जिन प्रतिमा वंदीये, मन धरी अधिक जगीस विवेकी;
सुंदर मूरति अति सोहामणी, एकसहसने चोवीस. वि० सह०
(ए टेक) १॥

अतीत अनागत ने वर्तमाननी, त्रण चोवीसी हो सार विवेकी;
बोतेर जिनवर एकएक खेत्रनें, समरीजे वारंवार. वि० सह० २॥

पांच भरत वली एरवत पांचने, सरखी रीत समान विवेकी;
दश क्षेत्रे षट् थाए सातसें, वीस अधिक जिनराज. वि० सह० ३॥

पंचविदेहे जिनवर सोल सो (१६०) उत्कृष्ट एहीज देव विवेकी;
जिन समान जिन प्रतिमा ओळखी, भक्ती कीजे हो सेव. वि० ४॥

पंचकल्याणक जिन चोवीसना, वीसासो (१२०) तेहीज थाय विवेकी
ते कल्याणक विधिसुं साचवी, लाभ अनंत कहाय. वि० सह० ५॥

पंच विदेहें हो हमणां विहरता, वीसमळे अरिहंत विवेकी;
शाश्वतजिन ऋषभानन आदिदे, चार(४) अनादि अनंत. वि० ६॥

एकसहस चोवीस जिनवर तणी, प्रतिमा एकण ठाम विवेकी;
पूजा करतां उलट सफल होवे, वांछित वरे काम. वि० ७॥

तीनवार अढाइ द्वीपनां, केवलज्ञान प्रधान विवेकी;
कल्याणक करी प्रभु इहां सामठां, लाभे पुन्यनी खाण. वि० ८॥

सहस्रकूट सिद्धाचल उपरें, वीतहित करतो विहार विवेकी;
देखो अद्भुत ए छे स्थानक, पाटण नगर मझार. वि० ९॥

१-२६८ [illegible]
२-१६८
३-१२० [illegible]
४- २०

तीर्थ सकल वळी तीर्थंकर सह, एणें पूजा ते पूजाय विवेकी;
एक जीह (जीव्हा)थी महिमा पहनो, किणभांतें कहेवाय. वि० १०॥
श्रीमाळी कुळदीपक जेतसी, शेठ सुगुणभंडार विवेकी;
तस सुत शेठ शिरोमणि तेजसी, पाटण नगरमें दातार. वि० ११॥
तेणें ए बिंब भराव्या भावशुं, सहस अधिका चोवीस विवेकी;
कीधी प्रतीष्ठा पुनमगच्छधरू, भावप्रभसूरीस. वि० १२॥
सहस जिनेसर विधीशुं पूजसे, द्रव्यभाव शुचि होय विवेकी;
ए भव परभव परम सुखी होवे, लहस्यें नवनिधि सोप. वि० १३॥
जिनवर भक्ति करें मनरंगशुं, भविजननी ए छे रीत विवेकी;
दीपचंद्र सम श्री जिनराजजी, देवचंद्रनी ए प्रीत वि० ॥१४॥

इति सहस्रकूट स्तवन समाप्त ॥

॥ पद ॥ राग होरी ॥

अजितनाथ शरण तोरे ॥ आयो अ० ॥
तुं मनमोहन नाथ हमारो, त्रिभुवनजनकुं सुख प्यारो ॥
अरी अरी लाला त्रि० ॥
तृष्णा ताप निवारण वागे, भावना चंदनसें अति प्यारो ॥अ०॥१॥
माहा माहाग रत्तंग शरीरो, नग भेदनकुं वज्र अटारो ॥अ०॥
ध्रांगधरा पुन्यां मनोहारो, प्रासाद रच्यो अतिसारो ॥ अ० ॥२॥
समता रस वरषेन घन धागे, समकित बीज उपावन क्यारो ॥अ०
देवचंद्र गुणि गुण मभागे, पूर्ण आराम आरणना उदारो ॥अ०॥३॥

॥ श्री ज्ञान बहुमान नमस्कार ॥

सकल वस्तु प्रतिभासभानु निरमल सुख कारण,
सम्यग् दर्शन पुष्ट हेतु भवजल निधि तारण;
संयम तप आनंद कंद अज्ञान निवारण,
मार विकार प्रचार ताप तापीत जिन ठारण ॥ १ ॥

स्याद्वाद परिणाम धर्म परणति पडि बोहण,
साहु साहुनी संघ सर्व आराधन सोहण;
मोहतिमर विध्वंस दूर मिथ्यात्व पगासण,
आतम शक्ति अनंद शुद्ध प्रभुता परगासण ॥ २ ॥

मति श्रुति अवधि विशुद्ध नाण मणपज्जव केवल,
भेद पचास क्षायोपशमिक अेक क्षायिक निरमल;
दोय परोक्ष प्रथम तिहां त्रुण परतक्ष देशतः,
सकल प्रतक्ष प्रकाशभास ध्रुव केवल अपर मित ॥ ३ ॥

धर्म्म सकलनो मूल शुद्ध त्रिपदी जिन भाखै,
बाहिर अंग प्रधान संघ गणधर सुप्रकाशै;
श्री निर्युक्तिभाष्य पडिसाखा दीपै,
चुरण टीका पत्र पुष्प संशय सब छीपै. ॥ ४ ॥

पंचांगीतारं बोध कह्यो जिन पंचम अंगे,
नंदी अनुयोग द्वार साख मानो मनरंगे;
वीर परंपर जीत अनुभव उपगारी,
अभ्यासो आगम अगम निरुपम सुखकारी. ॥ ५ ॥

मोह पंकहर नीर सिद्धांत अगाधे,
देवचंद्र आणा सहित नय भंग अगाधे;
ए श्रुतज्ञान सोहामणो सकल मोक्ष सुखकंद,
भणें सेवो भविकजन पामो परमानंद ॥ ६ ॥

॥ श्री सिद्धाचल स्तुति ॥

विमलाचलमंडण जीनवर आदि जींणंद,
निर्मम नीरमोही केवल ज्ञान दिणंद;
जे पुरव नवाणुं वार धरी आणंद,
शेत्रुंज गिरिशीखरे समवसर्या सुखकंद ॥ १ ॥
इण चउवीसमां रुषभादिक जिनराय,
वळी काल अतीते अनंत चउवीसी थाय;
ते सविइणगिरिवर आवी फरसी जाय,
इम भावी काळे आवशे वळि मुनिराय. ॥ २ ॥
श्री रुषभ नागणधर पुंडरिक गुणवंत,
द्वादश अंगना कीधी जेण महंत;
वळि आगम माहे शत्रुंज महिम महंत,
भविजन [illegible] [illegible] करि थिर चित्त. ॥ ३ ॥
चक्केसरि गोमुख करतां [illegible] सुखकार,
जसु सेवा करता [illegible] दुख उदार,
देवचंद्र [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. ॥ ४ ॥

॥ वीस स्थानक स्तुति ॥



अरिहंत सिद्ध पवयण आचारज थविराण,
उपझाय साहु नाणदंसण विनयपहाण;
चारित्र ब्रह्म किरिया तप गोयम जिनभाण,
संजमनाणी श्रुत संघ सेवो वीसे ठाण ॥ १ ॥

उत्कृष्टे जिनवर एकसो सित्तेर धीर,
वली काळज घन्ने जिनवर वीस गंभीर;
जिन थाय अनंत अतीत अनागत काल,
ए वीसे थानिक आराधी गुण माल. ॥ २ ॥

आवश्यक वेवेला जिन वंदन त्रिणि काल,
थानक पद गीणवो सहस दोष सुकमालः
काउस ग गुण स्तवना पूजा प्रभावनासार,
इम शासन वच्छ : करतां भवनो पार. ॥ ३ ॥

समरीजे अहोनिशि गुणरागी सुरसाय,
जख जखनी सुरपति वेयावच्च कर नाथ;
थानक तप विधिसुं जे सेवे मन रंग,
देवचंद्र आणाए शानिधिकरे तसु चंग. ॥ ४ ॥



॥ गिरनार स्तुति ॥

यादव कुलमंडण नेमिनाथ जगनाथ,
त्रिभुवन जनमोहन शोभय शिवपुरसाथ;
गिरनार शिखर शिर दीक्षानाण निरवाण,
सोरिपुर नयरे चवण जनम सुरराण. ॥ १ ॥

इम भरते पंचे इरवते वलीसार.
चोवीसी जिननी थाये जन आधार;
तसु पंच कल्याणक वंदे पूजे जेह,
निरुपम सुख संपत्ति निश्चे पामे तेह. ॥ २ ॥

जीन मुख लही त्रीपदी गुंथ्या जेह,
पर अंग अग्यारह दृष्टिवाद गुण गेह;
तिणि कारे जिनवर कल्याणक विधिनेह,
समकित क्षिरकारण सेवो धरीये सनेह. ॥ ३ ॥

श्री नेमिजीनेश्वर शासन विनयवंत,
जिनवर कल्याणक आराधक भविचित्त;
देवचंद्रने शासन सानिध्य कर नित मेव,
समरीजे अहनिशि मा अंबाइ देव. ॥ ४ ॥

साधु सदा प्रणमुं केवली, काल अनादि अनंते वली;
जेहि वडा विचरे गुणवंत साधु साधवी सहु भगवंत. ॥४॥
ते सहु प्रणमुं मन उल्लास, अरिहंत सिद्ध ने साधु प्रकाश;
साधु वंदना करुं हितकार, ते सांभलजो सहु नरनार. ॥५॥

॥ दोहा ॥

इणही जंबू द्वीपमें भरतज नामे क्षेत्र,
जिनवर वचन लही करी निर्मल कीया नेत्र. ॥ १ ॥
तिहां चोवीसे जिण हुवां रीषभादीक महावीर,
पूर्व भाव करी प्रणमीये पांमीजे भवतीर. ॥ २ ॥
पूर्वभव चक्रवर्त्ति थया, रिषभदेव नाइंद,
अजितादिक तेवीस जिण, राजा सहु मंडलीक. ॥ ३ ॥
पुन लेई पूर्व चवदे रीषभ भण्या मनरंग,
पूर्वभव तेवीस जिण भण्या अग्यारे अंग. ॥ ४ ॥
वीस स्थानक तिहां सेवीया, वीजे भव सुरराय,
तिहांथी चवी चोवीस जिण, ते हुआ प्रणमुं पाय. ॥ ५ ॥

॥ ढाल २ जी ॥ नमणी खमणी ॥ एहनी देशी ॥

श्री चक्रवर्त्ति पूर्वभव जाण, वैर नाम तिहां नाम वखाण;
ऋषभदेव प्रणमुं जग भाण, गुण गावतां हुवे जन्म प्रमाण. ॥१॥
वीमराई पूर्वभव नाम, अजित जिणेश्वर करुं प्रणाम;
विमलवाहन पूर्वभव राय, श्री संभव प्रणमुं चीत लाय. ॥२॥
पूर्वभव धर्मसी राजान, अभिनंदन प्रणमुं शुभ ध्यान;
पूर्वभव थया सुमति प्रसिद्ध, सुमति जिणेश्वर प्रणमुं सिद्ध. ॥३॥
पूर्वभव राजा अपराजित पद्मप्रभ वन्दूं नित्य,
पूर्वभव र [illegible] महाराज प्रणमुं जगनाह. ॥४॥

पूर्वभव इगम्हह मुनिंद, वंदामस प्रणमुं निरदोसः
जगबाहु पूर्वभव सीव, प्रणमुं सुमत जिणंद सदीव. ॥५॥
लडबाहु पूर्वभव जास. श्री शीतल प्रणमुं उल्लासः
दीनराई कुलतिलक समान, प्रणमुं श्री श्रेयांस प्रधान. ॥६॥
इंद्रदत्त मुनिवर सुपवेन, वासुपूज्य थांइ भगवंतः
पूर्वभव सुंदर बडभाग, थांइ विमल धणी मन राग. ॥७॥
पूर्वभव जे सप महिरथ, तेह अनंतजिन प्रणमुं सुमरथ;
साधु सीगेमण सिंहरथगाय, धर्मनाथ थांइ जिन राय. ॥८॥
पूर्वभव मेघरथ गुणगाई, शांतिनाथ जिनवर जिन राईः
पूर्वभव रूपीमुनि वरीये, कुंथुनाथ प्रणम्यां सुख वरीये. ॥९॥
रायसुदर्शन मुनि विख्यात, थांइ अर्हन त्रिभुवन नातः
पूर्वभव नंदनमुनिचंद्र, ते प्रणमुं श्री मल्लिजिणंद. ॥१०॥
सिंहगिरी पूर्वभव सार, मुनि सुव्रतजिन जगदाधार;
अदीन सह मुनिवर शिर सार, वंदोईं प्रणमुं नमिनाथ. ॥११॥
संखनरेसर साधु सुजाण, [illegible] प्रणमुं [illegible].
[illegible] सुदर्शन तेह मुनिंद, [illegible] प्रणमुं निरदोस. ॥१२॥
[illegible] भव पोट्टिल मुनि [illegible]. [illegible] ॥१३॥
[illegible] ॥१४॥

[illegible]

[illegible] ॥ १ ॥
[illegible]
[illegible] ॥ २ ॥

२९.

॥ ढाल ३ जी ॥ राग वेलावली ॥ ए देशी ॥

चंद्रानंन जिण प्रथम जिणेसरु, दुजा श्री सुचंद भगवंतो।
अग्नियसेण त्रीजा तीर्थंकर, चोथा श्री अग्नीनंदिषेण अरिहंतो।
त्रिकरण सुद्ध सदा जिन प्रणमुं. ॥ १ ॥
इसदिन्न तणारे चोवीस छे, ऋषभादिक स्वामी अनुक्रम हुवा।
एकणमे जिन हुवा जगदीसके. त्रि० ॥ २ ॥
पांचमा निसिदिन गुणीजे, बलिहारी छठा जिणरायके।
सोमचंद सातमा जिन समरु, युतिसेण आठमा सुखदायके. ॥३॥
नवमे अजीयसेण जिन प्रणमुं, दसमा श्री शीवसेण उदारे।
देवसमा इग्यारमा ध्याउं, बारमा निखन सहित सुखकारे. त्रि०॥४॥
तेरमा असजल जिणरायके, चौदमा श्री जिणनाथ अनंते,
पंनरमा उपसांत नमिजे, सोलमा श्री गुप्तसेण महंतके. त्रि० ॥५॥
सतरमा अतिपार्श्व गुणीजे, प्रणमु अढारमा श्री सुपार्श्वे।
उगणीसमा मरुदेव मनोहर, वीसमा श्रीधर प्रणमुं हुल्लासे. त्रि०॥६॥
इक्वीसमा समकोट सुहंकर, बावीसमा प्रणमुं अग्निसेणके।
तेवीसमा अग्निपुत्र अनोपम, चोवीसमा प्रणमुं वारिसेणजे. त्रि०॥७॥
पैंदे अस धर्म ए भालक, अवलम्बीय जिनेसर नामचे,
होटे अस कहा मुनि सुजन सुर्श्वनाथ अनागत नामचे. त्रि०॥८॥
जिन प्रथम ॥ ससस्वल वंतन, एम हुवा अनंत अरिहंते.
विद्यमान वीस जिनवर विचर, [illegible] भगवंते. त्रि०॥९॥
[illegible] विचर, [illegible] प्रणमुं [illegible].
[illegible] त्रि०॥१०॥
[illegible]
[illegible] त्रि०॥११॥

पचास लाख कोड सार तिहां असंख्य केवळी,
जेह थया मुनिवर तेह प्रणमुं अशुभ दुरमति निरदळी. ॥३॥

ढाल ॥

अजित जिणेसर ने गणधरुं, धुर प्रणमुं सहसेण सुहंकरुं;
प्रणमु महसम फगुसाहुणी, हरखसुं वांदु सगर महामुनि.

उलाळी ॥

महामुनि सगर तीस लाखे कोड अंतरे जे थया,
केवळी मुनिवर तेह प्रणमुं दोय कर जोडी सया;
श्री संभव चारु मुनिवर चिन सगाधिकगुण रमु,
लाख दसेही कोडसागर अंतरे सिद्ध सहुं नमुं. ॥४॥

ढाल ॥

श्री अभिनंदन प्रणमु गुणपति, वैरनाभ मुनि अजवासती;
सागर लाखे नव कोड अंतरे, केवळी थया वंदीये शुभारे.

उलाळी ॥

शुभपरे सुमन जिनेसर गणधर चमरराग विभगपा,
नेऊ सहस कोड सागर विच नमुं जे सिद्ध थया,
श्री पद्मप्रभु नाम नांमी सुव्रीये जसी वंदीये,
साहुणी तेहूं नामे प्रणम्या दुःख दुर निकंदीये. ॥५॥

ढाल ॥

कोड सहस नवसागर विच वळी, प्रणमु मुनिवर जे थया केवळी;
श्रीसुपास जिनविच गुणरुचि प्रणमुं, सीमा समणी गुणनिधि.

उलाळी ॥

गुणनिधि [illegible] केवळी,
[illegible] दुरी.

श्री चंद्रप्रभुदीन गणधर सवी समता ध्याईये,
नेउं सागर कोड अंतरे केवली गुण गाईये.

॥ढाल ५ मी॥ सफल संसार अवतार ए हुं गिणुं ॥ए देशी॥

सुविधि जिणेसर मुनीवरा ए,
  साहुनी वंदिये चित्त उछाह ए;
अंतरे कोड नव सागर तइ जिहां,
  कालिकसूत्र नी लीह भांग्यो तिहां. ॥ १ ॥
स्वामी शीतल जिन साहु आनंद ए,
  सवी सुलसा नमु चित आणंद ए;
एककोड सागर तणो अंतरो कह्यो,
  पुरतो सागर ऊणो वर संग्रह्यो. ॥ २ ॥
सहस छवीस साठ लाख उपरें,
  [illegible] अंतरे;
श्री श्रेयांस [illegible] वदईये,
  [illegible] चित लाईये. ॥ ३ ॥
एवं [illegible],
  [illegible] ए;
[illegible] ए,
  [illegible] ए. ॥ ४ ॥
[illegible],
  [illegible];
[illegible],
  [illegible]. ॥ ५ ॥

स्वामी वासुपूज्य जिण साधुश्री धर्मेश्वर,
 साहुणी वली जिहां धर्णी उपद्रवहर;
सुगुरु सुभद्र सुवंत्र वखाणिये,
 बीजे मुनि वंधर निपुण हरि जाणीये. ॥ ६ ॥
तीस सागर बीच अंतरे जे थया,
 केवली वंदीये भाव भगतेसया;
विमलजिन वंदीये साधु सीमंधर वली,
 समणी धरणी धरा आगम सांभली. ॥ ७ ॥
गुरु सुदरसण मुनि सागरदत्त ए,
 भवहर बंधव भद्र सिवपत ए;
नव सागर बीच अंनरे केवली,
 जे थया ते सहु वंदीए वलीवली. ॥ ८ ॥
स्वामी अनंतजिण प्रणमीये जगुगली,
 समणी (प्रेमे) नमु सुगुरु श्रेयंसमुनि;
सीस असोकगु प्रणमुं प्रमयनी,
 भ्रात पुरुषोत्तम केसव नृपति. ॥ ९ ॥
सागर पल्यो अनरे भाखीये,
 केवली वदीने सीव सुख पामीये;
जिणवर धर्म अंतर [illegible] वह्यु,
 [illegible] समता सदा वरी शिव सुख लह्यु. ॥ १० ॥
दुर्लभ कुंथुगुरु [illegible] सीस ए,
 [illegible] [illegible] सुदत्त [illegible] ए;
[illegible]
 [illegible] ॥ ११ ॥

कोड सहस वर्ष अंतरे ए सिद्धा मुनिंद,
सातमी नरक सुभुम चक्री पहुत्यो मतिमंद. ॥ ४ ॥
मल्लिजिनेसर वंदिए अभिनेव मुणिंद,
गणति वंदु चरण कमल प्रणमु सुखकंद,
सहस पंचावन सातवी साधुसहसचालीस,
बत्तिससोमुनि केवली प्रणमुं निसदीस. ॥ ५ ॥
मल्लि जिनेसर पूर्वभव सही वली अनगार,
तास थकि तसु वंदीये वली मुनिवारमपार,
अचल जीव थयो पडिबुध धर्ण चंद्र छाया,
पूर्ण जीवते रुखवर्सु रूपी वहाया. ॥ ६ ॥
येस मनने अदिन सतु अभिचंद्र जित सतु,
इहि केवल मुक्ते गया पूर्व भव मित्र,
मुनिवर नंदन नंद मित्र सुमित्र बखाण,
बाल मित्र वली नाण मित्र अमरारत्न आर्ण. ॥ ७ ॥
अमरसेण महासेण आठे नाग कुमार,
सिंहिमंगाने साथ थया अंग इंद्र विचार,
अंतरे इहां वली जाणीये लाख चोराशीर,
केवलि निहां बहुवंदीये धणी हुवे उल्लास. ॥ ८ ॥
वंदु जिनेश्वर वीसमा मुनिसुव्रतस्वामी,
[illegible] इद कुंभ [illegible] प्रणमु [illegible],
सुव्रत मनने [illegible] मुनिवर [illegible],
[illegible] ॥ ९ ॥
[illegible]
[illegible]

क्षेत्र विदेहमे केवल संयम, सिद्धही सोळे ते मुनी ए,
इण परि अनीत्तह दोए गवीस सहु यति कहु गुण थुणीए;
दसरह द्रढ रहे महा धनुतेह, सतधनु गुण मुज मन वस्याए,
नवधनु दसधनु सहि धनुमुनि एह भारवीयो, सूत्र वन्हीं दशाए॥६
पूरव भव हरगुरु नाम दुसभसेण, ललत नाम ते पूरवभवे ए,
राम बलदेव वली नवमो हलधार, ब्रह्म लोके सुर अनुभवे ए;
चविजिण तेरमो नाम निकसाय, थाय सीसही सुरतरु समोए,
बंधव केशव एक अवतार, अमम होशी जिण बारमोए ॥६॥
सहसवले त्यांसिपां सातसे भार्यायां, वरस पंचास इहां अंतरेए;
तिहां वले चित्तमुनि सिद्ध संपत्तसु, नाम लेईने कीरत करुं ए,
पूर्वभव बंधव चक्री ब्रह्मदत्त, सातमी नरक गयो मरी ए;
ईण अंतरे वली नमुं, बहु केवली वेगेसिव सुंदरी ज्यां वरीए ॥७

॥ ढाल ९ मी ॥ रामचंद्रके बागमें चम्पो मोरी रहोरी ॥ ए देशी ॥

त्रेवीसमा जिन तारक, पुरसा दाणीय पास,
मुनिवर सोळे सहस, गणधर आठहुलास;
आज दिने सुभ सुभ घीक, वांदु शासठ नाम,
वली ब्रह्मचारी सोमल, श्रीधर करुं प्रणाम ॥ १ ॥
वीरभद्र जस आदि, सिद्धा सहस प्रमाण,
तेह मुनिवर वंदना, होवे परम कल्याण;
साधवी संख्या महु अडतीस, सहस वखाणुं,
पुष्प चुलादि सहस दो, सिद्धी ते मन आणु ॥ २ ॥
समणी सुपामी यासी भुमी, भामी धर्म चौजाम,
ए अधिकार कह्यो, श्री टाणांग सुटाम,

राई उदाई सिंह दस विरनो, निर्मल संजम धारोजी;
सेठ सुदर्शन मुनि मुगते गयो,सुणी महाबल अधिकारोजी.नि०॥३
काल संवेगी गंगायो गणी, पिंगल ने शिवराजोजी;
काम उदये अैवंतो मुनि, वंदना सोजे काजोजी. नि० ॥ ४ ॥
मकाई मुनिकिंकम वंदीये, अरजुन माली हुल्लासोजी;
काशव भव धर जाणीये, केवलरूप कैलासोजी. नि० ॥ ५ ॥
मुनि हरीचंद बारतिये वली, सुदर्शन पूरण मेदोजी;
साथ समण भद्र समता आदरे, सुपईठ समय मंदोजी.नि०॥६॥
मेघ मुनीश्वर अैवंतो मुनि, राय ऋषी अलक्षोजी;
श्री जिण सीस ए सहु मुगते गया, सेवे सुरनर सक्षोजी.नि०॥७॥
सहस छत्तीसे समणी चंदणा, आदे चउदसे सिधीजी;
देवानंदा जननी वीरली, केवल ज्ञाने समिंदीजी. नि० ॥ ८ ॥
नितनित वंदु समणी ए सहु,समणी जेवंती पदम सिद्धया तरी;
सिद्धां केवल पामीजी, नंदानंदवती नंदोत्तरा वलीनंदसेणीया
नामोजी. नि० ॥९॥
मरुतसमरुता महामरुता नमु, मरुदेवा वली जाणीजी;
भद्रासुमद्रा सुजया जिनतणी, पाली निर्मल आणीजी. नि०॥१०
समणोसमणी भुइ दोनानमुं, राणी श्रेणकराईजी;
मास संलेषण वेरे सिद्ध थई, प्रणम्या पातीक जायजी. नि०॥११
काली सुकाली महाकाली नमुं, कन्या सुकन्या सोमोजी;
महा कन्या वीर कन्या साहुणी, राम कन्या सुद्ध नेमोजी.नि०॥१२
पियसेण कन्या महासेण कन्या, ए दश श्रेणिक नारीजी;
निजनिजनदन काल सुणे करी, लीधो संयम भारीजी.नि०॥१३
ए दश समणी ने पेग्णावली, आदे दश प्रकागेजी;
लहि केवल ए सहु मुक्ते गई, ते वंदु वय्यागेजी. नि० ॥१४॥

नृप श्रेणिक नंदन, इम दस तेरे कुमार;
आठ आठ रमणी तजी, अनुत्तर सुर अवतार ॥१२॥
तिण अवसर नयरी, काकंदी अभिराम;
तिण पूरव देशे भद्रा, सारथवाही नाम. ॥ १३ ॥
तसु नंदन धन्नो, सुंदर रूप निधान;
तिन परणी तरुणी, बत्तीस रंभ समान. ॥ १४ ॥
जिन वयण सुणीने, लीधो संयम जोग;
मुनि तरुणपणेमे, छंड्या रसना भोग. ॥ १५ ॥
नित छठ तप पारणो, आंबीले मुत्त भत्त;
जस समणवणी भग, कांई न वंछे तिलमात. ॥ १६ ॥
अति दुक्कर तपस्या, आराधी नव मास;
एक मास संथारे, सर्वार्थ सिद्ध वास. ॥ १७ ॥
काकंदी मुणि क्षत्त, राजगृही सरीदास;
पेलक ए वेउं, एकण नगर हुल्लास. ॥ १८ ॥
राम पुमने चंद्रमा, साकेतपूर वर ग्राम;
पुडीमां पेढा ले, पुत्र वाणीयां ग्राम. ॥ १९ ॥
हथणापुर पोटिल, सहु ए धना समान;
तरुणी तप जिणनी, संयम वर सीमान. ॥ २० ॥
हवे वहल कुमर कहु, राजगृही आवास;
सर्वार्थ सिद्ध पहुतो, धर संयम छई म्मास. ॥ २१ ॥
एक भव शिवगामी, ए श्री जिनवर सीस,
सहु नवमे अंगे, भाख्या मुनि तेतीस. ॥ २२ ॥
हवे पौम महा पौम, भई सुभद्र वखाण;
पौमभद्र ने पौमसेन, पौम गुप्त मन आण. ॥ २३ ॥

नलिगी गुल्म आणंद, नंदन एह मुनिजान;
कालादिकना सुत, कप्पवडंसीया ठाण. ॥ २४ ॥
मुनि उदग पूछया, गौतमने पचखाण;
चौ जामथकी कीयो, पंचतणी परिमाण. ॥ २५ ॥
जिणे जिन मत मांडी, छंडो कुमत अनेक;
ते आद्र कुमर मुनि, धन धन बुद्ध विवेक. ॥ २६ ॥
गर्व भाली बोल्यो, संजयी नृप अणगार;
मुनि क्षत्री भाख्या, बहुविध अर्थ प्रकार. ॥ २७ ॥
मही मंडल विचरे, विगत मोह अमाय;
गुण गावंता अहोनिस, संपजे शिवपुर साथ. ॥ २८ ॥
नृप श्रेणिक नंदन, मुनिवर मेघ सुजाण;
तज आठ अंतेउर, उपन्यो विजय विमाण. ॥ २९ ॥
अपम्हणी रेणा, आदर्यो संयम नेह;
जिन पालक मुनिवर, सोहम सुर थयो तेह. ॥ ३० ॥
हरि चोर चीलापतो, सुसमा नाम ते धन्नो;
आराधी संयम सोहम, सुर उपन्नो. ॥ ३१ ॥
श्री वीर जिणेसर, तासन मुनिवर नामः
निज भक्ते गाउं, तेहनणा गुण ग्राम. ॥ ३२ ॥

॥ ढाल १२ मी ॥ विशालीया पिगल ॥ ए देशी ॥

धर्मघोष गुरु सोसवन, मासने पारणे तेह सुदत्त,
प्रतिलाभ्यो शुभ वित्त, सुमुख थयो भव दिय सुवाहु;
सुर थयो संजम ग्रही ताहू, गुण नसु गाउं नित्त. ॥ १ ॥

श्री जुगबाहु जिणवर आवे, विजय कुमर प्रति लाभ्यो भावे,
बीजे भव भद्र नंदी, भोगतजी थयो साधु मुणींद;
करी संलेषणा लह्यो सुरख वृंद, गुण तसु गात आणंद. ॥२॥
ऋषभदत्त पहिले भव संत, तिन प्रति लाभ्यो मुनि पुष्पदंत,
तिहांथी थयो सुजात, तृण सम जाणी सहु रिद्ध वात;
आदरी आठे प्रवचन मात, अविचण तसु गुण गात. ॥३॥
पूर्वभव नृपति धनपाल, वीसमण भद्र ने दान रसाल,
देई शिवा सीव थाय, संयम लेई ते मुनिराय;
लहि केवल ने शिवपुर जाय, ते वंदु मन लाय. ॥ ४ ॥
पूर्वभव मेघरथ राजन, सुधर्म मुनिने देई दान,
बीजे भव जिनदास, संवर पाळी जे थया सिद्ध;
केवल दर्शन ज्ञान समिद्ध, वांदु तेह उल्लास. ॥ ५ ॥
मित्राई पूर्वभव जाण, संभूत विजयने दीधु वखाण,
कुमर ते धनपत होई, वीर समीपे संयम लीधो;
ततक्षण कर्म हणीने सिधो, दिन प्रति वंदु सोई. ॥६॥
पूर्वभव नागदत्त धनेसर, प्रतिलाभ्यो इंद्रपुर मुनिसर,
महीबल नाम कुमार, संयम लेई कारज सार्या;
भवसायरथी चेतन तार्या, ते वंदु बहु वार. ॥ ७ ॥
गृहपति हुतो धर्मघोष, तिन प्रतिलाभ्यो अति संतोष,
नाम मुनि धर्मसिंह, बीजे भव थयो भद्रनंदी;
मुक्ति गयो भव बंधन छंदी, ते वंदु मुनि इह. ॥ ८ ॥
पूर्वभव जिनशत्रु नरेसर, प्रतिलाभ्यो धर्मवृत्त मुलेसर,
महिचंद नाम कुमार. निण छडी बहुराई कुमार;
संयम अपजा नेउणीहार बहु केवलधार. ॥ ९ ॥

गुरुणी सुभद्रा केरी समणी सुन्दनारे पूर्णभद्र सुचंग,
माणभद्रने दत्तशीवबल मुनिरे, तिण तज्या लोभ संताप;
इंद्र परीक्षा अवसर उपशम आदर्योरे, नमो नमावे आप. मु० ६
सुरवर सेवत श्रीहरि केसो बलमुनिरे, संवर धार सुलेस;
राकने मे (होऽ?) डी प्रतिसंयम आदर्योरे, दशार्णभद्र नरेस. मु०॥७
मुनि करकंडुराजा देश कलिंगनोरे, दुमुही पंचमूपाल;
वली विदेही नृपति नमि नामे व्रतिरे, निग्याई गंधार रसाल. मु० ॥८
सेतवीजे ने महिबल ए सहु राजवीरे, व्रत लेई थया अणगार;
कामकषाय निवारी सीतल आतमारे, थिवरते ग्रक गणधार. मु०॥९
हुवे श्रीवीर जिणेश्वर सीस सुहमगणीरे तास परंपर एह;
जंबू प्रभव वलि सय्यंभव जाणीयेरे, मनगपीया मुनि तेह. मु० ॥१०
श्रीजसोभद्र ने मुनि संमूतवीजे वलीरे, भद्रबाहू थूलभद्र एम;
अणेरा जिणवर आणमांही हुवारे, ते मुनि गाउं समुद्र. मु० ॥११
काल अनंते मुनिवर मुक्ति गयारे, संप्रति विचरे तेह;
नाणदर्शन ने चर्णकर्ण धुरंधरारे, श्रीदेवचंदे वेद. मु० ॥ १२ ॥

॥ कलश ॥

इम चोवीस जिणवर प्रथम गणधरचक्री हलधर जे हुवा,
संसारतारक केवली वली समणसमणी संथुवा;
संवेग श्रुतधर साधु सुखकर आगम वचने जे सुण्या,
दीपचंद्र गुरु सुपसाये श्री देवचंद्रे संथूण्या. ॥१३॥
इतिश्री वडी साधु वंदना तेर ढालकी चोपाई संपूर्णम् ॥

सद्गुरू शासन देव नमी, वृहत्कल्प अनुसार।
शुद्ध भावना साधुनी, भाविश पंच प्रकार ॥३॥

अर्थः—वली शुद्ध नये स्याद्वाद उपदेश देवावाला सद्गुरु अने तीर्थंकरोनी वाणी शासनदेवीने नमी वृहत्कल्प भाष्यने अनुसारे शिव मार्ग साधता साधुओने भाववानी शुद्ध पंच भावना भावीशुं ॥ ३ ॥

इंद्री योग कषायने, जीपे मुनि निशंक।
इण जीते कुध्यान जय, जाए चित्त तरंग ॥४॥

अर्थः—मुनि पंच इंद्रियो, त्रण योग अने चार कषायने निर्भय निशंकपणे जीते तोज आर्त रौद्र कुध्यान माठा अध्यवसायने जीते अने तेथी चित्तना शुभाशुभ संकल्पो रूप तरंगो जाय एटले निर्विकल्पपणे शुद्धात्मगुणमां परम समाधि पामे ॥ ४ ॥

प्रथम भावना श्रुततणी, बीजी तप तिय सत्त्व।
तुरिय एकता भावना, पंचम भाव सुतत्त्व ॥ ५ ॥

अर्थः—तेमांहे श्रुत अभ्यासनी पहेली भावना (१) विषय भोग इच्छा रहित शुद्धात्म गुणमां तृप्त रहेवुं ते तप रूप बीजी भावना (२) दृढताए धैर्य राखी परिसह अने विषयादिकथी चलायमान थवुं नहि एम साहस राखवारूप त्रीजी सत्त्वभावना (३) शुद्धात्म तत्त्वमां एकत्व अडोलपणे परिणाम थिर करवा रूप चोथी एकत्वभावना (४) अने आत्म तत्त्व विचार रूप पांचमी सुतत्त्वभावना जाणवी (५) ॥५॥

श्रुतभावना मन थिर करे, टाले भवनो खेद ।
तपभावना काया दमे, वामे वेद उमेद ॥ ६ ॥

अर्थः—श्रुतभावना मन थिर करे अने भवभ्रमण भीतिनो खेद टाळे. तपभावना कारण अने औदारिकादि कायाने दमे अने वेद भोगववाना उमेदने फेंके एटले तेनी इच्छा आशा कामना मटी थिरता थाय ॥ ६ ॥

सत्त्वभाव निर्भय दशा, निज लघुता इक भाव ।
तत्त्वभावना आत्म गुण, सिद्ध साधना दाव ॥७॥

अर्थः—सत्त्वभावनाथी निर्भयदशा पामीए. पोतानी लघुता भावीए तो स्वस्वरूपमां एकता थाय. तत्त्वभावना भाववाथी आत्म शुद्धता सिद्ध करवानो दाव आवे ॥ ७ ॥

॥ ढाल १ ली ॥

लोक स्वरूप विचारो आतम हित भणीरे ॥ ए देशी ॥

श्रुत अभ्यास करो मुनिवर सदारे,
अतिचार सहु टालि ।
हीण अधिक अक्षर मत उच्चरोरे,
शब्द अरथ संभालि ॥ श्रुत० ॥ १ ॥

अर्थः—हे मुनि ! अकाल अविनयादिक आठ अतिचार तजी सदा श्रुत अभ्यास करो, अक्षरनो हीण अधिक उच्चार न करो अर्थ संभाळी शब्द उच्चार करो ॥ १ ॥

सूक्ष्म अर्थ अगोचर दृष्टिथीरे,
रूपी रूप विहीण ।
जेह अतीत अनागत वर्त्ततारे,
जाणे ज्ञानी लीन ॥ श्रुत० ॥ २ ॥

अर्थः—जे सहजे दृष्टिगोचर न आवे एवा अर्थरूपी के अरूपी अतीत अनागत के वर्त्तमान विषय जेम होय तेम ज्ञाने लीन होय ते ज्ञानी जाणे छे तेम रूपी अरूपी कालादिक तथा आत्मगुणने प्रशस्त अप्रशस्त विचारी सूक्ष्म अर्थ दृष्टिगोचर करो ॥ २ ॥

नित्य अनित्य एक अनेकतारे,
सदसद भाव स्वरूप ।
छ ए भाव एक द्रव्य परिणम्यारे,
एक समयमां अनूप ॥ श्रुत० ॥ ३ ॥

अर्थः—सकल द्रव्यमां समकाले नित्य, अनित्य, एक अनेक, सत्य असत्य, एवा छए भाव परिणमे छे ए अनुपम रूपे द्रव्य विचारो ॥ ३ ॥

उत्सर्ग अपवादपदे करीरे,
जाणे सह श्रुत चाल ।
वचन विरोध निवारे युक्तिथीरे,
थापे दूषण टाल ॥ श्रुत० ॥ ४ ॥

श्रुतने गणधरोए बांधो एम कह्युं छे एटले द्रव्यश्रुत ते पण भावश्रुतनुं कारण छे माटे श्रुत ते उपकारीज छे ॥ ६ ॥

श्रुत अभ्यासे जिनपद पामिएरे,
छठे अंगे साख ।
श्रुतनाणी केवलनाणी समोरे,
पन्नवणिज्जे भाख ॥ श्रुत० ॥ ७ ॥

अर्थः—ज्ञाता अंगमां श्रुतअभ्यासे जिनपद पामीए एम कह्युं छे वळी श्रुतज्ञानी केवलज्ञानी समो एवी पण प्रकारणा सिद्धांतोमां घणे ठेकाणे छे ॥ ७ ॥

श्रुतधारी आराधक सर्व ते रे,
जाणे अर्थ स्वभाव ।
निज आतम परमातम सम ग्रहेरे,
ध्यावे ते नयदाव ॥ श्रुत० ॥ ८ ॥

अर्थः—श्रुतज्ञानी पंचास्ति द्रव्यना गुण भावपणे अने आप माटे सर्व आराधक कह्या छे श्रुतज्ञानीज पोताना आत्माने परमात्म समान जाणे ध्यावे वळे, नयदाव श्रुतज्ञानने हाथ छे एटले नय युक्तिवडे आत्माना परमभावने जाणी वळी परमपदने पामे ॥ ८ ॥

संयम दरशन ने ज्ञाने थयेरे,
ध्याने शिव साधन ।

भव स्वरूप चउ गतिनो लखेरे,
तेणे संसार तजंत ॥ श्रु० ॥ ९ ॥

अर्थः—शुद्ध संयम अने शुद्ध सम्यक्दर्शन ते श्रुतज्ञानेज वधे अने धर्मध्यान शुक्लध्यान ते श्रुत अजाण साधी शके नहीं पण द्रव्य गुण पर्यायनो पूर्ण जाण श्रुतज्ञानी होय तेज धर्म शुक्लध्यान साधी शके वली श्रुतज्ञानीज शुद्ध ध्येय अने शुद्ध साधना प्रवृत्ति जाणी साधी आत्म सिद्धि करे; वली श्रुतज्ञानी चारे गतिनुं भवस्वरूप जाणे तेथी ते भवभोगथी विरक्त थई उदासीनता रूप नावे चढी क्षेम कुशलताए निर्भयपणे भव समुद्र तरे ॥ ९ ॥

इंद्रिय सुख चंचल जाणी तजेरे,
नव नव अर्थ तरंग ।
जिम जिम पामे तिम मन उल्लसेरे,
वसे न चित्त अनंग ॥ श्रु० ॥ १० ॥

अर्थः—श्रुतज्ञानी इंद्रियसुख चंचल अने उपचरित जाणी तजे अने श्रुतज्ञानीने वस्तुना नवा नवा अर्थ तरंगो प्रगटे तेथी सकल शंका कंखाआदिथी निवर्ते जेम जेम अधिक श्रुत पामे तेम तेम आत्मवीर्ये करी मन उल्लास पामे अने तेना चित्तमां अनंग के० काम विकार वसे नहि–रहे नहि अने कोई ठेकाणे लख्युं छे के "नव नव अरपत रंग" एटले श्रुत ते चित्तने शुद्धात्म भावमां नवो नवो रंग रीझ आपे ॥ १० ॥

काल असंख्याताना भव लखेरे,
उपदेशक पण तेह ।
परभव साथी आलंबन खरोरे,
चरण विना शिव गेह ॥ श्रु० ॥ ११ ॥

अर्थः—पूर्ण श्रुतज्ञानी असंख्याता काल सुधी पर्यंत भव जाणे अने श्रुतज्ञान विना जे उपदेश करे छे ते पोताने अने पर जीवने बुडाववावाला छे पण शुद्ध श्रुतज्ञानी तेज तारनारी अने सत्य उपदेश करनारो छे. परभवे जता जीवने श्रुतज्ञान तेज संगे रहेनारुं साचुं आलंबन छे अने बाह्य चारित्र विना पण श्रुत एज मोक्षनुं घर छे ॥ ११ ॥

पंचम काळे श्रुत बल पण घटयों रे,
तो पण ए आधार ।
देवचंद्र जिन मतनो तत्त्व ए रे,
श्रुतसुं धरज्यो प्यार ॥ श्रु० ॥ १२ ॥

अर्थः—आ पांचमा दुषमकालमां श्रुतरत्न घटयुं छे तो पण श्रुतनोज आधार छे. देवचंद्र मुनि कहे छे के जिन मतनो सार ते श्रुतज्ञानज छे ए माटे श्रुत अध्ययनमां प्रीति राखवी ॥ १२ ॥

उपधाणे योग दुहा करी,
शिव साधेरे सूधा अणगार ॥ भ० ॥ ३ ॥

अर्थः—शुद्धात्म भावमां सुस्थित जीव मन वचन काय योगने तथा इंद्रिय विषयने पण जीते तेथी तप ते कर्मने छेदवावाळो कापवावाळो सार जाणवो. ध्याननुं कारण तेने उपधान कहीए एटले खावा पीवामां विषयादिक व्यापारमां चित्त जतुं रोकीए ते ध्यान के० शुद्धात्म भावमां चीत्तनुं कारण छे तेने उपधान कहीए. ते उपधाने करी मन वचन काय योग असंयम पुद्गल व्यापारथी वाळी संयमभावमां थिर करी सुधा अणगार मोक्ष साधे ॥ ३ ॥

जिम जिम प्रतिज्ञा दृढ थकी,
वैरागीओ तपसी मुनिराय ।
तिम तिम अशुभ दल छीजवे,
रवि तेजेरे जेम शीत विलाय ॥ भ० ॥ ४ ॥

अर्थ.—वैरागी तपस्वी मुनिराज जेम जेम पोतानी प्रतिज्ञा दृढ करे तेम तेम अशुभकर्मदळ छीजवे जेम सूर्यना तेजथी शीत नाश पामे तेम अशुभकर्मदळ नाश पामे ॥ ४ ॥

ते भिक्षु पडिमा आदरे,
आसन अकंप सुधीर ।
अति लीन समता भावमां,
[illegible] धीर ॥ भ० ॥ ५ ॥

अर्थः—जे मुनि साधुनी बार प्रतिमा मांहेथी कोइ पण प्रतिमा आदरे अने धैर्यपणे अडोल अकंप आसने रहे, समताः भावमां अतिशय लीन थइ उपयोगनी थिरता वधारे अने शरीरने तृण परे जाणे ते मुनि सहज शिव संपदा वरे ॥५॥

जिण साधु तप तलवारथी,
सूंड्यो छे हो अरि मोह गयंद ।
तिण साधुनो हुं दास छुं,
नित्य वंदुरे तस पय अरविंद ॥ भ० ६ ॥

अर्थः—जे साधुए तपरुपी तलवार वडे मोह शत्रुरूप गजेंद्रने काप्यो ते साधुनो हुं दास छुं अने तेना पदकमलने नित्य वंदुं छुं ॥ ६ ॥

आचार सूयगडांगमां,
तिम कह्यो हो भगवइ अंग ।
उत्तराध्ययन गुणतीशमें.
तप संगे हो सहु कर्मनो भंग ॥ भ० ॥ ७ ॥

अर्थः—आचारांग, सूत्रकृतांग, भगवती अंगमां अने उत्तराध्ययनना ओगणत्रीसमामां कयुं छे के तपस्याथी सकल कर्मनो नाश थाय एम अनेक स्थानके कयुं छे ॥ ७ ॥

ते दुविध दुक्कर तप तपे,
भव पास आश विरक्त ।
धन्य ! साधु मुनि ढंढण समा,
ऋषि खंधक हो तीलग कुरुदत्त ॥ भ० ॥८॥

अर्थः—जे मुनि भवपास आश विरक्त थया ते द्रव्यभाव दुविध दुक्कर तप आदरे. धन्य ! ते ढंढण मुनि, खंधक रुषी, तिसगमुनि अने कुरुदत्त ए आदि साधुओने के जे दुष्कर तप आदरी उत्तम गति वर्या छे ॥ ८ ॥

निज आतम कंचन भणी,
तप अग्नि करी शोधंत ।
नव नवि लब्धि बल छते,
उपसर्ग हो ते सहंत ॥ भ० ॥ ९ ॥

अर्थः—निज आतम कंचन करवा एटले रागद्वेषादि मलीनता टाली शुद्ध सिद्धरुप करवा तप रूप अग्निए करी कर्म मेल प्रजाली आत्मअंग शुद्ध कंचन करे. नव नवि लब्धिना बल छते पण सनत्कुमार चक्री पेठे महंत पुरुषो निराकुलपणे उपसर्ग परिसह सहे ॥ ९ ॥

धन्य ! तेह जे धन गृह तजी,
तन स्नेहनो करी छेह ।
निःसंग वनवासे वसे,
तपधारी हो ते अभिग्रह गेह ॥ भ० ॥१०॥

अर्थः—धन्य ! तेने के जे धन अने घर तजी तन स्नेहनो छेह करी निःसंग निर्भयपणे परसंग तजी वनवासे रहे. तपधारी मुनि ते अभिग्रहना घर छे. जगत्वासी जीव स्नेहपाशे बंधायला छे. स्नेह समान अन्य पासज नथी, तेमां मुख्य स्नेह देहनो छे. देह स्नेहवडेज घर धन स्त्री मित्र

वली निश्चय जोतां आत्मा एक नित्य अजर अमर स्वतंत्र अरोगी, अनाकुल अक्षय अजन्म अयोनी अजय अभेद अछेद छे तो दुःख सुख आपदा संपदा ते कोने छे ? माटे धैर्य राखो ॥ १ ॥

क्रोधादिक वसे रण सने,
सह्यां दुःख अनेक ।
ते जो समतामां सहे,
तो खरो विवेक ॥ रे जीव० ॥ २ ॥

अर्थः—क्रोधादिक वशे रणसंग्राममां मनुष्यो अनेक दुःख सहे छे अने विषय वशे पण अनेक दुःखो सहे छे. तेमज जीवो मान अने लोभवशे जागी झूझीने अनेक दुःखो सहे छे पण जो समतावशे दुःखो सहे तोज साचो विवेक छे ॥ २ ॥

सर्व अनित्य अशाश्वतो,
जे दीसे एह ।
धन तन सयण सगां सहु,
तिणश्युं श्यो नेह ॥ रे जीव० ॥ ३ ॥

अर्थः—जे जे नजरे देखीए छीए, नासिकाए सुंघवामां आवे छे, जिव्हावडे चाखवामां आवे छे, त्वचावडे स्पर्शाय छे ते ते धन तन सज्जन सगा संबंधी टोळी हाडमांस वीर्य रक्त मांस मस्तक मुख आदिक शक्ति, इंद्रिय शक्ति, मन वचन कायानी शक्ति आदि सर्व पर्यायो अनित्य अशा-

क्षता परतंत्र चल मल जड छे, तेथी शुं स्नेह करवो ? के जेना वडे शुद्ध आत्मिक स्वतंत्र आनंदनी हानी अने अज्ञान मिथ्यात्व कषाय जन्म जरा मरणादिनी वृद्धि थाय छे तो एवा दुःखदाई पुद्गल पर्यायो उपर कोण मूर्ख स्नेह करे ॥३॥

जिम बालक वेलू तणां,
घर करीय रमंत ।
तेह छते अथवा ढहे,
निज निज गृह जंत ॥ रे जीव० ॥ ४ ॥

अर्थः—जेम बालक वेलु अने धूलनां घर करी रमे छे अने ते भांगेथी अथवा तो तेने पडतां मुकीने पोत पोताने घेर जाय छे. तेम पौद्गलिक वैभव पडतो मुकीने अथवा नाश थयेथी संसारी जीव अन्य गत्यंतरे जाय छे. तो एहवा परतंत्र पदार्थो उपर स्नेह करवो अगर तेना स्नेहवडे बंधाई रहेवुं ते मोक्षाभिलाषी जीवोने युक्त नथी ॥ ४ ॥

पंथी जेम सराहमां,
नदी नावनी रीति ।
तिम ए परियण तो मिल्यो,
तिणथी शी प्रीति ॥ रे जीव० ॥ ५ ॥

अर्थः—पंथी लोको जेम धर्मशाला अथवा सराहमां भेगा मळे छे वळी नदीओ वीगेरेना नावमां पण अनेक तरेहना लोको भेगा मळे छे तेम ए कुटुम्बनो परिवार मळ्यो छे तेथी प्रीति करी आत्म शुद्धताने भुलवुं ए शुं हितकारी छे ? ना ए तो हितकारी नथी पण अहितकारी छे ॥ ५ ॥

ज्यां स्वारथ त्यां ए सहु सगां,
विण स्वारथ दूर ।
पर काजे पापे भले,
तुं किम होये सूर ॥ रे जीव० ॥ ६ ॥

अर्थः—ज्यां सुधी जेने स्वारथ छे त्यां सुधी ते सर्वे सगपण राखे छे पण स्वारथ थया पछी वेगला रहे छे तो ताहरे पोताना आत्म गुण शिवाय अन्य परिजनथी कांइ स्वारथ नथी तो परकाजे तुं शा वास्ते पापमां भलुं छुं अने पाप कार्यमां केम शूरो थाउं छुं ? ताहरूं शूरपणुं ताहरा रागादि शत्रुओने विदारवामां जो वापरूं तोज ताहरूं पुरुषपणाउं साधुं पराक्रम कहेवाय पण कर्म शत्रुओने पोषवामां अने आत्म गुणोनी हानि करवामां शूरपणुं करे तेना जेवो मूर्ख कोण ? ॥ ६ ॥

तज बाहिर मेलावडो,
मिलियो बहु वार ।
जे पूरव मिलियो नहीं,
तिणस्युं धर प्यार ॥ रे जीव० ॥ ७ ॥

अर्थः—आत्म अंगथी बाहिरनो मेलापरूप मेलावडो छोड के जे अनंतिवार मल्यो तो पण निवृत्तिरूप सुख लेश मात्र ताहरा हाथमां आव्युं नहीं माटे जे अनादिथी नथी मल्यो एहवो शुद्धात्म धर्म अने शुद्धात्म धर्मना दातारथी प्यार कर के जेवडे परम निवृत्ति शाश्वत सुख पामे. ॥ ७ ॥

साधवा रूप उत्तम नरभव हाथ आव्यो छे अने तुं गफलत राखुं के शी फीकर छे तो नरभवादि सर्व धर्म सामग्रीनो जोग मलवो दुर्लभ छे एम जाणवुं ॥ ९ ॥

रोगादिक दुःख ऊपने,
मन अरति मधेव ।
पूरव निज कृत कर्मनो,
ए अनुभव देव ॥ रे जीव० ॥ १० ॥

अर्थः—रोगादिक दुःख उपने तुं मनमां अरति न ग्रहीश केमके पूर्व निज कृत कर्मनो एहवो अनुभव छे. वली तुं निज रूपे आरोग्य ज्ञायक अखंड शुद्ध तत्त्व छुं तो ए अथीर देह संभालतां छतां पण न रहे एवीने संभालवानी वेठ के प्रयास क्यां सुधी करीश ? माटे ताहरी आरोग्य ज्ञायकताने संभाल के जेथी निःप्रयासी शाश्वत स्वनंदसुख प्रगटे ॥ १० ॥

एह शरीर अशाश्वतो,
खीणमें सीझंत ।
प्रीत किसि ते ऊपरे,
जे स्वारथवंत ॥ रे जीव० ॥ ११ ॥

अर्थ —अनन्त पुद्गल वर्गणाथी उपजेलुं एवुं आ शरीर अशाश्वतुं क्षणमां क्षय पामे एवु छे ने उपर तथा स्वारथवंत उपर शुं प्रीति करवी ? ज्या मनी ने आत्म शुद्धतामां प्रीत करी नथी त्या सुधी नाहगे प्रीति गण पौद्गल डोरमां

रहेला पदार्थोमां विखरी रह्यो छे पण तने हितकारी थतो नथी. माटे शुद्धात्मगुणमां अने शुद्धात्म तत्त्व दातारमां प्रीति कर के जेथी अनंति प्रीत ताहरी ताहरामां थशे ॥११॥

ज्यां लगे तुज ईण देहथी,
छे पूरव संग।
त्यां लगे कोटि उपायथी,
नवि थाये भंग ॥ रे जीव० ॥ १२ ॥

अर्थः—ज्यांसुधी आ देहथी ताहरो पूर्ण कर्म वशे संग छे त्यांसुधी क्रोडो उपायथी पण ए देहनो भंग थवानो नथी अने तुं तो क्षायिक अभंग अंगवालो छुं ॥ १२ ॥

आगल पाछल चहुं दिने,
जे विणसी जाय।
रोगादिकथी नवि रहे,
कोध कोटि उपाय ॥ रे जीव० ॥ १३ ॥

अर्थः—देह तो आगर पाछल चार दिने निश्चय विनाश पामवावाली छे अने रोगादि टालवा क्रोडो उपाय करवाथी पण रहे एवी नथी ॥ १३ ॥

अंते पण एने तज्यां,
थाये शिव सुख।
ते जो छूटे आपथी,
तां तुज श्यो दुःख ॥ रे जीव० ॥ १४ ॥

अर्थः—आखर पण देहनुं ममत्व छोडवार्थीज निपमा शिव-सुख थाय छे तो ते देह आपथी छूटे तेमां तुजने शुं दुःख छे? देहना ममत्ववडेज अनेक जातना कर्म रोग अने दुःख खडा थयां छे तो ते ममत्व तजवार्थीज सुख थाय एमां शुं शंका छे? ॥ १४ ॥

ए तन विणसे ताहरे,
नवि कोई हाण।
जो ज्ञानादिक गुणतणो,
तुज आवे झाण ॥ रे जीव० ॥ १५ ॥

अर्थः—जो तने निज ज्ञानादिक गुणनुं ध्यान आवे अने थीर रहे तो ए देह विणसतां ताहरी कोइ प्रकारनी हानि नथी ॥ १५ ॥

तुं अजरामर आतमा,
अविचल गुण राण।
क्षण भंगुर जड देहथी,
तुज किहां पिछाण ॥ रे जीव० ॥ १६ ॥

अर्थः—तुं जरा रहित अमर आत्म तत्त्व छुं तुं ताहरा ज्ञान धारिय कर्त्ता भोक्ता ग्राहकता व्यापकता आदि अनंत अविचल गुणोने राजा छ अने तुं पोतानो मुल्थी ए गुणो मलीन करछ तो कोण शत्रु जडसंगथी ताहरा गुणो मलीन करता छे? माटे गुणो शुद्ध अने थीर राखी अचल

अर्थः—ज्ञान ध्याननी वात करवी सुगम छे पण कोइ शुभाशुभ उदय आव्ये, अंत समय आफत पड्ये विरलाज ध्यान राखे छे माटे कोइ समय पण स्वसमय चूकवो नहीं ॥ १९ ॥

अरति करी दुःख भोगवे,
परवश जिम कीर ।
तो तुज जाणपणातणो,
गुण केवो धीर ॥ रे जीव० ॥ २० ॥

अर्थः—अशुभ कर्म उदय आव्ये पर वशना मानी आदरी कीरनी पेठे अरति करी तुं दुःख भोगवुं तो ताहरा जाणपणानुं धैर्य शुं रह्युं ? माटे आत्म अंग अखंड अभंग जाणी धैर्य आदरी दीन थवुं नही ॥ २० ॥

शुद्ध निरंजन निरमलो,
निज आतम भाव ।
ते विणसे कहे दुःख किशो,
जे मिलियो आव ॥ रे जीव० ॥ २१ ॥

अर्थः—ताहरो शुद्ध निर्मल के० कर्मरज मले नहीं एहवो शुद्धात्म भाव छे ते जाण निश्चय कर ते मांटे रमण कर, पण कर्म वशे आवी मलेला पुद्गल पर्याय विणसवामां तन शुं [illegible] ? [illegible] वस्तु विणसे अने कोइ दुःख [illegible] आवी दे अने

कष्ट पड्यां समता रमे,
निज आतम ध्याय ।
देवचंद्र तिण मुनि तणा,
नित वंदु पाय ॥ रे जीव० ॥ २४ ॥

अर्थः—देवचंद्र मुनि कहे छे के कष्ट आव्या छतां पण पोताना द्रव्य क्षेत्र काल भावमां संतोष राखे समता धरे एटले आत्म शुद्धता ध्याय तेवा मुनिना चरणकमल वंदु छुं ॥२४॥

॥ ढाल ४ थी ॥

॥ प्राणी धरीए संवेग विचार ॥ ए देशी ॥

ज्ञान ध्यान चारित्रने रे,
जो दृढ करवा चाह ।
तो एकाकी विहरतां रे,
जिनकल्पादि साह रे
प्राणी एकल भावना भाव,
शिव मारग साधन दाव रे ॥
॥ प्राणी० ए आंकणी ॥ १ ॥

अर्थः—जे मुनि ज्ञान ध्यान अने चारित्रने दृढ करवा चहाय तो ते मुनि [illegible] जिनकल्प आदि साह [illegible] मु [illegible]
[illegible] छे ॥ १ ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

आव्यो पण तुं एकलो रे,
जाईश पण तुं एक।
तो ए सर्व कुटुंबथी रे,
प्रीत किसि अविवेक रे ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥

अर्थः—तुं अहिआं एकलोज आव्यो छुं अने एकलोज जईश तो आ अथिर कुटुंब अने अन्य अनेक पदार्थोथी हे अविवेकी ! तुं शा माटे प्रीति राखुं छुं ? ॥ ७ ॥

वन मांहे गज सिंहादिथी रे
विहरतां न टले जेह।
जिण आसन रवि आथमे रे,
तिण आसन निशि छेहरे ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥

अर्थः—मुनि वनमां गज सिंहादि देखी भय पामी पाछो हठे नहीं पण विहार करतां जे आसने रवि अस्त थाय तेज आसने निर्भयपणे रहि रात्री पूरी करे ॥ ८ ॥

आहार ग्रहे तप पारणेजी,
करमां लेप विहोण।
एक वार पाणी पीवतां रे,
वनचारी चित्त अदीनरे ॥ पाणी० ॥ ९ ॥

अर्थः—मुनि तपने पारणे स्वाद आदिकनी लोलुपता मूर्छादिक कर्म लेप रहित संयम अर्थे दिनमां एक वार आ-

हाले अने एकज थाय पाणी थाय अने रत्नाकर तेने अति मुक्ति एकलो निरखे ॥ ९ ॥

एह दोष पर ग्रहणथी रे,
पर संगे गुण हाण ।
पर भव माही चोर ते रे,
एकपणो सुखखाण रे ॥ प्राणी० ॥ १० ॥

अर्थः—जे जे दोषो छे ते पुद्गल पर्याय ग्रहकता, व्यापकता, रक्षकता, कर्ता, भोक्ता आदिपणाथी उपज्या छे पगरा पर्यायनी ग्राहकता व्यापकता रक्षकता आदि छोडी शुद्धात्म तत्त्वनं एकपणं ग्रहे तो ते अनंत सुखनी खाण छे पण पर संगे तो गुणोनी हानि थाय छे माटे परसंग तजी एक शुद्धात्म भावमां मगन रहेवुं तेज एकत्वपण अनंत सुख खाण छे. जे पर वस्तु पर भव ग्रहे ते चोर जाणवो, पण पोतानी वस्तु भोगवे ते निर्भयपणे सहजे सुखमां वर्ते तेम आत्मा पर परिणति ग्रहणता तजी ज्ञानादिक निज परिणतिमां ग्राहकता व्यापकता रक्षकता कर्ता भोक्ता आदिपणुं आदरे तोज शाश्वत समाधिमां मग्न रहे ॥ १० ॥

पर संजोगथी बंध छे रे,
पर वियोगथी मोक्ष ।
तेणे तजी पर मेळाव[illegible],
एकपणो निज प[illegible] । प्राणी० ॥ ११ ॥

अर्थ —[illegible] छोड्यां मुक्ति

छे. ते माटे पर मेलावडो तजी पोताना एकपणाने जाणी ज्ञानादिक गुणोने पुष्ट कर ॥ ११ ॥

जन्म न पाम्यो साथ कोरे,
साथ न मरशे कोय ।
दुःख वहेंचवा को नहींरे,
क्षणभंगुर सहु लोयरे ॥ प्राणी० ॥ १२ ॥

अर्थः—कोइ साथे सलाह करी जन्म पाम्यो नथी तेम मर्यो पण नथी तेम दुःख वहेंचवा पण कोइ समर्थ नथी पण जेने जेवां जन्म मरण दुःख आदिनो उदय होय तेवोज ते भोगवे सर्व जीवनां शरीर क्षणभंगुर छे माटे अक्षय आत्म अंगमां पोतापणुं जाणी एकत्वपणे थिर रहो ॥१२॥

परिजन मरतो देखीनेरे,
शोक करे जन मूढ ।
अवसरे वारो आपणोरे,
सहु जननी रूढरे ॥ प्राणी० ॥ १३ ॥

अर्थः—परिवारमांथी कोइने मरतो देखी मूढ पुरुष शोक करे छे वळी अवसरे सर्वनो तेम आपणो एज वारो छे एम जाणीने परिजन अने शरीर रुपपर द्रव्यमां ममता करता नथी ते अखंड शुद्ध निज आत्म स्वभाव जाणी निर्भय निराकुल रहे छे ॥ १३ ॥

सुरपति चक्री हरी वळीरे,
एकला परभव जाय ।

तेथी कारमुं छे परवस्तु छे. माटे हे भवि ! तमे एनी ममता अने स्नेह संभाल छोडी शुद्ध निरंजन आत्मदेवने ध्यावो पोताना शुद्ध स्वरूपनो अनुपम अनुभव अभ्यास करो ॥१॥

नरभव श्रावक कुल लह्यो ॥ तु० ॥
लाधो समकित सार ॥ भविक० ॥
जिन आगम रुचिशुं सुणो ॥ तु० ॥
आलस निंद निवार ॥ भविक० ॥ २ ॥

अर्थः—उत्तम आर्य क्षेत्रमां नरभव श्रावककुल सद्गुरु अने सत्शास्त्र योग पाम्या के जे दशे द्रष्टांत पामवो दुर्लभ छे. एवी सामग्री पामी विषय प्रमाद वशे फोगट न गमावो अने सार समकित पण पाम्या छो माटे आलस अने निद्रा छोडी जीनेश्वरे प्ररुपेलुं आगम के जेमां सम्यक्मार्ग पोरी सकल कर्मनो नाश करी परमनिवृत्ति रूप मोक्षपदनी प्राप्ति पाय ए आदि भाव बनाव्या छे ते आगम परम प्रेम रुचि आदर सहित सांभलो. वली आगममां पंचास्तिकायना अने नवे तत्त्वना भाव प्रत्यक्षपणे सिद्ध करी देखाड्या छे ते सांभलो शंकादि दोष टाली निःशंक निर्भयपणे मोक्षमार्ग साधो ॥ २ ॥

समयांतर सद्भावनो ॥ तु० ॥
दर्शन ज्ञान अनंत ॥ भ० ॥
आतम भावे थिर सदा ॥ तुं० ॥
स्वरूप रमण महंत ॥ भ० ॥ ३ ॥

अर्थ—[illegible] ॥ १ ॥

तिन लोक तिहुं कालनी ॥ तु० ॥
परिणति तीन प्रकार ॥ मं० ॥
एक समे जाणे तिके ॥ तु० ॥
नाण अनंत अपार ॥ मं० ॥ २ ॥

अर्थ—[illegible]

[illegible] ॥ तु० ॥
वीरज परम अडोल ॥ मं० ॥
सुखम [illegible] ॥ तु० ॥
[illegible] ॥ मं० ॥ ३ ॥

अर्थ—[illegible]

पुद्गल सकल विवेकथी ॥ तु० ॥
शुद्ध अमूर्ति रूप ॥ भ० ॥
इंद्रिय सुख निस्पृह थई ॥ तु० ॥
अकषाय अबाह् स्वरूप ॥ भ० ॥ ६ ॥

अर्थः—पुद्गल ते पोताना वर्ण गंध रस स्पर्श सडण पडण विध्वंसन ग्रहण त्याग ए आदि अनेक रूपी लक्षण सहित छे. एथी भिन्न आत्म ज्ञान दर्शन रमण सुख वीर्य दान लाभ भोग उपभोग उपभोगादि अनेक अरूपी अमूर्ति लक्षण युक्त सदा छे. कोइ काळे पण ते पुद्गलादि अन्य द्रव्यना विशेष लक्षणवाळो हतो नहीं, छे नहीं, थशे नहीं माटे परलक्षणे पोतानो न जूओ. आत्मा स्वलक्षणे अस्ति परलक्षणे नास्ति रूप छे. एम परम विवेके स्वपर भिन्नता जाणी पर ममता आदि त्यागी आपणा द्रव्य क्षेत्र काल भावमां आपापणानी रूडी मति करी थिर उपयोगे अखंड समय आत्मशुद्धता ध्यावो, आत्म शुद्धतामां उपयोग रमावो, इंद्रिय सुखथी निस्पृह थई कषायो अने कषायोनां कारण तजी अबाधित शुद्धात्म स्वरूपमां लक्ष थिर करो ॥ ६ ॥

द्रव्यतणा परिणामथी ॥ तु० ॥
अगुरु लघुत्व अनित्य ॥ भ० ॥
सत्य स्वभावमयो सदा ॥ तु० ॥
असत्य तजो तुमे मित्त ॥ भ० ॥ ७ ॥

अर्थ—द्रव्यना परिणामिकपणाथी अगुरुलघु स्वभाव सदा

नवे नवे समये नवा नवा पर्याये षड्गुण हानिवृद्धिपणे ध्रुव छतां उत्पाद व्ययपणे परिणमे छे. एवो अनित्य स्वभाव छतां पण नित्य स्वभाववालो अने स्याद्वाद परिणामी आत्म स्वभाव ध्यावो. पोताना द्रव्य क्षेत्र काल अने भावे सदा सत्य स्वभाववंत आत्मा छे अने पर द्रव्य क्षेत्र काल अने भावे असत्य छे. माटे हे मित्र ! असत्य तजी सत्य स्वभावमयी आत्म स्वरूप ध्यावो ॥ ७ ॥

निज गुण रमतो राम ए ॥ तु० ॥
सकल अकल गुण खाण ॥ भ० ॥
परमातम पर ज्योति ए ॥ तु० ॥
अलख अलेप वखाण ॥ भ० ॥ ८ ॥

अर्थः—आत्मा पोताना शुद्ध गुणमां रमतो पोतेज राम छे, एटले परम आरामी छे. वळी बुद्धिथी कळी शकाय नहीं एहवो अकल अने सकल गुणनी खाण छे. वळी ए परमात्मा छे, परमभावनो भोगी छे. सूर्य चंद्र तारा नक्षत्र रत्न अग्नि आदिनी व्यावहारिक ज्योतिथी पर एटले ज्ञान दर्शन रूप अलौकिक परम ज्योतिवंत छे, वळी छद्मस्थने पूर्ण लक्षमां आवे नहीं एहवो छे. वळी जेम आकाशने कर्दमादि लेप लागे नहीं तेम आत्म अंगे पुद्गल लेप लागे नहीं एहवो छे, पण जे मूढो पुद्गलमां पोतापणुं करी माने छे तेने मिथ्यात्व रागादि लेप लाग्यो कहिये. पण शुद्धनये जेने स्वस्वरूपमां लक्ष छे तेने कर्म लेप लागतो नथी एहवो आत्मा सिद्धांतोमां वखाण्यो छे ॥ ८ ॥

पंच पूज्यथी पूज्य ए ॥ तु० ॥
सर्व ध्येयथी ध्येय ॥ भ० ॥
ध्याता ध्यान रू ध्येय ए ॥ तु० ॥
निश्चे अभेद ए श्रेय ॥ भ० ॥ ९ ॥

अर्थः--अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय अने साधु ए पंच परमेष्टी पूज्य छे तेमने पूजवाथी जीव देवादिक शुभ गति पामे केमके प्रशस्त राग ते पण पुण्याश्रव रूप छे अने पोताना परमदेवने पूजवुं ते तो राग रहित शुद्धात्म भाव छे. तो शुद्धात्म भाव सेवतो पुरुष निर्वाण पद पामे. अरिहंत अने आचार्यादि तत्त्व उपदेशना दातार छे पण ते उपदेशने ग्रहण करवावालो अने सेववावालो आत्मा पोतेज पूज्य छे, वलि आत्मशुद्धता शिवाय जे अन्य ध्येयनुं ध्यावुं ते शुभाशुभ बंध प्रकृतिने वधारवावालुं छे अने सहज शुद्धात्म स्वरूपनुं ध्यावुं ते शुभाशुभ बंध विना निर्वाण पद आपनारुं छे. माटे सकल ध्येयमां शुद्धात्म भाव ते परम ध्येय छे. शुद्ध ध्यानने ध्यावावालो पोते आत्माज छे अने उपयोग शुद्ध ध्येयमां थिर करवो ते उपयोग पोतानोज छे अने शुद्ध ध्येय ते पोतानुंज शुद्ध स्वरूप छे, एम ध्याता ध्यान अने ध्येय व्यवहारे भेद कहीये अने निश्चयनये ए त्रणे भाव आत्मार्थी अभेद पणे छे एटले आत्मानाज छे तेज श्रेय के० कल्याणकारी छे ॥ ९ ॥

अनुभव करनां गहनो ॥ तु० ॥
धारए परम प्रमोद ॥ भ० ॥

एक रूप अभ्यासशुं ॥ तु० ॥
शिव सुख छे तसु गोद ॥ भ० ॥ १० ॥

अर्थः—आत्म शुद्धतानो अनुभव करतां परम प्रमोद उपजे अने पुद्गल विषय अनुभव रूप अशुद्धता टळे. जे मुनि अनंत लक्षणमयी पोताना ज्ञायक एक रूपनो अभ्यास करे-ध्याय तेने मोक्ष सुख पोतानी गोदमां एटले पोताना खोला-मांज छे ॥ १० ॥

वंध अवंध ए आतमा ॥ तु० ॥
करता अकरता एह ॥ भ० ॥
एह भोगता अभोगता ॥ तु० ॥
स्याद्वाद गुण गेह ॥ भ० ॥ ११ ॥

अर्थः—परद्रव्यना ममत्वथी वंधायलो आत्मा द्रव्यकर्म तथा भावकर्म बांधे छे पण शुद्ध आत्मस्वरूप जाणी पर पारिणामिकता त्यागया पछी स्वस्वरूपमां रमे त्यारथी ते अवंध छे. वळी व्यवहारनयथी द्रव्यकर्म अगर पुद्गल वर्गणा, जीव वर्गणी जीव बांधे छे अने निश्चय नयथी पोताना स्निग्ध रूक्षगणे करी पुद्गल परमाणुआ अगर पुद्गल वर्गणा आ-पसमां पुद्गलो साथे वंधाय छे पण जीव, पुद्गलो साथे वंधातो नथी. व्यवहार नयथी जीव, द्रव्य कर्मनो अने गाम नगर घट पटादिनो कर्ता कहेवाय पण निश्चयनयथी गाम नगर के घट पट तथा द्रव्यकर्म पुद्गल वर्गणा आदिनो कर्ता जीव नथी. पण स्वस्वभावनो कर्ता छे. रागादि वडे पर गुण पर्यायनो भोगी जीव कहेवाय पण निश्चय नयथी

पर गुण पर्यायनो भोगी जीव नथी. अशुद्ध निश्चये रागादि अशुद्धतानो भोगी छे पण शुद्ध निश्चयनये पोतानुं शुद्ध स्वरूप जाण्या पछी पोताना ज्ञानानंद आदि अनंत शुद्ध स्वभावनो भोगी छे एम स्याद्वाद एज गुणनुं घर छे ॥ ॥ ११ ॥

एक अनेक स्वरूप ए तु० ॥
नित्य अनित्य अनादि ॥ भ० ॥
सदसद्भावे परिणम्या ॥ तु० ॥
मुक्त सकल उन्माद ॥ भ० ॥ १२ ॥

अर्थः—आत्मा पोताना परम चेतनत्व स्वभावे निश्चय अनंत पर्यायनो एक पिंड एक रूप छे अने ज्ञान दर्शन चरण सुख वीर्यादि के व्यवहारे अनेक रूप छे. द्रव्यार्थिकनये नित्य छे. नवा नवा पर्याय परिणमवे पर्यायार्थिकनये अनित्य छे. स्वद्रव्यादिके सत्य अने परद्रव्यादिके असत्य छे. एम सर्वे द्रव्यो सकल समय सदसद्भावे परिणम्या अनादि सिद्ध छे. माटे मोह मदिरानो उन्माद छोडी यथावत् वस्तु स्वरूप जाणी परद्रव्यनी ममता छोडी शुद्धात्म तत्त्वमां लीन थवुं जोइए ॥ १२ ॥

जप तप करिया खपथकी ॥ तु० ॥
अष्ट करम न विलाय ॥ भ० ॥
ते सहु आतम ध्यानथी ॥ तु० ॥
क्षणमें खेरू थाय ॥ भ० ॥ १३ ॥

अर्थः—तप जप किरियानो खप करवायी जे आठ कर्मनो नाश थाय नहीं ते आठे कर्मनो शुद्धात्म ध्यानवडे क्षणमां क्षय थाय छे ॥ १३ ॥

शुद्धातम अनुभव विना ॥ तु० ॥
बंध हेतु शुभ चाल ॥ भ० ॥
आतम परिणामे रम्या ॥ तु० ॥
एहज आस्रव पाल ॥ भ० ॥ १४ ॥

अर्थः—शुद्धात्म अनुभव विना शुभाशुभ सर्व आचरण ते कर्मबंधनां हेतु छे. जे जीव शुद्धात्म परिणामे रम्या तेने आस्रवरूप पाणी आवतुं अटकाववाने पाल बांधी एटले शुभाशुभ पुद्गल दल अने शुभाशुभ पुद्गल परिणाम रस आवता रोकवाने संवर रूप आडी पाल बांधी एम जाणवुं ॥ १४ ॥

ईम जाणी निज आतमा ॥ तु० ॥
वरजी सकल उपाध ॥ भ० ॥
उपादेय अवलंबने ॥ तु० ॥
परम सहोदर साध ॥ भ० ॥ १५ ॥

अर्थः—एम जाणी सकल शुभाशुभ विभाव उपाधि टाली एकलो सहज निज शुद्धात्म भाव रूप शुद्ध तत्त्व ध्याओ. शुद्ध आतमभाव रूप उपादेय अवलंबने वर्त्ती परम महोदय सिद्धि पद साध्य साधो—सिद्ध करो ॥ १५ ॥

भरत ईलासुत तेतली ॥ तु० ॥
ईत्यादिक मुनि वृंद ॥ भ० ॥

आतम ध्यानथी ए तर्या ॥ तु० ॥
प्रणमे ते देवचंद्र ॥ भ० ॥ १६ ॥

अर्थः—भरत चक्री, इलायचि कुंवर, तेतली मुनि, ए आदि मुनिओना वृंद शुद्धात्म ध्यानथी तरया छे तेने देवचंद्र मुनि वंदे छे. परमार्थ ए के घणो काल अगर थोडो काल बाह्य चारित्र प्रवृत्ति करो पण ज्यारे पूर्ण समभाव आदरी समयानंतर शुद्धात्म उपयोगमां मग्न लीन थशो तोज केवलज्ञानादि शुद्ध गुणो पामी सिद्धि वरशो ॥ १६ ॥

॥ ढाल ६ छठी ॥
शेलग शेत्रुंजे सिद्धया ॥ ए देशी ॥

भावना मुक्ति निशाणी जाणी,
भावो आसक्ति आणीजी ।
योग कषाय कपटनी हाणी,
थाये निर्मल जाणीजी ॥ भावना ॥ १ ॥

अर्थः-ए पंच भावना मुक्तिनी निशानी अर्थात चिन्ह छे. एम जाणी ए भावनाओमां विशेष रक्त थई तन्मयताए भावो. तेथी अप्रशस्त योग कषायो अने कपट आदि दुर्गणोनी हाणी थाय. अने ए भावना निर्मल जाणी जे सेवे ते उतावलो आत्म शुद्धता पामे ॥ १ ॥

पंच भावना ए मुनि मनने,
संवर म्याणी वखाणीजी ।

४२

धारी शुद्ध तत्त्व विचारवावाला राजसागर नामा पाठक तें शिष्य निर्मल ज्ञान अने निर्मल धर्मना भंडार सहु सं हितकारी ज्ञानधरम नामना पाठक वली ॥ ४ ॥

राजहंस सद्गुरु सुपसाये,
देवचंद्र गुण गायजी ।
भविक जीव जे भावना भावे,
तेह अमित सुख पायजी ॥ भ० ॥ ५ ॥
जेसलमेरी शाह सुत्यागी,
वर्द्धमान वड भागीजी ।
पुत्र कलत्र सकल सोभागी,
साधु गुणना रागीजी ॥ भ० ॥ ६ ॥
तस आग्रहथी भावना भाई,
ढालबंधमां गाईजी ।
भणशे गुणशे जे ए ज्ञाता,
लहेशे ते सुख शाताजी ॥ भा० ॥ ७ ॥
मन शुद्ध पंचे भावना भावो,
पावन जिन गुण पावोजी ।
मन मुनिवर गुण संग वसावो,
सुग्न संपनि गृह थावोजी ॥ भा० ॥ ८ ॥

अष्ट प्रवचन मातानी सज्झायो.

॥ दोहरा ॥

सुकृत कल्पतरु श्रेणिनी,
वर उत्तरकुरु भोमि ।
अध्यात्म रस शशि कला,
श्री जिन वाणी भौमि (नौमि?)॥ १ ॥
दीपचंद पाठक सुगुरु,
पय वंदी अवदात ।
सार श्रमण गुण भावना,
गाइशुं प्रवचन मात ॥ २ ॥
जननी पुत्र हित शुभकरी,
तिम ए पवयण माय ।
चारित्र गुण गणवर्द्धनी,
निरमल शिव सुखदाय ॥ ३ ॥
भाव अयोगी करण रुचि,
मुनिवर गुप्ति धरंत ।
जो गुप्ति ना रहि शके,
तो सुमते विचरंत ॥ ४ ॥

गुप्ति एक संवरमयी,
उछरंगीक परिणाम ।
संवर निर्झर समितिथी,
अपवादे गुणधाम ॥ ५ ॥
द्रव्ये द्रव्यत चरणता,
भावे भाव चरित्त ।
भाव द्रष्टि द्रव्यत क्रिया,
सेवि लहो शिव मित्त ॥ ६ ॥
आतम गुण प्राग्भावथी,
जे साधक परिणाम ।
समिति गुप्ति ते जिन कहे,
साध्य सिद्धि शिव ठाम ॥ ७ ॥
निश्चय करण रुचि थई
समिति गुप्तिधर साधि ।
परम अहिंसक भावथी,
आराधे निरुपाधि ॥ ८ ॥
परम महोदय साधवा,
जेह थया उजमाल ।
श्रमण भिक्षु माहण यति,
गावुं तस गुणमाल ॥ ९ ॥

॥ ढाल पहेली ॥

प्रथम गोवालतणे भवेजी ॥ ए देशी ॥

प्रथम अहिंसक व्रततणीजी,
उत्तम भावना एह ॥
संवर कारण उपदिशीजी,
समता रस गुण गेह ॥
मुनीसर इरिया समिति संभार,
आश्रव कर तनु योगथीजी,
दुष्ट चपलता वार ॥ मुनीसर० ॥ १ ॥
काय गुप्ति उत्सर्गनोजी,
प्रथम समिति अपवाद ॥
इरिया ते जे चालवोजी,
धरि आगम विधिवाद. मुनी० ॥ २ ॥
ज्ञान ध्यान लिङ्लायनांजी,
थिर बेठा मुनिराज ॥
ध्याने चपलपणो करजी,
अनुभव रस सुखराज ॥ मुनी० ॥ २ ॥
मुनि ऊठे वसही थकीजी,
पामी कारण च्याग ।

जिन वंदन ग्रामांतरेजी,
के आहार निहार ॥ मुनी० ॥ ४ ॥
परम चरण संवर धरुजी,
सर्व जाण जिन दीठ ॥
शुचि समता रुचि ऊपजेजी,
तिणे मुनिने ए ईट्ठ ॥ मुनी० ॥ ५ ॥
राग वधे थिर भावथीजी,
ज्ञानविना परमाद ॥
वीतरागता ईहताजी,
विचरे मुनि साल्हाद ॥ मुनी० ॥ ६ ॥
ए शरीर भव मूल छे जी,
तसु पोपक आहार ।
जाव अयोगी नवि हुवेजी,
त्यां अनादि आचार ॥ मुनी० ॥ ७ ॥
कवलाहारे निहार छे जी,
एह अंग व्यवहार ।
धन्य अतनु परमातमाजी,
जिहां निश्चलता सार. मुनी० ॥ ८ ॥
पर परिणति कृत चपलताजी,
कीम मूकस्यरे एह ।

एम विचारी कारणेजी,
करे गोचरी तेह ॥ मुनी० ॥ ९ ॥

क्षमावंत दयालुआजो,
निस्पृहो तनु नीराग ।
निर्विषयी गजगतिपरेजी,
विचरे मुनि महा भाग ॥ मुनी० ॥ १० ॥

परमानंद रस अनुभव्याजी,
निज गुण रमता धीर ।
देवचंद मुनि वंदतांजी,
लहिये भवजल तीर ॥ मुनी० ॥ ११ ॥

॥ ढाल बीजी ॥

॥ भावना मालती चूसीए ॥ ए देशी ॥

साधुजी समिति बीजी आदरो,
वचन निर्दोष परकासरे ।
गुप्ति उत्सर्गनो समिति ते,
मार्ग अपवाद सुविलासरे ॥ साधु० ॥ १ ॥

भावना बीजा महाव्रतनणी,
जिन भणी सत्यना मूलरे ।

भाव अहिंसकता वधे,
सर्व संवर अनुकुलरे ॥ साधु० ॥ २ ॥
मौनधारी मुनि नवि वहे,
वचन जे आश्रव गेहरे ।
आचरण ज्ञानने ध्याननो,
साधक उपदिसे तेहरे ॥ साधु० ॥ ३ ॥
उदित पर्याप्ति जे वचननी,
ते करी श्रुत अनुसाररे ।
बोध प्राग्भावी सज्झायथी,
वलि करे जगत उपगाररे ॥ साधु० ॥ ४ ॥
साधु निज वीर्यथी परतणो,
नवि करे ग्रहणने त्यागरे ।
ते भणी वचन गुप्ति रहे,
एह उत्सर्ग मुनि मार्गरे ॥ साधु० ॥ ५ ॥
योग जे आश्रवपद हतो,
ते कर्यो निर्झरा रूपरे ।
लोहथी कंचन मुनि करे,
साधता साध्य चिद्रूपरे ॥ साधु० ॥ ६ ॥
आत्म हित पर हित कारणे,
आदरे पांच सिझायरे ।

ते भणी असन वसनादिका,
आश्रय सर्व अववायरे ॥ साधु० ॥ ७ ॥
जिन गुण स्तवन निज तत्त्वने,
जोड़वा करे अविरोधरे ।
देशना भव्य प्रतिबोधवा,
वायणा करण निज बोधरे ॥ साधु० ॥८॥
नय गम भंग निक्षेपथी,
स्वहित स्याद्वादयुत वाणरे।
सोल दश चार गुणसु मिलि,
कहे अनुयोग सुपहाणरे ॥ साधु० ॥ ९ ॥
सूत्रने अर्थ अनुयोग ए,
बीय निर्युक्ति संजुत्तरे,
तीय भाष्ये नये भावियो,
मुनि वदे वचन एम तंतरे ॥ साधु० ॥ १० ॥
ज्ञान समुद्र समता भर्या,
संवरी दया भंडाररे ।
तत्त्व आनंद आस्वादता,
वंदिए चरण गुणधाररे ॥ साधु० ॥ ११ ॥
मोह उदये अमोही जिस्या,
शुद्ध निज साध्य लयलीनरे ।

देवचंद्र तेह मुनि वंदिये,
ज्ञान अमृत रस पीनरे साधु० ॥ १२ ॥

॥ ढाल त्रीजी ॥

॥ झांझरिया मुनिवर ॥ ए देशी ॥

समिति तीसरी एषणाजी,
पांच महाव्रत मूल ।
अणहारी उत्सर्गनोजी,
ए अपवाद अमूल;
मनमोहन मुनिवर समिति सदा चित्त धार॥१॥
चेतनता चेतनतणीजी,
नवि परसंगी तेह ।
तिण पर सन्मुख नवि करेजी,
आतमरती व्रती जेह ॥ मन० ॥ २ ॥
काय योग पुद्गल ग्रहेजी,
एह न आतम धर्म ।
जाणग करता भोगताजी,
हुं माहरो ए मर्म ॥ मन० ॥ ३ ॥
अणभिसंधि चल वीर्यनीजी,
रोधक शक्ति अभाव ।

पण अभिसंधिज वीर्यथीजी,
कीम ग्रहे परभाव ॥ मन० ॥ ४ ॥
इम पर त्यागी संवरीजी,
न ग्रहे पुद्गल खंध ।
साधक कारण राखवाजी,
अशनादिक संबंध ॥ मन० ॥ ५ ॥
आतम तत्त्व अनंतताजी,
ज्ञान विना न जणाय ।
तेह प्रगट करवा भणीजी,
श्रुत सज्झाय उपाय ॥ मन० ॥ ६ ॥
तेह जेहथी देह रहेजी,
आहारे पलवान् ।
साध्य अधूरे हेतुनेजी,
केम तजे गुणवान् ॥ ७ ॥
तनु अनुयायी वीर्यनोजी,
वर्तन अशन संजोग ।
इम पहि सम जाणीनेजी,
अशनादिक उपभोग ॥ मन० ॥ ८ ॥
जो साधकता नवी अडेजी,
तो न ग्रहे आहार ।

बाधक परिणति वारवाजी,
अशनादिक उपचार ॥ मन० ॥ ९ ॥
सुडतालीसे द्रव्यनाजी,
दोप तजी नीराग ।
असंभ्रांति मूर्च्छा विनाजी,
भ्रमर पेरे वडभाग ॥ मन० ॥ १० ॥
तत्त्व रुचि तत्त्वाश्रयीजी,
तत्त्व रसीक निग्रंथ ।
कर्म उदये आहारताजी,
मुनि माने पलीपंथ ॥ मन० ॥ ११ ॥
लाभथकी पण घन लहेजी,
अति निर्झरा करंत ।
पाम्ये अण व्यापकपणेजी,
निरमल संत महंत ॥ मन० ॥ १२ ॥
अणाहारता साधताजी,
समता अमृत कंद ।
भिक्षु श्रमण वाचंयमीजी,
ते वंदे देवचंद ॥ मन० ॥ १३ ॥

॥ ढाल चोथी ॥

॥ भोलीडा हंसारे विषय न राचीएं ॥ ए देशी ॥

समिति चोथीरे चउ गति वारणी,
भाखी श्री जिनराज ।
राखी परम अहिंसक मुनिवरें,
चाखी ज्ञान समाज ॥ १ ॥
सहज संवेगीरे समिति परिणमे,
साधन आतम काज ।
आराधन ए संवर भावनो,
भव जल तारण जहाज ॥ सहज० ॥ २ ॥
अभिलाषो निज आतम तत्वना,
साखी करि सिद्धांत ॥
नाखी सर्व परिग्रह संगने,
ध्यानाकांक्षीरे संत ॥ सहज० ॥ ३ ॥
संवर पंचतणी ए भावना,
निरुपाधिक अप्रमाद ।
सर्व परिग्रह त्याग असंगता,
तेहनो ए अपवाद ॥ सहज० ॥ ४ ॥
इयाने मुनिवर उपकरण संग्रहे,
जे परभाव विरत्त ।

देह अमोहीरे नवि लोही कदा,
रत्नत्रयी संपत्त ॥ सहज० ॥ ५ ॥
भाव अहिंसकता कारण भणी,
द्रव्य अहिंसक साधि ।
रजोहरण मुख वस्त्रादिक धरे,
धरवा योग समाधि ॥ सहज० ॥ ६ ॥
शिव साधननो मूल ते ज्ञान छे,
तेहनो हेतु सज्झाय ।
ते आहारे ते थाल पात्रथी,
जयणाए ग्रहवाय ॥ सहज० ॥ ७ ॥
बाल तरुण नर नारी जंतुने,
नग्न दुर्गच्छानो हेतु ।
तिणे चोलपट ग्रही मुनि उपदिशे,
शुद्ध धरम संकेत ॥ सहज० ॥ ८ ॥
दंस मसक शीतादि परिसहे,
न रहे ध्यान समाधि ।
कल्पक आदिक निरमोहीपणे,
धारे मुनि निरबाध ॥ सहज० ॥ ९ ॥
लेप अलेप नदीना ज्ञानना,
कारण दंड ग्रहंत ।

दश वैकालीक भगवई साखथी,
तन थिरताने रे तंत ॥ सहज० ॥ १० ॥
लघु सजीव सचित्त रजादिनो,
वारण दुःख संघट्ट ।
देखी पूंजेरे मुनिवर तेहथी,
ए पूरव मुनिवट्ट ॥ सहज० ॥ ११ ॥
पुद्गल खंध ग्रहण निखेवना,
द्रव्ये जयणारे तास ।
भावे आतम परिणति नवनवी,
ग्रहतां समिति प्रकाश ॥ सहज० ॥ १२ ॥
बाधक भाव अद्वेषपणे तजे,
साधक ले गत राग ।
पूरव गुण रक्षक पोषकपणे,
नीपजते शिव मारग ॥ सहज० ॥ १३ ॥
संजम श्रेणेरे संचरता मुनि,
हरे कर्म कलंक ।
धरता समता रस एकत्वता,
तत्त्व रमणी निशंक ॥ सहज० ॥ १४ ॥
जग उपगारीरे तारक भव्यना,
लायक पूर्णानंद ।

देवचंद एहवा मुनिराजना,
वंदे पय अरविंद ॥ सहज० ॥ १५ ॥

॥ ढाल पांचमी ॥

चेतन चेतजोरे ॥ ए देशी ॥

पंचमी समिति कहि अति सुंदररे,
पारिठावणिया नाम ।
परम अहिंसक धर्म वधारणीरे,
मृदु करुणा परिणाम ॥ १ ॥
मुनिवर सेवज्योरे,
समिति सदा सुखदाय ।
थिरता भावे संयम सोहायछेरे,
निरमल संवर थाय ॥ मुनिवर० ॥ २ ॥
देह नेहथी चंचलता वधेरे,
विकसे दुष्ट कषाय ।
निज तनु राग त्याने रमेजो,
ज्ञान चरण सुपसाय । मुनि० ॥ ३ ॥
जिहां शरीर तिहां मल उपजेरे,
तेह तणा परिहार ।

फरे जंतु पर थिर अणदूहव्यारे.
सफल दुगंछा वार ॥ मुनि० ॥ ४ ॥
संयम साधक आत्म विराधनारे,
आणा पातक जाणि ।
उपधि अशन शिष्यादिक परठवेरे,
आयति लाभ विचारि ॥ मु० ॥ ५ ॥
वध्या आहारं नवीया परठवेरे,
निज कोठे अप्रमाद ।
देह अशक्ती भाव अभ्यासवारे,
धीरनें ए अपवाद मु० ॥ ६ ॥
संलोकादिक दूषण परिहरीरे,
परठी रागने द्वेष ।
आतम सेवे परठवणी इणेरे,
लायक हेतु विशेष ॥ मु० ॥ ७ ॥
चवलीन आहारनी इणीरे,
जिन धर्मादि मुनीश ।
[illegible]
[illegible] ॥ मु० ॥ ८ ॥
[illegible]
[illegible]

थिविर कल्पनो प्रति अपवाद छेरे,
ग्लानादिक नहि काम ॥ मु० ॥ ९ ॥
एह द्रव्यथी भावमांरे,
बाधक जे परिणाम ।
द्वेष निवारी मादकता विनारे,
सर्व विभाव विराम ॥ मु० ॥ १० ॥
आतम परिणति तत्त्वमयी करेरे,
परिहरता परभाव ॥
द्रव्य समिति पिण भावभणी धरेरे,
मुनिनो एह स्वभाव ॥ मु० ॥ ११ ॥
पंच समिति समता परिणामथीरे,
क्षमा कोप गत रोप ।
भावन पावन संयम साधनारे,
करता गुण गण पोप ॥ मु० ॥ १२
साम्यरसी निज तत्वे तन्मयीरे,
उछरंगी निरमाय ।
योग क्रिया फल भाव अवंचनारे,
शुचि अनुभव सुख दाय ॥ मु० ॥ १३ ॥
आणायुत नाणी दर्शनीरे,
निश्चय निग्रह यंत्र ।

देवचंद्र एहवा निर्ग्रंथ तेरे,
मुज गुरु तत्त्व महंत ॥ मु० ॥

॥ ढाल छट्ठी ॥

॥ वैरागी थयोरे ॥ ए देशी ॥

मुनि मन वसि करो,
मन ए आस्त्रव गेहोरे ।
मन ममता रसी,
मनथीरे टालो यति वर तेहोरे ॥मुनि०॥१॥

दुष्ट तुरंग चित्त ते कह्युंरे,
सो मोह नृपत्ति प्रधान ।
आर्त रौद्रना खेत्र एरे,
रोक!!! तुं ज्ञान निधानरे ॥ मुनि० ॥ २ ॥

गुप्ति प्रधन ए साधुनेरे,
धर्म शुक्लनारे कंद ॥
वस्तु धर्म चिंतन रमतारे,
साधे पूर्णानंदरे ॥ मुनि० ॥ ३ ॥

योग ते पुद्गल जोग छेरे,
बांधे अभिनव कर्म ।

योग वर्त्तना कंपनारे,
नवि ए आतम धर्मरे ॥ मुनि० ॥ ४ ॥
वीर्य चपल परसंगमीरे,
एह न साधक पक्ष ।
ज्ञान चरण सहकारनारे,
वरतावे मुनि दक्षरे ॥ मुनि० ॥ ५ ॥
सविकल्पक गुण साधनारे,
ध्यानीने न सुहाय ।
निर्विकल्प अनुभव रसीरे ॥
आत्मानंदी थायरे ॥ मुनि० ॥ ६ ॥
रत्नत्रयीनी भेदनारे,
एह समल व्यवहार ।
त्रिगुण वीर्य एकत्वतारे,
निर्मल आत्माचाररे ॥ मुनि० ॥ ७ ॥
शुक्लध्यान श्रुतलंबनीरे,
ए पण साधन दाव ।
वस्तु धर्म उत्सर्गमांरे,
गुण गुणी एक स्वभावरे ॥ मुनि० ॥ ८ ॥
परसहाय गुण वर्तनारे,
वस्तु धरम न कहाय ।

साध्यरसी तो कीम ग्रहेरे,
साधु चित्त सहायरे ॥ मुनि० ॥ ९ ॥
आत्म रुचि आत्मालयीरे,
ध्याता तत्त्व अनंत ।
स्यादवाद ज्ञानी मुनिरे,
तत्त्व रमण उपसंतरे ॥ मुनि० ॥ १० ॥
नवि अपवाद रुचि कदारे,
शिव रसीया अनगार ।
शक्ति यथागम सेवतारे,
निंदे कर्म प्रचाररे ॥ मुनि० ॥ ११ ॥
शुद्ध सिद्ध निज तत्त्वतारे,
पूर्णानंद समाज ।
देवचंद्र पद साधतारे,
नमीए ते मुनिराजरे ॥ मुनि० ॥ १२ ॥

॥ ढाल सातमी ॥

सुमति सदाए दीलमे धरो ॥ ए देशी ॥ हमि० ॥

वचन गुप्ति सुधी धरो.
वचन ते कर्म सहाय, सलुणा ।

उदयाश्रित जे चेतना,
निश्चय तेह अपाय, सलुणा ॥ वचन० ॥१॥
वचन अगोचर आतमा,
सिद्ध ते वचनातीत, सलुणा ।
सत्ता अस्ति स्वभावमां,
भाषक भाव अतीत, सलुणा ॥ वचन०॥२॥
अनुभव रस आस्वादता,
करता आतम ध्यान, सलुणा ।
वचन ते बाधक भाव छे,
न वदे मुनि अदीन, सलुणा ॥वचन०॥३॥
वचनास्रव पलटाववा,
मुनि साधे स्वाध्याय, सलुणा ।
तेह सर्वथा गोपवां,
परम महारस थाय, सलुणा ॥वचन०॥४॥
भाषा पुद्गल वर्गणा,
ग्रहण निसर्ग उपाधि, सलुणा ।
करता आतम वीर्यने,
ध्याने में ध्यायी, सलुणा ॥ वचन० ॥५॥
पावन योग्य चेतना,
आतम गुण मगन, सलुणा ।

तावत सर्वे निर्झरा,
आस्रवपर आश्रव, सलुणा ॥वचन० ॥६॥
ईम जाणी थिर संजमी,
न करे चपलीनंथ, सलुणा ।
आत्मानंद आराधतां,
आलेच्छो निर्ग्रंथ, सलुणा ॥ वचन० ॥७॥
साध्य शुद्ध परमातमा,
तसु साधन उत्सर्ग, सलुणा ।
बारे भेदे तप द्विविधे,
सकल श्रेष्ठ व्युत्सर्ग, सलुणा ॥वचन०॥८॥
समकित गुण गुणठाणे कर्यो,
साध्य अयोगी भाव, सलुणा ।
उपादानता तेहनी,
गुप्तिरूप थिरभाव, सलुणा ॥वचन०॥९॥
गुप्ति रुचि गुप्ते रम्या,
कारण समिति प्रवेश सलुणा ।
करता थिरता [illegible],
[illegible] ॥वचन०॥१०॥
अरनाथे [illegible]
[illegible] न चूके [illegible], सलुणा ।

प्रणमे नित्यप्रत्ये भावशुं,
देवचंद्र मुनि तेह, सलुणा ॥ वचन ॥११॥

॥ ढाल आठमी ॥

॥ फूलना चोसर प्रभुजीने शिर चढे ॥ ए देशी ॥

गुप्ति संभारो रे त्रीजी मुनिवरु,
जेहथी परम आनंदोजी ।
मोह टले घनघाती परिगले,
प्रगटे ज्ञान अमंदोजी ॥ गुप्ति० ॥ १ ॥
करि शुभ अशुभे भव भ्रम जे छे,
तिण तजि तनु व्यापारोजी ।
चंचल भाव ते आस्रव मूल छे,
जीव अचल अविकारोजी ॥ गुप्ति० ॥ २ ॥
इंद्रि विषय सकलनो द्वार ए,
बंध हेतु दृढ एहाजी ।
अभिनव कर्म ग्रहे तनु योगथी,
तिण थिर करिए देहाजी ॥ गुप्ति० ॥ ३ ॥
आतम वीर्य स्फुरे परसंग जे,
ते करिए तनु त्यागजी ।

चेतन सत्ता रे परम अयोगी छे,
निर्मल थिर उपयोगजी ॥ गुप्ति० ॥ ४ ॥
जावत कंपन तावत बंध छे,
भाख्युं भगवइ अंगेजी ।
ते माटे ध्रुव तत्त्व रसे रमे,
माहण ध्यान प्रसंगेजी ॥ गुप्ति० ॥ ५ ॥
वीर्य सहायीरे आतम धर्मनो,
अचल सहज अप्रयासोजी ।
ते परभाव सहायी किम करे,
मुनिवर गुण आवासोजी ॥ गुप्ति० ॥ ६ ॥
खंती मुत्ती अकिंचनी,
शौच ब्रह्मधर धीरोजी ।
विषय परिषह सैन्य विदारवा,
वीर परम सौंडीरोजी ॥ गुप्ति० ॥ ७ ॥
कर्म पडल दल क्षय करवा रसी,
आतम ऋद्धि समृद्धोजी ।
देवचंद्र जिन आणा पालता,
वंदो गुरु गुण वृद्धोजी ॥ गुप्ति० ॥ ८ ॥

॥ ढाल नवमी ॥

॥ रसीयानी देशी ॥

धर्म धुरंधर मुनिवर सद्दही,
नाण चरण संपन्न, सुगुण नर ।
ईंद्रि भोग तजी निज सुख भजी,
भवचारक उद्विग्न, सुगुणनर ॥ धर्म० ॥१॥
द्रव्य भाव साची सरधा धरी,
परिहरी शंकादि दोष । सुगुणनर ।
कारण कारज साधन आदरी,
धरी सुध्यान संतोष ॥ सुगु० ॥ २ ॥
गुण पर्याये वस्तु परखता,
शील उभय भंडार । सु०
परिणति शक्ति स्वरूपनां परिणमि,
करता नवु व्यवहार ॥ सुगु० ॥ ३ ॥
लोकसन्न वीतिगिच्छा वारता,
करता संयम वृद्धि ।
मुल उत्तर गुण सर्व संभारता,
धरता आतम शुद्धि ॥ सुगु० ॥ ४ ॥
श्रुतधारी श्रुतधरनिश्रारमी,
वमि कर्या त्रिक जाग ।

अभ्यासी अभिनव श्रुतसारना,
अविनाशी उपयोग ॥ सुगु० ॥ ५ ॥
द्रव्य भाव आस्रव मल टालता,
पालता संयम सार । सुगु० ॥
साधी जैन क्रिया संभालता,
गालता कर्म विकार ॥ सुगु० ॥ ६ ॥
सामायिक आदिक गुण श्रेणिनां,
रमता चढते रे भाव । सुगु० ॥
तीन लोकथी भिन्न त्रिलोकनां,
भूषणक छे जसु पाय ॥ सुगु० ॥ ७ ॥
अधिक गुणी निज तुल्य गुणीथकी,
मिलता ते मुनिराज । सुगु० ॥
परम समाधि निधि भवजलधिना,
तारण तरण जहाज ॥ सुगु० ॥ ८ ॥
समकितवंत संयम गुण ईहता,
ते धरवा असमर्थ । सुगु० ॥
संवेग पक्षी भावे शोभता,
कहता भाषित अर्थ ॥ सुगु० ॥ ९ ॥
आप प्रशंसा [illegible],
[illegible] मुनि [illegible] । सुगु० ॥

अप्रमत्त मुनि श्रुत तत्त्व पूछवा,
सेवे जासु अभंग ॥ सुगु० ॥ १० ॥
सद्दहणा आगम अनुमोदता,
गुणकर संयम चालि । सुगु० ॥
व्यवहारे साची ते साचवे,
आयति लाभ संभालि ॥ सुगु० ॥ ११ ॥
दुक्करकारीथी अधिका कह्या,
बृहत्कल्प व्यवहार । सुगु० ॥
उपदेश माला भगवई अंगने,
गीतारथ अधिकार ॥ सुगु० ॥ १२ ॥
भाव चरण स्थानक फरस्या विना,
न हुये संयम धर्म । सुगु० ॥
ते स्थाने जूठ ते ऊचरे,
जे जाणे प्रवचन मर्म ॥ सुगु० ॥ १३ ॥
यश लाभे निज सम्मत थापवा,
परजनरंजन काज । सुगु० ॥
ज्ञान क्रिया द्रव्यत विधि साचवे,
तेह नहि मुनिराज ॥ सुगु० ॥ १४ ॥
बाह्य दया एकांत उपदिशे,
श्रुत आम्नाय विहीण । सुगु० ॥

वग पेरे ठगता मूरख लोकने,
वहु भमसे तेह दीन ॥ सुगु० ॥ १५ ॥
अध्यातम परिणति साधन ग्रही,
उचित वहे आचार । सुगु० ॥
जिन आणा अविराधक पुरुष जे,
धन्य तेहनो अवतार ॥ सुगु० ॥ १६ ॥
द्रव्य क्रिया नैमित्तिक हेतु छे,
भावधर्म लयलीन । सुगु० ॥
निरुपाधिकता जे निज अंशनी,
माने लाभ नवीन ॥ सुगु० ॥ १७ ॥
परिणति दोष भणी जे निंदता,
कहेता परिणति धर्म । सुगु० ॥
योग ग्रंथना भाव प्रकाशता,
तेह विदारे हो कर्म ॥ सुगु० ॥ १८ ॥
अल्प क्रिया पण उपकारीपणे,
ज्ञानि साधे हो सिद्ध । सुगु० ॥
देवचंद्र सुविहित मुनिवृंदने,
प्रणम्यां सयल समृद्धि ॥ सुगु० ॥ १९ ॥

॥ कलश ॥

॥ राग धन्याश्री ॥

ते तरियारे भाई ते तरिया,
जे जिनशाशन अनुसरियाजो ।
जेह करे सुविहित मुनि किरिया,
ज्ञानामृत रस दरियाजो ॥ ते तरिया० ॥१॥
विषय कषाय सहु परिहरिया,
उत्तम क्षमता वरियाजो ।
शील संनाहथकी पाखरिया,
भवसमुद्र जल तरियाजो ॥ ते तरिया० ॥२॥
समिति गुपतिशुं जे परिवरिया,
आत्मानंदे भरियाजो ।
आस्रव द्वार सकल आवरिया,
धर संवर संवरियाजो ॥ ते तरिया० ॥३॥
खरतर मुनि आचरणा चरिया,
राजसार गुण गिरियाजो ।
ज्ञान धरम तप ध्याने वसिया,
श्रुत रहस्यना रसियाजो ॥ ते तरिया० ॥४॥
दीपचंद पाठक पद धरिया,
विनय रयण सागरियाजो ।

देवचंद मुनि गुण उच्चरिया,
कर्म अरि निझरियाजी ॥ ते तरिया० ॥५॥
सुरगिरि सुंदर जिनवर मंदिर,
शोभित नगर सवाईजी ।
नवानगर चोमासु करिने,
मुनिवर गुण थुति गाईजी ॥ते तरिया०॥६॥

अरिहा अणविचार्यो
विस्तरि जस संपदा ।
निर्ग्रंथ वंदन स्तवन करतां
परम मंगल सुख सदा ॥ १ ॥

॥ अथ श्री प्रभंजनानी सज्झाय लिख्यते ॥

॥ ढाल १ ली ॥ नाटकीयानी नंदनी ॥ ए देशी ॥

गिरि वैताढ्यने ऊपरे, चक्रांका नयरी हो ॥ अहो चक्रांका० ॥
चक्रायुध राजा तिहां, जीत्या सवि वयरी हो ॥
अहो जीत्या० ॥ १ ॥

मदन लता तसु सुंदरी, गुण शील अचंभा हो ॥ अहो गुण० ॥
पुत्री तास प्रभंजना, रूपे रति रंभा हो ॥
अहो रूपे० ॥ २ ॥

विद्याधर सूरज सुता, बहु मिळि इक पंथे हो ॥ अहो बहु० ॥
राधावेध मंडावियो, वर वरवा खंते हो ॥ अहो वर० ॥ ३ ॥

कन्या एक हजारथी, प्रभंजना चाली हो ॥ अहो प्रभंजना० ॥
आवे मंडपमां आवतां, वन खंड विचाली हो ॥
अहो वन० ॥ ४ ॥

निर्दयी सुव्रतिणी, बहु श्रमणी संगे हो ॥ अहो बहु० ॥
मासु विहारे विचरतां, वंदे मन रंगे हो ॥
अहो वंदे० ॥ ५ ॥

आर्या [illegible] ए सही, उमाहो क्यो छे हो ॥ अहो० ॥
तिनके कन्या [illegible], वर वरवा [illegible] हो ॥
अहो वर० ॥ ६ ॥

ए इयो हित जाणो तुमे, एथी नवि सिद्धि हो ॥अहो एथी०॥
विषय हलाहल विष जिहां, शी अमृत बुद्धि हो ॥
अहो शी० ॥ ७ ॥

भोग संग कारना कह्या, जिनराज सदाई हो ॥ अहो जिन०॥
राग द्वेष संगे वधे, भव भ्रमण सदाई हो ॥
अहो भव० ॥ ८ ॥

राज सुता कहे साच ए, जे भाखो वानी हो ॥अहो जे०॥
पण ए मूल अनादिनी, किम जाए छंडानी हो ॥
अहो ॥ किम० ॥ ९ ॥

जेह तजे ते धन्य छे, सेवक जिनजीना हो ॥अहो सेवक०॥
हमे जड पुद्गल रस रम्या, मोहे लपटीना हो ॥
अहो मोहे० ॥ १० ॥

अध्यातम रस पानथी, भीना मुनि राया हो॥ अहो भीना०॥
ते परपरिणतिरति तजी, निज तत्त्वे समाया हो ॥
अहो निज० ॥ ११ ॥

अमने दिल करवो घटे, कारण संयोगे हो ॥ अहो कारण० ॥
पण चेतनता परिणमे, जड पुद्गल भोगे हो ॥
अहो जड० ॥ १२ ॥

अवर कन्या पण उद्धरे, चिन्मय हवे कीने हो ॥ अहो चि०॥
पर्शी पन पद साधवा, उद्यम नवि कीने हो ॥
अहो उद्यम० ॥ १३ ॥

प्रभंजन कहे [illegible] ॥ अहो प्र[illegible]०॥
[illegible] ॥
अहो [illegible]० ॥ १४ ॥

॥ ढाल २ जी ॥ हुं थारो घना मुझ जाण म देरा ॥ ए देशी ॥

कहे साहुणी गुण कल्पकारे । धन्या । ए संसार कलेश ॥
एहने जे हित करि गणे रे । धन्या । ते मिथ्या आवेशरे ॥
सुज्ञानी कन्या सांभल हित उपदेश । आप हितकारी जिनेशरे ॥
सुज्ञानी० । कीजे तसु आदेशरे ॥ सुज्ञानी० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥
सदाचीने जे पोषवुं रे । कन्या । तेह न श्रेयाचार ॥
मलमली साधन करो रे । कन्या । मोहाधीनता वारे ॥ सु० २ ॥
जे पुद्गल भग्या सगी रे । कन्या । इच्छा छे ते भीं ॥
हवे संभालो भगो रे । कन्या । धारी काल सहीत ॥ सु० ३ ॥
तव प्रभंजना चिंतवे रे । अप्पा । तुं छे अनादि अनंत ॥
ते पण मूल सत्ता समोरे । अप्पा । सहज अरूप गुणवंत ॥
सु० ॥ ४ ॥
अब भमता भावि औदयी रे । अप्पा । पाम्या हरि संग ॥
भव तिना भम्या सुनारे, अप्पा । पुत्र तनु मनि [illegible] ॥ सु० ५ ॥
इसो भवत बहु हुइरे । अप्पा । तनु मित्र पण थाय ॥
मित्र जनुना करी छे रे । अप्पा । भ्रम संसार स्वभावे ॥
सु० ॥ ६ ॥
मना मम [illegible] छे रे । अप्पा । ओनां तनु स्वभाव ॥
ए, मातरो ए पत्नी रे । अप्पा । [illegible] आवोनी । भावे ॥
सु० ॥ ७ ॥
[illegible] अप्पा । [illegible] ॥
[illegible] रे । अप्पा । [illegible] न [illegible] रे ॥
सु० ॥ ८ ॥
[illegible] रे । अप्पा । [illegible] ॥
[illegible] अप्पा । [illegible] रे ॥
सु० ॥ ९ ॥

सम्यक्ध्याने वहेंचतांरे । अप्पा । हुं अमूर्त्त चिद्रुप रे ॥
कर्त्ता भोक्ता तत्त्वनो रे । अप्पा । अक्षय अक्रिय अनुप रे ॥
सु० ॥ १० ॥

सर्व विभाव थकी जुदो रे । अप्पा । निश्चय निज अनुभूति ॥
पूर्णानंदी परणम रे । अ० । नहि पर परिणति रीति ॥
सु० ॥ ११ ॥

सिद्ध समो ए संग्रहे रे । अप्पा० । पर रंगे पलटाय ॥
संगांगी भावे करी रे । अप्पा० । अशुद्ध विभाव अपाय रे ॥
सु० ॥ १२ ॥

शुद्ध निश्चय नये करी रे । अप्पा । आतम भाव अनंत ।
तेह अशुद्धनये करी रे । अ० । दुष्ट विभाव महंत रे ॥
सु० ॥ १३ ॥

द्रव्य करम कर्त्ता थयो रे । अप्पा० । नय अशुद्ध व्यवहार ॥
तेह निवारो स्वपदेरे । अप्पा । रमतां शुद्ध व्यवहार रे ॥
सु० ॥ १४ ॥

व्यवहारे समरे थके रे । अप्पा० । समरे निश्चय तिवार ।
प्रवृत्ति समारे विकल्पने रे । अप्पा० । वेर्या परिणति सार रे ॥
सु० ॥ १५ ॥

पुद्गलने पर जीवथी रे । अप्पा० । कीधो भेद विज्ञान ॥
बाधकता दूरे टलि रे । अप्पा० । हवे कुण रोके ध्यान रे ॥
सु० ॥ १६ ॥

आलंबन भावन वने रे । अप्पा० । परम ध्यान प्रगटाय ॥
देवचंद्र पद साधवा रे । अ० । एहिज शुद्ध उपाय रे ॥
सुज्ञानी० ॥ १७ ॥

॥ ढाल ३ जी ॥ तुठो तुठोरे मुज साहेब जगनो तूठो ॥ए देशी॥

आयो आयोरे अनुभव आतमचो आयो ।
शुद्ध निमित्त आलंबन भजतां, आत्मालंबन पायो रे ॥
अनुभव० ॥ १ ॥

आतमक्षेत्री गुण परजाय विधि, तिहां उपयोग रमायो ।
पर परिणति परीते जाणी, तास विकल्प गमायो रे ॥
अनुभव० ॥ २ ॥

पृथक्त्व वितर्क शुकल आरोही, गुण गुणी एक समायो ।
परजय द्रव्य वितर्क एकता, दुर्द्धर मोह खपायो रे ॥
अनु० ॥ ३ ॥

अनंतानुबंधी सुभटने काढी, दर्शन मोह गमायो ।
तिरि गति हेतु प्रकृति क्षय करी, थयो आतमरस रायो रे ॥
अनु० ॥ ४ ॥

द्वितीय तृतीय चोकडी खपावी, वेद युगल क्षय पायो ।
हास्यादिक सत्तायी ध्वंसी, उदय वेद मिटायो रे ॥अनु० ॥५॥

थइ अवेदी ने अविकारी, हण्यो संजलनो कषायो ।
मार्यो मोहचरण क्षायक करी, पूरण समता समायोरे ॥अनु०॥६

घनघाती त्रिक योद्धा लडिआ, ध्यान एकत्वने ध्यायो ।
ज्ञानावरणादिक भट पडिया, जीत निशान घुरायो रे ॥
अनु० ॥ ७ ॥

केवलज्ञान दरशनगुण प्रगट्या, महाराजपद पायो ।
शेष अघाती कर्म क्षिण दल, उदय अबंध दिखायो रे ॥
अनु० ॥ ८ ॥

सयोगी केवली थया प्रभंजना, लोकालोक जणायो ।
तीन कालनी त्रिविध वर्त्तना, एक समे ओलखायो रे ॥
अनु० ॥ ९ ॥

सर्वे साधवीये वंदना कीधी, गुणी विनय उपजायो ।
देव देवी तव स्तवे गुणस्तुति, जगजय पडह वजायो रे ॥
अनु० ॥ १० ॥

सहस्र कन्यका दीक्षा लीधी, आश्रव सर्व तजायो ।
जग उपगारी देश विहारे, शुद्ध धरम दीपायो रे ॥
अनु० ॥ ११ ॥

कारण जोगे कारज सावे, तेह चतुर गाइजे ।
आतम साधन निर्मल साधे, परमानंद पाइजे रे ॥
अनुभव० ॥ १२ ॥

ए अधिकार कह्यो गुणरागे, वैरागे मन भावी ।
वसुदेव हींडतने अनुसारे, मुनि गुण भावना भावी रे ॥
अनु० ॥ १३ ॥

मुनि गुण थुणतां भावविशुद्धे, भव विछेदन थावे ।
पूर्णानंद पद एहथी उलसे, साधन शक्ति जमावे रे ॥
अनु० ॥ १४ ॥

मुनि गुण गावो भावो भावना, ध्यावो सहज समाधि ।
रत्नत्रयी एकत्वे खेलो, मिटे अनादि उपाधि रे ॥
अनु० ॥ १५ ॥

राजसागर पाठक उपगारी, ज्ञानधरम दानारी ।
दीपचंद पाठक खरतर वर, देवचंद्र सुखकारी रे ॥
अनु० ॥ १६ ॥

नयर लींबडी मांहे रहीने, वाचंयम स्तुति गाइ।
आतम रसिक श्रोता जन मनने, साचन रुचि उपजाई रे॥
अनु० ॥ १७ ॥

इम उत्तम गुण माला गावो, पावो हरष वधाइ।
जैन धरम मारग रुचि करतां, मंगल लील सदाई रे॥
अनु० ॥ १८ ॥ संपूर्ण ॥ श्रीरस्तु ॥

॥ अथ ढंढणमुनिजीनी सझ्झाय ॥

॥ वनिता विहसीने विनवे ॥ ए देशी ॥

धन धन ढंढण मुनिवरु, कृष्णनरेसर पुत्रो रे;
गुणमणि रुवणिम शोभतो, लखमी लीला जुत्तो रे. धन० १

कोमल कमला कामिनी, मूकी एक हजारो रे;
नेमिवचनें वैरागीयो, लीधो संजम भारो रे. धन० २

ग्रहणा ने आसेवना, शीखी शिक्षा सारो रे;
विचरता आव्याजी द्वारिका, नेमि साथें सुखकारो रे. धन० ३

एकदिन गोचरी संचर्या, करता गवेखणा शुद्धि रे;
आहार कांइ मिल्यो नही, मुनि मन समता बुद्धि रे. धन० ४

मुनि चिंते पुद्गल वलें, इयो निजगुण अभ्यासो रे;
उत्सर्गे (उत्सर्गे) आतमबलें, कीजे शिवपद वासो रे. धन० ५

शक्ति यथार्थ आदर, अपवादें अनेको रे;
सद्दंज ज्यो मगर चंचे, तो न पडे पग टेको रे. धन० ६

नितप्रति गोचरी संचरे, न मिळे अन्नने पांनो रे;
प्रभुपासे आवी नमी, पूछे तजी अभिमांनो रे. घन० ७
इयुं कारण कहो नाथजी, एवडो ए अंतरायो रे;
जिन भाखे कृत कर्मनो, एहवो छे व्यवसायो रे. घन० ८
पूरवभव धन लोभथी, कीधुं क्रूर अपायो रे;
तीवरसें जे बांधीयां, तेहनो फल दुःखदायो रे. घन० ९
नृप आदेशें पांचसें, हल खेडवा अधिकारो रे;
भात एक निज क्षेत्रनी, खेडावी धरी प्यारो रे. घन० १०
भात पांणीनो सर्वने, तुम्हे कीधो अंतरायो रे;
तीवरसें जे बांधीयो, तसु विपाक ए आयो रे. घन० ११
मुनिवर अभिग्रह आदर्यो, एह करम क्षय कीधे रे;
लेइशुं हवे आहारनें, बीजा कारज सीधे रे. घन० १२
मास गया षट इणीपेरे, पण मुनि समतालीनो रे;
अपराधें अति निर्जरा, जांणे तिणें नवि दीनो रे. घन० १३
वासुदेव जिन वंदीने, पूछे धरी आनंदो रे;
साधक साधुमें निरमलो, कवन कहो जिनचंदो रे. घन० १४
नेमि कहे ढंढण मुनि, सुंदर निर्जरा धारी रे;
सहु साधुथकी अधिक छे, समता गुण विहारी रे. घन० १५
मिलवा आवतां मारगे, देखी मुनि आनंदो रे;
दीधो तन इक [illegible] रे. घन० १६
मुनि [illegible] रे;
[illegible] रे. घन० १७
[illegible] रे;
[illegible] रे. घन० १८

सांभळी मुनि अति हरखीया, धन धन ए गुरुराजो रे;
वीतराग उपगारीया, कृपा करी मुज आजो रे. धन० १९
साध्य अधुरे कुंण करे, ए आहार असारो रे;
पुद्गल जगनी एंठ ए, किम ल्ये मुनि सुविचारो रे. धन० २०
साधन वयते आदरे, ए साधक व्यवहारो रे;
निःकारण परवस्तुने, छीपे नहीं अणगारो रे. धन० २१
इम चिंतवी शुद्ध थंडिलें, परठवतो ते पिंडो रे;
पुद्गल संगनी निंदना, निजगुण रमण प्रचंडो रे. धन० २२
पर परिणति विच्छेदतां, निज परिणति प्रागभावो रे;
क्षपकश्रेणि ध्याने रम्या, पाम्यो आतम स्वभावो रे. धन० २३
आतमतत्त्व एकाग्रता, तन्मय वीरज धारे रे;
घन घाती सवि खेरव्या, रत्नत्रयी विस्तारे रे. धन० २४
क्षीणमोह करी चरणनी, क्षायिकता करी पूरी रे;
केवलज्ञानदर्शन वर्या, अंतराय सवि चूरी रे. धन० २५
परम दान लाभ नीपनो, कीधो कारज सुधो रे,
समवसरणमें आवीया, साध्य संपूरण सीधो रे. धन० २६
एहवा मुनिनें गाइये, ध्याइयें धरी आणंदो रे;
देवचंद्र पद पाइये, लहीये परमानंदो रे. धन० २७

इति श्री ढंढणमुनिवर स्वाध्याय समाप्त.

॥ श्री समकितनी सज्झाय ॥

समकित नवि लह्युंरे, ए तो रुल्यो चतुर्गति मांहे;
त्रस थावरकी करुणा कीनी, जीव न एक विराध्यो;
तीन काळ सामायिक करतां, शुद्ध उपयोग न साध्यो. स० १
जूठ बोलवाको व्रत लीनो, चोरीको पण त्यागी;
व्यवहारादिक महा निपुण भयो, पण अंतरदृष्टि न जागी. स० २
ऊर्ध्व बाहु करी उंधो लटके, भस्म लगा धूम घटके;
जटा जूट शिर मुंडे जूठो, विण श्रद्धा भव भटके. स० ३
निज परनारी त्याग ज करके, ब्रह्मचारी व्रत लीनो;
स्वर्गादिक याको फळ पामी, निज कारज नवि सिध्यो. स० ४
बाह्य क्रिया सब त्याग परिग्रह, द्रव्य लिंग धर लीनो;
देवचंद्र कहे या विध तो हम, बहुत वार कर लीनो. स० ५

॥ गजसुकुमाल मुनीश्वर सज्झाय ॥

॥ ढाल १ ली ॥ आम फळो मेरी आम फळो ॥ ए देशी॥

द्वारिकानगरी ऋद्धि समृद्धि [illegible] प्रसिद्ध;
[illegible] (ए टेक.)
वसुदेव देवकी [illegible] वं० १
[illegible]
[illegible] वं० २

॥ ढाल ३ जी ॥ धनधन साधु शिरोमणि ढंढणो ॥ए देशी॥

धन धन जे मुनिवर ध्याने रम्या रे.
समतासागर उपशमवंत रे;
विषय कषाये जे नडिया नहीं रे,
साधक परमारथ सुमहंत रे.
धन धन जे मुनिवर ध्याने रम्या रे.(ए आंकणी)२६
जादवपति परिवारे परिवर्या रे,
नेमि चरणे पुहुंता गजसुकुमाल रे;
मात पिता माते वहिरावीया रे,
नंदन बाल मनोहर चाल रे. धन धन जे० २७
प्रभुमुख सर्व विरति अंगीकरी रे,
मुकी सरव अनादि उपाधि रे;
पूछे स्वामी कहो केम नीपजे रे,
मुजने वहेली सिद्धि समाधि रे. धन धन जे० २८
प्रभु भाखे निज तत्त्व एकाग्रता रे,
उदय अव्यापकता परिणाम रे;
संवरसाधे साधे निर्जरा रे,
लघुकालें लहिये शिवधाम रे. धन धन जे० २९
एगराई पडिमा तुमे आदरो रे,
धरजो आतमभाव सुधीर रे;
समतासिन्धु मुनिवरें तिम कर्यो रे,
शिवपद साधन वडवीर रे. धन धन जे० ३०
शिर उपर सिगडी सोमिलें करी रे,
समता शांतउ गजसुकुमाल रे;

इच्छा कीजे ए मुनिभावनी रे,
ज्युं लहीये अनुभव परमनिधान रे. धन धन ते० ३७
खरतर गच्छ पाठक दीपचंदनो रे,
देवचंद्र वंदे ए मुनिराय रे,
सकल सिद्ध सुख कारण साधुजी रे,
भव भव होज्यो सुगुरु सहाय रे. धन धन ते० ३८
इति श्री गजसुकुमाल सज्झाय समाप्त.

पंचेंद्रिय विषयत्याग.

पद.

विषयनको परसंग चेतन छोड दे,
विगोइं फीरत विद्याधर काम वश भंवोइं फीरत मातंग. चे० १
कंठ छिदायो मीन आपणो रसनाके परसंग,
नेत्र विषय वश दीप शिखामें, जल जल मरत पतंग. चे० २
खटपद जलजमांहि फस मूआ, खोयो अपनो अंग,
विन शब्द सुन आय नजदीक, मोह्यो मरे ज कुरंग. चे० ३
एकएक इंद्री वश बहु दुःख, पायो है सरनंग,
पांचो इंद्री वश महा दुःख, ईम भाखत देवचंद. चे० ४

आत्म पद.

म्हारो जिनवरजी निर्विकल्प निर्मल, कर्म कलंक [illegible]
[illegible] १
[illegible]
[illegible]

इच्छा कीजे ए मुनिभावनी रे,
ज्युं लहीये अनुभव परमनिधान रे. धन धन ते० ३७
खरतर गच्छ पाठक दीपचंदनो रे,
देवचंद्र वंदे ए मुनिराय रे,
सकल सिद्ध सुख कारण साधुजी रे,
भव भव होज्यो सुगुरु सहाय रे. धन धन ते० ३८
इति श्री गजसुकुमाल सज्झाय समाप्त.

पंचेंद्रिय विषयत्याग.

पद.

विषयनको परसंग चेतन छोड दे,
जिणेइं कीन्न विकल्न करन वश कीधेइं कीन्न मातंग. चे० १
कंठ छिदायो मिन आपणो रसनाके परसंग,
नेत्र विषय का दीप शिखाये, जल जल मरत पतंग. चे० २
स्वदास्द जलजमांहि फस मुग्ध, खोयो आपनो अंग,
विन शब्द सुण श्रवण ततखिन, मोही भयो रे कुरंग. चे० ३
एकएक इंद्री वश बहु दुःख, पायो है सरभंग,
पांचो इंद्री वश महा दुःख, इम भाखत देवचंद. चे० ४

आत्म पद.

अहो जिनराजकी सिंह नगर निहुत, [illegible] दरस [illegible]
[illegible] अहो० १
[illegible] अ० २
[illegible] सुख. अ० ३

इच्छा कीजे ए मुनिभावनी रे,
ज्युं लहीये अनुभव परमनिधान रे. धन धन जे०
खरतर गच्छ पाठक दीपचंदनो रे,
देवचंद वंदे ए मुनिराय रे;
सकल सिद्ध सुख कारण साधुजी रे,
भव भव होज्यो सुगुरु सहाय रे. धन धन जे०
इति श्री गजसुकुमाल सज्झाय समाप्त.

पंचेन्द्रिय विषयत्याग.

पद.

विषयनको परसंग चेतन छोड दे,
जिणई फरस विवश करी वश बंधोई फरस मातंग. चे०
कंठ छिदायो मिन आपणो रसनाके परसंग;
नैन विषय का दीप शिखामें, जल जल मरत पतंग. चे०
परिमल अटकमांहि कस मधुप, खोयो जननो अंग,
बिण शब्द सुण अरण्य कामिन, मोही मयो ए कुरंग. चे०
एकएक इंद्री वश नर दुःख, पायो ए अनंग,
पांचो इंद्री वश महा दुःख, इन भाखत देवचंद. चे०

आत्म पद.

अहो जिनवरके [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

इच्छा कीजे ए मुनिभावनी रे,
ज्युं लहीये अनुभव परमनिधान रे. धन धन जे० ३७
खरतर गच्छ पाठक दीपचंदनो रे,
देवचंद्र वंदे ए मुनिराय रे;
सकल सिद्ध सुख कारण साधुजी रे,
भव भव होज्यो सुगुरु सहाय रे. धन धन जे० ३८
इति श्री गजसुकुमाल सझ्झाय समाप्त.

पंचेंद्रिय विषयत्याग.

पद.

विषयनको परसंग चेतन छोड दे,
गिरोई फीरत विलालत फरस वश बंधोई फीरत मातंग. चे० १
कंठ छिदायो मिन आपणो रसनाके परसंग;
नेत्र विषय कर दीप शिखापें, जल जल मरत पतंग. चे० २
खटपद जलजमांहि फस मूरख, खोयो अपनो अंग,
विण शब्द सुण श्रवण ततखिन, मोही भयो रे कुरंग. चे० ३
एकएक इंद्री चरत बहु दुःख, पायो हे सरभंग,
पांचो इंद्री चलत महा दुःख, ईम भाषत देवचंद. चे० ४

आत्म पद.

अहो जिनवरजी निके नयण निहारे, यामें केवल दर्शन झलकत.
अतितिवे अनिद्रा र अहो० १
सुमना मोहन [illegible] अ० २
देवचंद [illegible] प्रभु [illegible], जिन निज [illegible] मृ गार. अ० ३

मुनिगुणस्वाध्याय.

राग प्रभाति.

जगतमें सदा सुखी मुनिराज पर विभाव परिणतके त्यागी,
जागे आतम समाज निजगुण अनुभवके उपयोगी
जोगी ध्यान जिहाज ॥ ज० ॥ १ ॥
हिंसा मोस अदत्त निवारी, नहि मैथुनको पास,
द्रव्यभाव परिग्रह त्यागी, लीने तत्त्व विलास ॥ ज० ॥ २ ॥
निर्भय निर्मल चित्त निराकुल, विलगे ध्यान अभ्यास
देहादिक ममता सवि वारी, विचरे सदा उदास ॥ ज० ॥ ३ ॥
ग्रहे आहारवृत्ति पात्रादिक, संयम साधनकाज
देवचंद्र आणानुजाई, निज संपति महाराज ॥ ज० ॥ ४ ॥ इति॥

साधुपदस्वाध्याय.

साधक साधज्यो रे निज सत्ता ईक चित्त,
निजगुण प्रगटपणे जे परिणमे रे, [illegible] आतम हित ॥
सा० ॥ १ ॥
पर्याय अनंता निज कारजनी रे, करे ते गुण [illegible],
पर्यायगुण परिणमें कर्तृता रे. ते निज धर्म प्रसिद्ध ॥ सा० २ ॥
[illegible] पौद्गल चेतना रे. [illegible],
[illegible] ॥
सा० ॥ ३ ॥
[illegible] अनेक.
[illegible] ॥ सा० ॥ ४ ॥

अपवादें पर वंचकतादिकारे, ए माया परिणाम
उत्सर्गे निजगुणनी वंचना रे, परभावे विश्राम ॥ सा० ॥ ५ ॥
साधे वरजी अपवादें आर्जवी रे, न करे कपट कषाय
आतमगुण निज निजगति फोरवे रे, ए उत्सर्ग अमाय ॥
सा० ॥ ६ ॥
सत्तारोध भ्रमणगति चारमें रे, पर आधीनें वृत्ति
चक्रचालथी आतम दुःख लहे रे, जिम नृपनीति विरत ॥
सा० ॥ ७ ॥
ते माटें मुनि ऋजुतायें रमे रे, वमे अनादि उपाधि
समता रंगीसंगी तत्त्वना रे, साधे आतम समाधि ॥ सा० ॥ ८ ॥
मायक्षयें आर्जवनी पूर्णता रे, सवि गुण ऋजुतावंत
पूर्व प्रयोगें परसंगीपणो रे, नही तसु कर्त्तावंत ॥ सा० ॥ ९ ॥
साधनभाव प्रथमथी नीपजे रे, तेहिज थाये सिद्ध
द्रव्यत साधन विघन निवारणा रे, नैमित्तक सुप्रसिद्ध ॥
सा० ॥ १० ॥
भावें साधन जे इक चित्तथी रे, भाव साधन निजभाव
भावसिद्ध सामग्री हेतु ते रे, निःसंगी मुनि भाव ॥
सा० ॥ ११ ॥
हेये त्यागथी ग्रहण स्वधर्मनो रे, करे भोगवे साध्य
स्वस्वभाव रसिया ते अनुभवे रे, निज सुख अव्याबाध ॥
सा० ॥ १२ ॥
निःस्पृह निर्भय निर्मम निर्मला रे, करता निज साम्राज '
देवचंद्र आणायें विचरता रे, नमिये ते मुनिराज ॥
सा० ॥ १३ ॥

॥ इति श्री देवचन्द्रजीकृत स्वाध्याय संपूर्णमगात् ॥

साधुपद सज्झाय.



साधक साधज्यो रे
निज सत्ता इक चित्त ॥
निज गुण प्रगटपणें जे परिणमें रे
एहीज आतम वित्त ॥ सा० ॥ १ ॥

× टबार्थः—अहो आत्म स्वरूपानुभव साधक भव्यो ! साधज्यो—नाम साधन करज्यो, साधने साध्यनी सिद्धता एषामयुक्तिः ईहां साध्यस्वस्वरूपानुभवकारिका निज सत्ता ईक चित्त—एक चित्ते नाम तदाकार शक्तियें—तद्रूपी तन्मयी तत्परी थवे आत्म सत्ता चिन्तववी, किम ते लीखे. आत्मद्रव्यमें आत्मत्वधर्म रयुं छे, तेनो आत्मता आत्मत्वपणे रही छे, आत्मता निज सत्ता अभेदापन्नरूपपणे छे, एटले आत्मता निज सत्तामें भेद नहीं एक छे एटले अनादिए सिद्धनी सत्ता असंख्यात प्रदेशात्मक तिमज संसारमें रह्यो केवली असंख्यात प्रदेशात्मकीनों सत्ता एक सूक्ष्म निगोदीयानी आठ रुचकर प्रदेशात्मक सत्ता एक ॥ यदुक्तं नंदि सूत्रे ॥ सव्व जीवाणं पिणं अक्खरस्स अणंतमो भागोनिच्चुग्घाडियो चिट्ठइ इति सिद्धांत वचन प्रामाण्यात [illegible] अवाधित ईह सिद्धात [illegible] ईदृगूत्पा [illegible] सिद्धांत वचन प्रामाण्यात ॥

[illegible]

इणहीज एकांत पक्षनें ग्रहण करी तिमहीज सप्तभंगी पकी स्याद्स्ति भंगो ग्रहण करीने अस्तिपक्ष स्थापन कर्यो छे ते एक नयात्म एक भंगात्मक छे. आत्मा तुपुष्करपत्रवन्निर्लेपः प्रकृतिः कर्त्री इति सिद्धांतः ए पक्षे हीज सिद्ध समान स्वरूप 'मेरे सुमेरो नथी, और एक आत्माही मग है, ए कथन छे ते सांख्यनो जैनमतने आश्रये एक नय एक भंगीनुं कथन छे. सर्व नयाश्रयी नथी, सकथं भव्य ? अभव्य ? जातिभव्य ? ए तीन जीवनी जाति छे. तेमां एक भव्य जीव जाति आश्रयी ए कथन छे. इहां जैन न्यायागमनिती ७५००० प्रकरण, तेमां हजार श्लोक म्हारे वांच्या छे तेनुं आंइ किञ्चत लिख्यो अने घणो जाय इत्यलम्. सांख्य मतानुयायी नित्य मन्ता इत्यादिक ए बे पक्षीय सिद्धाभास छे ते किंचित् लिख्युं, पण हुं महा निर्बुद्धि वराग ए जैनयोगीन्द्रो छे. म्हारे मानवो अनिवार छे, लिखाय कवोनो मोटो मानवो छे, पण सिद्धांत बाधकर्य सिद्धाभास कथन [illegible] जैन सिद्ध आत्मा कदी न लिखाय ते अति लिखवुं घोर पाप छे, तेथी लिख्युं. केवल निर्वेद मेरो थाय, मेरो उतरो थाय, ते ए हेतुए थाय. नय इत्यु व्यवस्थाय ॥ [illegible]

[illegible]

पद्मासन करे ए थके ध्यानीनें शोभा हृदयकमलमांहे तेजनो ध्यान निजगुण निरक्ष करतो अंतर आत्माने बहिरात्म, यथा आनंदघनमुनिराजोक्तिः पाप व्यापागमात् बहिरात्मा बहि-रातम नहीं करता मन वचन पुद्गल निश्चल कर्यो छे ते कोइ पण ए तो मरी गयो तेनी परीक्षा करता कारण दर्शने ज्ञान होता थांं छोडी दीधुं निर्ति जीवनो जाण्यो ते अंतर आत्माना. गाथा तपनी

बहिरातम तज अंतरआतमा रूप थइ थिरभाव,
परमातमनुं आतमभावनुं आतम अरपण दाव ॥३॥

वहालो एवो शिष्यांने यत्नें परमातमनुं परमात्मा अने ज्ञानादिगुणमयी एवो अलेख, अभेद, अजर, अमरादि एवा पोताना आत्मामा भावनुं निजनुं स्वरूपनुं ते क्षयोपशमभावे थइ छे, ते निश्चय करी "निजगुण प्रगटपणें जे परिणमे" ते जे ज्ञानादि गुण आत्मामां प्रगटयां ते जे अनादि [illegible] पण प्रगटे बहिरात्म ने प्रगट करी शिका [illegible] [illegible] होय। [illegible] [illegible] निजगुण [illegible] [illegible] [illegible]

ए कविराजनी योजनानो एज स्वभाव छे जेम वातने गटरपटर आगेनी पाछे, पाछेनी आगे हांकतो चाल्यो जाय ते तमे पोते विचार लेज्यो. संबंध विरुद्ध अंगोपांगभंग कविता वारवार एकपद गुंथानो ते पुनरुक्ति दूषण कविता ते पूर्वोक्त लिखा-णमें तमेही जोइ लेज्यो, एक जिनपद एम जागा गुंथ्यो छे ते गिणलेज्यो, इसको मूलने दूषण मत देज्यो, थोडु पहुंनो फरक लिखत समयपाछथी समभंगपाछथी तुल्य छे, स्वकल्पना कथननी योजना तेनां तो गटरपटर छे. ए विना बीजी सहित हूंडक योजना सर्वत्र छे, योजना करवी ए तिनं विद्या न्यारी छे, कौमुदी कर्तायें लिख्युं आद्य श्लोक करायो आपणी न थयो. वली ए वात कुछ न लिखुं तो ए लिखत वांचन-वाले भूलवेसर जाय ए कारणे लिखुं. गुजरातनां ए टहिवत छे आनंदघन टबकाळे, जिनराजसूरिथाय तो अकथ्यवचनी उ० यशोविजय ज्ञानकुनविया पोते थाप्यो तेज उथाप्यो उ० देवचंद्र××जीने एकपूर्वनुं ज्ञान हतुं तेथी गडबडरहित. मोहनविजयपन्यास ते टबकाळे, कुचने अगल्ट अर्थ लिखतुं छे ते अक्षर प्रमाणे अर्थ लिखिस. जिहां सरीखो अर्थ दीसे ते म्हारो दूषण न काढवो, अक्षर विरुद्ध अर्थे म्हारो दूषण सही इहां सर्व गाथा लिखुं. हिवे ईनो गाथानो अर्थ लिखुं.

पर्याय अनंता निज कारणपणें रे,
वरते ते गुणशुद्ध;
पर्यायगुण परिणामें कर्तृतारे,
ते निज धर्म प्रसिद्ध ॥ सा० २ ॥

[illegible]

प्रथम गाथारे अंते कह्यो छे, एहिज आतमवित्त वित्त शब्दें आतमद्रव्य नाम आतमारो धन दूजी गाथारे आदें पर्याय इसो पद धर्यो छे तेथी प्रथम द्रव्यरो लक्षण लिखें पछे पर्याय लक्षण लिखसुं. किम द्रव्य विना पर्यायरो असंभव, ते माटे द्रव्यलक्षणमाह गुणपर्यायवत्वं द्रव्यत्वम् । इम कहिणे ज्ञानपदार्थ द्रव्य छे. गुण कांइ ? तत्र गुणलक्षणमाह । सहजातित्वं गुणत्वम् इतिगुणलक्षणम्॥ जिम स्वर्ण द्रव्यमें पीतता गुण सहजातिपणो छे तिमहीज ज्ञानद्रव्य प्रगट हुवा छतां घटपटादि पदार्थनो जाणपणो हुओ ते गुण कहीजे, तेपिण ज्ञानथकी मिल्या हुवो छे तिमहीज द्रव्यने विषे पर्याय रह्या छे. पर्याय लक्षणमाह । पूर्वपूर्वाकार परित्यागोत्तरोत्तराकार परिस्फूर्त्ति संतोहि विशेषाः अपरमान पर्यायाः ए पर्याय रा दोय नाम छे, जिम स्वर्ण द्रव्य तिणमें पीतता लक्षण, सर्व धातुथी भारी ए पिण स्वर्ण द्रव्यनोहीज गुण लक्षण ति स्वर्णना अनेक आभूषण करणा ते पर्याय तिमहीज जगतने विषे यावंतः परिच्छेद्याः पर्यायास्तावंतः परिच्छिदिकास्तस्य केवलज्ञानस्य स्वभावा वेदितव्याः स्वभावाश्च पर्याया इति । यावंतो नाम जितरा, परिच्छेद्याः नाम परिछेदन नाम एकेक लक्षणे करीने भिन्न करिवा योग्य नाम परिमाण करवा योग्य जे अनंता घटपटादि पदार्थ एतले ज्ञानथकी जगत्में घटपटादि अनंता पदार्थ तेऊ एक एकने भिन्न-भिन्न लक्षणे केवलज्ञानथी ओलखवा जे ते पदार्थ परिछेद्य कहीने, नाम पदार्थ भिन्न लक्षणे ओलखवा योग्य छे. हिवे परिछेदनो

१ आत्माना २ बीजी गाथाने ३ एतले ४ जाणीने.

अर्थ लिखुं. तावंतः परिच्छेदकाः नाम तितराहीज परिछेद्य पदार्थ भिन्न भिन्न करी ओलखवा जाणवा ते परिछेदक कही जे, तस्य केवलज्ञानस्य स्वभावाविदितव्याः नाम तिके परिछेद्य पर्यायनें कही परिछेदक पर्याय ते एवं केवलज्ञान केवल दर्शनरा स्वभाव छे. स्वभावाश्च पर्यायाः पर्याय अनंता ज्ञान द्रव्यरा पर्याय अनंता ते निज कारजपणेरे निज स्वरूपानुभव तद्रूप जे कार्य तिणे स्वरूप रुप कार्य प्राप्तिपणे वरते ते गुण शुद्ध वरते नाम प्रवर्ते स्वरूप कार्य चिंतवनमें ते गुण शुद्ध तिकोशुद्ध निर्मळ आत्मारो गुण छे. पर्याय गुण परिणामें पर्याय परिणाम तिनज गुण परिणाने ज्ञानादि गुण परिणाने कर्त्तृतारे आत्मारे स्वरूप कार्यनी प्राप्तिनां वीर्य फोरवणो ते वीर्यने विषे आत्मानो कर्त्तापणो छे, ते निज धर्म प्रसिद्ध तेहिज निज धर्म आत्मारो आत्मत्व धर्म ते धर्मने विषे स्वरूप कार्यनी तिहतारो वीर्य पराक्रमीपणो आत्माने विषे रह्यो ए कथन शास्त्रारे विषे रह्यो प्रसिद्धहीज छे. एहमेंहीज विशेषपने खुलीने लिखुं. हिवे गाथाना अक्षर उपर एहिज वात उतारिये छे, तिहां ज्ञानावरणादि आठ कर्म ते तो आठेही द्रव्य छे ते द्रव्य द्रव्य दीठ अनंती कर्म वर्गणा तेहीज द्रव्य द्रव्य अनंता अनंता पर्याय छे. यदुक्तं प्रज्ञापनायाः पंचम पद टीकायाम् ॥ एकमपि द्रव्य मनंत पर्यायम् ॥ निज कारजनेरे जो वने आत्मा आत्मिक स्वरूपानुभव प्रत्यक्ष रुप कार्यमें प्रवर्ते ते वने पोतानो केई ज्ञानादि गुण तेहना जे अनंता पर्याय ते कर्म

वर्गणाना एक एक पर्याय दीठ ज्ञान पर्याय फहिलावीनें पर्याय सहित कर्म द्रव्यनो नाश करे, पणंरे ते पणे आत्मा वर्त्ते प्रवर्त्ते ते गुण शुद्ध नाम ते आत्मा शुद्ध आत्मिक स्वरूपनावच्छेदिकावच्छिन्न शुद्ध निर्मळ आत्मिक स्वरूपना आत्मारे विषे रह्यो जे आत्मत्वधर्म तेहने विषे रही आत्मना आत्मत्वपणोंतिणे करनें अवछेदिक रहित नही एनलें आत्मिक स्वरूतायें करनें सहित तिणें करीनें अवछिन्न व्याप्ततदाकारपणें छे तेमां प्रवर्नीज रह्यो छे. आत्मिकशुद्धगुण छे. पछे पर्यायगुणनामें कर्त्तृनारे ते पर्यायना जे गुणज्ञान पर्यायना जे गुण ते एकेक गुण दीठ आत्मारे कर्त्तृनापणो छे कर्त्तापणो छे. ने निजधर्म प्रसिद्ध नाम आत्मत्वधर्म ते आत्मारे विषे तेहने थये आत्मानें विषे पसिद्ध छे. जिम केवली केवल समुद्घात करते चोथे समये अंतराटपूरते १४ राजलोकमें सातरूमें नी तिम एकेका कर्मनी अनंती अनंतीकर्मवर्गणा, वर्गणा लक्षणमाह ॥ पंचमकर्म ग्रंथनी गाथा ॥ इगदुगुण् गाइजा अभयणंत गुणअणूगंभाउरलोचियवग्गणाउ ॥ इत्यादि व्याख्या अणू शब्दः प्रत्येकं संबध्यते अणू शब्द छे ति को इग करे एकेक शब्द देइ मिलावणो ततः केवलोअणुरेवाणुकः परमाणु रित्यर्थः विग्रहति इत्येतेन केवलदृष्टिए एकनो दूजो न हुवे ते अणु कहिये अणु तेहिज अणुक कहि जे तिम अणु कने परमाणु कहि जे. इह जगतनें विषे समस्त जे लोकाकाश प्रदेश तिणांमांहि जे एकाकी परमाणु विद्यमान छे छता छे तिम पेरमाणु वाले समुदाय समान जाति पुद्गलवर्गणा कही जे, इण हीज प्रकारे [illegible] तिमार समान जातिपणा हुंती

दूजीवर्गणा कही जे इणेहि प्रकारे अनन्ता जे त्रिप्रदेशी स्कंधतिणारे समान जातीय पणाहुति त्रिजी वर्गणा. इणे हीज प्रकारे एकेक परमाणु वृद्धियें करनें ययावर्णे करनें अनंता जे संख्यातप्रदेशी स्कंध तिणांरे समान जातीयपणाथुं संख्यात वर्गणा कहिजे, इण हीं प्रकारें असंख्यातवर्गणा जाणवी, अनंतपरमाणु वेकर निष्पन्न हुस्या जे स्कंध तिके समान जातीयपणानूं अनंतवर्गणा कही जे, इणहीं प्रकारे अनंतानंतवर्गणा कहीजे, इणां सर्व वर्गणां प्रतें उल्लंघने अभव्य हुंती अनंतगुणा सिद्धरे अनंतमें भाग जे परमाणु तिणें करी नीपज्या जे स्कंध ते उदारिक शरीर लेवा जोग्यवर्गणा हुवे ॥ १ ॥ उदारिकसूं वैक्रिय सूक्ष्म २ वैक्रियसों आहारिक सूक्ष्म ३ अहारकसूं तेजस सूक्ष्म ४ तेजससूं भाषा सूक्ष्म ५ भाषासों श्वासोश्वास ६ श्वासोश्वाससूं मन ७ मनसूं कर्म ८ ओ संबंध टीकामें वर्णोहे पण गारव भयात्त्याज्यम् तिण पूरी १४ राजमें सूइनां अणी टिके एतो मोटुं क्षेत्र पं महामहो असंख्यातगुण क्षेत्रहीं नहीं बाकी खाली न रह्यो पछी जे जे कर्म दलीयां जीवईव प्रत्यइ भोगव खपावणा तिण तिण क्षेत्र प्रत्यइ भोगवने कर्मदलीयां अवशेष आयु स्थिति अवशेष रहीं ते प्रमाणे ७ तेहीं कर्म प्रकृतिनां अवशेष दलियां राखे, तिम कोइ मिथ्यात्वी जीव अंतगड केवली थइ मुक्तें जाववावालो छे ते निश्चे शुद्ध क्षायकीज हुवे तेने अवशेष एक अंतर्मुहूर्त आयुस्थिति रही छे ने एटला कालमां सात कर्म प्रकृति तेमां एकेका कर्म दीठ अनंती अनंती कर्म वर्गणा खपाववी छे ने ताने आत्मा आत्मत्व धर्म सहित छतो आत्मा अनंत वर्ग छतो पोताना अनंत वीर्यनी शक्ति पोताना अनंत ज्ञानादि गुण तिमज

पर्याय अनंतोमां आत्मधर्म संबंधित आत्मत्व शक्तिने फोरवीने अनंती कर्म वर्गणाओमां एकेकी वर्गणा दीठ ज्ञानादि गुणना अनंत पर्याय वर्गणा दीठ फेलावीने खपावे, निस्सेस सर्वथा कर्म नाश करीने अंतर्मुहूर्तमां सिद्ध जाय विराजे ते आशये सिझाय कर्ताये पर्याय गुण परिणामें फर्तारे ते निज धर्म प्रसिद्ध–रिद्ध सूची पोहचावी चूका. ए बे गाथायांमे स्वरूप ग्राहक आत्मारी शुद्धता लिखी. हिवे परपरिणमन आत्मारी वात लिखे.

परभावानुगत वीरज चेतनारे,
तेह वक्रता चाल;
करता भोक्तादिक सवि शक्तिमांरे,
व्याप्यो उलटो ख्याल ॥ सा० ॥ ३ ॥

परभावानुगत वीरज चेतनारे, परभाव नाम क्रोध मान माया लोभ राग द्वेष मोह मिथ्यात्व इत्यादि स्वरूप प्रापक आत्मारे विषे नथी, परभावमे प्रवर्तते आत्मारे विषे तिणरे विषे अनुगत नाम प्राप्ति हुइ वीर्य चेतना एतले परभावरे विषे आत्माये वीर्य पराक्रम फोरव्यो. चेतनारे विषे वीरज फोरव्यो तिवारे आत्मा गहिलो हुवो भांग पीधी ठहिरि तिवारे जे आत्मा करे ते लिखे यथामदुक्तिः ॥ परपरणमन विभावे आतम अजा कृपाणी न्याये मिथ्यात्वादि हेतु आतम आपही बंध उदीरे आपही उदये सुख दुःख वेदे गत्यागति थिति भीरे ए जे चालां छे ते स्वरूप प्रापक आत्मारी नथी तेह वक्रता चाल आत्मारी वक्रता चाल ठहिरी, वांकी चाल ठहिरी. कर्ता भोक्ता तिवार आत्माने विचारी जोतां थकां

वीर्य आत्माए फोरवीने मिथ्यात्वादिक आत्मानुगत कीना आत्मारे विषे कीना आत्मारे विषे तो ए नहुता अने आत्माए कीना सवि शक्तिमां रेते आत्मशक्तिए करने कीना भोगव्या पिण आत्माहीज तिवारे कर्ताही आत्मा भोक्ताही आत्मा टहियों यदुक्त मागमे यः कर्ता कर्म भेदानां, भोक्ता कर्म फलस्यच, संसर्त्ता परिनिर्वाता, सह्यात्मा नाऽन्य लक्षणः १ व्याख्यां उलटो ख्याल के तो स्वरूप कर्त्ता आत्माहीज छे के विरूप कर्त्ता पिण आत्माहीज टहियों आत्मा सागीरो सागीहीज तिणे आत्माहीज उलटो ख्याल खेल्यो, आत्मारे करवा योग्य नथी ते आत्माए कीनो तेथी उलटो ख्याल टहियों ॥

क्षयोपशमिकऋजुताने उपनेंरे.
तेहिज शक्ति अनेक;
निज स्वभाव अनुगतता अनुसंरेरे.
आर्यव भाव विवेक ॥ सा० ॥ ९ ॥

हिवे तेहीज जीवनेविषे अनंता भव भ्रमण करतां थकां अनंतो काल व्यतीत हुवो छे ते जीव जो भव्य हुवो तेवी क्षयोपशम क्षयोपशम थके " [illegible] अनंत-वाराओ इति सिद्धांत वचन [illegible] " ते [illegible] प्रथम त्रिविधा क्षयोपशम [illegible] करतां थकां [illegible] [illegible] तेहिज शक्ति अनेक [illegible] छे. तेहिज आत्मा [illegible]

दर्शन चारित्रादि तेहनो अनुगतना निजस्वभावमें आत्मा प्राप्ति हुवो निज स्वभावमें रमण हुवो एटले आत्मा पोताना स्वभाव पाम्यायी अनुसरे, ग्रहण करे. आर्जवभाव सरलतारो स्वभावीपणो ग्रहण करे, तिमहीज वली आत्म स्वभाव प्राप्ति रूप विवेक ग्रहण करे आर्यवपणेरो भाव प्रगटे ए तो आत्मानो क्षयोपशम सम्यक्त्वयी उत्सर्ग कथन छे.

अपवादें परवंचकतादिकारे,
ए माया परिणाम;
उत्सर्गे निज गुणनी वंचनारे,
परभावे विश्राम ॥ सा० ॥ ५ ॥

हिवे आत्मानो विशेष कथन लिखें अपवादें विशेष कथन करें ए आत्मा क्षयोपशम भावि छे. क्षायिकभावे नथी तेथी परवंचना अन्यने ठगणो ए कपटनो परिणाम परिणमन छे, क्षयोपशमी छे तेथी जीवमें माया परिणमी छे, पर उत्सर्गे सामान्ये आत्मगुणनी ठगाइ थाय, सामान्ये आत्मगुण ठगी जे विशेषपणे न ठगी जे कीण विरियां तेहिज जीव स्व स्वभावमें प्रवर्ततो तिण विरियां तो नही ने स्वभावमें प्रवर्ततो छतो एहिज जीव परभाव नाम आर्तरौद्रध्यान रूप विभावमें विश्राम ले विभावे जाय ठहिरे तिवारे उ० निजगुणनी सामान्ये वंचना ठगाइ करे क्षयोपशमात् क्षयोपशम छे तेथी—

साते वरजो अपवादें आर्जवीरे,
न करे कपट कषाय;

आतमगुण निज निज गति फोरवेरे,
ए उत्सर्ग अमाय ॥ सा० ॥ ६ ॥

पांचमी गाथामें क्षयोपशम भाववी विशेष कह्यो, हिवे छठी गाथामें क्षायिकभावें विशेषपणो कहे छे. अपवादे नाम तेहिज जीव विशेषपणें सात वरजी सात कर्मप्रकृति अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व मोहनी, मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व मोहनी, ए सातें वरजी तिवारे अपवादे नाम विशेष आर्जवी थाय. विशेषपणें सरळ स्वभावीपणो ग्रहण करे. कपट तो अनंतानुबंधी चोकडी क्षपायां थकां शेष रह्या जे अप्रत्याख्यानादिक तिण संबंधी माया परिणामीपणेमें न प्रवर्ते तिवारे आत्मा आतमगुण अनंतज्ञान दर्शनादि तिणांने निज निज गति फोरवे शक्तिमें प्रवर्तावे तेपिण एटला सुधी ही आत्मा उत्सर्गे सामान्ये अमायी अपवादे विशेषपणे हजी सुधी आत्मा अमायी नथी, मायानी दोड दशमें गुणठाणे रे अचरम समय सुधी छे. किम क्षपकश्रेनि हजी सुधी नथी कीनी तेथी मायानें उपशमावी छे पिण संपूर्ण क्षपावी नथी. कथं केवलज्ञान केवलदर्शन नथी पाम्यो ते पामश्ये तिवारें शुद्ध क्षायिकी थास्ये केवलज्ञान केवलदर्शन उपज्यां हुं पहिलां जे क्षायिकिपणो छे तेहनें सिद्धांतमें अशुद्ध क्षायिकीपणो कह्यो छे. यदुक्तमागमे. ननुसप्तक्षये क्षायिक इत्युक्तत्वात् सनिक्षायिके सम्यक्त्वे श्रीकृष्णवासुदेवः कथंनरकावनींजगाम श्रेणिकश्च प्रथमामिति इत्तो प्रश्नकोयो तत्रोत्तरमाह क्षायिकंद्विधा शुद्धमशुद्धंचेति ॥ तत्र श्री कृष्ण श्रेणिकयोरशुद्धं क्षायिकं । कस्मादेतो: तद्हेनुआह ॥ तत्यसपर्यवसि-

सत्यादिनि न विरोधः यदुक्तं श्री नवपद प्रकरण वृत्तौ। तथाहि । क्षायिकस्यशुद्धाशुद्धभेदेनद्विभेदत्वात् ॥ तत्रा-पायसद्द्रव्यविकला भवस्थ केवलिना मुक्तानांचया सम्यग्दृष्टिस्तच्छुद्धं क्षायिकम् । तस्यच साग पर्यवसा-नत्वान्नास्त्येवभंगः तस्यनाम तिण क्षायकरे सादि अपर्य-वसितपणाहुंती भंग नहीं यदाहुः गंधहस्ति ॥ भवस्थ केवलिनो द्विविधस्यसयोगायोगभेदस्य सिद्धस्य दर्शन मोहनीय सक्षयाविभूना सम्यग्दृष्टिः सादिर पर्यवसितेति ॥ यान्य पायसहचारिणी श्री श्रेणिकादेरिव सम्यग्दृष्टि-स्तदशुद्धं क्षायिकं तिण शुद्ध क्षायकरे सादि सांत भांगो हुवे अस्ति प्रतिपातः तिण जीवरे क्षायकसुं पडणो छे किण हेते तिको हेतु श्री गंधहस्तीजी लिखे तत्रोयाय अपाय-सद्द्रव्यवर्तिनो श्री श्रेणिकादीनांच सद्द्रव्यापगमे भवत्यपायसहचारिणीसा सादिः मति ज्ञानांशक्षये सादिन सम्यग् दृष्टि हुवे तिवारे मति ज्ञानांशक्षय सादिन क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट होयवेसुं सादि कहीजे, केवल ज्ञानरी उत्पत्ति हुवे छते मतिज्ञानांश क्षय हुवे तिवारे सांत कहीजे. अपाय सहचारिणी सम्यग् दृष्टिरो अंत हुवो तिवारे सादि सांत भांगो टहिर्यो, केवल ज्ञान उपन्यां पछे मतिज्ञानांश क्षय हुवे छते शुद्ध क्षायिकरी आदि हुई तीन कालमें जीव क्षाय-करो नाश नहीं तिणसुं अनंत अतएव सादि अनंत भांगो शुद्ध क्षायिकमें पामे इति ॥ ६ ॥

मतागध भ्रमण गति चारमें रे,
पर आधीनें वृत्त;

वक्र चालथी आतम दुःख लहे रे,
जिम नृप नीति विरत्त ॥ सा० ॥ ७ ॥

जो जीव अशुद्ध क्षायिकीपणामाटे सत्ता आत्म सत्ता ते आत्म सत्तानें रोध–रोकने भ्रमण गति च्यारमेंरे च्यार गति चोरासी लाख जीवयोनीमें प्रवर्तनो–भमवो पर नाम जडादिकनी आधीनवृत्ति छे एटले जीव जडाधीन वृत्तिए करीनें च्यार गतिमां परि समस्तपणे भ्रमण करे. तत दृष्टांतमाह जिम कृष्ण वासुदेव अशुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व पामके कालांतरे मरण पामी त्रीजी नरकमें सात सागरोपमनी स्थितिमें उपन्यो उपन्यां पछे त्रीजी नरकनो आउखो संपूर्ण भोगवनें मनुष्यभव करीनें पांचमे देवलोकमें दश सागरोपमनी स्थितिमें उपन्यां, तिहांथी चविकर आरमें अममजी ईसेनामें आवती चोवीसीमें तीर्थंकर हुसी. यदुक्तं श्री संघदासगणि कृत वसुदेव हिंडौ तथाहि । तओ तइ आउं दुक्खाउ उवट्टित्ताइ इहे भारहेवासे सय दुवारे नयरे जियसत्तुस्सरणो पुत्तत्ताएउवलिज्जिउणपत्त मंडलिय भावो पवज्जं. पडिवज्जिउ तित्थयरनाम कम्मं समज्जिणित्ता बंभलोए कप्पे दस सागरोवमाउग सहस्रुणो भारहमो अममो नाम अरहा भविस्सई ॥ ते आत्मो तिम्पी जीवनो ते कृष्ण- [illegible]

जिम नृप नीति विरक्त जिम राजा राजनीतिमां प्रवर्त्ततो थको सर्व वातें साता पामें तेहिज राजा नीतिने विरुद्ध छोड्यां थकां दुःख पामे इत्यर्थः ॥ ७ ॥

ते माटें मुनिऋजुतायें रमे रे,
वमे अनादि उपाधि;
समता रंगी संगी तत्त्वना रे,
साधे आत्म समाधि ॥ सा० ॥ ८ ॥

ते माटे तिण कारणें मुनिराज परभाव छोडनें ऋजुता सरलता आत्मिक स्वभाव संवधित जीर्णे करनें आत्म स्वभावें रमे-रमण करे दिनरात फिरी तेहिज मुनिराज. अनादि कालनो मिथ्यात्वादि उपाधिलक्षणमाह ॥ साध्य व्यापकत्वे सति साधना व्यापकत्वमुपाधिः ॥ साधवा योग्य वस्तु तिणरे विषे तो सर्वथा प्रकाररूप स्वरूपता व्यापी रही छे. व्याप रह्यां थकां तें साधन जे कारण तेने विषे अव्यापकत्वं व्यापन रही छे एटले स्वरूप कार्य साधवावालो ते साधन ठहिर्यो तेहनें विषे ऋजुतापणो व्यापीने रह्यो तेहिज उपाधि, ईहां साधवा योग्य आत्मिक स्वरूप सरलता तेहने विषे व्याप रही छे साधन मुनिराज तिणरे विषे अनादि कालीन मिथ्यात्वादिक उपाधि तिणसु ऋजुता नावे तिण कारणें मुनिराज ऋजुतानें ग्रहण कीयां स्वरूप प्राप्ति हुवे ते कारणे उपाधि वमें दूर करे निवारे साधुरे विषे स्वरूप ग्राहक शक्ति उपजे सुमना रंगी शुभमनि स्वरूप संवधनी भली जे मति तिणसुं मुनिराज रक्त हुवे. अहोनिशी सुमतिमयी प्रवर्ते. संगी तत्त्वनारे शुद्धात्मतत्त्व तेहनो अहोनिशि चिंतवन

[illegible] आत्म समाधि ॥ समाधि- स्थित [illegible] देहनी जो [illegible] ॥ ८ ॥

नायक्षयें आर्जवनी पूर्णता रे,
तवि गुण ऋजुतावंत;
पूर्व प्रयोगें परसंगीपणो रे,
नही तसु कर्त्तावंत ॥ सा० ॥ ९ ॥

हिवे [illegible] आत्म [illegible] नायकपणे आर्जवनी पूर्णतारे [illegible] आर्जवनी पूर्णतारे [illegible]

संगथी बंधाणो जे शरीर तेहनो खानपानादि बाह्य शुश्रूषा रही छे एतलें शरीर संबंधी परसंगीपणो रह्यो छे. नही तन्न कर्त्तावंन तसु ते जे कर्मबंधणा शरीरनी शुश्रूषादिके करनें तिणरो कर्त्तापणो तिणांरे नहीं रह्यो छे, कर्मरो कर्त्तापणो बाकी न रह्यो ॥ ९ ॥

साधनभाव प्रथमथी नीपजे रे,
तेहीज थाये सिद्ध;
द्रव्यत साधन विघन निवारणा रे,
नैमित्तिक सुप्रसिद्ध ॥ सा० ॥ १० ॥

कर्मरो कर्त्तावंतपणो नही तेयीज साधकभाव आत्मिक गुण साधक स्वभाव आत्मारा आत्मिक गुणज्ञान दर्शनादि साधक साधन करणो सिद्ध करणो तिणरोभाव प्रथमथी-पहिलां हुंती एटले ए हवे आत्मा थयें छते नीपजे थाय तेहिज आत्मा थाय सिद्ध सिद्धनगे थाय पामे तो ते हवे थये आत्मारे द्रव्यत साधन द्रव्यत्व साधनपणो बाह्य साधनपणो चारित्रादि तेहना द्रव्यत्व साधनना जे कोई विघन ते विघनोनो निवारणारे निवारण करणो दूर करणो नैमित्तिक ए तो निमित्तकारण छे; साधारण असाधारणमांथी एकही नयी जीम कुंभकाररे दंड चक्रचीवरादि निमित्त कारण घटरूप कार्य सिद्धि करनां थकां छे तिम द्रव्यत साधन द्रव्य साधूपणागे एहवो थयो आत्मा तेहनें पांचेई जे प्राणाति पाताश्रवगे निवारण द्रव्य साधुपणारे विषे प्राणातिपातादिक नो विघन न पडे प्राणातिपात मृषावादादिक लागे तद्रूप

द्रव्य साधनपणारो विघन ते विघननो निवारणो एहवे थये आत्मारे सहिज निवारणो छे, तेथी नैमित्तिक कारण कह्यो तिको नैमित्तक कारण सुप्रसिद्ध-प्रसिद्धहिज छे, ए सर्व द्रव्य साधन छे; द्रव्य साधनथी तथा विघ साधनना नथी ॥१०॥

भावें साधन जे इक चित्तधी रे,
भाव साधन निज भाव ।
भाव सिद्ध सामग्री हेतु तेरे,
निस्संगी मुनिभाव ॥ सा० ॥ ११ ॥

द्रव्य साधन कह्यो, हवे निज स्वभाव साधनथी स्वस्वरूप सिद्ध थाय ते सिद्धि ते भावसाधन छे, तेथी भावें साधन स्वरूपानुयायी जो भावसाधन [illegible] सिद्ध करे एहवो जे भावसाधन. जे इक [illegible] एक चित्-वृत्तिपें करनें [illegible] ते भावसाधन कहियाय. ए सिद्धन [illegible] करे छे, निःसंग [illegible] [illegible] गुणपर्यायरूप [illegible] तेथीज सिद्धपणानी [illegible] भाव-साधन [illegible] सामग्री [illegible]

मुनिपणो निरसंगी मुनिभावपणो ते स्युं संग नामसंबंध नामशरीर पुद्गलादिक पण रह्या छे, परणम्या ते पुद्गल ते पुद्गलोथी निःसंगपणो छे. पोताना पुद्गल नथी जाणता, पुद्गलोनी परवर्या मात्र मूकी दीवी छे, मुनिभाव नामस्वभावे मुनिराजपणो ते छे, एटले तदाकारवृत्तिपणो तेहने कहिये तेरमें गुणठाणानो अंत्य अरु चौदमो गुणठाणो हिवे थास्ये ते पोतेज कर्त्ता आगळ गुंथ्युं छे. तेहिज लिखे ॥ ११ ॥

हेयत्यागथी ग्रहण स्वधर्मनोरे,
करे भोगवे साध्य ।
स्वस्वभाव रसिया ते अनुभवेरे,
निजसुख अव्याबाध ॥ सा० ॥ १२ ॥

हेय त्यागथी भावसाधन जिवारे सिद्ध थयो तिवारे हेय-त्याग–छोडवा योग्य जीको वस्तु स्वस्वरूपरो विघनकारी जे पंच्यासी प्रकृति जुना कपडा प्राय तेहनो जे अंत करवो खपाववो तद्रूप हेय–त्यागथी, ग्रहण स्वधर्मनोरे लेवो स्वधर्मनो आत्मस्वधर्म अनंतज्ञानदर्शन चारित्रादिकनो ग्रहण करे तद्रूप स्वरूपनो ग्रहण करे भोगवे साध्य साधवा योग्य वस्तु स्वधर्म तेहनी सिद्धता ते जे भोगवे, लघु पांच अक्षर नो उच्चारणरो काल तिण प्रमाणे चौदमा गुणठाणामें भोगवे पछे स्वस्वभाव रसियाने आपणे स्वभाव पूर्वे कह्यो ते अनंतज्ञानादि तेहनो रसियो थयो छतो निज सुख अव्याबाध पीडायें [illegible] रहित तेहने [illegible] चउदमें गुणठाणेरे अंतिम एक समयस्थिति [illegible] तहनो. पुद्गलां

पछे प्रथम समय सो तो आदि छे, सिद्धमां पुहचणरी आदि छे. अनंतेकाले उठेहीज रहणो तिणसुं अनंत छे, तेथी सादि अनंत भांगो सिद्धमां छे इतिश्रेयः ॥ १२ ॥

निःस्पृह निर्भय निर्मम निर्मलारे,
करता निज साम्राज ।
देवचंद आणायें विचरतारे,
नमिये ते मुनिराज ॥ सा० ॥ १३ ॥ इति

आगली गाथारो संबंध जोरावरी मिलावणो पडे छे, सिझाय कर्त्ता महा मोटा तेथी विरुद्ध कहिवाय नहीं. प्रथम गाथानो ते संबंध अंतिम ए संबंध ते पोतेही विचारी लेज्यो, निस्पृह-वांछा रहित इसा ते मुनिराज छे, निर्भय इहलोक परलोकादि भय तेणें कर रहित इसा ते मुनिराज छे, निर्मल गयोछे कर्ममल जे हुंती इसा थका करता निज साम्राज स्वरूप संबंधी निज राज्य–आपणो राज्य कर रह्या छे देवचंद्र आणाये विचनारे ॥ देवपुनचंद्रइव चंद्रोदेवचंद्र संसार संबंधी देवता विषे चंद्रमारी परे कर्मरहितपणामांहे उज्वल महाइस्या ते वीत-राग देव तीणांरी आणा आज्ञा ते विषे विचरता–प्रवर्त्तता नमिये ते मुनिराज इसा ते मुनिराजने नमियें, ए दोय अंतिम पदारो प्रथम पक्ष संबंधित अर्थ छे. हिवे द्वितीय पक्ष संबं-धित होय अंतिम पदारो अर्थ लिख्यिये छे, देवचंद्र कविराज एहवुं कहे–जिनेश्वरनी आज्ञा समय प्रमाणे प्रवर्त्तता एहवा ते मुनिराज तेने नमस्कार करिये [illegible] इति संबंधः ॥
इति [illegible] बालावबोध संपूर्ण ॥

श्री बाहुजिन स्तवन स्वोपज्ञटबासह.*

बाहुजिणंद दयामयी,
वर्तमान भगवान, प्रभुजी;
महाविदेहे विचरता,
केवल ज्ञान निधान, प्रभुजी. बाहु० ॥ १ ॥

ॐ हवे बीजा विहरमान पश्चिम जंबुद्वीपनेविषे वच्छविजय सुसिमा नगरी, सुग्रीव राजा, विजयामाता पुत्र, मोहनी रागीना भरतार, हिरण लांछन, श्री बाहु स्वामीने जे दया नीपनी छे ते दिखाडे छे, अने प्रभुने स्तवे छे. श्री बाहु स्वामी दयामयी छे. इहां यथार्थ ज्ञान करवाने दयानुं तथा अहिंसानुं स्वरूप कहीए छीए. जे कोइने हणवो नहिं ते अहिंसा कहीए. ते विभावपरिणतिए परिणमीने जे आत्मगुणनो हणवो ते भावहिंसा. अने गुणी तथा ज्ञानादिक गुणने अनुयायी वीर्य उपयोग करतां आत्मगुण हणायज नहिं. ते भाव अहिंसा. तथा जे आत्माना ज्ञानादिक गुण आश्रवथी हणाता जाणीने ते आश्रवथी टाळीने आत्माने संवरने विषे परिणमवुं ते भावदया जाणवी. तथा कोइ परजीवना दश प्राण न हणवा ते द्रव्य अहिंसा. अने कोइना द्रव्य प्राण हणाता उगारवा ते द्रव्यदया, एवुं स्वरूप विशेष-

* आ स्तवन [illegible] स्पेतु होइ तेओना मनमनी [illegible] अने ते उपरनो अर्थ पण [illegible]

श्यकने चतुर्थ गणधरवादथी जोज्यो. तथा श्री हरिभद्रसूरिकृत अहिंसाष्टकथी तथा ओघनिर्युक्तिथी जोज्यो. इहां दया अहिंसानो एकपणो ते कारणे कार्योपचार माटे छे, दया ते अहिंसानो कारण छे. अहिंसा ते कार्य छे. स्वपरना ज्ञानादिक गुण न हणवा ए भाव अहिंसा. ए धर्म यतः " एस धम्मे धुवे नीतिए " इत्यादिक आगम वचन छे. ते श्री बाहु जिन कहेतां वीतरागना इंद्र पुष्टोपकारी माटे तीर्थंकर ते परमदयानथी छे. आत्मानी दया संपूर्ण करी छे, परनी संपूर्ण दया उपदिशे छे. वर्तमानकाळे विचरता भव्य जीवोने देशनामृते सिंचता महाविदेहक्षेत्रे तेहि केवळ-ते सकल लोकालोकना भाव जेहथी प्रत्यक्ष परसहाय विना एक समये जाणे ते केवल ज्ञानना निधान छे. एवा श्री बाहुजिन छे ते परमदयाल छे

द्रव्यथकी छकायने,
न हणे जेह लगार प्रभुजी,
भावदया परिणामनो,
एहिज छे व्यवहार. प्रभुजी. बाहु० ॥ २ ॥

द्रव्यथी छ काय. १. पृथ्वीकाय. २. अप्काय. ३. तेउकाय. ४. वाउकाय. ५. वनस्पतिकाय. ६. त्रसकाय. ते नहणे तेथी अरिहंत लिगार अंतमातमिग. इहां कोइ पूछशे जे केवलीना पगथी पारेवाना वधां मनुष्य हणाये छे. तो न हणे किम कहो छो ? तेनो उत्तर जे श्री भगवतीसूत्रे केवलीना पगथी पारेवा मनुष्यनां वधां हणाय तिन तेहने इर्यावहीं कही पण हिंसा न कही ते माटे न हणे इम कह्यो ने छद्मस्थ गुण ठाणे मुनिने प्राणातिपातिकी क्रिया कही छे

तो केवलीने किम होवे ? इया माटे जे भावदया आत्मगुणनो रखवालवो तेना धणी जे उत्तम गुणी निर्ग्रंथादिक तेहनो ए व्यवहार कहेतां प्रवर्तन छे, जे जेमां जेहवा गुण हुवे तेहनो आचरण प्रवर्तन पिण तेहवोज हुवे, जे पोते साहुकार हुवे तेहनो देश चाली पिण सर्मी हुवे. जेहनो लांठीयो हुवे तेहनो देश चाली पिण वांकी हुवे, ए दृष्टांते जे परमेश्वर भावदया परिणामे परणम्या छे तेहनो विहार पण छकायने राखवानोज हुवे इम जाणवो. ए द्रव्य दयारूप प्रथम भेद कह्यो.

रूपअनुत्तर देवथी,
अनंत गुणो अभिराम प्रभुजी;
जोतां पिण जग जीवने,
न वधे विषय विराम, प्रभुजी. बाहु० ॥ ३ ॥

बीजा सरागी जीवनो रूप हुवे ते घणा जीवने विकारनो तथा संसारी रागादिकनो हेतु थाय तिवारे ते जीवना आत्म गुण हणाये, तिवारे ते रुप हिंसानो हेतु थयो, अने श्री प्रभुजीनो रूप ते अनुत्तर विमानना देवतायी अनंतगुणो अभिराम कहेतां मनोहर छे. एहवो रूप छे. पिण जगतयना जीवने जोतां धर्म राग उपजे पिण विषयनो विकार न उपजे इतले जे रूपनी मनोहरता ते पिण दयानो कारण जाणवो. ए बीजो दयापणो छे. ३.

कर्म उदय जिनराजनो,
भविजन धर्म सहाय, प्रभुजी;
नामादिक संभारतां,
मिथ्या दोष विलाय, प्रभुजी. बाहु० ॥ ४ ॥

वळी त्रीजी दया कहे छे. हे देवाधिदेव जिनराज तुम्हारो कर्मनो उदय, जे तीर्थंकर नाम कर्मनो उदय तथा भाषा वर्गणानो उदय प्रमुख ते जगतना भव्य जीवने धर्मनो सहायनो कारण थाय छे. उक्तं आवश्यक [illegible] नियुक्तौ. तंच कहं वेइज्जइ अगिलाए धम्मदेसणयाए इत्यादि भावने सांभळवे घणा जीव धर्म पामे. अतिशय सहित देशीने घणा जीवने विस्मय सर्वोत्तमपणो भासे. ते अतिशयनो स्वरूप प्रथमच्यार अतिशय सहजना जन्मना छे. इग्यार घनघाती कर्मक्षय थया पछी उदय थाय छे. ओगणीस अतिशय देवता गुणरागी थकी जग-जीवनी भाव करुणा माटे करे छे. ए चोत्रीस अतिशय, पांत्रीस वचनातिशय एवं तीर्थंकर नाम-कर्मनो औदयिक विपाक छे. तिण भव्य जीवने धर्म पमाड-वानो कारण थाय छे. जेहथी घणा जीव संसार समुद्र मध्ये पडतां उगरे छे. तिणे ए त्रीजो उपकारगुण. तथा तुम्हारा नामादिक इत्यादि नाम निक्षेप सांभळतां निश्चय [illegible] विलय जावे. तथा [illegible] अरिहंताणं भगवंताणं नामगोअस्स [illegible] अभिगमण वंदण नमंसणयाए [illegible] छे. [illegible] भावनानी [illegible] किरियाए सुहाए [illegible] अणुगामियत्ताए भविस्सइ. तथा [illegible] ते कहे "[illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible]

चैत्यशब्दे जिन प्रतिमा छे. वली भगवती सूत्रे चमर अधिकारे सौधर्म इंद्रे अरिहंत तथा अरिहंत प्रतिमानी आशातना एक कही छे तथा करेमिभंते सामाइयं ए शब्द उच्चरतां "भंते" थापनानो संबोधन छे. तथा अंगचूलीया सूत्रे कह्यो छे जे गुणीनी थापना गुणी समान वेयवच्ची. तथा द्रव्यनिक्षेपो जंबुद्वीपपन्नत्ती मध्ये निर्वाण कल्याणके श्री रुषभदेवना शरीरने नवरावी चंदन विलेपन करी फूल चढावी ग्रहणा पहिरावीने शक्रस्तव कर्यो छे. तथा उववाईसूत्रे अप्पे गइया वंदणवत्तियाए अप्पेगइया पूअण वत्तियाए ए पाठे फूलनी पूजा ते गवेषी छे. तथा नंदीसूत्रें तिल्लोक महिय पूइगहिं अरिहंते पसवीए इत्यादी पाठ जोवो. तथा भाव निक्षेपो परम केवलादि गुणमयी श्री अरिहंतनी सेवना वंदण नमन ध्यान ते च्यार निक्षेपा जे नाम अरिहंत, थापना अरिहंत, द्रव्य अरिहंत, भाव अरिहंतने संभारतां मिथ्यात्व कुश्रद्धादिक दोष विलाय कहेतां जाय. हे प्रभुजी तारा नामादिक पिण परजीवने आतमगुणना कारण छे. इतले तेपिण दयानाज हेतु छे ए चोथो दयापणो छे.

आतम गुण अविराधना,
भाव दया भंडार प्रभुजी ।
क्षायिक गुण पर्यायमे,
नवि पर धर्म प्रचार, प्रभुजी ॥ बाहु० ॥५॥

ए सर्व उपगारीपणे परजीवना हितरूप, द्रव्यभावपर दया. वंतपणो दाख्यो पिण ते पोतानो। आत्मभवे अहिंसकपणो निपनो छे ते दयावंतपणो आदरवा छे तिहांजे अनादि

संसारी जीव परानुयायी क्षयोपशमी उपयोग वीर्यने प्रवर्तने स्वगुणअनंतताने आवरण करतो हतो. ते आत्मगुण हिंसा हती. तथा पोताना गुण, पुद्गल लेवे भोगववे प्रवर्तावतां आत्मगुण विराधना थती हती, ते हे श्री बाहु स्वामी हिवे तुमे तुम्हारा कारक गुण, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, दान, लाभ, भोग, उपभोग, कर्तापणो, भोक्तापणो, ज्ञायकपणो, ग्राहकपणो, व्यापकपणो, रक्षकपणो प्रमुख सर्व स्वरूपानुयायी साधकत्व स्वरूप, कर्ता स्वरूप, ज्ञाता स्वरूप, ग्राहक स्वरूप, भोक्ता स्वरूप, रक्षक स्वरूपाश्रयी स्वरूप तन्मयतादिपणो थये, सर्वआत्मगुणना अविराधक थया ते माटे स्वरूपना सर्वथा निरावरणपणने रहिनो. जे आत्माना गुणने विराधवा नहिं. ए भाव दया छे. तेना तुम्हे हे प्रभुजी ! हे परमेश्वर ! परमात्मा तुम्हे भंडार छो. इतले स्वस्वरूपने निर्मळपणे राखी रह्या छो. एहज भाव दया छे. तेना भंडार छोजी. तेनो कारण कहे छे. जे क्षायिक निरावरण जे गुण केवळ ज्ञानादिक पर्याय सकल वेतृत्वादिक तेहने हिवे, परद्रव्य जे पुद्गल रागादि जे परद्रव्य रागादिक तेहनो प्रचार करहतो. प्रवेश नहिं करतो नथी. जे क्षयोपशमी गुण ते कदाचित् शक्तिन्यूनता माटे परानुयायी थाय. ते साधनरूके सावधान रहे. पर क्षायिक भावी जे गुण ते जे स्वशक्तिनी संपूर्णताये, स्वकार्य करे. परंपरानुयायी थातेज नहि. एहज परम स्वरूप अविराधकता सादि अनंत भांगे निरंतर. ते परम अहिंसा निरूपी छे, ए चारित्र गुणनी [illegible] प्रवर्ते छे. ते माटे- [illegible] मध्ये मध्ये [illegible] छे. ते माटे एक

रीतें थाय. ते दया कही छे. ते ए पांचमें बोले स्वरूप अविरावकरूप भावदयाना पात्र छोजी.

सर्व जीवे, सर्व आगम मव्ये एहना भाव दया अरूपी आत्मपरिणति ते धर्म सदहीनो. अरूपी धर्मेज अरूपी परमानंद नीपजे. ए धारवो. तथा श्री भगवती सूत्रे आया सामाईयं ए पाठ तथा श्री विशेषावश्यक मव्ये जीवो गुण पडिवन्नो नयस्स दव्वठ्ठियस्स सामाईयं, आत्मगुणस्यधर्म प्रवृत्तिः तत्याधकनो अहिंसा, इति व्याख्यानात् तथा धर्म संग्रहण्यां नाम ठवणा दव्वर खित्ते काले तहेव भावेअ एसोखलु धम्मनिख्खेवो छविहो होई. ए गाथानी प्रथम संक्षेप व्याख्या पहिलां करीने पछी विस्तर वाचनाए स्वगुणपर्यायाधारत्वं द्रव्यत्वं तस्य परसंगित्वमेवाधर्मः पंक्तिरथ न्यायात् अधर्म एव हिंसा ए आसमये तेहनो न करवो ते अहिंसा ए आशये गाथा सूत्रे कहे छे.

गुण गुण परिणति परिणमे,
बाधक भाव विहीन, प्रभुजी ।
द्रव्य असंगी अन्यनो,
शुद्ध अहिंसक पीन. प्रभुजी ॥ वाहु० ॥६॥

तथा गुण जे ज्ञानादिक ते गुणनी परिणति जाणवादिक स्वस्वकार्ये परिणमे गुण परिणतिनो बाधक भाव जे आवरण तेहथी विहीन कहेतां रहित एटले निरावरण गुण परिणाम तेहज स्वस्वकार्य करे, ते निरावरण गुण थयो ते शायी थयो? जे कारणे द्रव्य आत्मा अन्यनो असंगी थयो तिवारे गुण निरावरण थयो एहज द्रव्यनो अहिंसकपणो नीपनो. तथा

श्रीपंचवस्तु टीकायाम्, हेतुभ्योऽभिनवकर्मग्रहणं हिंसा तन्निवृत्तिः अहिंसा तथा श्री विशेषावश्यके भगवती सूत्रे एहवा अधिकार अनेक छे. जे मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग एहवा चार भाव संसार कह्या छे, ते माटे सकल प्रदेश सकल भाव धर्म, अन्य जे परभाव तेहनो असंगी सर्व संग रहितपणो ते द्रव्य अहिंसकपणो निपजे छे. ते माटे तेहथी रहित ते द्रव्य अहिंसक कहीयेजी, परसंगी आत्माने हिंसक कहीये छे. ए शुद्ध उत्सर्गनये अहिंसकपणो योग करेतां शुद्ध जे योग कह्यो छे, ते असत्यपणो कांइ बाह्यपणे साधन रीते नथी. पण उत्सर्गे जे न घटे. शब्द द्रव्य श्रुतावर्तनो उपयोग ते इहां उणो छे. ते माटे असत्य वचनयोग कह्यो छे. तथा श्री भगवतीसूत्रे उत्तमसंघयण शुक्लध्याने संचयको क्रिया छे, ते माटे उत्तमसंघयणी ए पाठ छे ए विना वस्तु धर्म आश्रयी छे. ते माटे अवगाहना थइ शुभ मोटी अन्यधर्म प्रगटयो. ते माटे क्षेत्र ते अवगाहना वधारे आत्मा रूपतो हुतो ते अधिकपणे थयो ए क्षेत्र अहिंसकपणे, आत्माने विषे रीतपणे, इम भाववो. इहां कोइ पुछशे जे क्षेत्रने संकोच दुःख आत्माने किम थाय ? तिहां उत्तर जे सिद्धपणे अवगाहना वधी छे किम कहो मोटी छे, किम हवे सिद्धने नानी मोटी अवगाहना थायी नहीं. ते माटे इम कह्यो छे

उत्साह उदय पुरणणे.
सहजे प्रगति थाय, प्रभुजी ।
छेदन योजनता नहीं.
वस्तु स्वभाव समाय. प्रभुजी ॥ बाहु० ॥८॥

हिवे–भावनाये कालधर्मनी शुद्धता कहे छे. कालधर्म लक्षण, धर्मसंग्रहणीये कहीये छे. पवत्तण रूवो कालो दव्वस्सचेव पज्जाओ सोचेव तउधम्मो कालस्स वजस्सजोए तथा तत्त्वार्थे विशेषावश्यके पंचास्तिकायनी वर्तना तेहनेज कालपणो कह्यो छे, तथा अनुयोगद्वार सूत्रे पिण कह्यो छे जे किं भंते अद्धा समएतिवुचति गोयमा जीवाचेव अजीवाचेव तिहां पिण जीव अजीवनी वर्तना ते काल तथा स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावत्वेन स्यात् अस्ति ए पद संमति तथा रत्नाकरावतारिका मध्ये छे, ए अस्तिपणो ते स्वधर्मेज हुवे. परधर्मनो अस्तिपणो ते द्रव्यनुं धर्म नहि. ते माटे काल उत्पाद व्ययरूप वर्तना ते स्वधर्म छे. आत्माना विशेष पर्यायास्तिमयी परिणमन छे. ते उत्पाद तथा व्यय तथा ध्रुवपणे जे आत्मा परिणमे तेहने सहेजे परिणमे छे. इतले उत्पाद व्यय ते कोइने पर निमित्ते थतो नथी. ते माटे सहेजे ए परिणति थाय छे. संयोगीभावनो व्यय ते छेदन कर्ये थाय छे अने उत्पाद ते कोइ योजन कहेतां कोइतले जोरे थाय छे, अने आत्मगुणनो उत्पाद ते परभावनी योजना विना थायछे. ए उत्पाद वस्तु स्वभावे समाय छे. वस्तु धर्मे समाय छे. ए काल परिणति सर्व द्रव्यनी किवारे हणाती नथी. ते वस्तुधर्मे तिमहिज परिणमे छे. ते वस्तुधर्म दिखाडवा माटे कह्यो छे. तथा गुणनी वर्तना ते गुणावरक कर्म रोधे छे. ते तो रोधकपणो हिंसा छे, ते निरावरण अवस्थाये आपभावी वर्तना ते हिवे हणाती नथी. ते माटे एहने अहिंसक वर्तना कहीए. ते नीपनो छे. हे परमेश्वर परमदयाल तुम्हें स्वदया संपूर्ण नीपजावी छे श्री यशोविजयोपाध्याये निजदया परदयानो स्व-

रूप उपदेश रहस्यमें वर्णव्यो छे ते जोज्यो. निज दया विणु कहो पर दया हवें कवण प्रकारे ए वचनने अधिकारनो आशय निज एहज छे.

गुणपर्याय अनंतता,
कारक परिणति तेम, प्रभुजी।
निज निज परिणति परिणमें,
भाव अहिंसक एम, प्रभुजी. ॥ बा० ॥९॥

हवे भावधर्मनी अहिंसकता कहे छे. तथा श्री भगवती सूत्रे भावओणं जीवे अणंता नाण पज्जवा। अणंता दंसण पज्जवा, अणंता चारित्त पज्जवा, अणंता अगुरुलघु पज्जवा. इत्यादि जीवाधिकारे तथा भावजीवः उत्तराध्ययन निर्युक्तौ, जीवाजीव विभक्तिने विषे जोइ लेज्यो. नवरं तद्व्यतिरिक्तश्च जीवद्रव्यं द्रव्यजीवः उच्यते इति प्रशस्तु विशेषयोनकः कथिरियं न कदाचित्तत्पर्याय वियुक्तं द्रव्यं तथापि च यदान्द्रिरुक्तया विवक्षते तदातद्द्रव्य प्राधान्यतो द्रव्य जीवो भावेतु दशाविध एव परिणामः कर्मक्षय क्षयोपशमोदयापेक्षः परिणतिरूपो भावजीवः इति ३ ए शांतिवादि वेताळटीका पाठ छे. तथ धर्मसंग्रहणीने विषे तस्सेव धम्मस्से नियसरूवे हिं अन्धिनामित्ते भिन्न पवत्तिनिमित्तं नामानट्ठंअणेगंनो १ ए भावधर्म तथा श्री दशवैकालिक निर्युक्ति अहिंसाना छ निक्षेपा कर्या छे. तेहनो अर्थ कहे छ छे. ते स्वगुणाबाधः अहिंसा 'वत्थु तुरंगा अन्नानि कज्जणावाइ लिया' इत्यादि वे माटे जे गुण ज्ञानादिक तदाद अवंझ 'अगंधे' इत्यादि तथा कारक

कर्ता १ कर्म २ करण ३ संप्रदान ४ अपादान ५ आधार ए छे ६ ते गुणपर्याय तो अनादिकालना अवराणा पड्या छे तथा जे वीर्य चेतनना क्षयोपशमी थइ ते परानुयायीपणे प्रवर्त्तता स्व-गुणावरणरूप कार्य करवे स्वगुण प्रवृत्ति घातरूप स्वहिंसा करे छे, ते हे नाथ तुम्हे स्वकीय सर्व गुण प्रगट करवे वली स्वरूप प्रवर्त्तन करवे ते हिंसकपणो निवारीने स्वभाव धर्मना अहिंसक थया छो. तथा कारकचक्रनी परणति अवराती नथी, पिण अनादिकालनी संगांगीपणे परकर्त्तापणे थयाथी आत्मविभावकर्त्ता, कार्य, कारण संप्रदान, अपादान, विभाव परिणमनरूप परानुयायी क्षयोपशम वे अभिनवाश्रव परिणति वृद्धि ते लाभरूप स्वशक्ति रोकवा-रूप ते हानि ते आत्मक्षेत्रे परभाव ग्राहकता परभाव भोग्यता रक्षणनादिरूपणे आधारकारक, इम छ कारक हिंसक थया छे. संसारी जीव ते तुम्हारा षट्कारक साधनपणे करी पछी केवल ज्ञानादिक गुण प्रवृत्तिपणे प्रवर्त्ताव्यो ते कर्त्तापणो, कार्य, करण, संप्रदान, अपादान, आधार, सर्वज्ञतादिक गुण प्रवृत्ति ते उपगरण ते भासनतादि लाभ ते परभाव सन्मुख न धसवो ते स्वरूप रमणता, ते ए छ कारक स्वगुण कार्य करवारूप परिणते परणम्या एहज भाव अहिंसकता नीपनी. ते भाव अहिंसा अप्रमत्तापणे नीपनो. एहज स्वधर्म नीपनो. इतले आत्मगुण आत्मपर्याय तथा आत्मानाकारक ते सर्व अनंता परिणामत्वादि शेष धर्म ते सर्व निज निज कहेतां पोतापोतानी जाणग छे. तथा देखगो तथा रमण आनंदादिक परिणत परणमे छे. ते हिज भावअहिंसकपणो छे. इतले जे द्रव्यनो भाव अहिंसक थयो तेहना द्रव्यक्षेत्रकाल नियमा अहिंसक थाय. ते, हे श्री बाहुस्वामी तुम्हारो आत्मधर्म तुम्हे

हणता नथी अने पर कोइ हणी शके नहीं ए अहिंसकता जे सात्यमां हती ते तुम्हारे नीपनी छे. इतले तुम्हें परम अहिंसक छो अने अहिंसकताना कारण छोजी, ए रीते भाव अहिंसकता नीपनी छे. ते अहिंसकपणो सर्वनें ध्येय छे. श्री जिनराज तुम्हारो अहिंसकपणो जे जीव अवलंबीने तन्मयी थाये-तेहनो पोतानो परम अहिंसकपणो नीपजे, ते माटे तुम्हे परम आधार छो. भव्यजीवना परम उपगारी छो, दयाल छो, शरणभूत छोजी. ९

एम अहिंसकतामयी,
दीठो तुं जिनराज, प्रभुजी;
रक्षक निज पर जीवनो,
तारण तरण जिहाज, प्रभुजी ॥ वा० ॥ १० ॥

एम कहतां ए रीते सर्व गुणे सर्व पर्याये उपादानपणे, निमित्तपणे, उपगारीपने, आधारपणे, उपदेशपणे, अतिशयादिक वर्तीकपणे हे वीतराग तुम्हे परम दयाल छो. ते हे प्रभुजी में मिथ्यात्व असंयमनी गाढताये अनादिकाल स्वरुपावृत्तपणें भव भटकतां आत्मधर्म उछेदीपणें प्रवर्ततां तुम्ह समान तत्वी देव पर भावनो अकर्त्ता अभोक्ता ते किवारे दीठो नहतो. इतले उपयोग गोचर कर्यो नहतो. ति हवणां कोइक गिर सरितुपल घोलना न्यायें श्री वीतराग आगम श्रवण यथार्थ भासक गुरु उपगारे हे जिनराज ताहरो स्वरूपानंदीपणो तत्वोपकारीपणो ए अवसरे भासनगोचर थयो ते माहरे आज परम कल्याण थयो. ते माटे श्री जिनराज तुम्हे रक्षक छो. निज कहतां स्वधर्मनो तथा कारणपने परजीवना पिण रक्षक छो.

ते माटे निमित्त कारणने कर्त्तापणाने आरोपे तारण कहतां परजीवना तारवाना कारण छो. अने पोते तर्या छो. ते माटे जिहाजनी उपमा छे तुम्हने हे देव. १०.

परमातम परमेसरु,
भाव दया दातार, प्रभुजी;
सेवो ध्यावो एहने,
देवचंद्र सुखकार. प्रभुजी. ॥ बा० ॥ ११ ॥

पूर्णानंदीपणा माटे स्वसत्ता प्रागभाव माटे. सकल गुण अनवछिन्न स्वभाव भोगीपणें हे प्रभुजी, तुम्हें परमात्मा छो. उत्कृष्ट आत्मा छो. वळी समस्त स्वशक्ति गुणपर्याय रूप स्वामीपणामाटे परमेश्वर छो. वळी शुद्धोपदेशक, तत्त्वधर्म देशकपणाथी, स्वधर्म राखवारूप भावदयाना दातार छो. एहवा परमात्मा परम पुरुष निरामय, निर्द्वंद्व, निस्संग, निस्सहाय, निर्मळ, निःप्रयास, आत्मानंदभोगी श्रीबाहु विहरमान तीर्थंकर भवे सेवो. तेहनी आज्ञा प्रमाणे प्रवर्त्तो, ध्यावो. ते बाहु स्वामी स्वरूप संपदा उपकार संपदा अतिशय संपदा मध्ये तन्मय उपयोगी थावो. ए बाहु स्वामी केवा छे. देव जे च्यार निकायना देवना तेहना चंद्र जे इंद्रादिक तेहने आत्मिक सुखना करणहार छे, अथवा स्तुति कर्त्ता ये देवचंद्र नामे प्रभु गुण रसिक तेहने सुखना करणहार छे, इनले जे निरनुष्ठानपणे श्री वीतराग सेवना करे ते परम अव्याबाध सुख वरे, महानंद पामे. निस्संगानंदी थावे. ए श्री निस्संग श्री बाहुस्वामीनी स्तवना भावदयारूप परम करुणारूप कही छे. ११

श्रीमद् देवचंद्रजीना लखेला पत्र.

(१)

अत्र विहारथी सुख छे, तुम्हारा भाव सुखसाता समाचार लिखाय तो लिखजो, जीम संतोष उपजे. तथा कोइ कहेस्ये जे व्यवहारथी तो सुख छे, तिवारे निश्चयथी दुःख क्यों एहवो शब्द लिख्यो तेहनो स्यो कारण ? तिहां उत्तर कहे छे के सातावेदनी कर्मना उदयथी उपन्यो जे सुख ते पर धर्म माटे जाते ए सुख ते दुःखरूप छे. उक्तंच सायासाया दुःखं.नविरहंम्मियसुहं जओ तेणं. देहिंदियसुदुःखं सुक्खं देहिंदियाभावो ॥ इति वचनात्. ते कारणे सातावेदनीना उदयथी उपन्यो जे सुख ते दुःखरूप छे. शाता ते आत्मानो जे अव्याबाध गुण तेहनो रोधक छे, तथा कोइक आचार्य अव्याबाधने पर्याय पण कहे छे, ते माटे गुणपर्यायनो रोधक ते शातावेदनी कर्म तेहना उदयथी उदयावलिकाए आव्या जे पुद्गल ते आत्माने भोगववा थाय छे, पिण निश्चयनये पुद्गलनो भोगववो ते अध्यात्माने युक्त नथी. ते स्यामाटे जे निश्चयनये पुद्गलनो आत्मा अभोगी छे. तिवारे कोइ कहेस्ये जे आत्मा तो पुद्गलनो अभोगी छे, तो ए आत्मा पुद्गलभोगी किम थाय छे, अने पुद्गलनो भोगववो किम करे छे, तिहां कहिये जे आत्माने विषे एक भोग गुण छे. ते इहां भोग स्वगुणपर्याय कहेवो. ते भोग गुण अंतराय कर्मे आवर्यो छे, तेनो नाम भोगांतराय कर्म कहिये. ते भोगांतराय कर्म मंदथी क्षयोपशमे हुवे क्रम मंद क्षय थाय छे. तिवारे स्वगुण

पर्यायनो अनंतभोग प्रगटे, तिवार इहां कोइ कहेस्ये जे तेरमा गुणस्थानकवर्त्ती जीवने भोगांतरायने क्षय थावे करी अनंतो स्वगुणपर्यायनो भोग प्रगट्यो छे, अने आहारादि पुद्गलनो भोग ते जीव किम करे छे, ते युक्ति खरी कही पिण इम छे जे तेरमा गुणस्थानकवर्त्ती जीव पूर्वे आहार पर्याप्ति बांधतां जेतलां पुद्गलनो ग्रहणपणो बांध्यो छे, तेतला पुद्गल ग्रहे, तिवारे ते आहार पर्याप्ति पुद्गलरूप जे आत्मप्रदेशे संबद्ध छे, ते निर्झरे तेतलो निरावरण थाय, ते माटे केवली जे आहारादिक पुद्गलनो ग्रहण भोग करे छे तेम ते निर्जरा; पिण वांछा भोगपणे नथी. तथा सम्यग्दृष्टिनो भोग ते प्रशस्त परिणामनी प्रवर्तनाए करी निर्जरानो हेतु थाय छे, तो केवलीनुं शुं कहिवो. ते माटे स्वगुणपर्यायने भोगववारूप जे भोग गुण ते तो भोगांतरायना क्षयथी प्रगटे, अने भोगांतरायनो क्षयोपशम तो सर्व जीवने सदा पामीये, तिहां भोग गुणनो स्वभाव ए छे जे भोगववो अने स्वगुण पर्यायनो भोग अनंतकाल थयां मूली गयो छे, तिवारे पुद्गलानंदी थये छते आत्मा पुद्गलनो भोग भोगवे छे, ते इहां भव्य जीवे स्वआत्मिक अनंतोभोग गुरु मुखे सांभली, जाणी, श्रद्धा करी ते भोग अनादिनो अवराणो जाणी, ते जीव निरावरण करवाने उद्यमी थाय ते इहां शुद्ध निमित्तनी अवलंबनाए शुद्ध उद्यमे आत्मा प्रवर्त्ती शके अने शुद्ध उद्यमे तथा शुद्ध निमित्तनी अवलंबनाने विषे थिर परिणाम तो रहें, जो आत्मा पुद्गलभावथी विरमणपणे करे ते जे पुद्गलथी विरमवुं ते संवर कहीये, एहवा भाव संवरने विषे रह्यो छतो स्वगुणपर्यायनो अनुभव प्रवर्तना करे ते शुद्ध ज्ञान कहीयें. अने ते ज्ञान तो प्रवर्ते जो वीर्यनो सहकार होय ते

ज्ञान प्रवर्त्तनावसरे जे वीर्यनो सहकार ते सकाम पंडित वीर्य कहीयें अने ज्ञान स्वपर ज्ञायक होय पिण सदा आत्म प्रदेशावगाही रहे. इणी रीते स्वगुणने विषे थिरता स्वगुणभोग आस्वादननी रमणता ते भावचारित्र कहीये. ए रत्नत्रयी जाणी स्वगुण उपादेय करे, परगुण हेयपणे प्रवर्त्ते, संसारीभाव ज्ञेयपणे प्रवर्त्ते. सर्व एकेंद्रियादि जीव प्रथम गुणस्थानकवर्त्ती होय ते उपरे मध्यस्थ अने कारुण्य भावनाए वर्त्ते. स्वगुण निरावरण थाते छते प्रमोदभावनायें वर्त्ते, साधर्मी उपरे सदा मैत्रीभावना राखे स्वपर औदयिक सन्मुख दृष्टि न दियें, तत्र श्रद्धा शुद्ध जीवने धर्म ध्यान कहवाय तो कहेजोजी, जे जीव शुद्ध प्रवर्त्तनाए प्रवर्त्त्या प्रवर्त्ते छे, प्रवर्त्तशे ते जीव धन्य छे, इम विचारवु पिण मादकभाव करवो नही. इणीरीते व्यवहारिक सुख छे. भाव सुख तो परिणामनी धारायें होय इति तत्त्वम् ॥

---

(२)

श्री.

॥ स्वस्ति श्री आदिजिनं प्रणम्य । अहम्मदाबादथी पं० देवचंद्र लिखितं श्रीसूरतबंदरे जिनागमतत्त्वरसिक सुश्राविका जानकीबाई हरखबाई प्रमुख धर्मस्वरूपरुचि आत्मा योग्य धर्मलाभ वांचजो जी । अत्र साता छे । अहिंसाना स्वरूप तो पूर्वे तुम्हने जणाव्या छइ अने वली समजवा । मूल अहिंसा अनुबंध होइ. ते मध्ये उपयोगीनई भावथी अनें अनउपयोगीने द्रव्यथी ते तो जिहा जे गुण स्थानक ते माफक जाणवो. ते मध्ये मुख्यनाइ निश्चय छेवें, अने तेहनो कारण आश्री लिखु, ते तो उपादान कारण सर्व टाले आत्म परिणाम

होइं, असाधाण कारण तो अविरति कषाय रागादिक हुइं अने निमित्त कारण तो काल स्वभाव निमित्तादिक योग वंचरादि बहुधा हुइं, तथा द्रव्यर्थी तथा भावर्थी ए कारणनी मिलना थाय तेवारें अनवस्था दोष उपजें, ते माटिं जीहां अनुपचरितसद्भूत व्यवहारलोप जिहां थाइं ते सर्वभावयी उपादान जाणयुं. ए लक्षणमात्रइं साध्युं अने जिहांथी उपचरितसद्भूत व्यवहार ते निमित्त लक्षणसांधीइं। अने जिहां उपचरित असद्भूतव्यवहार ते निमित्त लक्षण सांधीइं, तिहां शुद्धअशुद्ध तो जोवा पडइं, इम सवलें विचारी लिखीइं, ए प्रश्ननो उत्तर समुदायमात्र लिख्यो छें, ए गहनार्थ छे, बहुश्रुतगम्या अने तुम्हें वली लिख्युं जे ३ अहिंसा जे जे गुणस्थानक मारक जिहां होइं तिहां हिंसा हुइं किंवा न हुइं, ते तो हिंसा हुइं पणि ते निरवद्यरूप छें. आयतिकालें निर्जरा निमित्त ज थाइं अने दोषी(ने?) तुं शुभाश्रव रूप होइं। ते सारद्य निरवद्य कहीइं छि ते माटिं हिंसा न कहइं सावद्यभागाइं कहीइं अ..पितुं जे दीसइं ते प्रसंगमात्र छें, ते माटिं व्यवहारें इंम कहीइं निश्चयथी अहिंसा छे, ते जाणवुं, तथा पडिलेहणाइ उपादान कारण तेहनो क्षयोपशम ते असाधारणकारण अने शुद्ध व्यवहारनइं गुणोपेत योग ते निमित्तकारण ए पणि इहां सामान्यमात्रइं सवलें लेवां, तथा अनुबंध अहिंसा आश्री लिख्युं ते जाणवुं, तेहनु नो द्रव्यथी अनुबंध अहिंसा, ग्रंथी भेदइं उपशम समकित दर्शने भावथी क्षायिक समकितीने ते संवर रूप शुद्ध ... मत ... दशा-द्रव्यथी हेतु अहिंसा श्री महाव्रत ग्राम लि... ... ... तिहां भावथी हेतु, अहिंसा अनन्त... ... ... अ... न दशा सर्व आत्मा

तथा अहवंय अहिंसा आश्री तो सामान्यें तो इंमज जे गुण-
वन्ह्इं जिहां जिहां स्वल्प लगइं रहे ते निश्चे अहिंसा तिहां
तिहां तावीइं अतिक्रमादिक ३ लगइं भजना एकेकनी कहिइं
अनाचारइं तो स्वरुं नहीं इत्यादि घणो विचार छे, तेतो
श्रीयशोविजयगणी कृत नयरहस्य ग्रंथनव्यें छे, स्पष्टपणें, सुबु-
द्धिनेइं ते तो वली कोइक समये जणाइं ते पीछवुं तथा
अनंतचतुष्टय आश्री लिख्युं ते तो केवली भगवाननें निरुपा-
धिक च्यार कर्म घातीइंक्षयें ज्ञान १ दर्शन २ समकित ३
वीर्य ४ ए स्वाभाविक चतुष्टय थयां अनंतपणे शेष च्यार
कर्मना क्षयथी अक्षयस्थिति-१ अक्षयअनिर्वाच्य अनंतिक
सुख-२ एकत्वावगाहना अरूपी-३ अगुरुलघुपणुं द्रव्यनाँ
पर्यायनुं अविनाशपणुं-४ ए चतुष्टय सिद्धने थयां. ते माटे
सिद्धनें तथा केवलीनें आत्माने हुयें फेर नहीं स्वाभाविक
नहीं इत्यादि. तथा सिद्धनें [illegible] आश्री लिख्युं ते [illegible]
[illegible] [illegible] आवें [illegible] करवा दोष नथी. [illegible]
[illegible] [illegible] उपयोगनी [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]

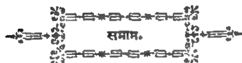
तुम्ह जेसे ज्ञायक गुणी समझो श्रुतसंतोष ।
मिल्यां ज्ञान विमणो वधें, लहें ज्ञान भरपोष ॥ ३ ॥
या चित्तसे नित वांचज्यो, श्रीजिनायनमः शुद्ध ।
स्वामि तुम्ह बटपुरी अह निशि जान विशुद्ध ॥ ४ ॥
इति लिः पादलीप्ततीर्थे रत्नचंद्रेण ।

(३)

॥ स्वस्ति श्री आदिजिनं प्रणम्य अहम्मदावादथी पं० देवचंद लिखितं श्री सुरतबिंदरे सुश्राविका जिनागमरुचि बाई जानकीबाई हरखबाई प्रमुख स्वरूप धर्मरुचि जीव योग्य धर्मलाभ वांचज्योजी. अत्र साता छें अपरंच तुम्हे यथार्थ ज्ञानी वीतराग सर्वज्ञ सर्वदर्शी अरिहंत परमात्मा ये प्रगट कर्यो सिद्धात्माने जे संपूर्ण नीपनो छे, ते सर्व जीवनें असंख्यात प्रदेशें व्याप्य व्यापकपणें अनादि अनंत संबंध रह्यो छे, ते स्वभावधर्मनी रुचिपणें रह्यो जे धर्म ते आत्मानो अन्वय स्वभाव छें, सहज अकृत स्वरूप छे, ते उच्छरंग धर्म छे, जाणवो देखवो ते स्वकार्य छें. तेहनी प्रवत्ति ते रमणादिक छें, ते शुद्ध धर्म जेहनें समरणे प्रगट्यो ते देवतत्व ते संपूर्ण धर्मनी इहा ये संपूर्ण धर्मी सिद्ध परमात्मानो श्रद्धान करवो ते साधन परिणतिनें संपूर्ण थवाना कारणपणा माटे तेहनें धर्म कहीयें. मूल वस्तु धर्में स्वस्वभाव तेहज धर्म ए श्रद्धा करवी. जे बाह्य प्रवृत्ति योगनी आचरणी तेहनें धर्म माने तेहना कह्यामें सिद्ध ते धर्म रहित थायें, ते माटें कारण ते मूल धर्मथी भिन्न छें, यद्यपि उपादान कारण आत्मपरिणति छें पिण साधननी रीत

ते सिद्धमानयी तेतलो मे [द] छैं. दशमा गुणठाणाना मुनिनें श्री भगवतीसूत्रें उस्सत्तं रियति इम कह्यो छें, तो जे स्वरूपरुचि विना सातादि गारव माटें संयम श्रुताभ्यासनें संसार हेतु छे, ए आचारांगे धूताध्ययने चोथें उद्देशें कह्यो छें, ते माटें पूरण सिद्धावस्थायें जे छतो पामीयें ते धर्म जाणवो. तेहनी रुचि जे आगम प्रमाणें पोताना प्राग्भावी गुण तथा उदीक गुणी अनुयायी करवो ए साधकता छें, ते करतां संपूर्ण धर्म प्रगटें तेहनो उद्यम करवो ए सर्व जीवनें हित छें, ए आत्मसत्ता प्रगट करवा माटें परमेश्वर परमपुरुष परमानंदमयी संपूर्ण आत्मसत्ताऽभोगी सहज आत्यंतिक एकांतिक ज्ञानानंदभोगी परत्मानो बहुमान ध्यान करवो. आत्मिक शक्ति कर्त्ता भोक्तादिक कारक चक्र ते विभावरूप कार्य कर्त्तापणें अशुद्ध संसार कर्त्तापणे करतां अनंत पुद्गल-परावर्त वही गयां, ते क्षयोपशमी चेतनादिक शुद्ध निरंजन निरामय निर्द्वंद्व निष्पन्न परमात्मगुणानुयायीक. ते स्वरूप प्रगट करवाना कारण थया, ते पछी स्वरूपावलंबी थया एतलें परम सिद्धताना कारण थायें, ते माटे प्रथम प्रशस्तालंबी थई स्वरूपालंबीपणें परणमी स्वरूप निष्पत्ति करवी ए हित जाणवोजी। तथा द्रव्य साधन ते भावसाधन नो कारण, भावसाधन ते संपूर्ण सिद्धनो हेतु छें, ते रीतें श्रद्धा राखवीजी. पौद्गलिक भावनो त्याग ते आत्मानें स्वस्वरूप प्रगट करवानें करवो ए निमित्तकारण साधन छें, अने आत्मचेतना आत्मस्वरूपालंबीपणें वर्ते ते उपादान साधन छें, ते उपादान शक्ति प्रगट थवा माटे सिद्ध बुद्ध अविरुद्ध निष्पन्न निर्मल अज सहज अविनाशी अप्रयासी ज्ञानानंद पूर्ण क्षायिक सहज पारिणामिक रत्नत्रयीनो पात्र जे

परमात्मा परमैश्वर्यमय तेहनी सेवना जे प्रभु बहुमान भासन रमणपणें करवा वर्तमानकालें स्वरूप निर्द्धार भासनपिण दुर्लभ छें, तो स्वरूपनो रमण ते तो श्रेणिप्रतिपन्न जीवनें हुवें संपूर्ण स्वरूपानंदी वीतरागनी भक्तिनें अवलंबनें रहवोजी. श्रीआचारांगें लोकसाराध्ययनें आत्मस्वरूपावलंबी जीव ते साधक छें, बीजा साधक नथी, इम कह्यो छें. ते माटें शुद्ध साध्यरुचि अने यथापणें वस्तु परमार्थज्ञानी कर्मक्षय करवानो अर्थी निरसंग आत्मानो परिणमन ते धर्म तेहना प्राग्भावना अर्थी ते साधक जीव परमसिद्धतानें वरें, ए रीतें प्रतीत राखवीजी. आज्ञा श्री तीर्थंकर देवनी ते प्रमाण, साधन रसी गुणी बहुमान स्वतत्त्व पूर्णताना रसिकपणें वरतज्यो ए तत्त्व छें जी ।





श्री महावीर जन्म जयंती गीत पारणुं.

माता त्रिशला झुलावे पुत्र पारणे. ए राग.

आजे महावीर जन्म्या जगमां आनंद आपवा,
कोटि चंद्र सूरजनी झळकी जगमां ज्योत;
प्रगट्यो त्रण भुवनमां आनंदमय उद्योत,
निरख्या जडवादी पामी पंडित खद्योत.   आ० १
जगमां सात्त्विक आनंदना वाया शुभ वायरा,
पाम्या नारकीओ पण मनमांहि आनंद;
रुडा आनंदना वरस्या बहुला शुभ मेहुला,
भारत उल्लस्युं हरखे पाप पलायां मंद.   आ० २
हर्षी सर्व दिशाओ आनंद ओपे नीतरे,
टसोटस देव देवीथी भरियुं बहु आकाश;
इंद्रो गावे हरखे ने नाचे इंद्राणिओ,
चांदा वेजे माले रुपालन आवास.   आ० ३
ग्रहो ने लोकपाल सहु गावे वीरनां गीतडां,
विश्वोद्धारक प्रभुनो जाणीने अहेवाल;
प्रभुने मेरुपर न्हवरावे सुरपति भावथी,
हर्षी भारत उपर प्रगटी मंगलमाल.   आ० ४
मानुष जाति हरखे मानुष थीज द्विपत्वथी,
हरख्या [illegible] सहु सुखी थ[illegible] अवतार;
सर्वोद्धारक [illegible] [illegible] बजां वागीयां.
न्हाना मोटा सहुने आनंदनो नहि पार.   आ० ५

प्रेमे आनंदना श्वासो ले भारत गाजीने,
शांति आनंदना उश्वासो ले नरनार;
हरख्यां त्रिशलामाताने सिद्धारथ राजवी,
हरख्या जोषीओ जाणी भारत उद्धार. आ० ६

राजा वैशाली चेटक मनमां आनंदिया,
घरघर आनंद उत्सव वर्ते जयजयकार;
आखा भारत देशे घरघर पुत्र वधामणां,
प्रगट्यो जगद्गुरु प्रभु महावीरनो अवतार आ० ७

त्रेवीश तीर्थंकर भाषित चोविशमा जिनपति,
आजे प्रकट्या जाणी सौने थयो निर्धार;
माळे बेसी करतां कल्लोलो सहु पंखीओ,
करतां आनंदना नादो तेम पशुओ सार. आ० ८

सघळे प्रसिद्ध थइ तेरस महावीरना जन्मथी,
जगमां महावीर तेरस घेरेघेर गवाय;
सोनुं रत्न अने रुपा हीराना पारणे,
वीरने झुलावे त्रिशला माता सुखदाय. आ० ९

त्रिशला बोले मारी कुखे प्रगट्या वीरजिन,
तेथी राणीओमांही थइ प्रथम शिरताज;
म्हारी कूखे आव्या धर्मोद्धारक राजवी,
रासी भारतजननी धर्मरागी शुभ लाज. आ० १०

प्रभुनी जमणी जांघे लंछन सिंहनुं शोभतुं,
प्रभुजी सिंहनी पेठे करशे पराक्रम वेग;
दयाना उपदेशे निर्दयना टळी विश्वथी,
टाळो नानाग पशु पर्धीना सहु क्लेश. आ० ११

वीरजिन एक हजार ने लक्षण आठे शोभता,
तेथी जाण्या चोवीशमा मोटा जिनराज;
केशीकुमर सुखथी त्रिशला जाणी गावती,
रुडां हालरडानां गीतो गुण शिरताज. आ० १२
जगमां जोर प्रगटतुं ज्यारे हिंसा पापनुं,
करतां नरनारीओ त्राहि त्राहि पोकार;
जगमां जुल्म घणा ने अंधकार अज्ञाननो,
त्यारे तीर्थंकरनो जन्म थाय निर्धार. आ० १३
भारत आर्य देशमां सोनासूरज उगीयो,
आजे जाग्युं भारत सर्व देश गुरुराज;
साथे जन्म्या केइक गणधर आदि ऋषियो,
जन्म्या देवी जीवो करवा सवे साज. आ० १४
रुडुं भारतनुं तप फळ्युं जिनेश्वर जन्मथी,
करवा सर्व वेदनो साचो अर्थ प्रकाश;
जन्म्या जाण्या इंद्रादिकना वचने भारते,
पाम्या ऋषि तपस्वी योगीयो उल्लास. आ० १५
बंदीखानेथी छोड्या सघळा बंदिजनो,
भारत देश नगरनां उत्सव बहुला थाय;
नगरमां नाट्यारंभो ठेर ठेर थाता घणा,
अमरापुर सम क्षत्रीकुंड सुख उभराय. आ० १६
प्रभुने जोवा आवे देवदेवी नरनारीओ,
योगी जोगीओ सहु जोवा आवे दोडि;
वरसे सिद्धारथ घर इंद्रननी धन कोडीओ,
प्रभुनी जगमां जोनां नहे न बीजी जोड,
वीरना देखदर्शे केई करे न उगना होड— आ० १७

प्रभुजी तीर्थ स्थापशे समवसरणमां वेशीने,
करशे केवलज्ञाने सत्य धर्म उपदेश;
गणधर द्वादशांगी गुंथीने धर्म वधारशे,
जेथी टळशे आधि व्याधिना सहु क्लेश.   आ० १८

महावीर भारत घर घर ज्ञानाग्नि प्रगटावशे,
करशे दुर्गुणोनो बोधचक्री संहार;
सर्वे आर्यो एक स्वरूपी थइने चालशे,
राजा रंक सकलने सरखा हक्क निर्धार.   आ० १९

सर्वे आर्यो दुःख बंधनने छेदी नाखशे,
ऊंचा नीचानो रहेशे नहीं मन अहंकार;
सहुनो न्याय थशे समभावपणे जग सारीखो,
टळशे हिंसायज्ञो तथा मनुज संहार.   आ० २०

थाशे प्रजासंघनां राज्य अने सुनीतिओ,
रक्तथी खरडाशे नहीं सर्व प्रजानो संघ;
राजा रैयत सर्वे आत्मरूपथी एक थइ,
करशे अरसपरस साहाय्य धरी मनरंग.   आ० २१

प्रभुजी आत्मज्ञानथी ब्राह्मण मुख्य कहावशे,
क्षत्री बनीने करशे सर्व कर्म संहार;
जगतूमां धर्मशूरानो क्षत्रपणाथी जणावशे,
अंतर वैश्य बनीने करशे गुण व्यापार.   आ० २२

केवलज्ञानी बनीने सेवा सहुनी सारशे,
गामोगाम करीने पादचारी विहार;
सेवाधर्मतणो फेलावो करशे विश्वमां,
चतुर्विध संघ बनावी करशे जग उद्धार.   आ० २३

साची भक्ति साचां कर्मो ज्ञाने जणावशे,
विचारो आचारोमां थाशे बहु उदार;
दयानो फेलावो करशे भारतमां भावथी,
घरोघर पंखीओ माळा करशे निर्धार. आ० २४

जीती रागद्वेषने दुनिया करशे निर्मळी,
आर्यो जैनो जिनने अनुसरशे दिनरात;
ब्राह्मण आत्मज्ञानीओ बनीने विश्व जगावशे,
नवलुं रुडुं प्रगटशुं भारतनुं परभात. आ० २५

चारे वर्णो रुढिबंधन खोटां त्यागशे,
घरोघर आत्मज्ञानना प्रगटाशे बहुसूत्र;
साचा व्यवहारो वर्तशे साची नीतिथी,
ज्ञानीयो योगी थाशे भारत माता पुत्र. आ० २६

घरोघर ब्रह्मभावना यज्ञो शुभ प्रगटावशे,
जिनजी चोवीशमो महावीरतणो अवतार;
भाखे भविष्य केशी इंद्रो ने बहु ऋषियो,
एवुं सुणीने हरख्यां भारतनां नरनार. आ० २७

जयंती वीर प्रभुनी उजवे सुर नर नारीयो,
वर्त्यो घण भुवनमां जन मनमां आनंद;
प्रगट्यो सात्त्विक आनंद माय न लोकालोकमां,
नाठा मोहादिकना तमजाळ तमजाळ फंद. आ० २८

चैतर तेरस महावीर जन्म जयंती उजवी,
सुरपति इंद्राणीओ नंदीश्वरमां जाय;
मांहे अट्ठाई महोत्सव करे भव भवना,
[illegible] देवदेवना [illegible] हरखाय. आ० २९

क्षत्रीकुंड नगरमां दश दिन उत्सव मांडियो,
प्रभुनां मंदिरोमां पूजाओ बहु थाय;
जमणो जमतां सर्वे जाति नर ने नारीओ,
देवां देशतणां नहि रहेतां मांहोमांह्य. आ० ३०

आजे वीर प्रभुनी जन्म जयंती उजवी,
सफळो जन्म थयो ने फळी हृदयनी आश;
भारत ब्रह्मज्ञानथी गुरु बनी सहु देशनो,
देशे स्वतंत्रता ने आत्मिक ज्ञान प्रकाश. आ० ३१

गायकवाडी राज्ये नगर पादरा शोभतुं,
जयंती वीर प्रभुनी कीधी हर्षोल्लास;
संवत् ओगणिश पंचोत्तरनी रुडी सालमां,
गावे बुद्धिसागरसूरि ज्ञान प्रकाश. आ० ३२

श्री महावीर प्रभुनुं पारणुं.

त्रीशला मातानुं गान. श्री महावीर प्रभुनुं हालरडुं.

व्हालो व्हालो हृदयनो प्राण. महावीर बालुडो;
मारुं सर्व मनोरथ स्थान, महावीर बालुडो,
आंखडी अणीयाळी अमूली, जोतां तृप्ति न थाती रे;
नाच नचावे आंख इसारे, निर्मल नेहे सोहाती. म०

ब्रह्मतेज आंखे ऊभरातुं, प्रियजनो झट परखेरे;
आंख उलाळे विश्व उलाळे, सहु हरखावी हरखे. म० १

कारमां नयणां लोकोत्तर श्यां, कालजडांने कोरे रे;
नाजुक नानुं नाक मजानुं, उभरे आनन्द छोळे. म० २

दाडमकळी सम दांतनी पंक्ति, हंस पंक्ति झट जीते रे;
उपमालायक कोइ न जगमां, अनुभव रीत प्रतीते. म० ३

हसतां पुष्प खरे ज्यम मोति, हास्य मधुरुं सुहातुं रे;
सर्व ब्रह्मांडोनी सहु लीला, करतुं दील जणातुं. म० ४

कालजडुं हरे कालुं बोली, करे तन्मय मन टारी रे;
अद्वैत ब्रह्मना मेळे झबोळे, प्रेमोदधि अवतारी. म० ५

रक्त कमल अळनाना जेवां, पुनित पगलां भरतोरे;
डगुमगु चाली विश्व डोलावे, डातीए बाझी पडनो. म० ६

उछळी आनंदओघ उछाळे, खोळे पडी शुभ खेले रे;
अंगुठो मुखमांही चावी, रमनो नव नव गेले. म० ७

बाळप्रभु पारणीए पोढे, हालरडे झुलावुं रे;
प्रभुनां लक्षण पारणीयामां, दीठां ते शुं ? जणावुं. म० ८

हालो हालो कानां हलावे, वण मुखनने प्रेमे रे;
अकळ अलख लीलामां लचपच, रहेनो जीवन क्षेमे. म० ९

अनुभव रम्मत गम्मत करतो, विश्व जीवाडी पजीवे रे;
वण भुवन अंधारुं नाठुं, पुत्र पनोता दीवे. म० १०

व्हाल करीने छाती सम्पो, पांपी आनंद पामुं रे;
बाहिर अंतर बाळ प्रभुना, रूपे जग सहु नामुं म० ११

पग झांझरीए जग चमकावे, आंगणही आरती रे;
आनंद तेजे देह भरेलो, प्रेम तेजे शु थाव. म० १२

भूमि पडीने गामुं जोतो, आंग मीची मंड हालतो रे;
पामे आवी खोळामांची, कव्वा करीने मागतो. म० १३

चीके भीवाने ऊंचे झुलावे, हमे हगावे रमावे रे;
[illegible] नमपना माटे, लाड करे ने करावे. म० १४

सखीओ आवो बाळ प्रभुने, हेत करीने रमाडो रे;
जगजीवन जगनाथ जीवन मुज, देखो ने दिल ठारो. म० १५

नव नव चेतन गुण [illegible], अनुभव गमने [illegible] रे;
[illegible] [illegible] [illegible], तेज सपूर्ण [illegible]. म० १६

[illegible] [illegible], [illegible] देही [illegible] रे;
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]. म० १७

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible];
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. म० १८

नाचे गावे थावे प्रेमे, मीची आंख उघाडे रे;
जोइ रहे मुज सामुं थानां. अंजन मंत्र जगाडे. म० १९

न्हाल करीने अंगे वळगे. जंपे नहीं क्षणवार रे;
त्रिशलीमां सदृशी नाचो; शुद्ध नन्दना धारे. म० २०

कुळनी शोभा सौंपी सारी. गति शशी वारी जाउं रे;
बालक गजा आनंद नाचो. गुण केटला हुं गाउं. म० २१

आत्मप्रतिबिंब निर्मळ न्हाळुं. मलके मुखडुं मजानुं रे;
दिलथी दिल पलखावे नयने. मौन गहीं वदे सानुं. म० २२

तृप्ति न पामुं लाड लडावे. प्रभु खेले मुज खोळे रे;
जन्म सफल थयो पल्लोदरथी. आवे न को मुज तोले. म० २३

अलंकारथी अंग ओपावुं. [illegible] रे;
दिव [illegible]. म० २४

[illegible] रे;
[illegible]. म० २५

[illegible] रे;
[illegible]. म० २६

[illegible] रे;
[illegible]. म० २७

[illegible] रे;
[illegible]. म० २८

[illegible] रे;
[illegible]. म० २९

रत्न कुखीने जननी शिरोमणि, त्रिशला मात गवाणी रे।
त्रण भुवनमां थइ छुं मानी, त्रिशलाराणी महाराणी. म० ३०

अंबादेवी शक्ति पुराणी, नाम अनेके गवाइ रे।
दुनिया शांति भाव वहेनी, धन्वर कानी गवाइ। म० ३१

बाल प्रभुमां देव देवीओ, भिषण सहु जोनी रे।
मंडिगागर गावि जाउं, प्रभुने न्हावं मोती. म० ३२

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
४३१	२३	शीष्य	शिष्य
४३४	९	वल्ल	वल्लभ
४३५	२१	सद्रत्नाः	सद्रत्न
४४०	४	वाणि	वाणी
"	९	प्रणमी	प्रणमीए
४४१	१५	रमनापरि	रमतापरिणति
४४२	३	त्यारे	त्यारे पोताना ज्ञानादि अनंतगुण भोगवे छे, ते भोगलब्धि. ३ उपभोगांतराय कर्म क्षय गये
"	२०	घणो	ओछो
४५३	६	कोइक जीव सहजयी शोध पाने एटले	[illegible]
४६४	११	गुणेकरी	गुणे
४६६	१४	भेद	भेद
"	१७	रुपे जाणे	जाणे
४६८	२१	विराजमान	विराजमान
४७०	४	कर्त्ता	कर्त्ता कार्य
४७१	११	त्र	त्रि
४७२	२०	इहा	ईहा
४८२	३	[illegible]	[illegible]
४८४	३	[illegible]	[illegible]
"	१३	[illegible]	[illegible]
४८९	१८	[illegible]	[illegible]
			[illegible]

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
४९१	७	अधिपतन भ	अलिपत नभ
”	८	समुद्र	भौ समुद्र
४९४	११	धाउं	टांउ
”	”	मृत	भृन
”	१३	गउं	टांउ
”	२३	तैसे	तैसें प
४९५	९	होत	हेत
४९७	१७	मेती	सेती
	१८	विसंसे	विलसे
४९८	११	फरंस	फरस
”	२३	नासी	नांमी
४९९	२३	मिथ्याको	मिथ्याको प्रपंच
५००	७	अछाद	छाद
”	१४	दोष	दोष दंसन थांन पोष
५०२	१९	उत्कष्ट	उत्कृष्ट
५०५	११	संत	संत असर निगुण इंद
५०६	१०	इकतीसा	तेवीसा
”	२३	कर्म	कर्मदे
५०८	१	तादातम्पना	तांदात्म्यता
५१४	१[illegible]	उद्यम	उद्यम सौ करे कर्मभाव हीकुं आतमा को उद्यम
५१६	१०	क्यों जाय	[illegible]
	.	हेहन	हेहन
[illegible]	[illegible]	[illegible] है	गति धरे है

पृ.	पं.	अशुद्धि	शुद्धि
५२५	२१	मिथ्या	मिथ्या
५२६	१९	हो	होय
५२८	६	टेकहे	टेकहै, ज्ञानिजड कौ भेद होय नांहि एंतै … यातैं यह ज्ञान ऐसा शु… अति टेक है
५४८	१५	ज्ञेय	ज्ञेय भोज
५५४	१७	धरनी	धरनी
"	१९	सामान्य	सामान्य
५५५	१२	तुउ	तुज
"	१४	पारमार्थिकण्व	पारमार्थिक
"	१८	हृश्यते	हृश्यन्ते
"	२२	सर्वेपा	सर्वथा
५५६	२	कुतः	कुतः
५५९	२०	वेद	वेद
५६४	६	तत्व	तत्त्व
"	२२	मरती	मरनी
५६५	१२	[illegible]	[illegible]
५७६	५	[illegible]	[illegible]
"	१५	[illegible]	[illegible]
"	१०	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
५८१	[illegible]	[illegible]	[illegible]

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
५८३	१०	द्रव्या	द्रव्य
,,	१८	पद्य	पद्म
५८५	१७	तदेत्र	तदत्र
,,	,,	प्रेष्टव्या	प्येष्टव्या
५८७	८	अनंर्या	अनंर्वा
५८८	११	कार्म	कार्य
५८९	१	मूल	मूल
,,	४	ये	यौ
,,	,,	व्याचस्यवे	व्याचक्ष्येते
,,	५	पुत्पाद	वुत्पाद
,,	७	व्यापितं	व्यापितवं
,,	११	निरूद्ध	विरुद्ध
,,	१३	तेथी	✺
५९०	१४	कवेतां	कहेतां
५९१	९	भाव	भाषा
५९९	११	जीना	जीनना
६००	२१	प्रमु	प्रभु
,,	२४	शत्रु	ऋजु
६०३	१०	निष्प	निष्पन्न
,,	२१	म	तेम
६०४	२	करनां	कहेनां
,,	४	केमम	केमन
६०५	१५	प्रश्न	प्रभ
६०७	२	भयागः	भयासः

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
६०८	४	भावयोर्भेद	भावयोरभेद
६०९	२२	सपज्जावा	सपज्जवा
६१२	३	समह	समूह
६१८	१६	छे	[illegible]
६२६	१४	प्रथक्त्व	पृथक्त्व
६४०	१३	प्रभुयी	प्रभुनी
६४८	१४	छे,	छो,
६६३	१४	रह्य	रह्यो
,,	१६	गुणस्थना	गुणस्थाना
६६८	१०	विम्हआ	विम्हओ
६७१	१८	केतां	सुरवटकेतां
६७२	१	माहा	महा
६७५	१	नीपजव	नीपजाव
६७८	५	पर्यव	पर्यव
६७९	१९	वस्तुः	वस्तु
,,	२३	अतो	अतः
६८०	६	भोक्तृ	भोक्तृ
,,	२०	अक्रिया	अक्रिय
६८२	१४	दगम	दगं
६८६	१८	पुण्णम्	पुण्णं
६८७	३	गाहुएं	गाहुएं
७०३	१२	जिनपाग्गान	[illegible]
७१३	३	ज्ञान	ज्ञानी
[illegible]		अग्निने	अग्नि

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
૭૧૩	८	संत्रपि	सत्रपि
,,	,,	वचन	वचनेना
,,	२३	समयक्र	सम्यक्
૭૨૫	२	कार्यंयी	कार्ययी
૭૩૦	६	चिंतां	चिंता
૭૩૪	२	मवृत्तै	मवर्त्ते
૭૩૭	४	ना	नां
૭૫૪	११	मेवने	मेवने
૭૫૭	૭	मेवन	सेवन
૭૬૫	१૭	पुरपा	पुरुषां
૭૭૩	६	तुझ	तुझ
૭૭૫	१६	छो,	छे,
૭૬૬	४	काइ	कोइ
૭૭૯	१३	मकासे	मकाशे
૭૮૩	૭	पर	परि
,,	१૭	श्रेष्ट	श्रेष्ठ
,,	२०	शीष्य	शिष्य
૭૮૪	२	उवझा	उवज्झा
૭૮૯	१९	गुणगुण	गुण
,,	२०	नेही	नहीं
૭૯૮	२२	मभु	मभु
૭૯૯	૭	चं	चं०
૮૦૦	५	विभन्न	विभिन्न
,,	४	मंत्रे	

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
८०२	१३	नी	जी
८०९	२	अतित	अतीत
८२३	१९	मानता,	मानता हो,
८२७	४	स्वरुप	स्वरूप
८३२	५	रुचि	रुचि
८४०	१३	नमि	नमी
,,	१६	लो	लोल
,,	१८	,,	,,
८४२	७	स्वार्थ	स्वार्थ
८४३	८	समय	समय
८४८	२	अनिनाशी	अविनाशी
८५१	९	कलशा	कलशो
८५८	१२	घतिने	घातिने
,,	२०	क्षमत्वं	क्षमत्व
८६१	८	स्व	स्त्र
८६२	१७	मच्छ	मन्य
८६९	१८	मुद्दत	मद्दत
८७१	२	संशय	संशप
८७२	५	उवझाय	उवज्झाय
८७४	१५	[illegible]	[illegible]
८७६	२०	[illegible]	[illegible]
८७७	२१	[illegible]	[illegible]
८७९	१८	[illegible]	[illegible]
८८०	२३	[illegible]	[illegible]

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
८८२	१४	दोयें	देयें
८८७	२०	श्रीमजि	श्रीमज्जि
८८८	२२	जनाः	जनाः ॥ ८ ॥
८९०	१४	उतारणं	लूण उतारणम्
८९३	८	दुःसमे	दुःषमे
"	१२	प्रसु	प्रमु
"	१९	प्रई	प्राई
"	२१	ठाई	ठाँई
८९४	७	पाशक	पाशक
"	९	तिड	तिग
"	१०	मारगसि	मारगरसि
८९५	१५	तुम	तुम
८९६	९	वंडाजी	वंधाजी
"	"	ज गया	जगराया
"	१७	गृहा	गृह्या
"	१९	गृहे	ग्रहे
८९७	२	का	कागी
"	९	मन	नमन
"	२०	गुणि	गुण्न
"	२३	वृटो	वृटो
८९९	१७	दया	दयाल
९०३	१४	चिन	दीन
	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
१०९	११	साशन	शासन
"	१३	निर्वाण	निर्वाणं
"	१४	तुं	तु
१११	१७	प्रसु	प्रभु
११२	११	"	"
"	१०	आनंत	अनंत
११७	२२	दीत	दित
"	"	"	"
११९	१९	नीशिये	निशीये
१२१	१३	तत्वामृ	तत्वामृत
"	१८	ए,	ए, ४॥
१२४	१३	तोरे ॥	तोरे
१२४	२	भाश	भास
"	५	तापीत	तापित
"	८	तिमर	तिमिर
"	९	अनंद	अनंत
"	१०	पुष्प	पुष्प
१२७	१२	काउत्त	काउत्तग्ग
"	१७	शानिधि	सानिधि
१३१	२४	नंन	नन
१३३	१७	अनुं	अनु
"	१२	छावीस	छवीस
१३८	१९	वंदु	वंदु
"	"	हुवन	हुवन

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
९३९	१२	शीव	शिव
९५२	१	गुरू	गुरु
”	१४	तणो	तणी
”	२०	शुद्धात्व	शुद्धात्म
९५६	२	माठे	माटे
”	१५	जाण	जाणे
”	१६	नवदाव	नपदाव
९६६	६	तां	तो
९६८	९	केभके	केमके
९७०	१९	गुणोने	गुणोनो
”	”	पोतानो	पोतानो
”	२१	गुणी	गुणो
९७३	१४	म्र	ग्रु
९७५	१२	वाटे	माटे
९७७	१८	पाणी	प्राणी
९७९	११	वर्गु	पर्गु
”	१७	वागं	यारो
९८२	११	अणे	अने
”	१४	कभि	कथि
९८४	८	इरमेग	
९८६	६	परमेष्ठी	परमेष्ठी
९८७	१६	वर्गणी	वर्गणा
[illegible]	१८	दुर्गणोनो	दुर्गुणोनी
	[illegible]	[illegible]	[illegible]

	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
	४	सहगुरु	सद्गुरु
	२	अनुकुल	अनुकूल
"	९	सज्जाय	सज्झाय
१००९	१०	नृपत्ति	नृपति
१०१५	११	खंत्ती	खंती
१०२२	१४	प्रतिष्टता	प्रतिष्ठता
१०२३	१३	पीना	भीना
१०२८	९	पुत्रा	पुत्रो
१०३२	४	वंदण	वंदन
"	६	धन	घन
१०३६	२१	भविक्रु	भविकुं
"	२२	जिन	निज
१०३९	८	ईहां	इहां
"	"	ईक	इक
"	१९	एषामपि	एषा
१०४०	९	ती	—
"	१२	तन	लछन
"	२१	मत्वे	मत्त्वे
"	"	मत्व	मत्त्व
"	१६	परिच्छिदका	परिच्छेदकता
१०४५	४	परिच्छेदक	परिच्छेदक
१०४६	४	वच्छेदि	वच्छेद
१०४६	५	अवच्छेदि	अवच्छेद
"	६	नामे	परिणामे

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
१०४६	९	गुणज्ञान	गुण ज्ञान
,,	१२	पसिद्ध	प्रसिद्ध
,,	२०	कहिजे	कहिजे
१०४७	१५	एहयी	एहयी
१०४८	१९	परणमन	परिणमन
१०४९	७	केतो	केतां
१०५२	६	गंघहस्ति॥	गंघहस्ति
,,	१२	हेते	हेतो
१०५३	१७	वज्झिप	वज्झिय
१०५९	१५	विचतारे	विचरतारे
,,	,,	चंद्र	चंद्रः
,,	२२	संडक	संडइः
१०७०	८	कारण	करण
१०७२	९	अनवच्छिन्न	अवच्छिन्न

